Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

वेद पथ

मासिक

❀ वैदिक आचार-विचार-व्यवहार-प्रसारक ❀

तृतीय वर्ष { नभः, नभस्य=श्रावण, भाद्र २००७ वि०= अगस्त-सितम्बर १९५० ई० } प्रथम तथा द्वितीय अंक

वेदपथ के अनुग्राहक ग्राहकों से

आप लोगों के सहयोग से हमें पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है। यदि आप लोग कृपा करके कम से कम १-१ ग्राहक और हमें दें तो वेदपथ पर्याप्त उन्नति कर सकेगा। हमें यह प्रसन्नता है कि जनता इसे अपना रही है किन्तु हम इस से सन्तुष्ट नहीं है। पन्थाइयों के पत्रों के समक्ष हमारी स्थिति अभिनन्दनीय नहीं है। क्या हम आशा करें, कि वेदपथ लाखों की संख्या में छपे। हम इसमें चित्र भी देना चाहते हैं, कन्तु उसके लिए आप का सहयोग चाहिये।

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा ५≡)
वी० पी० द्वारा ५॥)
एक प्रति ॥)

सम्पादक—
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल
ज्वालापुर, जि० सहारनपुर।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

१

१. श्रुति सुधा

लेखक—श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज २

२. आत्मा का स्थान

लेखक—श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज

३. योगप्रकाश

अध्यक्ष विरजानन्द वैदिक संस्थान ४

लेखक—स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज ७

४. संसार का आगामी धर्म्म

लेखक—श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज ६

५. गीता के एक श्लोक का अर्थ

लेखक—श्री पं० भगवद्दत्त वेदालङ्कार १०

६. वाजपेय याग

७. मनुप्रोक्त अध्यात्मिक उपदेश संग्रह (११) लेखक—श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज १६

लेखक—ब्र० भूषण चैतन्य साहित्याचार्य २

८. अनन्त के पथ पर २

लेखक—श्री भवानीलाल जी

९. षड्दर्शनों की सामान्य प्रवृत्तियां २

१० साहित्य समीक्षा ३

११. सम्पादकीय ४

१२. श्रुति सुधा

लेखक—श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ४

१३. आत्मा का स्थान ४

१४. मनुप्रोक्त आध्यात्मिक उपदेश संग्रह (१२)

लेखक-विद्या भास्कर श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री ४

१५. ब्रह्म का स्वरूप (२)

लेखिका—श्रीमती माता प्रेमसुलभामती जी

१६. सन्तान पर माता का प्रभाव

१७. आर्थिक विचारण में न मिलने वाली कड़ी लेखक—श्री मगन भाई देसाई

१८. सार्वदेशिक दयानन्द सन्यासिवानप्रस्थ मण्डल का कार्य्य विवरण

१९. सम्पादकीय

आवश्यक सूचना

ग्राहकों की असुविधा को देखकर वेदपथ का प्रकाशन स्थान देहली कर दिया गया। अब पत्र देहली से ग्राहकों के पास जाया करेगा। इस वास्ते अब प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यव[हार] 'वेदपथ' मासिक, पाटौदीहाऊस दरिया गंज, देहली के पते पर करने की कृपा करें। सम्पादक नाम पत्र, लेख यथापूर्व ज्वालापुर के पते पर भेजे जाएं।

मुद्रक व प्रकाशक—
पं० ज्ञानचन्द्र जी सार्वदेशिक प्रेस देहली।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऐतिहासिक—

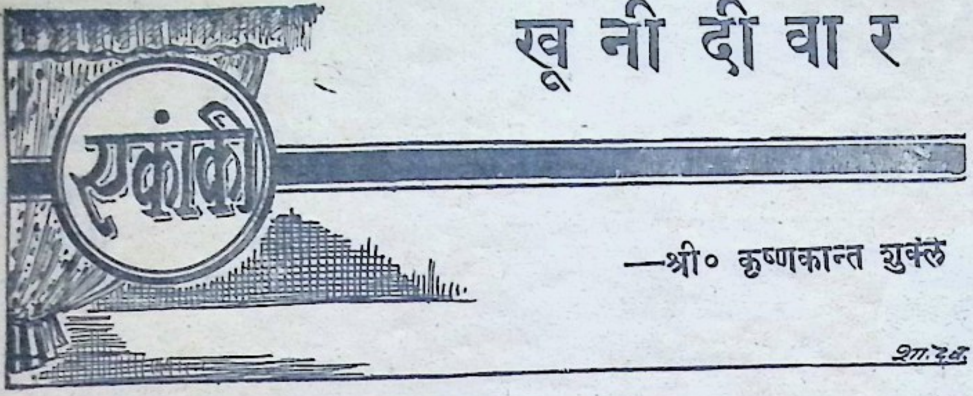

खूनी दीवार

—श्री० कृष्णकान्त शुक्ल

पात्र-परिचय

१ जोरावरसिंह—गुरु गोविंन्द सिंह का ज्येष्ठ पुत्र। आयु लगभग ९ वर्ष है। स्वस्थ शरीर और गौर वर्ण। सिर पर भगवा रंग की पगड़ी बँधी हुई है। पैरों में चूड़ीदार पैजामा तथा शरीर पर पुरानी चाल का पंजाबी कुर्त्ता है। उसके ऊपर से कमर में एक अगौंछा बंधा हुआ है। कमर में छोटी सी कटार बंधी है और दायें हाथ में एक लोहे का कड़ा पहने हैं। बचपन के भोलेपन के साथ ही मुख पर एक वीरतापूर्ण प्रतिभा है।

२ फतेहसिंह—श्री जोरावरसिंह का छोटा भाई। आयु लगभग ७ वर्ष की है रंग, कद और वस्त्र इत्यादि का पहनावा बड़े भाई की ही तरह है मुख पर भोलापन अभी अधिक है।

३ गंगाराम—गुरु गोविंद सिंह का रसोइया। आयु लगभग चालीस वर्ष है। रंग अधिक श्याम नहीं है। लम्बी मूंछे और दाढ़ी बनी हुई है। आंखें भूरी और कद ठिगना है। चापलूसी करना अधिक जानता है। पैरों में देहाती जूते और शरीर पर फेंटदार धोती और अंगरखा है।

४ गूजरी—गुरु जी की माता और दोनों बच्चों की दादी। आयु लगभय साठ वर्ष की है किन्तु अधिक बूढ़ी नहीं मालूम होतीं। शरीर पर सफेद रंग की सलवार और ढीला पंजाबी कुर्ता है। सर पर सफेद ही दुपट्टा (मोटा) है।

५ जानीखां—सूबे का हाकिम। मुसलमानी-पोशाक है। दाढ़ी-मूछें दोनों हैं किन्तु काटकर नुकीली बनी हुई हैं। आँखें लाल हैं। उम्र लगभग ३० वर्ष के हैं शरीर लम्बा-चौड़ा है।

६ शेर मोहम्मद खां—जानी खाँ के नीचे की श्रेणी का पदाधिकारी (Under Officer) अभी नौजवान है।

७ दिवान सुचानन्द—रियासत का हिन्दू दीवान। क्षत्रिय-वंश का होते हुए भी मुसलमानों से मिल गया है। गुरु से विशेष वैर रखता है। अभी तरुण है और व्यक्तित्व कुछ भी न होने पर भी मूछें ऐंठ रक्खी हैं।

प्रथम—दृश्य

(समय आधी रात बीत चुकी है। चारों ओर पूर्ण शान्ति है। अन्धेरी रात के कारण कुछ दिखाई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं देता है। चार आदमी एक डोली लिए हैं जिसपर पर्दा पड़ा हुआ है। डोली के आगे आगे गंगाराम चल रहा है। डोली के अन्दर से माता गूजरी बोलती हैं।)

गूजरी—अरे भाई गंगाराम। अभी कितनी दूर चलना है और तुम लिए कहाँ चल रहे हो ?

गंगाराम—(कुछ रुककर)

माताजी, आप चिन्ता न करें मैं ऐसे स्थान पर चल रहा हूँ जहां पर शत्रुओं की किसी तरह भी पहुँच न हो सकेगी। आप निश्चिंत रहें।

गूजरी—सो तो ठीक है बेटा, जहाँ तुम साथ हो वहाँ किस बात की चिंता ? तुम पर तो मेरे बेटे को भी बहुत विश्वास है, तभी तो रात में भी तुम्हारे साथ भेज दिया कि हमारी रक्षा तुम अच्छी तरह से कर सकोगे।

गङ्गाराम—(चलते ही चलते) माताजी, आप विश्वास रक्खें। जिस स्वामी का जीवन भर इस सेवक ने नमक खाया है, उसके प्रति अपना कर्त्तव्य निभाना भी यह दास अच्छी तरह जानता है।

गूजरी—(डोली के अन्दर से ही)

क्यों नहीं बेटा, अवश्य जानते हो और जानना भी चाहिये, क्योंकि हो तो भारत की ही सन्तान। इसमें ऐसे २ वीर और स्वामिभक्त नौकर हुआ किया करते हैं। देखो भामाशाह को। जिसने महाराणा प्रताप के लिए सब कुछ त्याग दिया। फिर तुम देखो कोई सेवक नहीं हमारे दूसरे पुत्र के रूप में हो।

गङ्गाराम—नहीं माँ ऐसा न कहो यह सेवक किस योग्य है।

(डोली के कहारों से)

बस यहीं उतारो डोली। मैं अभी आता हूँ ([illegible] कुटिया के अन्दर प्रवेश ! कहार डोली उतारते हैं और माता जी डोली का परदा ऊपर पलटकर इधर उधर देखती हैं।)

गूजरी—(बच्चों को हिला हिलाकर) उठो बेटा आ गया, उठो बेटा फतेह अच्छा तुम जोरावर [illegible] । यह

(पृ[illegible] का शेषांस)

इसके लिये प्रति [illegible] नागा दिये करना उचित रहेगा। साथ ही [illegible] ध्यान में रखना चाहिये, कि धूप [illegible] रूमाल से ढका हो।

[illegible] को इधर उधर इस प्रकार [illegible] येक घुमाव में पैर की एड़ी [illegible] की ओर रहें तथा अधखुली र[illegible] यह [illegible]०-१५ मिनट हो सुबह शाम करना चाहिये तथा [illegible] में उपरोक्त क्रिया करनी चाहिये। (ठंडे पानी [illegible] आँखें धोकर काली वस्तु का स्मरण करना)।

६—विज[illegible]दशमी से शरद पूनो तक रोज प्रतिदिन चाँद क[illegible] १०-१५ मिनट देखने से आँखों के सब रोग [illegible] हैं १०-१५ दिन के अन्तर से एक स[illegible] पीला सरसों वाला कडुवा तेल सोते समय आंखों में लगावे। इस क्रिया से साल भर तक निरोग रहता [illegible]

७—रात्रि में [illegible] समय शुद्ध शहद लगाने से आँखें स्वच्छ होती हैं। काजल और अंजन का प्रयोग लाभदायक है। पर आजकल के बाजारू सुरमे से बचें इससे लाभ के स्थान पर हानि होती है।

इन सब नियमों एवं क्रियाओं द्वारा नेत्र की ज्योति बढ़ाई और स्थिर रखी जा सकती है।

★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खोया करेगा। आओ हम सब लोग चलें।

फतेहसिंह—(हड़बड़ाकर उठते ही) नहीं दादी मैं भी चलूंगा। और भइया भी तो अभी सो रहे हैं।

गूजरी—(जोरावर को हिलाती हुई) नहीं, सो कहाँ रहा है वह राजा बेटा है। वह कहीं सो सकता है। यह देखो उठ बैठा। (जोरावरसिंह भी उठ बैठता है, और इधर उधर देखता है)

जोरावरसिंह—कहाँ हैं हम लोग दादी। और पिताजी कहाँ गये ? (डोली से निकलकर बाहर आता है। कहारों की ओर इशारा करते हुये) और यह लोग कौन हैं दादी।

गूजरी—यह लोग कहार हैं। हम लोगों को यहाँ तक लाये हैं। पिताजी सब सैनिकों को संग लेकर आक्रमण करने की प्रतीक्षा में हैं।

जोरावरसिंह—तो रात में ही आक्रमण करने क्यों गए ? और हम लोगों ने किला क्यों छोड़ दिया ? क्या वहाँ नहीं रह सकते थे ?

गूजरी—नहीं बेटा, रात में ही आक्रमण नहीं करेंगे। रात में तो हम लोगों को किले के बाहर निकाल दिया। जिससे कहीं सुरक्षित स्थान पर पहुँच सकें। और कल प्रात:काल ही सब लोग आक्रमण कर देंगे। यदि ऐसा न करते तो होता ही क्या ? दस दिनों से तो भूखों मर रहे थे। भूखों मरना कहाँ तक ठीक था ? अब जीत गये तो फिर ठीक और मर गए तो अमर हो जावेंगे।

फतेहसिंह—अमर कैसे हो जाएंगे दादी !

गूजरी—अमर हो जाएंगे बेटा। मर करके ही आने वाली पीढ़ियाँ उनके ही गीत गायेंगी, और कहेंगी देखो, एक वीर सिंह था, जिसने अपने देश, धर्म और जाति के लिए प्राण दे दिए। ऐसे व्यक्ति मरा नहीं करते। उनका तो नाम युगों तक प्रत्येक मनुष्य की जिह्वा पर इसी प्रकार जीवित रहेगा।

फतेहसिंह—सच दादी, तब तो हम भी अमर होंगे। हम भी जल्दी मरेंगे और............

गूजरी—धत् पगले ? कहीं ऐसा कहते हैं ? मरे तेरे शत्रु और वैरी। ईश्वर करे तुम हजार २ वर्ष जिओ। (और मुख चूम लेती है।)

जोरावरसिंह—नहीं माँ हम मरेंगे नहीं, हम तो अपने वैरियों को मार २ कर उनकी समाप्ति करेंगे। क्यों माँ ठीक है ना ?

गूजरी—हाँ बेटा तुम वीर हो। और (हाथ में दीपक लिए हुए गङ्गा राम का प्रवेश)

गंगाराम—(कहारों को मजदूरी देते हुए) लो अपनी मजदूरी, तुमने रात में बहुत परिश्रम किया, हम तुम्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं। (माता जी की ओर मुख करके) हाँ, चलिए माता जी; यही आपकी कुटिया है। (दीपक दिखाता है माता जी डोली से निकल कर बाहर आती हैं, हाथ में एक सन्दूकची लिए हुए हैं जोरावर सिंह और फतेहसिंह भी डोली से उतर कर नीचे खड़े होते हैं।

गूजरी—चलो बेटा, तुम आगे आगे दिया लेकर चलो, मैं भी धीरे धीरे······

गंगाराम (बीच ही में) लाइये यह सन्दूकची मैं ले लूं। बहुत भारी होगी। (हाथ बढ़ाता है)

गूजरी—नहीं बेटा गरू (भारी) नहीं है फिर भी तुम्हारा मन है तो ले लो (सन्दूकची उसे दे देती है)

गंगाराम—(जेवर की खनक सुनकर उसे कुछ लालच आता है) इसमें जेवर है, क्यों माँ जी ?

गूजरी—जेवर क्या बेटा, दो एक गहने पड़े हैं। कोई जमाना था जब घर की ईंटें भी सोने की बनवाई जा सकती थी किंतु आज······

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जोरावर सिंह—आज क्या दादी, हम दोनों भाइयों को बड़ा होने दो, घर की दीवारें क्या कुयें को ईंटें भी सोने की बनवाएंगे। क्यों गंगा काका ?

गंगाराम—हाँ बेटा, क्यों नहीं। तुम सब कुछ कर सकते हो। अच्छा माता जी (कुटिया के अन्दर आकर) आप लोग अन्दर सोइए हम छप्पर के नीचे सो जाएंगे। अब जाकर आराम कीजिए थोड़ी ही रात शेष है। यह लीजिए अपनी सन्दूकची, और मैं तो चला। (सन्दूकची माता जी को देने लगता है)

गूजरी—इसे बेटा, तुम अपने पास ही रक्खो। तुम अपने घर में अच्छी तरह सुरक्षित रख सकोगे। अच्छा, जाओ तुम भी सोओ जाकर बड़ी रात हो गई है।

गंगाराम—आप लोग सोइए। मैं भी जाता हूँ।

(सन्दूकची लेकर दूसरे कमरे को प्रस्थान चारपाई पर बैठकर सोचता है सन्दूकची की ओर देख कर)

जेवर, जेवर तो काफी हैं। अगर हम न दें तो यह बुढ़ियां कर ही क्या सकती है। और फिर तो जीवन भरे आनन्द ही रहेगा। लेकिन इस तरह कैसे मैं यह धन ले सकता हूँ। यह लड़के बड़े होंगे तब तो छीन लेंगे और कहेंगे कि यह हमारा धन है।

तो तो (अपने आप कहता है)

तो बादशाह को सूचना दे दें कि यह लोग हमारे यहाँ ठहरे हैं और तब पकड़ जायंगे फिर हम आजीवन मस्ती से रह सकेंगे।

(फिर सोचता है) किंतु नहीं यार, हमने उनका नमक खाया है, अब विपद् के समय में यह उचित नहीं है। हमारे विश्वास पर स्वामी ने अपनी और भविष्य की अमूल्य थाती सौंपी है; किंतु.........

(फिर बुद्धि बदलती है।)

इस दुनिया में कौन किसका है। सब स्वार्थ के हेतु ही एक दूसरे के अपने हैं। अपने सभी सुखी देखना चाहते हैं। अपने सुख के लिए एक एक का स्वामी और सेवक है। जब हम वह दोनों मनुष्य हैं फिर स्वामी और सेवक का कैसा ? आज वह समय आ गया है जब सेवक स्व बनेगा। हम उनको पकड़वायकर अवश्य आ करेंगे।

(सोचकर सन्दूकची एक ऐसे गुप्त स्थान रख देता है। जहाँ कोई भी अपरचित शीघ्र खोज सकता और बाहर आकर जोर से चिल्लाता

चोर, चोर।

गूजरी—हड़बड़ा कर उठती हुई देखती है (प्रात:काल) हो रहा है। क्यों बेटा क्या हुआ ? चिल्ला रहे थे ?

गंगाराम—घबड़ाने और रोने का अभि करते हुए) चोर, माता जी चोर सब कुछ उठ गए।

गूजरी—(घबड़ाकर) चोर, बेटा चोर तो कहीं नहीं दिखाई देता। अच्छा वह सन्दूकची अच्छी तरह रख दी थी।

गङ्गाराम—वही तो कह रहा हूँ, माँ। रात में सिर रखकर सो गया था। प्रात:काल उठा तो देखा ही नहीं।

गूजरी—(और घबड़ाकर किंतु शीघ्र संभलकर)

क्या कहते हो गङ्गाराम, सवेरे गायब हो यहाँ तो चोर आने के कोई लक्षण नहीं दिखाई और तुम कहते............

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गङ्गाराम—(आँसू पोंछने का अभिनय करते हुए) अच्छा, तो आपकी सन्दूकची मैंने चुरा ली। साफ साफ क्यों नहीं कहतीं कि मैं चोर हूँ और......

गूजरी—(फिर अपनी परस्थिति समझकर सम्हलती है) मैं तुम्हें चोर नहीं.........

गङ्गाराम—चोर नहीं तो और क्या ? एक तो मैंने अपने जीवन की चिंता न करके आप लोगों को आश्रय दिया और यदि बादशाह या किसी राज कर्मचारी को पता तक चल जाए तो वंश की जड़ तक साफ कर दी जाय। और उसे ही आप चोर कहती हैं। मैं अभी जाकर थाने में.........

गूजरी—नहीं बेटा ऐसा न कहो। मैं तुम्हें चोर नहीं कहती। होगा जाने दो। कोई ले गया तो ले जाने दो। तुम्हारे दोनों छोटे मालिक बनें रहेंगे तो हजारों वैसी ही भरी सन्दूकची आ जायेंगी।

गङ्गाराम—हाँ माँ जी, कहती तो ठीक हो एक नहीं हजारों सन्दूकचियाँ आ जायेंगी।

(खिलखिलाकर हंसना है।)

गूजरी—(घबड़ाकर) क्यों बेटा ! क्या है, इस तरह क्यों हँस रहे हो।

गङ्गाराम—यही कि हजारों सन्दूकचियाँ आ जायेंगी।

(और जोर से हँसता है)

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

समय—दोपहर।

स्थान—जानी खाँ, सूबे के हाकिम का दरबार लगा हुआ है। बीच में सिंहासन पर जानीखाँ विराजमान हैं। बगल की कुर्सी पर क्रमशः अन्य हाकिम बैठे हुए हैं। वजीदखाँ भी अपने स्थान पर सुशोभित है। दीवान सचानन्द भी नीचे की ओर कुर्सी पर बैठे हैं। सिंहासन के ठीक ऊपर औरंगजेब का चित्र लगा हुआ है। एक ओर दोनों कुमार बंधे हुए खड़े हुए हैं। सब लोग एकटक कुमार की ओर देख रहे हैं

जानी खाँ—इन दोनों काफिरों को इधर ले आओ और हथकड़ियों से बरी कर दो। (दोनों की ओर इशारा करते हुए।)

तुम दोनों को हम छोड़ सकते हैं अगर तुम लोगों को दीन इसलाम की गोद में आना मँजूर है।

जोरावरसिंह—(मुस्कराते हुए) तुम्हें शर्म नहीं लगती ऐसा कहते हुए। हिन्दू ऐसे पवित्र धर्म को छोड़कर कौन मूर्ख अन्य धर्म की ओर निहारेगा। अरे मूर्ख ! कोई जान बूझकर सुख और शान्ति को छोड़कर और घृणा को अपनाता है।

जानीखाँ—अरे जरा दिमाग से सोच। इस्लाम काफिरों पर रहम करना नहीं बताता। अभी खैरियत है दीन इस्लाम की साया में आजा नहीं तो तुम दोनों का कतल होगा।

जोरावरसिंह—(उसी भाव से) कतल ! यानी मृत्यु। मृत्यु से हम नहीं डरते ! हम लोग हँस हँसकर मरना जानते हैं। क्यों भइया !

फतेहसिंह—हाँ भइया, हम भी मरकर अमर हो जाएँगे क्यों दद्दू।

जोरावरसिंह—हाँ भइया !

जानीखाँ—मैं कहता हूँ, तुम लोग जिद न करो। अब भी बाज आओ, दीन इस्लाम कबूल करो।

जोरावरसिंह—खबरदार ! यह शब्द अब दुबारा न कहना नहीं तो......... (दाँत किटकिटाता है)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जानीखाँ—(सिपाहियों से) यह सामने की दीवाल गिराकर इन दोनों को चुन दो। यह लोग ऐसे बाज न आएंगे।

('जो हुक्म' कह कर सिपाही दीवाल गिरा देते हैं।)

जानीसिंह—दीवाल में ले जाओ इन काफिरों को और चुन दो उसी में। क्यों तुम्हें चुनना मंजूर है या दीन इस्लाम.........

जोरावर सिंह—(डपट कर) रहने दो आगे कुछ कहने को। और जाकर स्वयं गिरी दीवाल के ऊपर खड़ा हो जाता है, साथ में फतेह सिंह भी खड़ा हो जाता है।)

जानी खाँ—यह हिम्मत, इतनी जुर्रत! मिस्त्री चुन दो इन दोनों को। क्यों वजीद खाँ क्या राय है?

वजीद खाँ—हाँ हजूर ठीक है अगर यह दीन इस्लाम नहीं मंजूर करता है तो चुन देना ही......

शेर मुहम्मद—नहीं; बच्चों को चुनकर जान से मार डालना ठीक नहीं है उनके वालिद के इल्जामों के पापों का जुर्माना इनसे लेना दीन इस्लाम हमें नहीं बताता। इन्हें कैद करके रखा जा सकता है, जिन्दा ही मुर्दा नहीं। इसलिए.........

दीवान सचानन्द—नहीं, सरकार इन्हें मार ही डालना ठीक होगा। साँप के सपोले भी कम खतरनाक नहीं होते। मौका पाकर बदला लेते हैं अपने पुरखों तक का।

जानी खाँ—नहीं जी, दीवान ठीक कहते हैं। चुन दो मिस्त्री इन्हें चुन दो। यह साँप के बच्चे हैं। क्यों, क्या सोच रहे हो? अभी खैर है। कबूल है दीन इस्लाम तुम्हें या.........

जोरावर सिंह—फ़िर वही पागलपन। वीर पुरुष एक बार ही बात कहते हैं। सिंहों को जीवन से मृत्यु प्यारी होती है। उन सुनहली और आनन्द की घड़ियों का क्या मूल्य यदि 'हम' रहकर ही न मना सकें। यदि हमने अपनत्व और धैर्य्य ही खो दिया तो हमारा वह जीवन कहाँ रहा? वह तो एक बार मर कर उसी शरीर में दूसर में दूसरा जन्म हुआ है। फिर जब दोनों प्रकार से ही मरना है तो पुराना और वही शरीर लेकर ही हम क्यों रहें नया जीवन हम नये शरीर से ही धारण करेंगे।

क्यों भइय्या?

फतेह सिंह—हाँ भइय्या, हम अब अमर हो हो जाँयगे।

जानी खां—चुन दो मिस्त्री, देखते क्या हो?

(मिस्त्री उन्हें जीवित चुनने लगता है। धीरे-धीरे दीवाल कन्धे तक आ जाती है, दोनों कुमार उसी प्रकार मुस्कराते रहते हैं।)

जानी खाँ—क्यों, अब भी खैर है, मैं दीवाल गिरवा कर तुम्हें निकलवा लूंगा अगर तुम दीन इस्लाम मंजूर करो।

जोरावर सिंह—(डाँट कर)

तुझे शर्म नहीं आती बार २ कहते। मैंने कहा सिंह एक बार एक बार कहते हैं। अब क्यों देर करता है, रख दे चार ईंटे और। क्यों भइय्या।

फतेह सिंह—(मुस्कराते हुए)

और क्या भइय्या फिर हमारे दादा जी के वचन सत्य हो जाँय।

(शेषांश पृष्ठ ६८ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीवन-गीत

[ना० गं० वझे, एम० ए०]

चल कदम बढ़ा तू राही, घोर तिमिर-पथ चीर !
पथ में होंगे प्रति पग कांटे, कांटों की कटु पीड़ा,
उस पीड़ा की प्रतिपल गुंजित, कसक भरी ध्वनि होगी।
कंटक दलता बढ़ता जा तू, ज्योतित पथ की ओर,
संकट सहकर ही तो तेरी, सफल साधना होगी।
विकट संकटों से परिवेष्टित, दुर्गम तेरा पथ है,
पर नयनों में न दे दिखाई, कभी निराशा-नीर।
चल कदम बढ़ा तू राही, घोर तिमिर-पथ चीर ॥१॥

घुमड़ घुमड़कर घन गर्जेंगे, झंझा के झौंखे आवेंगे,
उन भीषण जौंखों से प्रतिपल, कंपन तेरे उर में होगा।
संकटमय उस परुष पंथ पर, या निज को एकाकी,
ज्ञात मुझे है, पल पल आकुल, उन्मन तेरा अंतर होगा।
पर जीवन की कठिन परीक्षा, की घड़ियों में राही,
भय-विह्वल होना न कभी, मत होना कभी अधीर।
चल कदम बढ़ा तू राही, घोर तिमिर-पथ चीर ॥२॥

कुसुम कंटकों में पलकर ही, सुंदरता, सौरभ, द्युति पाता,
आँच अग्नि की झेल प्रखरतर, कनक कांति किरणें बिखराता।
चट्टानों के चीर हृदय को, स्रोत, सरित, सागर, बन जाता,
सघन तिमिर को भेद तरणि निज, तेज जगत में है छितराता।
इसको ही कहते हैं जीवन, इसमें गति है इसमें द्युति है,
पाल तरी के खोल निडर हो, तभी मिलेगा तुझको तीर।
चल कदम बढ़ा तू राही, घोर तिमिर-पथ चीर ॥३॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभी न कमाया तो कब कमाओगे

अपनी बेकारी समाप्त करने के लिये—

आटा चक्की, धान मशीन, तेल कोल्हू अवश्य और किफ़ायत से लगाइए और रुपया कमाइए।

हर प्रकार की मशीनरी, पानी की मशीने, रुई की मशीने और अन्य सभी प्रकार की मशीनरी के सामान के लिए निम्न पते पर पधारिए—

पंजाब इंजीनियरिंग कम्पनी

लाटूश रोड, कानपुर।

मेट्रो केमिकल इण्डस्ट्रीज नसीमाबाद, कानपुर की

आयुर्वेदिक मतानुसार तैयार की हुई प्रसिद्ध औषधियां

मेट्रो साल्सा—नई जवानी, नया खून, नई उमंगे। यह साल्सा जङ्गली जड़ी, बूटियों से आयुर्वे मतानुसार तैयार किया जाता है। बिगड़े हुये खून को साफ करके नया खून पैदा करता है।

मेट्रो बालामृत—(सूखा रोग की शतिया दवा) बच्चों को सर्दी, खाँसी, कफ, ज्वर, हरे पीले बदबू दार दस्त, उल्टी, दाँत निकलने की तकलीफ, अनपच, कमजोरी, खून की कमी आदि को मिटाकर उन्हें हृष्ट पुष्ट और सुखी बना देता है की० १) ।।), डा० खर्च अ०

मेट्रो बाम—भयंकर से भयंकर सिर दर्द, दाँत दर्द, छाती का दर्द, पसली का दर्द, कमर का दर्द गले का दर्द, गठिया, निमोनिया का दर्द, नाक की जलन, जुकाम, सीना में ठंड लगना, जले, कटे घाव, फोड़ा, फुन्सी आदि के लिये रामबाण है। कीमत ।।।) और ।।) नमूना डाक खर्च अलग।

मेट्रो साल्ट—पेट दर्द, पेट का अफारा, बादी का दर्द, मंदाग्नि, भूख की कमी, हृदय की जलन खट्टी मिट्टी डकारें आना, वायु साफ न खुलना हैजा, पेचिस, तिल्ली, मोटापन, वायुगोला, पित्त संग्रहनी, सिर चकराना, सुस्ती व कमजोरी, दिमाग की कमजोरी, फसली बीमारी तथा प्रदेश में पानी लगना आदि रोगों के लिये स्वादिष्ट पाचक चूर्ण कीमत ।≈) और ।) नमूना ≈) डाक खर्च अलग

निर्माता—मेट्रो केमिकल इण्डस्ट्रीज, पोस्ट बक्स ३८१ कानपुर।

नोट—एजेन्टों तथा सेल्स मैनों की आवश्यकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

ओ३म्

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ०१।४१।४)

वेद पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि विस्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

द्वितीय वर्ष | देहली | नभस्य=भादु २००७ वि० =सितम्बर १९५० ई० | अङ्क १

❀ श्रुतिसुधा ❀

इसी संसार में सब का स्वाद ले

ओ३म् तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वतदग्ने अमृत स्वदेह ॥ ऋ० ३।१४।७

हे (दक्ष) उत्साह सम्पन्न (कविक्रतो) ज्ञानाकृत कर्म करने वाले (देव) आत्मदेव ! हम [म]र्तासः) मरणधर्मा प्राणादि (अध्वरे) जीवन [यज्ञ] में (यानि) जितने कर्म (अकर्म) करते हैं [इम]ा) ये सब (तुभ्यम्) तेरे लिए ही हैं । हे [अ]मृत) विनाशरहित (अग्ने) जीवन रथ के [च]ालक (तत्) उस (सर्वम्) सबको (इह) इसी [संस]ार में, इसी जन्म में (स्वाद) भोग ले, चख ले। क्योंकि तू (सुरथस्य) सुरमणीय (विश्वस्य) विश्व को (बोधि) जानता है।

इस मंत्र में वैसे तो अनेक तत्त्वों का निरूपण है किन्तु एक पर विशेष बल दिया प्रतीत होता है, और वह मन्त्र के अन्तिम चरण में कहा गया है। प्राणादि आत्मा को संबोधन करके मानो कह रहे है कि हम आपके जीवन यज्ञ में विविध कर्म करते हैं उन सब को आप यहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भोग लो। अर्थात् अपने इस सांसारिक जीवन को उत्कृष्ट और उत्तम बनाओ। वेद की यह विशेषता है कि वह इस लोक की उपेक्षा नहीं करता। इस संसार को वह कर्म्मभूमि तथा भोग-भूमि दोनों ही बता रहा है। आँख, नाक आदि मरणधर्मा हैं। ये जो भी कर्म करते हैं उसका फल आत्मा को मिलता है। आत्मा अमृत=न मरने वाला है। अर्थात् नित्य आत्मा के करण =कर्म साधन नेत्रादि मर्त्त=मरने वाले अनि[त्य] हैं। इन अनित्य साधनों के कर्मों का फल य[हां] भोग ले, आगे साथ न ले जा। नित्य आत्मा साथ कोई चिरस्थायी कमाई ले जा। आत्मा इस मन्त्र में 'दक्ष, कविक्रतु, देव'' भी कहा यह विशेषण बहुत मनन करने योग्य हैं।

स्वामी वेदानन्द

आत्मा का स्थान

[श्रीमान् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज]

आत्मा शरीर में किस स्थान पर रहता है? यह एक प्रश्न है। इस प्रश्न को अवकाश तब ही मिलता है जबकि हम आत्मा को अणु मान लें। व्यापक मान लेने पर तो आत्मा सारे ही शरीर में और शरीर से बाहर भी विद्यमान होगा, अतः इस सिद्धान्त को मानने वाले के सामने तो यह प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता। आत्मा को मध्यम परिमाण वाला मानने वाले विचारकों के सामने भी यह प्रश्न आता नहीं। क्योंकि वे आत्मा को सारे शरीर में व्यापक मानते हैं उसके किसी एक देश में नहीं। अतः यह प्रश्न उन्हीं विचारकों के सामने उपस्थित होता है जो आत्मा को अणु, और इसी लिये शरीर के किसी एक देश में उसका निवास मानते हैं। यद्यपि प्रसङ्ग-वश उपनिषदों की दृष्टि से आत्मा के परिमाण का भी निर्देश कर दिया जावेगा, परन्तु इस लेख का विचारणीय विषय यह नहीं है कि आत्मा का परिमाण क्या है। इस लेख में दर्शनों के आधार पर नहीं, केवल उपनिषदों के आधार पर इस प्रश्न का उत्तर दिया जावेगा कि 'आत्मा का निवास हमारे शरीर के किस भाग में है'?

यह लेख इस दृष्टि से नहीं लिखा जा[ता] है कि इसे ही सिद्धान्त मान लिया जावे [जो] विषय इस लेख में प्रतिपादित है। प्रत्युत मैं विचार धारा '*भवद्भिरामवसर प्रदानाय वचांसि*' (=आप कुछ कहें, इस लिए हम बोल रहे) इस भावना से प्रस्तुत कर रहा हूँ। जो वि[द्वान्] महानुभाव इस विचारमाला में अपने म[नोहर] पुष्पों को युक्ति से गूंथने की कृपा करेंगे उनका आभारी हूँगा। मैं यह कभी आग्रह करूंगा कि जो कुछ मैंने समझा है वह ही य[थार्थ] है। जो उत्तम विचार इस विषय [में] संगृहीत हो सकें, उनका सङ्कलन कर जनता [के] लाभ की वस्तु बना देना ही एक मात्र लक्ष्य [है]। विद्वानों के पारस्परिक विचार प्रसङ्ग में [आई] हुई कटुता जनता को तथा विद्वानों को स्वयं खटकती है और उस कटुता के पर्दे में [छिपा] हुआ विषय अनुपादेय सा ही बन जाता [है]। अतः सविनय प्रार्थना है और आशा है [कि] निबन्ध की त्रुटियों को सुझाता हुआ [विद्वत्स]मुदाय सन्मार्ग प्रदर्शित करने का यत्न करेगा।

आत्मा चेतना का आश्रय है। हमें [जो] अन्तःकरण आदि साधनों से जितने ज्ञान [होते हैं] उन सब का कर्ता आत्मा ही है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारी इन्द्रियें, अन्तःकरण तथा मस्तिष्क आदि जितने भी साधन हैं वे सब ही जड़ हैं। इनमें से यद्यपि अन्तःकरण में तथा इन्द्रियों में प्रकाश है, परन्तु उस प्रकार का प्रकाश जिसे चैतन्य कहते हैं, और जो आत्मा में है, इनमें नहीं है। इनके प्रकाश का प्रत्यक्ष अन्तर्मुखी चक्षु से हो सकता है, परन्तु आत्माके चैतन्य रूप प्रकाश का प्रत्यक्ष चक्षु से नहीं हो सकता। जिस प्रकार सूर्य एक कक्षपर अपना प्रकाश डालकर उसे प्रकाशित कर देता है, परन्तु जड़ होने के कारण यह नहीं जान सकता कि यह कक्ष है। इसीप्रकार मन और इन्द्रियें भी सूर्य की भांति ही कक्ष को प्रकाशित तो करते हैं परन्तु वे भी यह नहीं जान सकते कि यह कक्ष है क्योंकि वे भी जड़ हैं।

आत्मा, सूर्य, मन, और इन्द्रियों के प्रकाशित किये हुए कक्ष को उन्हीं की भांति प्रकाशित तो नहीं करता, परन्तु उनके द्वारा प्रकाशित किये उस कक्ष की इसे अपने चैतन्य के बल पर अनुभव हो जाता है, और वह जान लेता है कि यह कक्ष है। इस प्रत्यक्ष की साधन जो आत्मा का चैतन्य है उसका प्रत्यक्ष न इन्द्रियें कर सकती हैं और न मन। अपने इस चैतन्य का प्रत्यक्ष या तो आत्मा स्वयं करता है और या ईश्वर को इसके ज्ञान का प्रत्यक्ष होता है। इसे अपने ज्ञान का प्रत्यक्ष तब हुआ करता है जब यह कक्ष को जान कर यह कहा करता है कि "मैं कक्ष को जानता हूं" इसके इस कथन का तात्पर्य यह हुआ करता है कि मेरे पास कक्ष का ज्ञान है। यह आत्मा को अपने उस ज्ञान का प्रत्यक्ष हुआ है जोकि उसे पहिले "यह कक्ष है" इस रूप में हुआ था, और जिसमें कि इन्द्रियों का और मन का सहयोग था। परन्तु इस ज्ञान के ज्ञान काल में तो ये सब साधन मौन हैं। इसी कारण आत्मा के तथा ईश्वर के अभौतिक चैतन्य का प्रकाश इन्द्रियों से तथा मन से नहीं हो सकता क्योंकि चैतन्य इन सब की पहुँच से परे है।

उपनिषद् के "*न तत्र सूर्यो भाति*" (उसके सामने सूर्य नहीं चमक सकता) इस वाक्य का यही तात्पर्य है कि सूर्य का प्रकाश प्रभु के प्रकाश को प्रकाशित नहीं कर सकता। "*तस्य भासा सर्वमिदं विभाति*" (उसके प्रकाश से यह सब चमक रहा है) इस वाक्य का तात्पर्य भी यह नहीं है, जैसे कि सूर्य और चन्द्रमा के विषय में कहा जाता है, कि सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा चमक रहा है। यदि यह ही तात्पर्य होता तो हमें समझना पड़ता कि जैसा सूर्य का प्रकाश है वैसा ही और उससे सहस्रों गुणा प्रकाश ईश्वर का होगा, जिससे कि सूर्य आदि चमक रहे हैं परन्तु बात ऐसी नहीं है। यदि सूर्य जैसा और सूर्य से सहस्रों गुणा प्रकाश ईश्वर का होता तो वह हमें अपनी इन आंखों द्वारा ही दिखाई देना चाहिये था। और दिखाई देना तो दूर रहा उसे इतने महान प्रकाश से हमारी आंखें इतनी चुन्धिया जाती कि हमें कुछ भी दिखाई न देता, क्योंकि सूर्य तो हमसे बहुत दूर एक ही स्थान पर है और उसका प्रकाश बड़ी दूर से हमारे पास आता है, परन्तु ईश्वर का प्रकाश तो उसके सर्वव्यापक होने से हमारी आंखों के बीच में ही विद्यमान् है। अतः ईश्वर का प्रकाश सूर्य जैसा नहीं, आत्मा जैसा अनुभव रूप है। परन्तु वह प्रकाश आत्मा के प्रकाश से कितना अधिक है यह लिखने और बोलने की बात नहीं है। इसका अनुमान यहां

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से ही लगा सकते कि जीव एक अणु के समान है और ईश्वर सर्व व्यापक है। इस प्रकार आत्मा का प्रकाश अभौतिक और अनुभव रूप है उसका भौतिक साधनों से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता और इसके अतिरिक्त अन्य तत्त्वों का प्रकाश भौतिक है उसका अन्य साधनों के सहकार से आत्मा को प्रत्यक्ष होता है।

'ईश्वर के प्रकाश से सूर्य आदि चमक रहे हैं' इस उपनिषद् के वाक्य का तात्पर्य यह ही है कि ईश्वर का ज्ञान इतना अधिक है कि प्रभु उस प्रकाश में प्रकृति के प्रत्येक अणु की शक्ति को पहिचान कर, सूर्य आदि पदार्थों की रचना में ऐसे परमाणुओं की योजना करता है कि उनसे निर्मित पदार्थ एक महान् प्रकाश का भण्डार बन जाता है। यदि ईश्वर का ऐसा ज्ञान न होता तो इन प्रकाश के पुञ्ज पदार्थों की रचना न हो सकती। बस यह ही उपनिषद् के इस वाक्य का तात्पर्य है।

इस प्रसङ्ग में आत्मा के सम्बन्ध में हमने यह बतलाने का यत्न किया है कि आत्मा एक चेतनावान् तत्व है। उसे उस चेतना अथवा अनुभव के द्वारा ही सब पदार्थों के ज्ञान होते हैं। इन्द्रियें, मन, मस्तिष्क आदि सब उसके इस ज्ञान में साधन हैं। ये स्वयं चेतनावा[न्] नहीं हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि आत्मा य[दि] चेतनावान् है तो उसकी उस चेतना की प्रतीति तो इस सारे ही शरीर में है। शरीर के प्रत्येक अङ्ग में जो क्रियाएं अन्दर अथवा बाहर हो रही हैं उन सब को चेतना के आधार पर ही जन्म मिलता है। मन, प्राण, इन्द्रिय आदि साधन इन क्रियाओं की उत्पत्ति में आत्मा के सहायक हो सकते हैं परन्तु जड़ होने के कारण वे स्वयं सोच कर किसी क्रिया को उत्पन्न नहीं कर सकते। और जब क्रियाएं शरीर के सब अङ्गों में हो रही हैं और आत्मा ही उनका जनक है तो आत्मा का निवास सारे शरीर में ही होना चाहिये। आत्मा शरीर के किसी एक भाग में हो और उसका चैतन्य शरीर के सब अङ्गों में क्रिया को उत्पन्न कर देगा यह माना नहीं जा सकता। क्योंकि गुण अपने गुणी में ही रहा करता है, अतः चैतन्य भी शरीर के उसी भाग में होगा जिसमें आत्मा है अतः वह भी सारे शरीर में क्रिया को उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः आत्मा को ही इन क्रियाओं की उत्पत्ति के लिये सारे शरीर में व्यापक मानना चाहिये।

इस प्रश्न का उत्तर पाठक अगले अङ्क में प[ढ़ें]

योग प्रकाश

(विराजानन्दवैदिक संस्थान-अध्यक्ष स्वामी वेदानन्द)

(४)

योग की वेद मूलकता

आरंभ में ही बतलाया जा चुका है कि भारतीय साहित्य योग की महिमा से भरा पड़ा है। तथा कथित ऐतिहासिक लोग भी, जो वेद को ईश्वर प्रोक्त नहीं मानते, वेद को समस्त संसार के साहित्य में सबसे पुराना मानते हैं। बेल[्जियम] देश के दार्शनिक विद्वान, नोबल पुरस्कार वि[जेता] मातृलिंग का वेद के सम्बन्ध में कथन है कि the most authentic echo of the m

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

immemorial traditions अर्थात् अत्यन्त स्मरणातीत काल की परम्पराओं में सब से प्रमाणिक। इतना ही नहीं, वह स्पष्ट शब्दोंमें लिखता है Here, then,there is not the slightest doubt as to the prionrity of th Hindu Books अर्थात् (वेदों) के सवप्रथम में तो किसी प्रकार का सन्देह ही नही है। उस वेद को आर्य परमेश्वर महेश्वर की रचना मानते हैं। और सभी विद्याओं का मूल उद्गम वेद योग विद्या का भी उद्गम है, अतः इसको माहेश्वर योग भी कहते हैं। यह किसी पौराणिक कल्पित महेश्वर देवता के साथ सम्बन्ध नहीं रखता। बौद्ध लोगों ने जब बुद्ध को ईश्वरकी पदवी दी तब आर्यों ने अपने ईश्वर को महेश्वर तथा वेद प्रति पादित योग को माहेश्वर योग कहना आरम्भ किया।

यहां हम संक्षेप से योग का वेद के साथ सम्बन्ध दिखाते हैं। यजुर्वेद के ग्यारहवें अध्याय के प्रथम आठ मन्त्र योग विद्या से सम्बन्ध रखते हैं। उनमें से एकाध को यहां उद्धृत करके उनका शब्दार्थ एवं भावार्थ यहां प्रस्तुत किया जाता है— ।

यूञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्॥

ऐश्वर्याभिलाषी मनुष्य तत्त्व ज्ञान के लिये पहले फैले हुए मनोव्यापार अथवा मननात्मिका अन्तः-करणवृत्तियों को तथा धारणात्मिका बुद्धि वृत्तियों को समाहित करता हुआ सर्वाग्रणी, सबको आगे ले जाने वाले, सर्वज्ञ सर्वप्रकाशक प्रभु से ज्ञान प्रकाश निश्चित करके, ग्रहण करके, पृथिवी के लिए, सांसारिक जनों के लिए अथवा विस्तार के लिए अधिकार पूर्वक सब ओर, सब प्रकार से धारण करता है। अथवा पृथिवी पर सब ओर लेजाता है।

तनिक ध्यान से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस में योग की रीति तथा प्रयोजन दोनों का ही प्रतिपादन कर दिया गया है। योगदर्शन में योग का लक्षण बताया गया है—*योगश्चित्त वृत्तिनिरोधः* (१।२) = चित्तवृत्तियों का निरोध योग है। इस मन्त्र में *युञ्जानः प्रथमं मनः----धियः* (=बिखरे हुए मन (मनोव्यापार) तथा बुद्धि (वृत्तियों को समाहित करता हुआ) शब्द से योग का लक्षण कहा गया है। योग का प्रयोजन *तत्त्वाय* पद से कहा गया है। तत्त्व की प्राप्ति योग का प्रयोजन है। अर्थात् किसी पदार्थ की वास्तविकता जानना हो तो उसके लिए योग करो। योगदर्शन के तृतीय (विभूति) पाद में इसका विस्तृत वर्णन है,

योगियों के दो प्रधान भेद होते हैं। एक का नाम युञ्जान है, दूसरे का नाम युक्त युञ्जान का वर्णन हो चुका अब युक्त का संकेत करते हैं—

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
स्वर्ग्याय शक्तया॥ २

हम युक्त मन से तथा शक्ति से, सकल जगत् के उत्पादक, सर्वैश्वर्य संपन्न, सब शुभ प्रेरणाओं के प्रदाता, आनन्दप्रद, शुभ गुणदाता भगवान् के उत्पादित जगत् में, आज्ञा में, प्रेरणा में रहते हुए स्वर्ग साधक प्रयत्न के लिये परमात्म-प्रकाश को धारण करते हैं

भूयो भूयः प्रयत्न, पूर्ण निष्ठा से साधना करते हुए युंजान अवस्था से ऊपर उठ कर जब साधक युक्त अवस्था को प्राप्त करता है, तब उसे स्वर्ग = मोक्ष तक पहुंचाने वाला परमात्मक-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकाश अनायास प्राप्त हो जाता है। परमात्म-प्रकाश प्राप्त होने से ही सुख दुःख से निराली मुक्ति दशा की प्राप्ति होती है जैसा कि कठोपनिषद् १।२।१२ में कहा गया है।

तं दुर्दर्शं गूढमनु प्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्
अध्यात्म योगाधिगमेन देवं मत्वा हर्ष शोकौ जहाति ।

कठिनता से दर्शनीय, गुप्त रूप से आत्मा में अनुप्रविष्ट, आत्मा में व्यापक, अध्यात्म योग की प्राप्ति के द्वारा मनन कर के साधक हर्ष शोक से छूट जाता है।

परमात्मा के मनन चिन्तन आराधन से हर्ष शोक की अवस्था दूर होती है और परमात्मा का मनन अध्यात्म योग के द्वारा ही संभव है।

मूलमन्त्र में आए देवस्य *सवितुः सवे* (सर्वोत्पादक भगवान के निर्मित उसी जगत्) शब्द बहुत मनन करने योग्य है। सब कुछ इसी संसार में मिलता है, यह ध्वनि इन शब्दों से निकल रही है।

ईश्वर प्रणिधान का स्पष्ट संकेत इस मन्त्र में कर दिया गया है। योग दर्शन १।२२ सूत्र में वैराग्य और अभ्यास में असमर्थ साधकों के लिए उपाय बतलाया है।—*ईश्वर प्रणिधानाद्वा*= अर्थात् ईश्वर प्रणिधान के द्वारा चित्तवृत्तिनिरोध हो जाता है। योग दर्शन २।४५ में स्पष्ट ही कहा है—*समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्*=ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि प्राप्ति होती है।

इस से अगले मन्त्र में ईश्वर प्रणिधान की रीति बतलाई गई है—

युक्त्वाय सविता देवान् स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतिः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३

योगीराज महाप्रकाश कर सकने वाले आनन्द तथा ज्ञानालोक देने वाले इन्द्रियों तथा प्राणों को बुद्धि से जोड़ कर, युक्त करके इन्द्रियों को प्रेरणा करने में समर्थ हो कर उन को उत्तम प्रेरणा करता है।

अर्थात् बाह्य विषयों से इन्द्रियों तथा मन को हटा कर सर्वात्मना परमात्मा के आराधन का नाम ईश्वर प्रणिधान है। यह कार्य्य बुद्धि पूर्वक होना चाहिए। परमात्मा के प्रणिधान का विधान करते हुए योगदर्शनकार ने स्वरूप का निरूपण कर के कहा—*तस्य वाचकः प्रणवः* (१।२८) *तज्जपस्तदर्थ भावनम्* (१।२९)=परमेश्वर का वाचक नाम प्रणव=ओम् है, उस का जप और उस के अर्थ का बार बार विचार ईश्वर प्रणिधान का आधार है।

अन्त में (य० ११।८) योग की महत्ता इन शब्दों में वेद ने वर्णन की है:—

इम नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यं सखि विदᳬं
स्वर्विदᳬं समाजित धनजितᳬं स्वर्जितम् ।

अन्तर्यामि रूप से प्रेरणा देने वाले, दिव्यभावों के उत्तेजक परमात्मन्! हमारे इस दिव्यगुण प्रापक, मित्र को प्राप्त कराने वाले, सत्य की सदा जय कराने वाले, मृत्यु पर विजय कराने वाले, आनन्द दिलाने वाले योगयज्ञ को भलीभांति चला, बढ़ा।

वेद ने योग के सम्बन्ध में जो महात्म्य वर्णन किया है, वह अतिशयोक्ति या प्ररोचक वाक्य नहीं है, वरन् सर्वथा यथार्थ है। योगी जितना योग में उन्नति करेगा, उतना ही वह सद्गुणों से प्रीति करेगा। योग के निरन्तर अनुष्ठान से बाह्य विषयों से जब विरति होकर अन्दर की ओर झुकने लगता है और एक समय ऐसा आता है कि उसको अपने आत्मा में विराजमान भगवान् के दर्शन हो जाते हैं। उस अवस्था का वर्णन बहुत सुन्दर शब्दों में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किसी ने किया है:—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

विषय सेवन से विरक्त आत्मा के विषय हट जाते हैं। उस पर तत्त्व के दर्शन करके विषयों के स्वाद भी दूर हो जाते हैं।

परमात्मा आनन्दघन है उस में आनन्द का विरोधी कोई भी तत्त्व नहीं है, अतः जिस भाग्यशाली को भगवद्दर्शन प्राप्त हो जाएं, उसे संसार के सब रस फीके लगने लगते हैं।

इस प्रकार योग का मूल वेद में स्पष्ट मिलता है। इस की विस्तृत व्याख्या हम ने योगोपनिषद् में की है, पाठक उसे अवश्य देखें।

वेदों में और भी अनेक स्थानों पर योग की चर्चा है, विस्तार भय से उनका यहां उल्लेख नहीं किया गया।

योगदर्शन का प्रथम सूत्र है—*अथ योगानुशासनम्।* अनुशासन शब्द का अर्थ है परम्परा से प्राप्त शिक्षा। आर्ष वैदिक साहित्य का मूल वेद है, यह सभी स्वीकार करते हैं। मूल तत्त्व एक ही है, उसके उपपादन, प्रतिपादन एवं आलाप के प्रकार में अवश्य भेद है। जिस योग्यता का जिज्ञासु हो, उस को उसकी योग्यता के अनुसार उपदेश देने से लाभ होता है। कोई तीव्र भावना वाला होता है, कोई मृदुयत्न वाला होता है। कईयों में वाचिक इच्छा होती है, कईयों में यह इच्छा उतावलापन=संवेग का रूप धारण कर चुकी होती है। गुरु का यह कार्य्य है कि शिष्य की ग्रहण, धारण शक्ति एवं मासभूमिका का विचार करके उसे उपदेश करे।

ऊपर के उद्धृत वेद मन्त्रों में योग का मूल तत्त्व बहुत स्पष्ट शब्दों में वर्णन हुआ है। उस के आधार पर विचार कर अनुभव लेकर ऋषियों, मुनियों, सिद्धों ने योग के विषय में ग्रन्थ लिखे। पतञ्जलि मुनि का ग्रन्थ ही उन सब में सर्वावयवपूर्ण होने से सर्वत्र समाहृत होने लगा। यह पतञ्जलि के प्रतिपादन की उत्कृष्टता है, कि उस के पश्चात् अनेक सिद्ध हुए किन्तु पतञ्जलि से अधिक या नूतन तत्त्व इस विषय का कोई न बता सका।

संसार का आगामी धर्म

(श्रीमान् ज्ञानानन्द जी महाराज)

वर्तमानकाल को वैज्ञानिक युग कहा जाता है। वैज्ञानिक अविष्कारों ने मनुष्य को चक्का-चौन्ध में डाल दिया है। लोग धर्म से विमुख हो रहे हैं। अतः कई वैज्ञानिक विद्वान कह रहे हैं कि "Now religion must be replaced by science" अर्थात् अब धर्म का स्थान विज्ञान को लेना चाहिए परन्तु अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान् अन्डरसन (Anderson) का कथन है कि धर्म संसार से कभी नहीं मिट सकता यह स्वाभाविक है। जैसे अग्नि में उष्णता स्वाभाविक है, वैसे मनुष्य में धर्म स्वाभाविक है, सम्भव है कि संसार से मत-मतान्तर (मजहब) नष्ट होजायें परन्तु धर्म कदापि नहीं मिट सकता। विज्ञान का सम्बन्ध हमारे मस्तिष्क के साथ है, धर्म का सम्बन्ध हमारे हृदय के साथ है। मनुष्य को दोनों (head&heart) मस्तिष्क तथा हृदय की आवश्यकता है। यदि मनुष्य का दिमाग खराब हो जाये तो वह पागल हो जाता है, यदि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हृदय (heart) खराब (fail) हो जाये तो तुरन्त मृत्यु को प्राप्त होता है। इस लिये मनुष्य के लिये दोनों (head and heart) अर्थात् विज्ञान और धर्म की एक साथ अवश्यकता है। विज्ञान हमें शारीरिक सुख देता है, परन्तु विज्ञान हमारे आत्मा, जीवन, सदाचार पर कोई प्रभाव नहीं डालता, धर्म हमारी आत्मा को शान्ति, सन्तोष, आनन्द, पवित्रता देता है।

(१) १९३४ में शिकागों में जो सर्वधर्म सम्मेलन हुआ था उस में चार्ल्स इलियट (Charles Elliot) महोदय ने जो स्वागत कारिणी सभा के प्रधान थे, अपने भाषण में कहा था कि "संसार धर्म के बिना न कभी रहा है न रहेगा। अस्तु धर्म में परिवर्तन होगा और आगामी धर्म निम्न प्रकार का होगा।

(२) आगामी धर्म ठेकेदारों, मजहबी जनूनियों से रहित होगा, अर्थात् ब्रह्मणों, पादियों और मुजावरों से रहित होगा। जो लोगों को यह कह कर लूट रहे हैं कि हमें दान करो तो तुम को स्वर्ग मिलेगा आगामी धर्म में यह प्रलोभन या धोखा न चलेगा।

(२) आगामी धर्म में पैगम्बरों (ईश्वर के दूतों), नबियों (भविष्य बाणी करने वालों), ईश्वर का पुत्र या प्यारा कहलाने वालों, सफारिश करने या बलिदान करने वालों का कोई हस्ताक्षेप न होगा। किंतु आत्मा तथा परमात्मा का मिलाप सीधा होगा उसके स्पष्ट शब्द यह है (Communication of soul with God will be direct just like wireless telegraphy, there will be no intervention of some prophet, intercessor or Recommeuder) अर्थात् बेतार के तार के समान परमात्मा से आत्मा का सीधा सम्बन्ध होगा। मनुष्य का सम्बन्ध परमात्मा के साथ योग के द्वारा होगा, न कि मनुष्यों के द्वारा।

(३) आगामी धर्म में ईमान (अन्ध विश्वास) किसी मनुष्य की गुलामी, तथा किसी व्यक्ति की भक्ति या आज्ञा पालन पर आश्रित न होगा किन्तु स्वतन्त्र विचारों, बुद्धि के अनुकूल, तर्क की कसौटी पर परिक्षा किये जाने के योग्य होगा।

(३) आगामी धर्म विज्ञान (Science) तथा तत्व ज्ञान (Philosophy) के अनुकूल तथा उन का सहायक होगाः—

(४) आगामी धर्म में चमत्कार, सृष्टि नियम विरुद्ध बातें, भविष्य बाणियों का कोई संकेत न होगा।

(५) फरिश्तों, देवताओं, गुप्त-शक्तियों का कोई हस्ताक्षेप न होगा। यह बातें, अशिक्षित लोगों की समझी जायेंगी अर्थात् उन को खुश करने और प्रभावित करने के प्रलोभन समझे जायेंगे।

(६) आगामी धर्म तथा उस की पुस्तकों में गाथाए किसी के जीवन चरित्र या घटनाएं न होंगी। किंतु केवल उपदेश या मनुष्य जीवन को उत्तम बनाने के सिद्धान्त और आज्ञायें होंगी।

(७) संसार का आगामी धर्म सदाचार तथा परोपकार का आधार होगा, उस में मुख्य स्थान जीवन की पवित्रता को दिया जावेगा।

(८) आगामी धर्म्म मनुष्य पूजा, कबर पूजा, मरे हुए लोगों की पूजा, भूत पूजा वृक्षों, पर्वतों की पूजा आदि से रहित होगा। केवल एक महान् अद्धश्य चेतन शक्ति (परमात्मा) की पूजा का ही उस में विधान होगा. अर्थात् उसकी अद्भुत शक्तियों को अनुभव करने का यत्न होगा

(९) आगामी धर्म्म स्वर्ग नरक के प्रलोभनों और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उन में रह कर विषय भोगने के विचारों से पृथक होगा। यह प्रलोभन ग्रामीण अनपढ़ लोगों को खींचने के लिये कल्पित किये गये हैं अर्थात् स्वंग नरक कोई स्थान नहीं हैं जिन में मनुष्य प्रवेश कर के सर्वदा के लिये सुख या दुःख भोगता रहे, अर्थात् फिर उसे कभी भी उन्नति करने का अवसर प्राप्त न हो।

(१०) आगामी धर्म जीवन का सम्पूर्ण आदर्श तथा प्रोग्राम उपस्थित करने वाला होगा।

अर्थात् जिस के द्वारा मनुष्य अपने जीवन को शुद्ध, पवित्र और सम्पूर्ण बना सकेगा।

उस का यह भाषण बहुत पसन्द किया गया वर्तमान समय के मज़हब (मुस्लमान, ईसाई बौद्ध, यहूदी तथा पारसी) तो इन ऊपरलिखित सिद्धान्तों के आगे नहीं ठहर सकते, वे इन विचारों के प्रतिकूल हैं, परन्तु एक वैदिक धर्म ही ऐसा है जो इन सब विचारों के अनुकूल है इस लिये संसार का आगामी धर्म वैदिक धर्म ही होगा यही कारण है कि अब अमेरिका के लोग वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। वहां अब तीन वैदिक कालिज स्थापित हो चुके हैं

(१) International Vedic Research collage Newyork (·U.S.A) अन्तर्जातीय वेदानुसन्धान कालिज न्यूयार्क (२) D.A.V. collage Trinidad (Central) वैदिक कालिज ट्रिनिडाड।

(३) D.A.V.Collage British Gwaine (South America) वैदिक कालिज गायनी दक्षिण अमेरिका, प्रतिदिन अमेरिका में वैदिक धर्म का प्रचार बढ़ रहा है।

गीता के एक श्लोक का अर्थ

(लेखक--स्वामी वेदानन्द तीर्थ, अध्यक्ष, वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर)

गीता का यह प्रसिद्ध श्लोक है--

श्रेयान् स्वधर्म्मो विगुणः परधर्म्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्म्मो भयावहः॥ ३।३५

साधारणतया इसका अर्थ यह किया जाता है—'भली प्रकार अनुष्ठान किये हुये पराये धर्म की अपेक्षा गुणहीन भी अपना धर्म अधिक कल्याणकारी है। क्योंकि अपने धर्म में रहते हुए मरना कल्याणकारक है, पराया धर्म्म भयदायक होता है।

इस श्लोक के उपर्युक्त प्रचलित अर्थ ने जितनी हानि की है, कदाचित ही किसी अन्य उपाय से हुई हो। आर्य्य धर्म में परधर्म्मियों का प्रवेश इस श्लोक-अर्गला से निषिद्ध और प्रतिरुद्ध रखा जाता रहा। इसके सम्बन्धमें अनेक कथाएं प्रचलित हैं।

हमें आश्चर्य्य है कि यह धर्म्मघातक प्रकरण से असंलग्न अर्थ कैसे प्रचलित होगया? क्यों बड़े बड़े विद्वान् गीतानुशीलन कर्त्ताओं का ध्यान इस ओर नहीं गया? यदि इससे ठीक पूर्व के श्लोक पर दृष्टि दी जाए तो श्लोक का वास्तविक अर्थ खुल जाए। वह श्लोक यह है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ (३।३४

अर्थ—प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग तथा द्वेष लगे हुए हैं। मनुष्य उन-रागद्वेष- के वशमें न आए। क्योंकि वे दो इस--आत्म-के डाकू हैं।

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक इन्द्रिय से जिन विषयों का ज्ञान होता है, वे प्रिय तथा अप्रिय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दोनों प्रकार के होते हैं, प्रिय प्रतीत होने वाले से प्रीति-राग-का होना स्वाभाविक सा है। अप्रिय लगने वाले विषयों से विषाद-अप्रीति=द्वेष का होना अनिवार्य्य सा है। उदाहरणार्थ---आंख रूप तथा रूपवान् पदार्थों का ज्ञान कराती है। सुन्दर, सुरूप पदार्थों को देकर मन प्रसन्न होता है। कुरूप वस्तु का दर्शन ग्लानि उत्पन्न करता है। तनिक सा विचार कर देखा जाए तो इस हर्षविषाद, प्रीति अप्रीति, रागद्वेष का कारण इन्द्रिय ही हैं। अर्थात् रागद्वेष इन्द्रियों का ही धर्म्म हैं। रागद्वेष आत्मा के धर्म्मधन के लिये डाकू का कार्य करते हैं। जो डाकुओं के वश में पड़ जाए उसके धर्म्मधन के लुट जाने में क्या सन्देह है ?

आत्मा अप्राकृतिक होने से वास्तवमें सत्त्व, रजस्, तमस् तीनों गुणों से शून्य होनेके कारण विगुण है। अर्थात् आत्मा का त्रिगुणतीत दशा में रहना ही श्रेयान्=कल्याणकारक है। इन्द्रिय धर्म्म तो परधर्म्म है। परिपन्थियों का धर्म्म है, अतः आत्मा को उसके आधीन नहीं होना चाहिए। कितने यत्न से तथा युक्ति से परधर्म्म का इन्द्रिय-धर्म्म का, डकैत धर्म्म का पालन किया जाए। आत्मा की उससे उन्नति न होकर अवनति ही होगी। अतः कहा—श्रेयान् स्वधर्म्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। और इसीलिए स्वधर्म्म आत्मधर्म्म के अनुष्ठान में मर जाना कल्याणप्रद है, क्योंकि इस आत्मधर्म्म का तनिक सा भी अनुष्ठान महान् अनिष्ट से बचाता है जैसा कि स्वयं गीता में कहा है- स्वल्पमप्यस्य धर्म्मस्यत्रायते महतोभयात्। और उसका नाश नहीं भी होता—प्रत्यवायो न विद्यते।

इस दृष्टि से श्लोक का अर्थ होता है---

त्रिगुणातीत स्वधर्म्म=आत्मधर्म्म का अनुष्ठान उत्तमता से अनुष्ठित-परधर्म्म=रागद्वेषात्मक शत्रु कर्म्म की अपेक्षा अधिक कल्याणप्रद है। अतः आत्मधर्म का अनुष्टान करते मरना श्रेयस्कर है। क्योंकि परधर्म्म=रागद्वेषात्मक इन्द्रिय धर्म्म भय प्रद है।

कितना सुन्दर, भव्य एवं प्रकरण से संलग्न यह अर्थ है ! गीता के प्रत्येक अध्याय की अन्तिम पुष्पिका में गीता को ब्रह्मविद्या कहा गया है। ब्रह्मविद्या शास्त्र का अर्थ ब्रह्मवद्यि के अनुकूल होना चाहिए, न कि उसके विरुद्ध अपने मन माने ढंग से। ब्रह्मविद्या के अनुकूल प्रकरण की संगति तथा श्लोकों का पूर्वापर परस्पर सम्बन्ध विचार करने से कितना स्वाभाविक एवं वैज्ञानिक अर्थ निकलता है। अर्थ करने की शास्त्रीय रीति की उपेक्षा से अनर्थपरम्परा की सृष्टि हुआ करती है, जैसी इस श्लोक का, पूर्वापर श्लोक सम्बन्ध का विचार किए बिना, अर्थ करने से हुई है।

इसी प्रकार के अन्य भी कई श्लोक हैं, जिनका अनर्थ किया जा रहा है। उनका भी प्रकरणानुकूल अर्थ अवकाश मिलने पर प्रकाशित किया जायेगा।

वाजपेय याग

(श्रीमान् पं० भगवद्दत्त जी वेदालंकार)

वाजपेय एक याग (यज्ञ) है जिसमें वाज का पान व प्राप्ति दी जाती है। वाज क्या वस्तु है ? वाजपेय याग का वास्तविक स्वरूप क्या है ? कौन इसका अधिकारी है ? और कैसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वाज का पान किया जाता है? इत्यादि बातें अभी तक रहस्यमय और प्रच्छन्न कोटि में ही है। संक्षेप में इसका प्रारम्भिक विवेचन इस लेख में किया जाता है। तै० ब्रा० १।३।२।३ में आता है कि:—

तं वा एतं वाजपेय इत्याहुः वाजाप्यो वा एषः। वाजं हवैतेन देवा ऐप्सन्।" अर्थात वाजपेय याग उसको कहते हैं जिसमें वाज की प्राप्ति हो। देवताओं ने भी इस याग के द्वारा वाज की प्राप्ति करनी चाही।

सायणाचार्य ने लिखा है कि:—वाजो देवान्त रूपः सोमः पेयो यस्मिन् योग स वाजपेय इत्येकं निर्वचनम्। यस्मादेतेन यज्ञेन देवावाजं फलरूप मन्नयाप्तुमेच्छन् तस्मादन्नरूपो वाजः पेयः प्राप्यो येन स वाजपेय इत्यपरं निर्वचनम्।

अर्थात् देवान्न सोम का जिस याग में पान किया जाये वह वाजपेय है यह एक निर्वचन है। दूसरा निर्वचन यह भी है कि इस यज्ञ द्वारा देवताओं ने फल रूपी वाज अन्न की प्राप्ति करनी चाही।

इसी प्रकार तैतिरीय ब्राह्मण में इसी प्रकरण में एक और व्युत्पति दी है जोकि इस प्रकार है:— ब्रह्म वै वाजपेयः। यं एवं वेद। अति ब्रह्मयान्नम्। आस्य ब्रह्मा जायते।

अर्थात् ब्रह्म स्वयं वाजपेय है, जो यह तत्त्व जानता है, वह ब्रह्म से वाज रूपी अन्न का भक्षण करता है और वह ब्रह्मा बन जाता है।

इस प्रकार उदाहरण के रूप में हम ने वाजपेय की कुछ व्युत्पत्तियां दिखाईं हैं। इन सब में एक बात सामान्य है, और वह यह कि वाज अन्न है जिसका इस याग में पान किया जाता है, अथवा जिसको इस याग द्वारा प्राप्त किया जाता है। परन्तु प्रश्न यह है? कि क्या यह अन्न सामान्य अन्न है जिसका कि सब प्राणी भक्षण करते हैं। इस सम्बन्ध में हमें यह मानना पड़ता है कि यह सामान्य अन्न नहीं है। इस वाज रूपी अन्न के निर्णय के लिये तैतिरीय ब्राह्मण का एक कथानक भी लिखते हैं, वह इस प्रकार है:—

देवा वै यथादर्शं यज्ञानाहरन्त योऽग्निष्टोमम्, य उक्थ्मम्, योऽतिरात्रम् × ते सहैव सर्वें वाजपेयमपश्यन्। तेऽन्योऽन्यस्मै नातिष्ठन्त अहमनेन यजा इति। तेऽब्रुवन् आजिमस्य धावामेति तस्मिन्नाजिमधावन्। तं बृहस्पतिरुदजयत् तेनापजात। स स्वराज्यमगच्छत्। तमिन्द्रोऽब्रवीत् मामनेम याजयेति। तेनेन्द्रमयाजयत्। सोऽग्रं देवतानां पर्यैत्। अगच्छत् स्वाराज्यमतिष्ठन्तास्मै ज्यैठ्याय।

तै० ब्रा० १।३।२

देवताओं ने अपने २ आदर्श ज्ञान के अनुसार यज्ञ किये। किसी ने अग्निष्टोम, किसी ने उक्थ्य, तथा किसी ने अतिरात्र। उन सब ने एक साथ वाजपेय को देखा। वे एक दूसरे के लिये न ठहरे और आपस में इस प्रकार विवाद करने लगे कि मैं इससे यज्ञ करूं, मैं इससे यज्ञ करूँ इत्यादि।

जब उन में से कोई न माना तब उन्हों ने यह निश्चय किया कि वाजपेय को अवधि (आजिम्) बनाकर दौड़ते हैं जो पहले आजाये वह इससे यज्ञ करे। वे यह शर्त करके दौड़े, उनमें बृहस्पति जीत गया। इस लिये बृहस्पति ने यह वाजपेय यज्ञ किया। और स्वाराज्य प्राप्त किया। इन्द्र ने बृहस्पति से प्रार्थना की कि मुझे भी इससे यज्ञ कराओ। बृहस्पति ने इन्द्र को यज्ञ कराया जिससे वह देवताओं में बड़ा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बना और स्वाराज्य प्राप्त किया ।

इस उपर्युक्त कथानक से यह पता चलता है कि यह वाजपेय याग वास्तव में ब्राह्मणों का है। क्योंकि बृहस्पति ब्राह्मणों का प्रतिनिधि है। परन्तु बृहस्पति ने इन्द्र को यह यज्ञ कराया, इसलिये क्षत्रियों को भी इस यज्ञ के करने का अधिकार है, क्योंकि इन्द्र क्षत्रियों का प्रतिनिधि है। इसी बात का ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकों स्थलों में निर्देश मिलता है। उदाहरण रूप में शतपथ ब्राह्मण ५।१।१।११ का प्रकरण देखा जा सकता है।

स वा एष ब्राह्मणस्यैव यज्ञः। यदेनेन बृहस्पतिरयजत ब्रह्म हि बृहस्पति ब्रह्म हि ब्राह्मणो ऽथो राजन्यस्य यदेनेनेन्द्रो ऽयजत क्षत्रं हीन्द्रः क्षत्रं राजन्यः।

अर्थ—यह ब्राह्मण का यज्ञ है, क्योंकि बृहस्पति ने यह यज्ञ किया। ब्रह्म बृहस्पति है, ब्रह्म ब्राह्मण है। यह क्षत्रिय का भी है क्योंकि इन्द्र ने यह यज्ञ किया। क्षत्र ही इन्द्र है, क्षत्र राजन्य=क्षत्रिय है।

इस लिये इस यज्ञ को करने का अधिकार ब्राह्मण और क्षत्रिय को है, वैश्य को नहीं। कात्यायन श्रौत सूत्र में स्पष्ट शब्दों में वैश्यको इसके करने का निषेध है। वहां आता है "वाजपेयः शरद्यवैश्यस्य" का० श्रौ० १४।१।१ अर्थात् वाजपेय याग शरद् ऋतु में करना चाहिये और वैश्य को इसके करने का अधिकार नहीं है। अब प्रश्न यह होता है कि यदि वाज का अर्थ सामान्य अन्न किया जाता है तो इस यज्ञ के करने का सब से बड़ा अधिकारी तो वैश्य होना चाहिए। क्योंकि सामान्य अन्न की प्राप्ति में वैश्य के सामने ब्राह्मण और क्षत्रिय की तो कोई गिनती ही नहीं। परन्तु शास्त्रों में इस याग को करने का अधिकार वैश्य को नहीं दिया, इससे यह पता चलता है कि वाज का जो अन्न अर्थ किया जाता है। वह सामान्य भौतिक अन्न नहीं है। यह वाज रूपी अन्न वह है जिसके भक्षण से ब्राह्मण में ब्रह्मशक्ति व ब्रह्मवेग बढ़ता है और क्षत्रिय में क्षात्रशक्ति व क्षात्र वेग बढ़ता है।

अब आगे वाज अन्न का स्वरूप क्या है? भौतिक अन्न का ग्रहण करना है या नहीं, ग्रहण करना है तो कहां तक करना है? इस वाज रूपी अन्न के भक्षण व पान की क्या प्रक्रिया है? इत्यादि वाजपेय सम्बन्धी अन्य बातों को हम फिर कभी आपके समक्ष रखेंगे।

क्या षडध्यायी सांख्यसूत्र कपिल प्रोक्त नहीं है

(श्रीमान् आचार्य शुक्र भारती)

गत अङ्क का शेष

जब ये दोनों नगर अपने वैभव और महत्ता के द्वारा उन्नति के शिखर पर वर्त्तमान थे। इतिहास से यह सिद्ध है, कि ये दोनों नगर कब से कब तक उन्नति के शिखर पर रहे। इस प्रकार के अर्थों का निर्देश करने के लिये कोई भी विद्वान् लेखक अपने समय के प्रसिद्ध नगरों का ही उल्लेख कर सकता है। यदि आज हम देश भेद को बतलाने के लिये किन्हीं स्थानों का निर्देश करें, तो कौशाम्बी और विदिशा का नाम नहीं लिखेंगे; प्रत्युत देहली, प्रयाग या कलकत्ता बम्बई आदि का ही नाम लिखेंगे। इतिहास से यह सिद्ध है कि ईसा की चौथी शताब्दी के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पूर्व ही ये नगर विध्वस्त हो चुके थे। उस से पूर्व ही इन सूत्रों के प्रक्षेप का समय निर्धारित किया जा सकता है। जो विद्वान् सम्पूर्ण षडध्यायीसूत्रों की रचना को ही, ईसा की १४वीं शताब्दी के अनन्तर की बतलाते हैं, वे ज़रा ध्यानपूर्वक इस पर विचार करें। जब इन प्रक्षिप्त सूत्रों का रचनाकाल, ईसा की पांचवी शताब्दी से पूर्व ही संभव हो सकता है, तब मूल ग्रन्थ की रचना को १४ वीं शताब्दी के अनन्तर बताना, कैसी विडम्बना है।

दूसरा लम्बा प्रक्षेप पांचवें अध्याय में है। यह ८४ वें सूत्र से लगा कर ११५वें सूत्र तक कुल ३२ सूत्रों का है। हम इसके सम्बन्ध में अधिक विस्तार से यहां लिखना नहीं चाहते। लेख अधिक लम्बा होता जा रहा है, इसलिए जो विद्वान इस सम्बन्ध में अधिक विवेचन देखना चाहें, वे श्रीयुत विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री के 'सांख्यदर्शन का इतिहास' नामक ग्रन्थ में देख सकते हैं। अब हम अन्तिम सातवें आक्षेप का समाधान करके इस लेख को यहीं समाप्त कर देना चाहते हैं।

(७) सूत्रों की रचना कारिका के सांचे में ढली है।——उदाहरण के लिये—हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् (सांख्यसूत्र १।१२४), और सामान्यकरणवृत्तिःप्राणाद्या वायवः पञ्च (२।३१) ये दो सूत्र, कारिका १० और २६ से ज्यों के त्यों मिलते हैं। कारिका २५ का पूर्वार्ध है—सात्विक एकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतादहंकारात्, इसके स्थान पर सूत्र २।१८ है—सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्त्तते वैकृतादहंकारात्, इसमें केवल पुन्नपुंसक का भेद है। क्रिया का मध्य में आना छन्दोरचना के लिये कारिकाकार को अभीष्ट था न कि सूत्रकार को। अतः यह कारिका की नकल है

समाधान=उपर्युक्त उदाहरण सूत्रोंके कारिका रूप होनेके सम्बन्धमें थोड़ा प्रकाश डालने के पूर्व, हम साधारण रूप से इस बात पर विचार कर लेना चाहते हैं, कि सूत्रों की रचना कारिका के सांचे में ढली है, या नहीं ? आक्षेपकर्त्ता विद्वान् लेखकने यह स्पष्ट लिखा है, कि कारिका रूप सूत्र, ईश्वरकृष्ण की सांख्यसप्तति से नकल किये गये हैं। थोड़ी देर के लिये इस स्थापना को सत्य मानकर हम आगे विचार करते हैं। जिन विद्वानों ने षडध्यायी सूत्रों के साथ सांख्यसप्तति की गम्भीरतापूर्वक तुलना की है, उनके सामने यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है कि सम्पूर्ण सांख्यसप्तति में जिन विषयोंका प्रतिपादन किया गया है, वे षडध्यायी के प्रथम तीन अध्यायों में समाप्त हो जाते हैं। इसका अभिप्राय यह निकलता है कि यदि षडध्यायी के रचयिता ने सांख्यसप्तति की रचना की नकल की है, तो वह प्रथम तीन अध्यायों में ही नकल कर सकता था। इसका परिणाम यह होता कि षडध्यायी के प्रथम तीन अध्यायों में ही सूत्रों की रचना कारिका रूप हो सकती थी, अन्तिम तीन अध्यायों में ऐसा होना असम्भव था; परन्तु इस अन्तिम तीन अध्यायों में भी कुछ सूत्रों को कारिका रूप या छन्दोबद्ध रचना के रूप में देखते हैं। जैसे—

(क) तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् [४।१६] यह आर्याछन्द का चतुर्थ चरण है।

(ख) सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः [५।७०] यह अनुष्टुप् का एक चरण है।

(ग) निजधर्माभिव्यक्तेर्वा वैशिष्ट्यात्तदुपलब्धेः [५।६५] यह आर्याछन्द का द्वितीय अर्द्धभाग है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(घ) ध्यानं निर्विषयं मनः [६।२५] यह अनुष्टुपछन्द का एक चरण है।

(ङ) पुरुष बहुत्वं व्यवस्थातः [६।४५] यह आर्याछन्द का चतुर्थ चरण है।

इन सब निर्देशों के आधार पर यह परिणाम स्पष्ट होता है, कि ग्रन्थकार की स्वभावतः ऐसी प्रवृत्ति है, कि कोई सूत्रात्मक रचना भी पद्यमय हो गई है। ऐसी प्रवृत्ति सम्पूर्ण ग्रन्थ में आद्योपान्त समान रूप से देखी जारही है। अन्यथा अन्तिम तीन अध्यायों के लिये किसी अन्य छन्दोबद्ध आधारभूत ग्रन्थ की कल्पना करनी पड़ेगी। यदि यह रचना स्वतन्त्र ही मानी जाती है, तब प्रथम भाग की रचना को भी स्वतन्त्र मानने में क्या अपत्ति हो सकती है?

ईश्वरकृष्ण ने स्वयं अपनी अन्तिम कारिका में लिखा है, कि मैंने अपने ग्रन्थ में प्रतिपाद्य सब अर्थों को षष्टितन्त्र से लिया है, तथा उसकी आख्यायिका और परवादों को छोड़ दिया है। हम देखते हैं कि ठीक इस वर्णन के अनुसार षडध्यायी के तीन अध्यायों में सब प्रतिपाद्य अर्थ दूर हो जाते है, उसके अनन्तर चतुर्थ अध्याय में आख्यायिका, और पांचवें छठे में प्रवादों का उल्लेख है। इस से स्पष्ट होता है, कि ईश्वरकृष्ण ने इसी षड्ध्यायी से अपने ग्रन्थ के प्रतिपाद्यों विषय को लिया है। उसने इस बात का पूरा यत्न किया है, कि मूलग्रन्थ के शब्द जहां तक होसके काररिकाओं में उसी रूप में आसकें। यही कारण है, कि सूत्र और कारिका के शब्द की इतनी अधिक सामानता है।

जिन तीन सूत्रों को कारिका की समानता दिखलाने के लिये ऊपर उद्धृत किया गया है, उन में से एक सूत्र के सम्बन्ध में हम इसी लेख में प्रथम संकेत कर चुके हैं। वेदान्त ब्रह्मसूत्र (२।४।६) के शंकरभाष्य में इस सांख्यसूत्र को उद्धृत किया गया है, वहां जो पाठ दिया गया है, वह कारिका रूप कदापि संभव नहीं है। सूत्र के पाठ में 'सामान्या करण वृत्तिः' यह असमस्त पाठ था, यही वास्तविक सूत्र पाठ था, कारिकाकार ने इसे छन्दोरूप देने के लिए समस्त पाठ बना दिया परन्तु शंकराचाय ने सूत्र के वास्तविक असमस्त पाठ को ही उद्धृत किया है। अनन्तरकाल में लेखकों अथवा पाठकों ने सूत्र के असमस्त पाठ को कारिका के अभ्यासवश कारिकानुसारी बना दिया। परन्तु शंकरभाष्य में उद्धृत सूत्र का वास्तविक पाठ आज भी वैसा ही उपलब्ध होता है। कारिका के अभ्यासवश, आजके हिंदी अनुवादकों ने शंकर भाष्य के पाठ को भी किस प्रकार भ्रष्ट किया है, इसका संकेत इसी लेख में हम पूर्व कर चुके हैं।

इसी प्रकार 'हेतुमदनित्यं' इत्यादि सूत्र के वास्तविक पाठ में 'अव्यापि' पद नहीं था, इस कारण उसे कारिका का रूप या कारिका की नकल कहना सर्वथा असंगत है। अनिरुद्ध के समय तक इस सूत्र में 'अव्यापि' पद नहीं जोड़ा गया था, यह उसके व्याख्याग्रन्थ से स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि अनिरुद्ध से बहुत पूर्व ईश्वरकृष्ण ने इस सूत्र को कारिका का रूप देने के लिये उसमें 'अव्यापि' पद जोड़ दिया था। अनिरुद्ध के अनन्तर, कारिका के अभ्यासवश किसी लेखक या पाठक ने सूत्रपाठ में भी 'अव्यापि' पद को जोड़ दिया। वस्तुतः सूत्र अपने मूलरूप में कारिकारूप नहीं कहा जा सकता।

उदाहरण के लिये प्रस्तुत तीसरे सूत्र में केवल पुंत्रपुंसक का भेद है। परन्तु यह इतना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भेद ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः यदि सूत्रकार कारिका की ही नकल करता, तो उसे पुल्लिंग पाठ देने में भी कोई रुकावट नहीं थी, यह कहना कि कारिका से थोड़ा हेरफेर करने के लिये ही लिङ्गभेद कर दिया होगा, एक दुर्बल बात है; क्योंकि ऐसा हेरफेर भी किस काम का, जिसमें छन्दोरूप भी छिपाया न जा सका। वस्तुस्थिति यह है, कि षडध्यायी के इस प्रसंग में इन्द्रियों अथवा करण का प्रतिपादन है, उसी को विशेष्य पद मानकर सूत्र में नपुंसक निर्देश किया गया है, परन्तु कारिका में छन्दोरचना से बाध्य होकर 'इन्द्रिय' अथवा 'करण' पद का सन्निवेश नहीं किया जा सका, उनके स्थान पर 'सर्गः' पद का निर्देश किया गया है और उसी के अनुसार आर्या में सत्र के नपुंसक पाठ को बदल कर उन पदों का पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है।

'प्रवर्त्तते' क्रियापद का सूत्र के मध्य में रक्खा जाना कोई इतना अधिक असामंजस्य पूर्ण नहीं है। केवल छन्द की दृष्टि से नहीं, अर्थ-पूर्णता की दृष्टि से भी क्रिया का निर्देश किया जा सकता है, यह ग्रन्थाकार की अपनी इच्छा पर निर्भर है, वह क्रियापद का निर्देश आदि, अन्त अथवा मध्य में कहीं भी कर दे। अन्य अनेक सूत्रों में इसी प्रकार क्रियापद का निर्देश किया गया है। कदाचित् यह भी संभव हो सकता है कि मूलसूत्र में क्रियापद न रहा हो, अनन्तरकाल में लेखकों अथवा पाठकों ने अन्य सूत्रों में परिवर्त्तन के समान यहां भी कारिका के अभ्यासवश क्रियापद का सन्निवेश कर दिया हो।

लेख में इस तरह के और भी सन्दर्भ दिये गये हैं जिन में सूत्र और कारिका की समानता दिखाई गई है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि षष्टितन्त्र के आधार पर अपनी आर्याओं की रचना करने वाले ईश्वरकृष्ण ने, मूल ग्रन्थ के शब्दों को जहां तक हो सके, अपनी रचना में सन्निविष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया है। इस तुलना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि षडध्यायी का ही अपर नाम षष्टितन्त्र है जिस के आधार पर ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका की रचना की है। वस्तुस्थिति को न समझ कर युरोपीय विद्वानों ने इस बात का निराधार हल्ला मचाया कि ये सूत्र अर्वाचीन हैं, कपिल की कृति नहीं हैं, एवं चौदहवीं शताब्दी के अनन्तर किसी अज्ञात व्यक्ति ने कारिकाओं के आधार पर इन सूत्रों की रचना कर डाली है। इस समय अनेक भारतीय विद्वान् भी पाश्चात्य विद्वानों का इस विषय में अन्धानुकरण कर रहे हैं। हम आशा करते हैं, विद्वान् इन पंक्तियों पर गंभीरता पूर्वक विचार करेंगे।

अन्त में हम यह निवेदन कर देना चाहते हैं, कि हमारी इन पंक्तियों का पूर्ण आधार श्रीयुत विद्याभास्कर पं० उदयवीर जी शास्त्री का 'सांख्यदर्शन का इतिहास' नामक ग्रन्थ है जिसका प्रकाशन 'विरजानन्द वैदिक संस्थान' ज्वालापुर जि० सहारनपुर से हुआ है। इन्हीं दिनों हमें यह ग्रन्थ देखने को मिला। 'वैदिक-धर्म' का लेख हमारे सन्मुख था, उन विचारों से प्रेरित होकर ही हमने ये पंक्तियां लिख दी हैं। आशा है, विद्वान् इस पर विचार कर हमारे लिये सन्मार्ग का प्रदर्श करेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनु प्रोक्त आध्यात्मिक उपदेशक संग्रहः (११)—

स्वामी वेदानन्द, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान

नियम

यमों के पश्चात् नियमों पर मनु महाराज के विचार क्रमशः पढ़िए।

शौच

सत्यधर्म्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्म्मेण वाग्बाहूदर संयतः ॥४। १७५

आचार्य्य को सत्य धर्म्म और आर्य्य आचरण एवं शौच में सदा पूर्ण रूप से प्रीति रखनी चाहिए। और वाणि, भुज, एवं उदर का संयम रखकर धर्म्मपूर्वक शिष्यों को शिक्षा किया करे।

(आर्य्य आचार का आधार श्रुति स्मृति है। वाणी के संमय का अर्थ है शिष्य को तथा उनके सामने किसी को, गाली न दे, अश्लील भाषण न करे। भुज के संयम का अर्थ है, मारपीट न करे। उदर के सवम का भाव है, हित, मित आहार करे। असंयमी का शिष्य भी असंयमी होगा।)

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः॥ ५।१०६

सभी शौचों में अर्थ शौच श्रेष्ट माना जाता है। जो धन के विषय में पवित्र है, वही पवित्र है। मिट्टी तथा जल से शुद्धि करने वाला शुद्ध नहीं है।

(कई लोग वस्त्र और शरीर के शुद्धी में अतीव सावधान रहते हैं। किन्तु लेन-देन के विष में प्रमादी होते हैं। लेकर वापस नहीं देते अथवा पराया पदार्थ हड़पने का उपाय करते रहते हैं। मनु जी कहते हैं चाहे वह कितना ही स्वच्छ क्यों न रहता हो, वह पवित्र नहीं है। पवित्रता का सम्बन्ध व्यवहार एवं अन्तरङ्ग से है)

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥ ५।१०८

क्योंकि जल (जल अन्य शोधकों का उपलक्षण है] से शरीर शुद्ध होता है। मन तो सत्य से शुद्ध होता है। विद्या तथा तप से आत्मा शुद्ध होता है (बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है)

[शरीर भौतिक है, उसकी शुद्धि भौतिक जलादि से संभव है। मन, आत्मा एवं बुद्धि पर तो जल पहुंचता नहीं, वह उसके मलों को कैसे धो सकता है। मन अन्तःकारण है उसकी शुद्धि के लिये सत्य विचार सत्य उच्चार, एवं सत्य आचार को धारण करना चाहिए। आत्मा को तप तथा शास्त्र ज्ञान से विमल किया जा सकता है, (बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है।)

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्य्यकारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥ ५।१०७

विद्वान् क्षमा से शुद्ध होते हैं, अकार्य्य करने वाले दान से पवित्र होते हैं। गुप्त पाप करने वाले जप से, सर्वश्रेष्ठ वेदवेत्ता तप से शुद्ध होते हैं।

[विद्वानों को क्रोध भ्रष्ट करता है। अतः विद्वान को अपनी शुद्धि के लिए सदा क्षमा का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आचरण करना चाहिए। किसी की हानि होगई हो तो उसे कुछ दे दिलाकर सन्तुष्ट करना चाहिए। मनुष्य से यदि ऐसे पाप हो जाएं जो प्रकट न हुए तो निश्चिन्त न रहकर, जप आदि के द्वारा अन्तः करण को धोने का यत्न करना चाहिए। इसके लिये योग्य गुरु की शरण लेनी चाहिए। वेद सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, इस ज्ञान के जो धनी हों, उन्हें सदा तप करते रहना चाहिए, अर्थात वेदानुसार आचरण करते रहना चाहिए, आजकल भारतीयों के ज्ञान तथा कर्म का समन्वय सामञ्जस्य नहीं है। इससे हमारे जीवनों में घोर वैषम्य है।]

यमों के पश्चात योग का दूसरा अंग नियम है। योगदर्शन में शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान में पांच नियम बनाए गये हैं। अब क्रमशः इन पांचों का वर्णन होगा। मनुजी के वर्णन में एक सुन्दरता यह है कि वे जो बात भी कहते हैं। वह युक्ति युक्त एवं सरल होती है। इसी शौच के सम्बन्ध में ही ले लिजिए। मनुष्य को अपने व्यवहार में लेन देन करना होता है। एक मनुष्य लेता है किन्तु वापस नहीं देता। उसपर कौन विश्वास करेगा वह प्रति स्नान करता है, मलमल कर हाथ धोता है। यह शुद्धि उसकी वैयक्तिक है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, यदि समाज के साथ उसका व्यवहार शुद्ध नहीं है तो जहां वह दूसरों की असुविधा का कारण बनता है, वहां वह स्वयं भी सुविधा से रहित रहता है, अतः व्यवहार के अशुद्ध रहते उसकी शरीर शुद्धिमात्र उसका हित नहीं कर सकती। इसलिये मनुजी धन सम्बन्धी पवित्रता को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। शौच के प्रसंग में मनुजी ने आचार्य्य को भी सावधान किया है, उनका कहना है कि शिष्य को शिक्षा करते हुए आचार्य्य को अपना आचरण भी देखना चाहिए। निरुक्तकार यास्कजी आचार्य्य का एक अर्थ आचारं ग्राहयति [जो आचार सिखलाए] किया है। आचार का प्रधान सम्बन्ध वाणी, हाथ एवं पेट से है यदि गुरु के मुख से समय कुसमय कुवाच्य अश्लील शब्द निकलेंगे तो शिष्य इन्हें धारण करेगा, क्योंकि यद्यदा चरति श्रेष्ठास्तत्तदेवेतरो जनः = श्रेष्ठ मनुष्य जैसा आचरण करता है। साधारण जन भी वैसा ही आचरम करते हैं। शिष्य को मारना पीटना भी नहीं चाहिए। वेद में कहा भी है—मैनमग्ने विदहो माभिशोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्। यदा शृतं कृणवो जातवेदो ऽथेमेनं प्रहिणुतात्पितृभयः॥ (ऋ १०।१६।१

हे ज्ञान प्रदान आचार्य्य। इस बालक का दहन न करना, इसे शोक सन्तप्त न करना, इसकी त्वचा को न खींचना और न शरीर को, जब इसे परिपक्व करले तो इसके घर वालों के पास भेज देना।

बालक को शरीरेण, मनसा, तथा आत्मना परिपक्व करना है। शारीरिक दण्ड से बालक की मनोवृत्ति के विकृत होने की संभावना रहती है। अतः प्यार से, प्रीति से बालक की शिक्षा करनी चाहिये। अर्थात् दण्ड भुज=दण्डपाणि नहीं होना चाहिये। ऊपर के संयम से अपना तो कल्याण है, शिष्य का भी कल्याण है।

मनु जी के इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शौच दो प्रकार का होता है। एक बाह्य दूसरा आभ्यन्तर। वासस्थान, वस्त्र शरीर आदि को स्वच्छ रखना बाह्य शौच है, आत्मा मन तथा बुद्धि को निर्मल रखना, पाप की भावना, कुविचार, अज्ञान से रहित करने के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यत्न का नाम आभ्यन्तर शौच है।

आभ्यन्तर शौच का उत्कर्ष बताने का यह भाव कदापि नहीं कि मनुष्य बाह्य शौच से विमुख हो जाए, प्रत्युत इस का भाव यह है कि ऐसा अवसर आ जाए, जब दो में से एक को चुनना और दूसरे को छोड़ना पड़े तो उस समय आभ्यन्तर शौच का ही आदर करना होगा। वैसे तो बाह्य शौच के बिना तो जीवन दुःखमय बन जाए। मलिन रहने से शरीर में अनेकों रोगों के होने की संभावना रहती है। अतः शरीर, वस्त्र, एवं वासस्थान आदि की शुद्धि में भी पूरा सावधान रहना चाहिए।

शौच के पश्चात् संतोष है। पुरुषार्थ करने। धर्म्मपूर्वक यत्न करने पर जो प्राप्त हो जाए, उस पर ईर्ष्या, द्वेष, क्षोभ से रहित होकर निर्वाह करने का नाम सन्तोष है।

सन्तोष

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः॥
४। १२

सुख का अभिलाषी मनुष्य परम सन्तोष पर आशा रखकर संयत होवे। क्योंकि सुख का मूल सन्तोष है और उसका उलटा=असन्तोष दुःख का कारण है।

[एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यह उपदेश आध्यात्मिक है। किसी ने कहा है— असन्तुष्टा द्विजा नष्टा सन्तुष्टश्च महीपतयः= असन्तोषी ब्राह्मण नष्ट हो जाते हैं और सन्तोषी राजा। तात्पर्य्य यह कि ऐकान्तिक उपदेश को सार्वभन्न समझने की भूल नहीं करनी चाहिए;]

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषमन्तरात्मनः।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥ ४। १६१

जिस कर्म्म को करते हुए मनुष्य के अन्तरात्मा का परितोष हो, उसे वह प्रयत्न से करे और इसके विपरीत कर्म्म का त्याग कर दे।

[मनु जी ने धर्म्म के चार लक्षणों में 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' को तीसरा स्थान दिया है। यहां भी उसी का उल्लेख है। 'अपने आत्मा को जो प्रिय लगे' इस उपदेश के साथ मनु जी ने दूसरे स्थान पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया है, वह है—'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्=अपने को उलटा लगने वाला व्यवहार दूसरों के साथ न करे। हमें किसी को पीटने में हर्ष होता है, किन्तु यदि हमें पीटा जाए तो क्या हम प्रसन्न होते हैं। यदि नहीं तो यह व्यवहार दूसरे के साथ न करना चाहिये।]

आलसी एवं निठल्ले मनुष्यों को भी सोचना चाहिये कि यदि कोई बिना परिश्रम के उनके पदार्थों का उपयोग करे। तब कैसे हो? पुरुषार्थ से ही अन्तरात्मा की प्रीति संभव है।

सन्तोष के पश्चात् तप का क्रम है। चिन्ता तथा विलाप से रहित होकर कर्त्तव्य कर्म पालन करते हुए सब द्वन्द्वों के सहन का नाम तप है:—

तप

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्य कारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमः॥ ५।

विद्वान् क्षमा से शुद्ध होते हैं, अकार्य्य करने वाले दान से, गुप्त पाप करने वाले जप से, तथा वेद वेत्ता तप से शुद्ध होते है।

मनु जी वेदाभ्यास को परम तप कहते,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदवेत्ता के लिए तप का विधान करने से उन का अभिप्राय है कि निरन्तर वेदाभ्यास करना चाहिए उस में विच्छेद नहीं होना चाहिये और उस के अनुसार आचरण भी बनाना चाहिए।]

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति॥
५।१०६

जल से शरीर शुद्ध होता है। मन सत्य से शुद्ध होता है। विद्या तथा तप से आत्मा और ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है।

[तप द्वारा आत्मा की शुद्धि बताते हुए मनु जी ने तप की महत्ता बढ़ादी है। अर्थात् तप वह साधन है जिस से आत्मा की उज्ज्वलता सिद्ध हो।]

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि॥
११।२२७

स्वीकार करने, पश्चात्ताप, तप तथा वेदाध्ययन [विचार] तथा आपत्काल में दान करने से पापकर्त्ता पाप से मुक्त होता है।

[पाप करनेसे पाप का संस्कार अन्तःकरण पर पड़ता है। भूल का स्वीकार करना उसका प्रथम मार्जन है भूल पर यदि पश्चात्ताप हो तो उस को पुनः करने की प्रवृत्ति नहीं होती। बार २ चिन्तन करने से भी पापवासना से छूटता है। आपद्ग्रस्त की सहायता भी पापभावना से छुड़ाती है। मूल श्लोक में आए 'पाप' का अर्थ पाप-वासना है।

यथा यथा नरोऽधर्म्मं स्वयं कृत्वानुभाषते।
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते॥
११।२२८

स्वयं पाप करके मनुष्य जैसे उस का कथन करता है अर्थात् स्वीकार करता है, वैसे २ वह उस अधर्म से ऐसे छूटता है जैसे सांप कैंचली से।

[पाप को स्वीकार करते समय मनुष्य के मन में पाप के प्रति ग्लानि उत्पन्न होती है, पाप से ग्लानि का होना पाप से छुटकारे का प्रथम चिह्न है।]

यथा यथा हि मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्म्मेण मुच्यते॥
११।२२९

[जैसे २ उस का मन पाप कर्म से घृणा करता है वैसे २ उस का शरीर उस पाप से छूट जाता है।]

[किसी किए कर्म से घृणा वास्तव में अपने आप से घृणा होती है। यह अनुताप=पश्चाताप है। किसी कर्म को करने के पश्चात् अपने आप को तापाना पश्चाताप है। सोना भट्टी के ताप में पड़कर जैसे मल रहित हो जाता है। ऐसे ही पश्चाताप से मनुष्य। गम्भीरता से विचारने की आवश्यकता है।] पश्चाताप का स्वरूप बताते हैं:—

कृत्वा पाप हि सन्तप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः॥
११।२३०

पाप करके सन्ताप करने से उस पाप से छूट जाता है। मैं पुनः इसे नहीं करूंगा इस निवृत्ति के द्वारा वह पवित्र हो जाता है।

[कर्म्म की वासना उसे पुनः उसी कर्म में प्रेरित करती है, इस से बार २ कुकर्म होता है। यदि सचमुच वह पश्चात्ताप करे अर्थात् वैसा कर्म पुनः न करने का दृढ़ संकल्प करे तो उस की पापवासना छूट जाती है।]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्म्मफलोदयम् ।
मनोवाङ्मूर्त्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म्म समाचरेत् ॥
११।२३१

इस प्रकार मरने के पश्चात् कर्म्मफल प्राप्ति का मन से विचार करके, मन, वाणि तथा शरीर से नित्य शुभ कर्म करे।

[अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत कर्म्म शुभाशुभम् । भले बुरे सभी कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है, अतः सावधान हो बुरे कर्मों का त्याग तथा भले कर्म्मों का अनुष्ठान करना चाहिये कर्म करने के तीन ही साधन हैं— वाणी, मन तथा शरीर। न्यायभाष्य १।१।२ वात्स्यायनमुनि ने इन साधनों द्वारा कौन २ सा कर्म होता है, इन शब्दों में वर्णन किया है :—

दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्त्तमानो हिंसास्तेय प्रतिषिद्ध मैथुनान्याचरति, वाचानृतपरुषसूचना संबद्धानि, मनसा परद्रोहं, परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यंचेति । से यं पापात्मिका प्रवृत्तिरधर्माय अथ शुभा—शरीरेण दानं परित्राणं परीचरणं च, वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायं चेति, मनसा दयामस्पृहां श्रद्धां चेति। सेयं धर्माय।

अर्थात् रागद्वेषमोह रूपी दोषोंसे परिचालित हुआ मनुष्य शरीर के द्वारा हिंसा, चोरी तथा निषिद्ध मैथुन का आचरण करता है, वाणी से मिथ्या, कठोर, चुगलखोरी तथा असंबद्ध प्रलाप करता है और मन से परद्रोह, दूसरे के धन की लालसा और नास्तिकता का आचरण करता है, यह पापमयी प्रवृत्ति अधर्म्म का=अमङ्गल का कारण बनती है । और शुभ प्रवृति यह है— शरीर से दान, दूसरे की रक्षा, तथा सेवा, वाणी से सत्य, हित, मीठा वचन तथा स्वाध्याय और मन से दया, निस्पृहता (लोभ रहितता तथा श्रद्धा=सत्यपदार्थों पर आस्था करता है। इस का फल धर्म्म है, कल्याण है।

वाणी, मन तथा देह से दस प्रकार के भले तथा दस प्रकार के बुरे कार्य हो पाते हैं। हिंसा का प्रतिद्वन्दी परित्राण=पररक्षा, अस्तेय का प्रतिद्वन्दी दान, प्रतिषिद्ध मैथन का उलट संयम =पर सेवा ; अनृत का विरोधी सत्य, पुरुष का उलट प्रिय, सूचना का विरोधी हित । असंबद्ध प्रलाप का उलट स्वाध्याय=वेदशास्त्रों का पढ़ना तथा गायत्री आदि का जप करना, परद्रोह का प्रतिद्वन्द्वी दया, परद्रव्याभीप्सा=लालच का विरोधी अस्पृह=लोभ राहित्य, और नास्तिकता का प्रतिद्वन्द्वी श्रद्धा=सत्यनिष्ठा, आस्तिकता, आत्मा परमात्मा । कर्म्मफलादि पर ज्ञानपूर्वक विश्वास । इस प्रकार विचार करके वितर्क भावना द्वारा अमङ्गलकारक कर्म्मों का त्याग कर देना चाहिए।

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म्म विगर्हितम्।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत् ॥
११।२३

बिन जाने अथवा जानकर निन्दित कर्म कर के उस से छुटकारा की इच्छा वाला मनुष्य दूसरी बार उसे न करे।

[दूसरी बार न करने का संकल्प पापवृत्ति से बचाता है । किये कर्म का फल तो भोगना ही होगा।]

यस्मिन् कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम्।
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥
११।२३

जिस कर्म के करने पर इस के मन को लघुता=तुच्छता न हो उस में तब तक तप करना चाहिए जब तक कि सन्तोष प्रद न होजाए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

[सत्कर्म को आत्म सन्तोषपर्य्यन्त करने का नाम तप है, यह बात इस श्लोक में स्पष्ट कह दी गई है अर्थात् सत्कर्मों को बार बार करना चाहिये।]

तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषक सुखम्।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽनतं वेददर्शिभिः॥ ११।२३४

वेदज्ञानियों ने बतलाया है कि निष्काम ज्ञानियों तथा साधारण मनुष्य के सब सुखों का मूल भी तप है, मध्य भी तप है और अन्त भी तप है।

अर्थात् संसार का तथा परलोक का कोई सुख ऐसा नहीं जो तप के बिना मिल सके, अतः विद्वानों, अविद्वानों सकामों, निष्कामों सभी को तप का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए।]

ब्राह्मणस्य तपो दानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्॥ ११।२३५

दान ब्राह्मण का तप है, रक्षा क्षत्रिय का तप है, व्यापारादि वैश्य का तप है, सेवा शूद्र का तप है।

[ब्राह्मण लेता रहता है, अतः उस को आदेश किया कि दिया कर। न देने वाला ब्राह्मण पतित हो जाता है। प्रति ग्रहः प्रत्यरः लेना नीच कर्म है, यह मनु वचन है। अपने अपने वर्ण के नियम कर्म को श्रद्धा एवं निष्ठा से करने का नाम तप है।]

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचाराचरम्॥ ११।२३६

जितेन्द्रिय, फल कन्दमूल खाने वाले ऋषि लोग चराचर समेत त्रिलोकी को तप से ही जान सके हैं।

[बाह्यरूप से संयम, तथा वन्यं आहार मात्र से मनुष्य का कल्याण नहीं हो पाता है, वरन तप से ही। इसी लिए ऋषिलोग बाह्यसाधन—संपन्न होने पर भी अपने उत्कर्ष के लिए तप का अनुष्ठान निरन्तर किया करते हैं।]

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः।
तपसैव प्रसिद्धयन्ति तपस्तेषां हि साधनम्॥ ११।२३७

औषध, नीरोगता, दैवी विद्या तथा लोकोत्तर स्थिति ये सब तप से ही सिद्ध होती हैं, तपः ही उस का साधन है।

[शरीर के आरोग्य, दिव्य ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए तप करना पड़ता है, जिस के जो प्राप्ति साधन हैं। उन्हें तत्परता एवं निष्ठा से करने का नाम तप है, यह कभी भी नहीं भूलना चाहिये।]

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरति क्रमम्॥ ११।२३८

[जो दुस्तर है, जो दुष्प्राप्य, जो दुर्गम है, जो दुष्कर है, वह सब तप से सिद्ध हो सकता है, क्योंकि तप दुरतिक्रम=दुर्लंघ्य है।
जिसे पार करना कठिन हो, वह दुस्तर; जिसे पाना कठिन हो, वह दुराप=दुष्प्राप्य; जहां जाना कठिन हो वह दुर्ग=दुर्गम; जिसे करने में कठिनता हो वह दुष्कर। तप सभी कठिनताओं को पार करता है। ऐसा कोई कार्य्य नहीं, जो तप से न हो सके।]

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्य्यकारिणः।
तसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्विषात्ततः॥ ११।२३९

महापातकी और संपूर्ण कुकर्मकारी लोग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अत्यन्त परिश्रम से अनुष्ठित तप के द्वारा उस उसे किल्विष=दोष से मुक्त हो जाते हैं।

(पापों के तीन भेद होते हैं महापातक, पातक और उपपातक। उनके लिये मनुस्मृति का ग्यारहवां अध्याय देखना चाहिए।)

यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्त्तिभिर्जनाः।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥ ११।२४०

मनुष्य मन, वाणी तथा देह से जो कोई पाप करते हैं, तपस्वी उस सबको तप से ही शीघ्र जला देते हैं।

(तप की शुद्धिशक्ति का स्पष्ट निरुपण है।)

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः।
इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान् संवर्धयन्ति च॥
११।२४२

तप के द्वारा शुद्ध हुए ब्राह्मण के यज्ञों=सत्कारों को दिव्यगुण कर्म्म संपन्न परमात्मनिष्ठ महात्मा स्वीकार करते हैं तथा उसकी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं।

(ज्ञानी लोग पापी के सत्कार को स्वीकार करने से घबराते हैं।) योगदर्शन में तप के सम्बन्ध में कहा है—कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसा (२।४३)=तप के द्वारा अशुद्धि का नाश होकर शरीर तथा इन्द्रियों को सूक्ष्मशक्ति की प्राप्ति होती है।

अनन्त के पथ पर

झांकी "भानुमन्विहि"

[ब्र० श्री भूषण चैतन्य शास्त्री साहित्याचार्यः लुधियाना]

उषा की लालिमा सब दिशाओं में फैल रही थी, उस दिन पथिक जाग रहा था। किसी की कष्ट ध्वनि मन्द मन्द सुनाई दे रही थी। पथिक सहसा झुंझला उठा। बोलने लगा—वह मेरे लिये निर्मल उषा का प्रफुल्ल मनोमोहन प्रकाश लेकर नहीं आया था। यद्यपि वह भी इह लोक में मेरी यात्रा का एक साथी है। उसने अपनी विवर्ण मुखाकृति से जो मूक संदेश मुझे दिया, वह सन्देश मेरे जीवन पथ के अज्ञान अन्धकार को न मिटाकर निर्वापित दीपशिखा की धूमिल तमिरत्ता में परिणत कर गया। उसका मुख मण्डल स्वर्णाभा से नहीं दमक रहा था किन्तु मानो मृत्यु कवलित शोचनीय दशा से व्याकुलित हो रहा था। उषा वार वार दिगन्त में विलीन होकर भी अपनी स्वर्गीय अनुपम अन्तः संज्ञा से चिरद्युतिमाती हो रही थी, चिर मित्र अलौकिक पुरुष का अविस्मरणीय अनन्त तथा चिर प्रकाशमय संदेश, अपनी अरुण दिगन्तव्यापी मन्द मन्द दालायमान-मन्थरगति संपन्न तरंगित माधुर्यमय ज्योतिश्छटा से दे जा रही थी। उससे एक पथिक के हृदय में आशा का संचार होने लगा। हृदय में गुञ्जायमान हो रहा था "भानुमन्विहि" प्रकाश की ओर मुख करके चल, न कि प्रकाश को पीछे रख कर। मानव ! तेरा जीवन पथ प्रकाशमय है। अन्धकार मार्ग का मोह छोड़ दे। जिस प्रकार ब्राह्म महूर्त्त में निर्मल उषा मन्द मन्द मुस्कान से सम्पूर्ण धरित्री की तमिरत्ता को हटाने के लिये मानो अपना चिरस्नेहमय आंचल हटाती हुई रश्मिमाला को रश्मिवाहन पर बैठाती है। सारे विश्व में जागरण क्रम चल पड़ता है। निशाचर छिपने लगते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चोर, डाकु, सांप बिछू तथा सर्व प्रकार के पापी अपनी अपनी अन्तर्मन्त्रणा से घायल होकर—निस्तेज होने लगते हैं। ठीक उसी प्रकार पथिक तू अपने मन के ऊपर से अविधा अन्धकार रूपी-आवरण को हटा दे, और बुद्धि को शुभ महूर्त्त में शक्तिशाली बनाता हुआ, सामने रख कर चलता जा। अन्धकार मार्गों को मिटाता चला जा, प्र।ाशमय ब-ाता चला जा। तेरे सम्मुख जब प्रकाश है तो चिन्ता किसकी ? निशाचर, पापी तुझे पाप के मार्ग पर नहीं ले जा सकेगा। वह पुनः पुनः तिरस्कृत होता हुआ तेरे ही मार्ग का अनुसरण करेगा। या तेरे मार्ग पर से हटकर कहीं और छिपने का प्रयत्न करेगा। ओ प्रकाश मार्ग के पथिक ! आज तेरे मन में ग्लानि क्यों उत्पन्न हुई ? जब तक तू प्रकाश मार्गारूढ़ है। तब तक पाप निशाचर तेरा क्या बिगाड़ेगा। फिर भी सतर्क रहना। तनिक ईधर उधर हो गया तो तुझे पद पद पर नारकीय यन्त्रणा से दुःखी होना पड़ेगा। तेरे आध्यात्मिक शरीर को भी क्षत विक्षत कर देगा, तब तू शान्ति मार्ग पर ठहर न सकेगा। जिस प्रकार रोगी उन्मुक्त वायु तथा प्रकाश में घूम फिर नहीं सकता। वह तो सतत् बन्द स्थान का बन्दी बन जाता है। ठीक उसी प्रकार तुझे भी मुक्त रहने नहीं देगा। बन्दी बना कर तेरे मुक्त जीवन के स्वच्छन्द स्वर्गीय अनुपम आनन्द को मिटाने लगेगा। इस लिये तू निरन्तर "भानूमन्विहि" यात्रा में असंख्य यात्रियों के संयोग वियोग सहना ही पड़ता है। उनके कटाक्ष तथा अन्याय आचरणों से दुःखी नहीं होना चाहिये। उसमें अधिांकश यात्रियों के विश्वास, अन्तर्विबेक से सुसन्तुलित नहीं हुआ करते। यद्यपि प्राणी मात्र के शरीर पंचभूतों से उत्पन्न हैं तथापि सर्वत्र तुम्हें पृथिवी की वत्सलता, जल को शीतलता, अनल की तेजस्विता, नभ की व्यापकता, अनिल की गति शीलता स्पष्ट रूप से एक साथ जाग्रत् नहीं दिखाई देगी।

जगत् यदि तुझे कुछ नहीं देता है—तो वह अपना कर्त्तव्य का पालन नहीं करता। किन्तु तुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। पथिक तेरे मन में क्यों प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होती है ? यदि संसार तेरा अनिष्ट चिन्तन करता है तब तू वहां भी उस के प्रतिशोध में संसार का कल्याण कर जा। यदि मार्ग में अन्याय रीति से किसी ने कभी तेरा शासक बनकर तुझे कृश भी बना दिया, मानव समाज में लघु बना दिया, तब भी ओ शोषित, कृषित, तृषितपथिक ! तू शरत् कालीन कुज्झलिका न्याय से संसार में नहीं छा जाना, मर्त्यलोक का उच्छवास न बन जाना अपितु अपनी लघिमा में असीम अनुपम गरिमा भर कर अमर लोक का उल्लास दे जाना। ओ अनन्त पथ के पथिक ! अपने मार्ग पर चलते हुए मार्गस्थ नाना परिस्थितियों के कारण कहीं विचलित न हो जाना। ओ सरलता, मधुरता, गम्भीरता रूपी सरित्-तट के साधक ! "भानुमन्विहि" संसार के सर्वविध पापो से बच कर कल्याण मार्ग के अभिलाषी "भानुमन्वेहि"। जग से तेरी जिस वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा है, वह वस्तु प्रथम तू जग को दे कर बता जाना कि कैसे दिया जाता है। यदि तुझे अपनी महत्ता न मिटाने की आकांक्षा है तो तू उस ज्योतिर्मय पुरुष का अनुसरण कर। विश्व-कुटुम्ब की जननी अतुल स्नेहमयी प्रकृति के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिक्-अञ्जल तेरे जीवन यापन का उन्मुक्त स्थान है। पुरोभागे स्थित शत शत नगर, नगर को एक एक महल में स्थित असंख्य संकुचित भावनासम्पन्न मानवों के न्याय स्वामित्व, प्रभुत्व भावना से मोहित होकर अपनी मानवता में विशालता की रक्षा न कर सकेगा। तुझे अपनी आराधनीय वस्तु की आरधना में सफलता नहीं मिलेगी। ओ साधक पथिक! जन्म-जन्मान्तर की तेरी साधना से प्राप्त यह पवित्र मानव जीवन शान्तिमय नहीं बना रहेगा। तापस कभी भी वापस होना नहीं जानता। वह तो प्रतिक्षण आगे बढ़ता ही जाता है। मार्ग पर चलता हुआ ऐसा कभी मत कहना—

"खो गई स्वर्ग की स्वर्ण किरण छू जग जीवन का अन्धकार" प्रत्युत यह कहते जाना "मिल गई स्वर्ग की किरण जब से प्रभु को अपना सब कुछ निष्कपटता पूर्वक समर्पण कर दिया है।" दिशा दिग्विमूढ होकर मैं तो कहीं भटक रहा था। दुःखी हो गया था। आश्रय की इच्छा से किसी को पुकार रहा था। अब तो किसी की प्रेमभरी वाणी सुनाई दे रही है। ओ अमृत सन्तान इधर आ। मैं तो तुझे तेरे पथ पर ले जाने के लिये कब से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। प्रकाश तो सर्वत्र विद्यमान है। तूने अपनी आंख बन्द कर रखी है। जब आंख खोलकर देखने का प्रयत्न करेगा, तब तुझे अनुभव होने लगेगा अरे! मैं तो प्रकाश-समुद्र में तैर रहा हूँ। और कहते जाना मैं अपने मार्ग पर अटल हूँ। मुझे कोई भी अनन्त के पथ से विचलित न कर सकेगा। वर्षा में होने वाले कीटाणुओं के सदृश नये नये उपदेष्टाओं के रूप में मेरे मार्ग पर निकल आने वाले महानुभावों! अब तुम सब मेरे मार्ग पर बाधा नहीं डाल सकोगे। क्योंकि तुम सबों के जीवन आन्तरिक साधना से रहित हैं। तुम सब हृदय के कलुष कल्मष का बिना त्याग किये ही त्यागी बनकर केवल अपने दुस्साहसिक चमत्कारों से अज्ञानी समुदाय के तुल्य मुझे अब और न भुला सकोगे। मुझे तो मेरी मां बुला रही है कि हे पथिकः—

"भानुमन्विहि

षड दर्शनों की सामान्य प्रवृत्तियां

(श्रीमान् भवानीलाल 'भारतीय' बी० ए०)

षट दर्शनों पर विचार करते हुए हमें स्मरण रखना चाहिये कि इन ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय भिन्न २ है। ये सब दर्शन पृथक २ विषयों का स्वतंत्र वर्णन करते हैं। सांख्य ने सृष्टि के विकास को लिया है। प्रकृति अपनी अव्यक्तावस्था से व्यक्त होकर किस प्रकार विकसित होती हुई सृष्टि के पदार्थों की रचना करती है, यह सांख्य हमें बतलाता है। वैशेषिक दर्शन कार ने जड़ जगत की व्याख्या की है और उसके उपादान कारण प्रकृतिक परमाणुओं की ओर संकेत किया है। इसलिये वैशेषिक का सिद्धान्त परमाणुवाद (Atomism) भी कहलाता है। न्याय का मुख्य विषय तर्क शास्त्र की उद्भावना है। हमारा शास्त्रार्थ किस प्रकार तर्क पूर्ण और युक्ति संगत हो सकता है और हम अपने विरोधी को किस प्रकार पराजित कर सकते हैं यह न्याय में बतलाया गया है। योग ने समाधि में ईश्वर प्राप्ति के लक्ष्य को सामने रखकर उसके लि...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक व्यावहारिक मार्ग ढूंढ़ निकाला है। इसके द्वारा हम अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध करते हैं और फिर परमात्मस्वरूप में स्थित हो जाते हैं। महामुनि पतंजलि ने समाधि अवस्था तक पहुँचने के लिये अष्टांग योग का उपदेश दिया है। इस नियम का पालन करते हुए साधक लोग समाधि अवस्था में ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं, पूर्व मीमांसा में कर्मकाण्ड का निरूपण किया गया है। यहां यज्ञ यागादि का विस्तृत वर्णन है। वेदमन्त्रों के विनियोग यहाँ बताए गये हैं। वस्तुतः कर्म मार्ग सांसारिक व्यक्तियों के लिये श्रेष्ठ मार्ग है क्योंकि इसके द्वारा वे अपने अभ्युदय की सिद्धि कर सकते हैं। वेदान्त ने सृष्टि के निमित्त कारण ब्रह्म की सत्ता की स्थापना को अपना विषय माना है। यहां ब्रह्म की सत्ता को तार्किक रूप में पेश किया गया है। जो लोग ईश्वर को नहीं मानते उनके लिये वेदान्त दर्शनाकार ने शब्द प्रमाण और तर्क के द्वारा ईश्वर की सिद्धि का यत्न किया है।

इस प्रकार प्रत्येक दर्शन के पृथक २ विषयों का निर्देश उस २ ग्रन्थ के प्रथम सूत्र से ही ज्ञात होता है। उदाहरणार्थ-वेदान्त दर्शनकार ब्रह्म को अपनी जिज्ञासा का विषय बतलाता हुआ लिखता है--

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा वे० १।१।१

अब हम ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा करेंगे। फिर उस जानने योग ब्रह्म की व्याख्यास्वरूप आगे का सूत्र आता है-जन्माद्यस्ययतः वे० १।१।२ यह ब्रह्म, संसार के जन्म और विनाश का कारण है, फिर उसी ब्रह्म को ऋग्वेदादि शास्त्रों का कारण बतलाते हुये कहा गया है-शास्त्र योनित्वात् १।१।३

इसी प्रकार योग दर्शन के लेखक ने अपना ग्रन्थ आरम्भ करते हुये लिखा है-

अथ योगानुशासनम् १।१

अब हम योग की शिक्षा करेंगे। यहाँ योग से तात्पर्य ईश्वर साक्षात्कार से है क्योंकि इस शास्त्र का यही विषय है। योग की परिभाषा दूसरे सूत्र में दी गई है-योगश्चित्तवृत्ति निरोधः- (१।२) अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। इस प्रकार योग का निषेधात्मक रूप बता देनेके पश्चात् उसके रचनात्मक स्वरूप (Positive aspect) को बतलाते हैं:—

तदा द्रष्टु स्वरूपे ऽवस्थानम १।३

उस दशा में योगी अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। यह ईश्वर साक्षात्कार की दशा है।

न्याय ने अपने प्रथम सूत्र में बतलाया है कि मनुष्य को निश्रेयस (मोक्ष) प्राप्त करने के लिये प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, अवयव, सिद्धान्त, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान इन १६ पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है। इन पदार्थों में तर्क शास्त्र के सम्पूर्ण अंगों की व्याख्या आ गई है। इस के अतिरिक्त 'प्रमेय' के अन्तर्गत आत्मा तथा दृश्यमान जगत् की वस्तुओं का भी उल्लेख है।

'अथातो धर्म जिज्ञासा' से प्रारम्भ होने वाले पूर्व मीमांसा दर्शन में पंचमहायज्ञों से लेकर अश्वमेध पर्यन्त कर्मकाण्ड की व्याख्या की गई है, जिससे धर्म की सिद्धि होती है।

पृथक २ विषयों के होते हुए भी कुछ ऐसी सामान्य बातें हैं जिनका उल्लेख प्रत्येक दर्शन में मिलता है। उदाहरणार्थ—ज्ञान प्राप्ति के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साधन । (Epistemology) इन साधनों का वर्णन प्रायः सभी दर्शनों में मिलता है। इसी प्रकार मोक्ष का स्वरूप, सृष्टि के पदार्थों का भिन्न २ वर्गीकरण, ईश्वर तथा आत्मा के स्वरूप आदि के प्रसंग का उल्लेख यहां मिलता है । पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि इन बातों में दर्शनकारों का घोर मतभेद है । अपनी बातों की पुष्टि के लिये वे निम्नलिखित प्रमाण पेश करते हैं:—

(१) कोई दर्शनकार प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द इन तीन प्रमाणों को मानते हैं और कोई उपमान को लेकर चार प्रमाणों को मानते हैं।

(२) सांख्य ने २५ तत्त्वों के ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति बतलाई है परन्तु न्याय और वैशेषिक ने क्रमशः १६ और ६ पदार्थों के ज्ञान से मोक्ष माना है। इन में कौन सा वर्गीकरण ठीक है और कौन सा नहीं।

(३) मोक्ष के स्वरूप को लेकर दर्शनकारों में मतैक्य नहीं है। कोई आत्यन्तिकी दुःख निवृत्ति (Complete cessasien of pain) को मोक्ष मानते हैं और दूसरे ब्रह्मानन्द प्राप्ति को मोक्ष मानते हैं ।

(४) ईश्वर की सत्ता और स्वरूप को लेकर भी यहां मतभेद दृष्टिगोचर होता है । सांख्य निरीश्वरवादी है । योग के ईश्वर की कल्पना अधूरी है । वेदान्त में पूर्ण ब्रह्म की प्रतीष्ठा की गई है परन्तु आत्मा और जगत् का पृथक अस्तित्व स्वीकार नहीं किया गया है।

(५) सांख्य और वेदान्त सत्कार्यवाद को मानते हैं परन्तु न्याय और वैशेषिक असत्कार्य-वादी हैं।

(६) आत्मा के स्वरूप को लेकर भी सांख्यकारों में मतभेद है। सांख्य का पुरुष 'निर्विशेषा चिन्मात्रम्' है परन्तु न्याय की आत्मा में चैतन्यता एक पृथक् गुण है जो मोक्ष की अवस्था में पृथक हो जाता है।

(७) सांख्य प्रकृति को संसार का उपादान कारण मानता है, वेदान्त ब्रह्म को इस जगत् का अभिन्न निमित्तोपदान कारण मानता है। न्याय तथा वैशेषिक के अनुसार सृष्टि की रचना परमाणुओं से है।

उपरोक्त आक्षेपों में से हम पहले ज्ञान प्राप्ति के साधनों की चर्चा करेंगे। सांख्य ने तीन प्रकार के प्रमाण माने हैं:—'द्वयोरेक तरस्य वाक्य सन्नि कृष्टार्थ परिच्छित्ति, प्रमा तत्साधक तमयत्तत् त्रिविधं प्रमाणं । सां० १।८७ ज्ञाता और ज्ञेय के पास होने से जो ज्ञान होता है, उसे प्रमाण कहते हैं। इस प्रमाण के तीन प्रकार के साधन प्रमाण कहलाते हैं:—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द । प्रत्यक्ष की परिभाषा इस प्रकार है यत्सम्बन्ध सत्तदाकारोल्लेखि विज्ञान तत्प्रत्यक्षम् १।८६ जिस सामने उपस्थित पदार्थ के साथ ज्ञानेन्द्रिय का सम्बन्ध—हो और मन को भी उस ज्ञान के द्वारा बोध हो जाये, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। अनुमान की व्याख्या इस प्रकार है—प्रतिबंध दृश प्रतिबद्ध ज्ञानमनुमान १।१०० जो इन्द्रिय पदार्थ ग्राह्य पदार्थ नहीं दीखता उस के ज्ञान के साधन को अनुमान कहते हैं। शब्द के विषय में सांख्यकार कहते हैं—'आप्तोपदेश शब्द १।१०१ आप्तों के उपदेश को शब्द कहते हैं यहीं पर इन प्रमाणों से सम्बन्ध रखने वाला एक और सूत्र मिलता है तत्सिद्धौ सर्व सिद्धेर्ना धिक्य सिद्धि १।८८ इन तीनों प्रमाणों के सिद्ध हो जाने से सब पदा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की सिद्धि हो जाती है। यहां सूत्रकार का तात्पर्य तो इतना ही है कि मुख्य प्रमाण तीन ही हैं और अन्य उपमानादि को हम इन्हीं के भीतर देख सकते हैं परन्तु जो भेददर्शी हैं वे यहां इस का अर्थ यह करते हैं कि यहां ऋषि ने जहां अन्य प्रमाणों के मानने की अनावश्यकता बताई है, इसे हम क्लिष्ट कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते। योग इन तीनों प्रमाणों के मानने से सहमति प्रकट करता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है न्याय का उद्देश्य तर्क शास्त्र की उद्भावना है। प्रमाणों का विस्तृत और तर्कपूर्ण विवेचन हमें न्याय में मिलता है। न्याय में चार प्रकार के प्रमाण बताये गये हैं :—

प्रत्यक्षानुमानोपमान शब्दाः प्रमाणानि न्या०१।१।३

प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान और शब्द से चार प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष की परिभाषा इस प्रकार है:—

इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्य-मव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् १।१।४

इन्द्रिय और अर्थ के संयोग से जो ज्ञान होता है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। अनुमान के यहां तीन भेद किये गये हैं—पूर्ववत् शेषवत्, और सामान्यतो दृष्ट इसी तरह सांख्य में भी अनुमान तीन प्रकार का बतलाया गया है। उपमान को परिभाषा इस प्रकार की गई है:—

प्रसिद्ध साधर्म्यात् साध्य साधन मुपमानम् १।१।६

प्रसिद्ध पदार्थ के सादृश्य से साध्य के साधन को उपमान कहते हैं। शब्द प्रमाण की परिभाषा सांख्य के ही समान है इस लिये उस के लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार विभिन्न प्रमाणों की परिभाषा लिखने के पश्चात् न्याय द्वितीय अध्याय के प्रथम आह्निक के प्रथम सूत्र में प्रश्न उठाया गया है न चतुष्ट्व मैतिह्यार्थापत्ति सम्भवाभाव प्रामाण्यात्२।१।१

चार ही प्रमाण नहीं क्यों कि ऐतिह्य अर्थापत्ति सम्भव और अभाव ये भी प्रमाण हैं इसका उत्तर दूसरे सूत्र में दिया है "शब्द एतिह्यानर्थान्तर भावादनुमाने ऽर्थापत्ति सम्भवाभावन र्थान्तर भावाच्चा प्रतिषेधः २।१।२ ऐतिह्य का शब्द प्रमाण में, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव का अनुमान में अन्तर्भाव होने से प्रमाण चार ही हैं। ऐतिह्य आदि प्रमाणों का निषेध नहीं हो सकता परन्तु ये पृथक प्रमाण नहीं। पहले जो प्रत्यक्षादि गिनाये थे इसी में इन का अन्तर्भाव हो जाता है इस लिए इन के पृथक उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि न्याय दर्शन का प्रणयन्न अत्यन्त तार्किक दृष्टि से हुआ है इस लिए इस में यह सिद्ध किया गया है कि क्यों चार ही प्रमाण मानने चाहिये? इस प्रकार इन चार प्रमाणों की स्थापना अत्यन्त सुदृढ़ तर्क की भित्ति पर खड़ी की गई है जो न्याय दर्शन की विशेषता है।

वैशेषिक कार ने भी उन्ही प्रमाणों को माना है जो न्याय को स्वीकार हैं परन्तु Antroduction to Indian Philosophy के लेखक डा० दत्त और डा० चटर्जी ने न्याय और वैशेषिक का इस विषय में मतभेद बतलाते हुये लिखा है: --

"While Nyaya accepts four independent sources of knowledge namely, perception, inference comparision and testimony. the Vaisesika

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

recognises only two, that is perception and inference. अर्थात् न्याय वैशेषिक में प्रमाणों को लेकर मतभेद है। वैशेषिक प्रत्यक्ष और अनुमान केवल दो प्रमाण मानता है। उपरोक्त लेखकों ने यह भेद कहां से ढूंढ निकाला, हम कहने में असमर्थ हैं परन्तु इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि इस प्रकार का उल्लेख वैशेषिक सूत्र में तो कहीं नहीं है। वेदान्त में भी प्रमाणों का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता शंकर ने इन प्रमाणों में अनुपलब्धि—और अर्थापत्ति को मिला कर छः प्रमाण माने परन्तु रामानुज ने फिर तीन ही माने।

यहां हम ऋषि दयानन्द का उल्लेख करना नहीं भूल सकते जिन्हों ने न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान वा शब्दके साथर ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव को मिला कर आठ प्रमाणों को स्वीकार किया। इन आठ प्रमाणों की विस्तृत व्याख्या उन्हों ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में की है और अन्त में लिख दिया है-"इन में से जो शब्द में ऐतिह्य, और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं" डा० सत्य प्रकाश डी० एस० सी० ने अपनी पुस्तक A critical study of the philosophy of Dayanand में ठीक ही लिखा है:—

Dayanand does not mind if the eight evidences are reduced to four by including history under testimony and negation, possibility and deduction under inference." P. 173 इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द को तीन चार या आठ का कोई आग्रह नहीं था जिस प्रकार सांख्य ने उपमान का अन्तर्भाव अनुमान में कर दिया, उसी प्रकार एतिह्यादि चार का अन्तर्भाव होकर शेष चार रह जाते हैं।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि Theory of Knowledge या Epistemology के प्रश्न पर सभी दर्शन एक मत हैं परन्तु विकास वादियों को यहां भी विकास दृष्टिगोचर होता है। उनके कथानुसार:—

The Charvaka Philosophy marks the starting point of Indian thought at least in the logical order if not in the chronological order. In the sphere of Epistemology it believes in the most common sense source of knowledge that is perception. The Semkhya epistemology makes an advance over the commonsense philosophy of Charvaka in so far as it believes in three sources of knowledge, that is perception, inference and testimony.

The Nyaya-Vaisesika adds another source of knowledge to the three sources of Samkhya which are accepted in it. Comparision is regarded in Nyaya-Vaisesika as a separate source of knowledge which cannot be included in any of the three.'

दत्त और चटर्जी के वैशेषिक सम्बन्धी मत की पुष्टि करते हुये यह विकासवादी भी लिखते हैं:—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

The older Vaisesha believed in two sources of knowledge perception & inference. comparison and testimony were not regarded as separate or independent sources of knowledge but they were regarded as derived from the two. The advaite Vedantof Shanker adds two more ......(Dr.Ramanand Tivari)

इतना लम्बा उद्धरण देने का तात्पय यही है कि लोग किस किस प्रकार की विचित्र कल्पना कर लिया करते हैं। हमारे पास यह मानने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि सांख्य ने चार्वाक से प्रत्यक्ष प्रमाण को विकास कर तीन प्रमाणों को माना और न्याय ने सांख्य से विकास कर चार प्रमाण माने।

इस विषय को समाप्त करने से पहले हम आधुनिक विद्वानों की एक और भ्रान्ति की ओर संकेत कर देना उचित समझते हैं पूर्वोद्धृत विद्वान लिखता है:—

Samkhya conception of testimony is fundamentally different from that of Nyaya. The Samkhya testimony is not knowledge derived from any source and handed down to us by reliable authority. But in Nyaya it is an entirely different source of knowledge wich may be concidered as supernatural. It gives us knowledge which is not excessive to either perception or inference.

यहां न्याय और सांख्य के शब्द प्रमाण का भेद बतलाया गया है परन्तु यह कथन किस आधार पर किया गया है इसे समझने में असमर्थ हैं, क्योंकि दोनों दर्शनों में शब्द की एक परिभाषा आप्तोपदेश शब्दः मिलती है, इस लिए यह नहीं कहा जा सकता कि न्याय और सांख्य के शब्द प्रमाण एक दूसरे से भिन्न अर्थ रखते हैं।

साहित्य समीक्षा

(समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी चाहियें)

कन्या और ब्रह्मचर्य तथा आदर्श ब्रह्मचारी—लेखक—श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, प्रकाशक—वैदिक साहित्य सदन, लाल दरवाजा, सीताराम बाज़ार, देहली। आकार $\frac{२०×३०}{१६}$, पृष्ठ संख्या यथाक्रम २२ तथा २४, मूल्य प्रत्येक का =)॥ आना।

ये दोनों लघु पुस्तिका श्री भगवान देव जी (आचार्य गुरुकुल झज्झर, रोहतक) की प्रार्थना पर श्री स्वामी जी ने लिखी हैं, ऐसा पुस्तकों के द्वितीय पृष्ठ पर मुद्रित, आचार्य जी के 'दो शब्दों' से अवगत होता है। पुस्तिकाओं के लेखक आर्य जगत में प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, आपका जीवन अनुष्ठान पूर्ण रहा है, कहना कम और करना अधिक। आपकी विद्वत्ता और निष्ठा सर्वविदित है। इन पुस्तकों में जो विचार प्रकट किये गये हैं, बालक बालिकाओं के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। सब गृहस्थों और शिक्षा संस्थाओं के संचालकों को अपनी सन्तति और छात्र छात्राओं के लिये इनका पूर्ण उपयोग करना चाहिये।

प्रकाशक के निर्देश से यह ज्ञात होता है, कि उन्हें इस बात का बहुत दुःख है, कि देश के शिक्षित वर्ग पर कम्युनिस्ट विचार धारा का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो प्रभाव है, वह आर्यसमाज का नहीं। प्रकाशक ने स्वयं इस बात का उत्तर दिया है, कि कम्युनिस्ट साहित्य के द्वारा ही यह स्थिति उत्पन्न हुई। प्रकाशक के विचार से आर्यसमाज ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, सम्भवतः प्रकाशक महोदय का उसी न्यूनता की पूर्ति के लिये यह प्रयत्न है।

इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है, कि कम्युनिस्ट साहित्य की तुलना में इस प्रकार के साहित्य का प्रकाशन सर्वथा नगन्य है। प्रकाशक महोदय से हम निवेदन करेंगे, कि इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन में प्रचार की भावना अधिक है, या कमाई की ? इनकी छपाई सफ़ाई अति साधारण है, कागज़ । रद्दी आप बढ़िया माल को रद्दी गंदी दुकान में रखकर ग्राहकों को आकृष्ट करना चाहते हैं, यह हमारी और उनकी भावना में एक महान अन्तर है, जिससे हम उनके साथ संघर्ष में आगे नहीं निकल सके। इन पुस्तिकाओं में प्रूफ़ संशोधन की भी पर्याप्त अशुद्धियां रह गई हैं।

द्वितीय पुस्तक के सात पृष्ठ पर रुद्र नामक मध्यम ब्रह्मचर्य का अवधिकाल ४० वर्ष लिखा है। कदाचित् यह ३६ वर्ष होना चाहिये। ६ पृष्ठ की २३ पंक्ति में 'अनुचित' पद के स्थान पर 'उचीत' पद का प्रयोग होना चाहिये। १० पृष्ठ पर एक श्लोक विश्वामित्र के मुख से कहलाया गया है। क्या उस समय इस श्लोक की रचना संभव है ?

प्रथम पुस्तक में जो काथनक कल्पना किया गया है, उसमें वर्णन के अनुसार मृदुला आदि बालिकायें किसी आधुनिक स्कूल की छात्रा प्रतीत होती हैं, उनको अचानक जिस देवी के दर्शन होते हैं, यह महर्षि याज्ञवल्क्य के आश्रम की ब्रह्मचारिणी गार्गी है, जो उस आश्रम के कन्या महाविद्यालय की संचालिका है। इससे दो बातें सन्मुख आती हैं-(१)-माननीय लेखक महोदय ने दो अति विभिन्न कालों के पात्रों को एकत्र उपस्थित कर एक असमञ्जस पूर्ण स्थिति को उत्पन्न कर दिया है। (२)-अथवा उनका ऐसा विचार है, कि उस प्राचीन काल में भी दो प्रकार के विद्यालयों की विद्य मानता थी, एक ऐसे जिनकी संचालिका गार्गी जैसी ब्रह्मचारिणी होती थीं, और दूसरे ऐसे जिनमें मृदुला जैसी छात्रा शिक्षा पाती थी जिनका रहन-सहन आधुनिक ढँग का था, और कपड़े भी मशीनों में बने हुए पहनती थीं अन्यथा इनका संमिलन कैसे समञ्जस होगा ?

उदयवीर शास्त्री

वैदिक सूक्तियां—लेखक प्रो० रामनाथ वेदालङ्कार, प्रकाशक, प्रकाशनमन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, मूल्य १॥)

इस सुन्दर पुस्तक में अर्थ सहित अथर्ववेद की एक हज़ार सूक्तियों का संग्रह है। वेद सम्पूर्ण सूक्तमय है । उस में से प्रतिदिन भिन्न भिन्न अवसरों पर व्यवहार करने योग्य अथर्व वेदीय वचनों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। लेखक ने अपने पुस्तक को छः अध्यायों में विभक्त किया है । प्रभु चरणों में, गुणों की पुकार, गृहस्थ जीवन, उन्नति के पथ पर, शरीर रक्षा, विविध विषयों पर, ये छः अध्यायों के शीर्षक हैं । प्रत्येक भारतीय को इसकी एक प्रति अवश्य लेनी चाहिए । इस के छोटे छोटे वाक्यों को स्मरण करने से जीवन पथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुधारने का अवसर मिलेगा । काग़ज़ अच्छा लगाना चाहिये था । ऐसी उत्तम पुस्तकों में ऐसा घटिया काग़ज़ पुस्तिक की शोभा को विनाश कर रहा है। स्वामी वेदानन्द

वैदिक शिक्षा—(प्रथम भाग) लेखक तथा प्रकाशक म० भाग चन्द्र जी आर्य्य, खान-खानां ज़िला जालन्धर (पंजाब), मूल्य =)॥

बालकों की शिक्षा के लिए यह लघु पुस्तक लिखी गई है। यह उन बालकों के लिए लिखी गई है, जिन्हें अभी अक्षर सीखने हैं । पुस्तक सुरुचि से लिखी गई है । टाईप, काग़ज़ सब उपयुक्त है। नाम से तनिक भ्रम होता है । बाल शिक्षा अथवा भाषाशिक्षा कोई ऐसा नाम रखा जाता तो अधिक अच्छा होता । भाषा प्रारंभ कराने के लिए बहुत अच्छी पुस्तक है ।

स्वामी वेदानन्द

गायत्री—लेखक महात्मा विद्यानन्द विदेह, प्रकाशक—वेद संस्थान अजमेरः—

विदेह जी ने राजपूताना में वेद संस्थान की स्थापना कर के उस प्रदेश में वेद के स्वाध्याय को सचमुच उत्तेजना दी है। वे स्वयं वेद का परिश्रम पूर्वक स्वाध्याय करते रहते हैं । अब जनता को भी अपने परिश्रम का स्वाद चखाना आरम्भ किया है । 'गायत्री' नामक ऋग्वेद के गायत्री छन्द वाले कुछ एक मन्त्रों का भावनामय अनुवाद है। बढ़िया काग़ज़, सुन्दर नयनाभिराम मुद्रण, इसकी विशेषता पाठक को बरबस अपनी ओर खींचती हैं। स्वामी वेदानन्द

प्राप्ति स्वीकार—

१. अथर्ववेद की प्राचीनता । २. खालसा इतिहास दर्पण ।

निवेदन—कई सज्जन पुस्तक भेज कर शीघ्र उस की समालोचना की कामना करते हैं, ऐसे महानुभावों की सेवा में निवेदन है कि पुस्तक को पढ़े बिना समालोचना असंभव है। अतः समालोचना के लिए उन्हें प्रतीक्षा करने का कष्ट करना चाहिए।

विज्ञापक—ADVERTIZER-मासिक पत्र, बड़ौदा

उपर्युक्त नाम का अपने ढंग का मासिक पत्र बड़ौदा के ख्यातनामा जयदेव ब्रादर्स प्रकाशित करते हैं। हमारे सामने इसका जुबली अङ्क है। लेखों का संग्रह उत्तम है । प्रायः सभी लेख बोधप्रद है। इस के लिए सम्पादक महोदय साधुवाद के पात्र हैं।

सम्पादकीय

द्वितीय वर्ष का आरम्भ—इस अङ्क के साथ वेदपथ का द्वितीय वर्ष आरम्भ होता है। एक वर्ष के भीतर, वर्त्तमान परिस्थिति को देखते हुए, हमें आशा से अधिक ग्राहक मिले हैं। परन्तु जिस उद्देश्य को लेकर हम ने वेदपथ के प्रवर्त्तन का साहस किया था, उस की पूर्त्ति के लिए यह ग्राहक संख्या सर्वथा अपर्य्याप्त है। संसार को वैदिक धर्म्म की जितनी इस समय आवश्यकता है। उतनी कदाचित ही रही हो। इस समय समस्त संसार में अशान्ति, कलह की प्रबलता है सुदूरपूर्व चीन में अभी गृहयुद्ध समाप्त नहीं हो पाया कि कोरिया के दोनों भागों में तुमुल युद्ध छिड़ गया है। आशङ्का है कि यह विश्व युद्ध का रूप धारण न करे ले। भारत तथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाकिस्तान के सम्बन्धों में अभी तक मिठास उत्पन्न नहीं हुई। दक्षिण अफ्रीका तथा उसी का अनुकरण करती हुई पूर्व-अफ्रीका की सरकार अफ्रीका के मूल अधिवासियों तथा वहां पीढ़ियों से बसे भारतीयों के उन्मूलन में यत्नशील हैं। अन्तर्जातीय न्यायालय ने यद्यिप दक्षिण अफ्रीका की सरकार के विरुद्ध अपना निर्णय दिया है। किन्तु न्यायालय के पास अपना निर्णय मनवाने का कोई साधन नहीं है। यूरोप पश्चिम तथा पूर्व भाग में विभक्त होकर एक दूसरे को शङ्का की दृष्टि से देख रहा है। इटली तथा युगोस्लाविया में ट्रीस्ट के टुकड़े पर रुधिर की नदी बहने की आशङ्का है। मिश्र यू० एन० से रूठा हुआ है। कोरिया के युद्ध में कूदने के कारण अमरीका का संयुक्त राष्ट्र गृह रक्षा की चिन्ता से आतुर हो उठा है। फिलिपाईन में कलह है। अरब लीग में फूट है। ब्रह्मदेश में भी गड़बड़ है। उस के समीपस्थ देशों में भी युद्ध शुरु है।

इस सारी अशान्ति का कारण '*मागृधः कस्य स्विद्धनम्* (य० ४०।१) [=किसी के धन का लालच मत करो] इस वेदादेश की अवहेलना है।

एक व्यक्ति जब दूसरे के धन को हथयाने की चेष्टा करता है। तो कलह उत्पन्न होता है। वह कलह मूल में दो व्यक्तियों के मध्य होता हुआ उन के सहयोगियों के कारण कुछ बड़ा भी बन जाया करता है। इसी भांति जब एक देश दूसरे को हड़पने, अधीन करने (आज कल की धूर्त्ततामयी परिभाषा के अनुसार सभ्य बनाने) की कुचेष्टा करता है, तो अवश्य ही अन्य राष्ट्र भी एक न एक पक्ष का समर्थन तथा कदर्थन करते हैं। फल यह होता है कि वह युद्ध दो देशों का न हो कर अधिक देशों का हो जाता है। उस का प्रभाव तटस्थ रहने वाले, किसी पक्ष में सम्मिलित न होने वाले राष्ट्रों पर भी पड़ता है। जिस से युद्ध में भाग लेने वाले तथा न लेने वाले दोनों प्रकार के देशों को समान रूप से अन्नवस्त्र निवास आदि जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं के अभाव में भोगना पड़ता है। अभी के आरंभ हुए कोरिया के युद्ध को ले लीजिए। भारत ने उत्तरीय कोरिया को युद्ध आरंभ करने का अपराधी मान कर भी वहां के युद्ध में भाग लेने से स्पष्ट निषेध कर दिया है। फिर भी भारत पर इस युद्ध का प्रभाव पड़ा है। अनेक वस्तुओं के भावों में उतार चढ़ाव हो गया है। कदाचित ऐसे अवसरों के लिए ही महाबुद्धिमान विदुर ने कहा था—*एकः कुरुते पापानि फलं भुङ्क्ते महाजनः*=अपराध एक करता है, फल अनेकों को भोगना पड़ता है। क्योंकि मानव एक दूसरे से सम्बन्ध है, आबद्ध है। लोहे की लम्बी छड़ का एक सिरा अग्नि में डालने से धीरे २ दूसरे सिरे तक ताप पहुँच ही जाता है। यही अवस्था मनुष्य जाति की हो रही है।

आज समस्त संसार लोभ ग्रस्त हो रहा है। कई सहस्र वर्ष पूर्व दिव्य दृष्टि सम्पन्न व्यास ने उस समय के संसार के लोभ-व्यवहार से दुःखी हो कर कहा था:—

ऊर्ध्वं बाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्म्मादर्थश्च कामश्च स किमिति न सेव्यते॥

भुजा ऊपर उठा कर चिल्ला कर पुकार कर कह रहा हूँ, किन्तु मेरी पुकार कोई नहीं सुनता। सुनो—धर्म्म से ही अर्थ=धन तथा काम सिद्धि होती है, उस धर्म का सेवन क्यों नहीं करते हो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आज का संसार तो धर्म पर प्रहार करके उसे संहार करने पर तुला हुआ है। धर्म को मानव जीवन का अनुपयोगी ही नहीं, वरन् बाधक घोषित किया जा रहा है। परन्तु क्या धर्म का बहिष्कार करना संभव है? धर्म का विरोध करने वाले जिस धर्म, व्यवहार, विचार, आचार को संसार का आहितकर समझते हैं, उस का उन्मूलन करने के लिए, और उस के स्थान में अपने विचारानुसार हित की व्यवस्था स्थापित करनेके लिए जो उत्साह और पुरषार्थ प्रदर्शित करते हैं, उसको क्या नाम दियाजाए। वास्तव में धर्म्म के नाम से हो रहे अधर्म्म कार्य्यों ने धर्म्म को कलङ्कित करके नवविचारशाली वर्ग को उससे परे हटाया है। धर्म्म का वास्तविक स्वरूप उनके सामने रखा जाय तो विचार शील होने के कारण अवश्य वे उसका समादर करेंगे। तात्पर्य्य यह कि आजकल हो रहे धर्म्म ह्रास का उत्तरदायित्व अधिक उन लोगों पर हैं जो अपने को धर्म्म का ठेकेदार मान बैठे हैं और धर्म्महानि देख कर केवल विलापमात्र करके निश्चेष्ट हो रहते हैं।

जिन वर्ग वादियों (कम्युनिस्टों) को धर्म्म घातक कहा जाता है। उनमें अपने सिद्धान्तों के क्रियात्मक प्रचार की कितनी लगन है। प्रत्येक अपने अपने कार्य्य में असाधारण रूप से निपुण है। वह अपने कार्य्य को पूर्ण तत्परता, कुशल, निष्ठा, एवं श्रद्धा से करता है। यह भगवद्गीता के 'योगः कर्म्मसु कौशलम्) का जीवित उदाहरण है। आवश्यकताएं उसकी चरम सीमा तक न्यून हैं। अर्थात् उससे अधिक कम कर सकना संभव नहीं है। इस प्रकार के त्यागमय जीवन वाले जवानों का सामना करना खेल नहीं है। घर बैठकर उपहासपूर्वक आलोचना करने से कार्य्य नहीं चल सकेगा। यदि सचमुच वर्गवाद से लोहा लेना है तो व्यासजी के इस वचन को न भूलिए *प्रकर्षतन्त्रा हिरणे जयश्रीः* = युद्ध में विजयलक्ष्मी उसके गले में जयमाला डालती है जो उत्कृष्ट हो। यदि धर्म्म प्रचार करने वाले समुदाय धर्म्मविरोधियों की अपेक्षा जनता की सेवा अधिक करें, जनता के सुख दुःख में अधिक भाग लें, अपनी हानि करके भी लोक हित साधने में सदा तत्पर रहें तो जनता अवश्य उनकी ओर झुकेगी। सामान्य जनता को सूक्ष्म दार्शनिक सिद्धान्त खींचने में समर्थ नहीं हुआ करते। उसे तो क्रियामय जीवन ही अपनी ओर खींचा करते हैं। कोरी बातों से जनता का समाधान नहीं होता। मनुष्य को अन्न वस्त्र तथा वास की चिंता से अवकाश मिले तो वह दार्शनिक तत्त्वों का चिन्तन करें। अतः जनता सिद्धान्त न परख कर यह निरखती है कि कौन उसके अभावों की पूर्त्ति के लिए रुचित्त है; वह उसे अपना मान, उसका सम्मान करती तथा अपनाती है। धर्म्म प्रचारकों को परलोक की चर्चा छोड़कर अभ्युदय = इस लोक की उन्नति के विचारों तथा साधनों का व्यवहारात्मक प्रचार हाथ में लेना चाहिए। अन्यथा वे धर्म्म को बचा न सकेंगे, प्रत्युत धर्म्म की हत्या के भागी बनेंगे।

हम ने वेदपथ इसी आशय से आरंभ किया था कि हम जन साधारण को व्यवहारात्मक धर्म्म [धर्म्म है ही विशेष प्रकार का व्यवहार] का बोध करा सकें। मनुष्य और पशु में विभेदक रेखा प्रायः सभी जानते हैं किन्तु कितनों का आचरण उसके अनुकूल है ? वेद

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिस धर्म्म का प्रचार करता है, उसका विरोध संसार का कोई भी बुद्धिमान् नहीं कर सकता। वेद कहता है:—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ॥ (य० ३१ । १६

ज्ञानी जन परहित के द्वारा भगवान् एवं समाज का आराधन करते हैं, क्योंकि वास्तव में यही मुख्य धर्म्म है।

प्रत्येक मानव यदि दूसरे के कल्याण में अपना कल्याण मानने लग जाए तो पुनः दूसरे के द्रव्य के प्रति लोभवृत्ति की समाप्ति हो जाए और सभी वेद के शब्दों में कह सकें '*मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे* (म० ३६१) हम सब एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखते हैं। जब हमारी पारस्परिक मित्र दृष्टि हो जाए तो एक दूसरे की हत्या की भावना ही न रहे। इस से वैदिक धर्म्म का महत्त्व एवं उस की उपयोगिता और आज के संसार को उस की नितान्त आवश्यकता सरलता से समझी जा सकती है।

संसार हित की कामना वालों का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इस के लिए विशेष उद्योग करें। ऐसा संघ बनाएं जिस के सदस्यों को वैदिक धर्म्म प्रचार के अतिरिक्त और कोई भी कार्य्य करना न हो, अपनी योग्यता एवं शक्ति को अधिक से अधिक धर्म्म प्रचार के कार्य्य में समर्पण करने की जिन में प्रबल भावना हो। जिस प्रकार ढाई हज़ार वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध का सन्देश लेकर भिक्षु वर्ग दूर दूर देशों में पहुंचे थे, उसी प्रकार आज भी आवश्यकता है कि ससार की वासनाओं से विमुक्त होकर भारतीय युवक शान्ति के अग्र-दूत बनकर वन, पर्वत, अारण्य की बाधा को लांघकर संसार के विविध देशों में फैल जाएं और जनता को समझाएं कि जिस मार्ग पर तुम्हें चलाया जा रहा है वह शान्ति का नहीं, अशान्ति का है। उस पर चलने से देश की स्मृद्धि नहीं हानि होगी। वर्ग वर्ग का वैर बढ़ाने से वैर की वृद्धि होती है। '*न वैरेण वैराणि शाम्यन्ति*=वैर से वैर शान्त नहीं होते।

सब देशों में समझदार, ज्ञानवान् विद्यमान हैं किन्तु एक तो देशों के शासनों में उन का हाथ नहीं, दूसरे उन में आत्मविश्वास पर्याप्त न होने से चुपचाप पड़े हैं। अथवा प्रमुख विद्वान् विशेषकर वैज्ञानिक युद्धाग्नि को भड़काने के साधन जुटाने में तत्पर हैं। ऐसी अवस्था में संसार का संहार अवश्यंभावी है। मानवजाति की इस दुःखद दशा का उत्तरदायित्व सभी विचारशीलों पर है।

रामायणियों द्वारा वेद की निन्दा:-

जैनों, बौद्धों, चार वाकों आदि को छोड़ कर समस्त आर्य्य जाति वेद को श्रद्धा, भक्ति एवं समादर की दृष्टि से देखती है। किन्तु पौराणिकों में कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जो वेद पर श्रद्धा रखते हुए भी वेद की निन्दा कर जाते हैं। उदाहरणार्थ—महाभारत की महिमा लिखते हुए यह लिख दिया कि तुला (तराज़ू) के एक पलड़े में वेद रखे जाएं और दूसरे में महाभारत, तो महाभारत भारी रहेगा। लिखने वालों ने सोचा और न पढ़ने वालों ने कि क्या किसी वस्तु के भारी होने मात्र से उस का महत्त्व होता है? लिखने वाला वेद की लघुता दिखाना चाहता था, उसने अपनी ... से कर दी। इससे अधिक और गन्दे ढंग से हठयोग प्रदीपिका कार ने वेद की निन्दा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिस ने लिखा कि *'वेदशास्त्र पुराणानि सामान्य गणिका इवा ।'* हठयोग रूपी कुल वधू के सामने वेदशास्त्र तथा पुराण साधारण गणिका के तुल्य हैं । वेद को गणिका समान बताना क्या उसकी निन्दा नहीं है । सर्वज्ञान निधान भगवान् वेद को, सर्व उत्तमाचारों के उपदेशक वेद को, ज्ञान विहीन, दुराचारिनी के समान बताना क्या वेद निन्दा नहीं है । वेद निन्दक को मनुमहाराज ने नास्तिक कहा है । *नास्तिको वेदानन्दकः ।*

इस प्रकार से वेदानन्द का प्रवाह निरन्तर चल रहा है । अभी हम ने उस दिन गोरखपुर के गीता प्रेस से प्रकाशित 'श्रीरामचरित मानस' के तृतीय संस्करण की एक प्रति जो सं० २००६ की मुद्रित है, ली । उस में टीकाकार हनुमान्-प्रसाद पोद्दार ने 'गोस्वामी तुलसीदास जी की संक्षिप्त जीवनी' नामक प्रकरण में लिखा है:—

"पण्डितों को इस पर भी सन्तोष न हुआ । तब पुस्तक की परीक्षा का एक और उपाय सोचा गया । भगवान् विश्वनाथ के सामने सब से ऊपर वेद, उस के नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सब के नीचे रामचरित-मानस रख दिया गया । मन्दिर बन्द कर दिया गया । प्रातः काल जब मन्दिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि श्रीराम चरित मानस वेदों के ऊपर रखा हुआ है । अब तो पण्डित लोग बड़े लज्जित हुए । उन्होंने तुलसीदास जी से क्षमा मांगी और भक्ति से उन का चरणोदक लिया ।"

हम अनेक वर्ष काशी में रहे हैं । अनेक रामायणियों से हमारा मेल जोल रहा है, किंतु यह मिथ्या प्रलाप सुनने का कुयोग हमें कभी भी प्राप्त न हुआ । हम पोद्दार से अनुरोध करना चाहते हैं कि यदि उन्हें अपने उपर्युक्त लेख पर विश्वास है तो आइए, काशी में पुनः परीक्षा की जाए, और यदि आप का रामचरित मानस कूद कर वेद पर आ बैठा तो हम वेद-प्रचार त्याग रामचरित मानस का प्रचार आरंभ कर देंगे। और यदि आप का रामचरितमानस दुबक कर जहां का तहां पड़ा रहा तो आप को जहां मौखिक क्षमा मांगनी होगी, वहां हमारे निर्दिष्ट पत्रों में भी हमारे निर्देशनुसार क्षमा पत्र अपने व्यय पर प्रकाशित कराना होगा ।

पोद्दार जी, प्रथम तो यह घटना सर्वथा मिथ्या है । यदि इस में सत्य का कुछ अशं हो भी तो कोई पोंदार, जालना रात्रि को मन्दिर के पट खोल खुलवा कर यह लीला कर सकता है ।

आप इसे चमत्कार मानते हैं । इसी प्रकार के चमत्कारों के आधार पर विधर्मियों ने लाखों रामायण पाठियों को कुरान पाठी एवं बाइबल भक्त बना दिया । उस समय आप के इस राम-चरितमानस ने चमत्कार न दिखाया रामचरित-मानस के आधार पर रामपरीक्षा आदि कुत्सित पुस्तकाएं लिख कर रामचरितमानस के प्रमुख श्रीराम की निन्दा करने वालों के मानस को इस मानस ने तनिक भी चमत्कार न दिखाया ।

परमात्मा की कृपा से आप को प्रचार के उत्तम साधन मिले हैं, उन से जनता को यथार्थ ज्ञान देने का प्रयास कीजिए, मिथ्या विश्वासों में न फंसाइए । आर्य्य जाति इस प्रकार के निरा-धार तथा अलीक विचारों के कारण अनेक प्रहारों की मार खाकर पर्य्याप्त जर्जरित हो चुकी है । उस पर अब दया कीजिए ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम यहां '*कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम*' का वैदिक घोष करने वालों से भी कुछ कहना चाहते हैं। क्या वे सोए रहेंगे। सत्यज्ञान वेद के विरोध में कितना साहित्य प्रकाशित हो रहा है और कहां २ से प्रकाशित हो रहा है और कितनी मात्रा में हो रहा है, इस का कुछ ज्ञान भी है ? उस के प्रतिविधान का भी कभी ध्यान आया है। वेद पर जैसा विकट समय अब आया है इतिहास में कदाचित् ही आया हो। अपने आप को वैदिक एवं वेद-भक्त कहने वाले भी अब वेद विरोध में अग्रसर हो रहे हैं। तथा कथित विद्वत्समाज में वेदसम्बन्धी पाश्चात्य विचारों का प्रचार है, जनसाधारण में उपर्युक्त प्रकार का प्रचार है। वेद के वास्तविक स्वरूप का प्रचार कितने लोगों में है ? उस का दोष कौन ? क्या आप को वेद रक्षक कहने वाले चेतेंगे ?

मद्रास सरकार के अन्याय का खण्डन— मद्रास राज्य में ब्राह्मण-अब्राह्मण का पारस्परिक विद्वेष बहुत उग्र रूप धारण कर चुका है। उससे लाभ उठाते हुए मद्रास राज्य की सरकार ने शिक्षणालयों—विशेषकर मैडिकल तथा इंजिनियरिंग महाविद्यालयों—में प्रवेश की व्यवस्था साम्प्रदायिक आधार पर नियत कर दी। दो विद्यार्थियों ने इस विषय को उठाया और इसे राज्य के प्रधान न्यायाधिकरण–हाई कोर्ट–में ले गये। हाई कोर्ट के फुलबैंच ने मद्रास सरकार की इस व्यवस्था को भारतीय संविधान के विरुद्ध ठहराया है।

इस सम्बन्ध में हम आर्य्यसमाज को अपराधी ठहराते हैं। यदि आर्य्यसमाज ने उस प्रदेश में वैदिक धर्म का प्रचार किया होता और ब्राह्मणों को वैदिक आदेश '*समानो मन्त्रः समितिः समानी*' (ऋ १०।१६१।३) का ज्ञान कराया होता, मनुष्यमात्र की समानता का बोध कराया होता, तो आज यह दशा देखने को न मिलती। आर्यसमाज के लीडरेब्रवों को अपने जुलूस निकलवाने से ही अवकाश नहीं है। हमारा निजी अनुभव है कि आर्यसमाज की बड़ी सभाओं ने कभी यह बैठकर विचार करने का कष्ट नहीं किया कि उनके प्रचार में क्या क्या बाधाएं हैं और उनको कैसे दूर किया जाए ?

क्या कुछ विद्वान् कर्मठ सन्यासी ऐसे नहीं निकलेंगे जो अपना जीवन मद्रास प्रान्त में लगा दें और वहां वैदिक धर्म के प्रचार के द्वारा अच्छूत पन का विनाश करके समता के भावों का प्रसार करें।

आर्यसमाज में पोपप्रवृत्ति—पौराणिक रिवाज है कि यजमान अपने पुरोहित अन्य किसी ब्राह्मण को कुछ पारिश्रमिक (मज़दूरी) देकर अपने लिये गायत्री मन्त्र, दुर्गापाठ आदि का पाठ कराया करते हैं। लोभी पाठ कर्त्ता यजमान को यह विश्वास दिलाता है कि हमारे इस पाठ का फल तुमको मिलेगा। इस प्रकार से ऐसे पाठ करने वालों को पुष्कल धन मिलता है। इस प्रकार विशेष आयास के विना आय होते देखकर कुछ वंचक, धूर्त्त, धनलोभी, पो[illegible] आर्यसमाजियों को बहका कर उनके लि[illegible] पाठ करते हैं। दुःख की बात यह है कि ऐ[illegible] पाखंडी शिरोमणि सभा में हैं। ऐसे बकवा[illegible] लोगों का कहना है कि इस से यजमान [illegible] कल्याण होता है। हमारा कहना है कि उन[illegible] ऐसा कथन प्रवंचमात्र है और वेद विरुद्ध [illegible]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देखिए वेद में लिखा है—

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा ने अन्येन न संनशे ॥ (य० १३।२५) २३।१६

हे ज्ञानी मनुष्य ! अपने विस्तार को आप समर्थ कर। स्वयं यज्ञ कर और स्वयं उसका फल प्राप्त कर, तेरा महत्त्व तुझे दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता।

वेद के इस स्पष्ट आदेश के रहते कौन सच्चा वेद भक्त उपरिवर्णित पाखण्ड का प्रचार कर सकता है ? १२।१०६

तनिक तर्क का भी प्रयोग कीजिए। मनुजी कहते है—*यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्म्मं वेद नेतरः* जो तर्क से खोज करता है, वही धर्म का रहस्य जान सकता है, दूसरा नहीं। अब देखिए, यजमान के वस्त्र मैले है। यजमान पुरोहित को साबुन या उसका मूल्य दे देता है और कहता है इससे अपने वस्त्र धो लीजिए। पुरोहित जी ने यजमान का कहना मानकर उससे अपने वस्त्र धो लिये। किन्तु यजमान के वस्त्र न धुले, वे वैसे ही मैले बने रहे। और उदाहरण लीजिए— देवदत्त नामक एक जन रोगी है। वह पुरोहित जी को बुलाकर डाक्टर की बताई दवाई उसे पिला देता है। पुरोहित ने दक्षिणा=मज़दूरी लेकर बहुत प्रीति से वह औषधि ली। किन्तु देवदत्त के रोग में अन्तर नहीं पड़ता बात स्पष्ट है, जब तक मैले वस्त्रों को धोने का यत्न न किया जाए, वे शुद्ध स्वच्छ नहीं हो सकते। जब तक रोगी स्वयं औषध पान न करे तब तक उसके रोग हटने की संभावना कम।

शुभ कामना का तो ढोंग है, जब तक दूसरे को उपदेश न दिया जाए और वह उसके अनुसार आचरण न करे तब तक उसके अन्तः-करण था आत्मा पर दूसरे के जाप का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। यदि एक के जप करने से दूसरे का कल्याण मानते हो तो मृतक श्राद्ध का खण्डन कैसे करोगे ?

१५ अगस्त [भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त किए तीन वर्ष बीत गये। स्वतन्त्रता के लिए जो मूल्य भारत को देना पड़ा, उनका उल्लेक करना पुराने घावों को नया करना है। कटते कटते देश कितना छोटा हो गया है, इसकी चर्चा भी इस समय प्रयोजनीय नहीं है। देश के जन साधारण को स्वतन्त्रता का स्वाद नहीं मिला। हम पापिस्थान से आए हुओं की बात नहीं करते, इस भारत में पूर्व में बसे हुए विहारी एवं मद्रासी भूख से तड़प तड़प कर मर रहे हैं। केन्द्र के अधिकार इसे मिथ्या बतलाते हैं। वर्ग वादी (कम्यूनिस्ट) से शासनशक्ति हथियाने के लिए, मज़दूरों से हड़तालें करा रहे हैं, आगें लगा रहे हैं, रेलें गिरा रहे। इससे वे समझते हैं कि देश के लोग उनके साथ हो जायेंगे। समाज वादी (सोश्यलिस्ट) भी अपना राग अलाप रहे हैं। कांग्रेस का गौरव दिन प्रति दिन घटता जा रहा है। हिन्दू महासभा के प्राण अभी पुष्ठ नहीं, शासकवर्ग की भी उस पर क्रूर दृष्टि है। सारांश यह कि देश में सर्वत्र अव्यवस्था है । घूसखूरी चोर वाज़ार का दौर दौरा है, किसी में साहस नहीं कि इन राक्षसों का गला घोटे। धर्म से निरपेक्षता का यह परिणाम है। भारत चारों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि देश को देश की रक्षाके लिए जागरूक एवं तत्पर किया जाए, ताकि १५ अगस्त का पुण्यपर्व सदा गर्व से मनाया जा सके।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संध्यामहत्म्य

(श्रीमान् पं० लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति)

संध्या से दोनों समय हर्ष पाऊं-संध्या से मन की मलिनता मिटाऊं।

(१)

संध्या से खिलता हृदय रूप पंकज।
उसे नित्य जीवन सुधा रस पिलाऊं॥

(२)

संध्या से भीतर जगे दिव्य ज्योति।
उसी से स्वजीवन की ज्योति जगाऊं॥

(३)

संध्या से जल धार वर्षे चहुँ ओर।
उस शांत धारा में गोते लगाऊं॥

(४)

करे कण्ठ शोधन सुजल आचमन का।
स्पर्श इन्द्रियों का करूं बल बढ़ाऊं॥

(५)

प्राची से ऊर्ध्वा दिशा तक निरन्तर।
विभिन्नास्त्र धर ईश का त्राण पाऊं॥

(६)

उप स्थान से ब्रह्मद्वारे पहुंच कर।
सुखि दीर्घ जीवन का वरदान चाहूँ॥

(७)

गुरू मन्त्र से तेजो बल प्राप्त करके।
विशद मार्ग पर देह का रथ चलाऊं॥

(८)

श्रद्धा से सर्वस्व भेंट चढ़ाकर।
निज 'नाथ' शंकर को मस्तक झुकाऊं॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धीयो योनः प्रचो दयात् ।

अर्थ

जीवन की इस लघु सरिता में,
प्राण प्रवाहित तुम करते हो।
अपनी पावन अनुकम्पा से,
जीव मात्र का दुख हरते हो।
विषम वेदना होने पर तुम,
सुख की वृष्टि किया करते हो।
सर्वोत्पादक ! पाप विमोचन,
भव भय हारिन् प्राणरूप हो।
शुद्ध रूप का भक्त, उपासक,
ध्याता मैं, आराध्य तुम्हीं हो।
प्रजा प्रेरक! हृदयोद्धारक,
शुद्ध बुद्धि दाता तुम ही हो।
पुण्य कार्य हित मेधायाचक,
भक्त, मात्र तारक तुम ही हो।

-सुध्येन्द्र

स्वाध्याय सन्दोह

'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म्म है' इस आर्ष आदेश के पालन करने की सुविधा के विचार से ही इस ग्रन्थरत्न की रचना की गई है। इसका पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया था। मांग बराबर थी। उसे पूरा करने के लिए दूसरा संस्करण छपाया है। इसमें कुछ बढ़ाया भी गया है। परिवर्धन होने पर भी मूल्य केवल ६) रखा है। कागज आदि की महंगाई के कारण थोड़ी प्रतियां छपवाई जा रही हैं। अतः शीघ्र अपनी प्रति के लिए निश्चिन्त हो जाइए। प्रतिदिन के स्वाध्याय के लिए इससे बढ़िया पुस्तक आप को इस समय और नहीं मिल सकती। विद्वान् तथा सामान्य सभी प्रकार के लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। मूल्य ६) डाक व्यय पृथक।

मांस मदिरा निषेध—मूल्य , १००प्रति इकट्ठी लेने वाले को =)प्रति के हिसाब से; डाक व्यय पृथक।

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः—'विश्वानि देव—आदि आठ मन्त्रों की ललित, मनोहारिणी, और मग्न कर देने वाली व्याख्या। मूल्य =)॥, १०० प्रति का १२॥) साढ़े बारह रुपये। मूल्य पेशगी भेजने वाले से डाक महसूल भी नहीं लिया जाता।

नैमित्तिक वैदिक पाठ—प्रातःकाल से लेकर रात्रि को सोने के समय तक के विविध अवसरों पर के लिये पठनीय वेद-मन्त्रों का संग्रह। मन्त्रों के साथ सुन्दर भावार्थ तथा शब्दार्थ मूल्य ।) चार आने। डाक व्यय पृथक। एक प्रति मंगाने वाले ।-) का टिकट भेजें।

मिलने का पता—अध्यक्ष—सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल,
ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

ओ३म्। सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्ति वः॥ (ऋ०१।४१।४)

वेद पथ

मासिक

ओ३म्। अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया। अदर्शि विस्रुतिर्दिवः॥ ऋ० १।४६।११॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

द्वितीय वर्ष | देहली | नभस्य=भाद्रपद २००७ वि० =सितम्बर १९५० ई० | द्वितीय अङ्क १

❀ श्रुतिसुधा ❀

ब्रह्मप्रेरणा से दुरितनाश

ओ३म्। *यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्। एवा मत्सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति॥*

अ. १०।१।१३

(यथा) जैसे (वातः) वायु (भूम्याः) भूमि से (रेणुम्, धूल को (च) और (अभ्रम्) बादल को (अन्तरिक्षान्) अन्तरिक्ष से (च्यावयति) हटा देता है (एवा) ऐसे ही (ब्रह्मनुत्तम्) परमात्मप्रेरणा (मत्) मुझसे (.र्वम्) सब (दुर्भूतम्) बुराई को (अप+अयति) दूर कर देती है।

पृथिवी पर सब ओर धूल पड़ी है, मनुष्य का दुर्बल झाड़ू उसे हटाने में असमर्थ है। आकाश बादलों से घिरा है। उसे मानवीय शक्ति हटाने में असमर्थ है। प्रबल वात चलता है, पृथिवीस्थ धूली को उड़ा कर दूसरे स्थान में कर देता है। ऐसे ही प्रचण्ड वायु आका[श] से बादलों की घटा को घटा देता है। मनुष्य के मन को हृदयाकाश कहने की, हृदय भूमि कहने की रीति है। उस पर पाप की धूल लिपटी है, वासना के बादलों की घटा आई है। दुर्बल मानव यत्न उसका मार्जन करने में अस[म]र्थ हो रहा है। उस के सतत प्रयत्न से भग[व]ान् का उस पर अनुग्रह होता है, उसके अन्त[र]ङ्ग में पाप से युद्ध करने की ब्राह्मी प्रेरणा उ[प]जती है। उस से शक्ति पाकर भक्त अपने सभ[ी] पापभावों को हटाने में समर्थ हो जाता है। ऋषियों का उपदेश है—'आत्मा में पापभाव[के] उदय होने पर उसके विरुद्ध जो लज्जा, श[ङ्का] भय के भाव उत्पन्न होते हैं, वह परमात्मा [की] ओर से होते हैं।' अल्पज्ञता के कारण, विष[य]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वासना की धूली से आच्छन्न होने के कारण इस दैवी सन्देश का प्रकाश वहां नहीं पहुँच पाता मलीनता के कारण बहिर्मुख होने से अन्दर की वह दिव्य ध्वनि सुनाई नहीं देती। इससे मनुष्य का उत्तरोत्तर अधःपतन होता रहता है। जो कोई भाग्यवान् इस कल्याण ध्वनि को ध्यान से सुनता है और तदनुसार अनुष्ठान भी करता है। वह कहता है—*एवा मत्सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुन्तमपायति*। अपनी दुर्बलता का अनुभव करता हुआ पापवासना से अपने इस छुटकारे का श्रेयः परमात्मा को देता है। स्वयं तो पाप में प्रवृत्त होने लगा था जिसने सावधान किया उसे ही श्रेय देना उचित है। प्रत्येक मनुष्य को परमात्मा की इस कल्याणकारिणी ध्वनि को ध्यान से सुनना चाहिए जिससे उस के हृदयाकाश से पाप के बादल हट जाएं।

स्वामी वेदानन्द

आत्मा का स्थान

[श्रीमान् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज]

आत्मा का परिमाण

[श्रीस्वामी आत्मानन्द जी एक सुयोग्य विचारक विद्वान् हैं। दर्शनशास्त्र में आप का पाण्डित्य प्रौढ माना जाता है। स्वामी जी ने कृपा करके वेदपथ के लिए इस लेख माला का आरम्भ किया है। एक लेख गतांक में प्रकाशित हो चुका है।]

आत्मा का निवास स्थान सारा शरीर मान लेने पर और आत्मा को मध्यम परिमाण वाला मान लेने पर कई प्रश्न ऐसे सामने आजाते हैं जिनका उत्तर देने में 'कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

१—शरीरों के परिमाण भिन्न २ हैं। चींटी से लेकर हाथी तक और हाथी से भी बहुत बड़े सामुद्रिक जन्तु संसार में विद्यमान् हैं। आत्माओं को भी अपने कर्मभोग के अनुसार भिन्न २ शरीरों में जाना ही पड़ता है। जब वह चींटी जैसे किसी छोटे शरीर में था तब उसका आत्मा अपने शरीर के परिमाण वाला चींटी जितना ही बड़ा होगा। और जब वह किसी छोटे शरीर को छोड़ कर हाथी जैसे बड़े शरीर में जावेगा तो उस आत्मा को भी वहां हाथी जितने बड़े परिमाण वाला ही मानना पड़ेगा। आत्मा बड़े से छोटा और छोटे से बड़ा घटे बढ़े बिना हो नहीं सकता, और घटना बढ़ना अनित्यपदार्थ का काम है। परन्तु आत्मा को तथा पुनर्जन्म को मानने वाले दार्शनिक कोई भी आत्मा को अनित्य मानते नहीं। अतः आत्मा यदि शरीर के परिमाण वाला है, तो बढ़ने और घटने वाला होने के कारण अनित्य क्यों नहीं। यह प्रश्न सामने उपस्थित होता है जिसका कि समाधान कठिन है।

संसार में तीन प्रकार के परिमाण देखने में आते हैं, अणु मध्यम और परम महत्। अणु परिमाण उस पदार्थ का माना जाता है। जो टूटते २ इतना सूक्ष्म हो गया है जिसके अब टूकड़े नहीं हो सकते। दार्शनिक परिभाषा में उसे परमाणु कहते हैं। इस परमाणु का परिमाण अणु है और नित्य है। क्योंकि जिस पदार्थ के अवयवों का हम विभाग करने लगेंगे, वह छोटा होता २ इसी परमाणु की अवस्था में पहुँचेगा, यह इससे छोटा न हो सकेगा, अब उसके वे सब टुकड़े भी परमाणु कहलाएंगे, और उन सब का परिमाण अणु ही होगा। परमाणु से छोटा दुनियां में कोई टुकड़ा न मिलेगा और इस लिये आणु से छोटा कोई परिमाण न मिलेगा। यह ही कारण है कि इस परिमाण को नित्य मानना पड़ता है, क्योंकि न इसके आधार के टुकड़े होंगे, और न इसका नाश होगा।

दूसरा परिमाण परम महत् परिमाण है। परम महत् परिमाण उन पदार्थों का माना जाता है जो व्यापक हों और नित्य हों, जिनकी न उत्पत्ति होती हो और न विनाश। ऐसे पदार्थ हैं, ईश्वर आकाश आदि।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीसरा मध्यम परिमाण है। इन परमाणुओं और व्यापक पदार्थों को छोड़ कर शेष जितने पदार्थ हैं वे सब अनित्य हैं उनकी उत्पत्ति भी होती है और विनाश भी, और उन सबका परिमाण मध्यम परिमाण माना जाता है। इस परिमाण के अश्रय जितने पदार्थ हैं उन सब के अनित्य होने से उनका परिमाण मध्यम परिमाण भी अनित्य है। अब यह प्रश्न सामने आता है कि आत्मा का परिमाण यदि मध्यम परिमाण है तो वह विनाशी है अतः उसका आश्रय आत्मा भी विनाशी ही होगा, फिर आत्मा को नित्य कैसे सिद्ध करोगे? यह प्रश्न भी ऐसा ही है जिसका उत्तर देना कठिन होगा।

आत्मा को सारे शरीर में व्यापक मानने के लिये और उसे विनाश से बचाने के लिये उसका परिमाण परम महत् परिमाण माना जा सकता है। परन्तु उसका यह परिमाण मान लेने पर उसे ईश्वर की भांति ही सर्व व्यापक मानना पड़ जावेगा। और इस प्रकार उसके अनन्त हो जाने पर उसका ज्ञान भी अनन्त होगा, अतः अब तो उसे सर्वज्ञ ही मानना पड़ जावेगा अल्पज्ञ नहीं। परन्तु व्यवहार में ऐसा देखने में नहीं अता।

यदि यह समाधान करें कि आत्मा है तो व्यापक ही और अतएव है भी सर्वज्ञ, परन्तु अविद्या आदि किसी उपाधि के कारण वह अल्पज्ञ प्रतीत होने लगता है, और उसी प्रकार का व्यवहार करने लगजाता है। तो यह समाधान युक्ति युक्ति न होगा।

इस सिद्धान्त पर विचार करने के लिये निम्न विकल्प खड़े हो जाते हैं—जिस उपाधि ने आत्मा को अल्पज्ञ बना दिया है वह आत्मा का अपना ही अंग है या उससे भिन्न। आत्मा का अंग तो उसे कहा नहीं जा सकता—क्योंकि आत्मा निरवयव पदार्थ है अतः निरवयव का कोई अंग या अवयव नहीं हो सकता। यदि कहें कि यहाँ अंग का अर्थ स्वरूप है। तब तो अविद्या आत्म स्वरूप ही हुई। और यदि यह आत्म स्वरूप ही है तो इसके गुण कर्म स्वभाव आत्मा से भिन्न न होने चाहिये। यदि आत्मा का गुण ज्ञान है तो इसका भी गुण ज्ञान ही होना चाहिये, और ज्ञानवान् यह पदार्थ अब आत्मा को अज्ञानी न बना सकेगा। यदि कहें कि इस का धर्म अज्ञान है तब फिर आत्मा का भी धर्म अज्ञान ही होगा, और इसका स्वभाव अज्ञान होने से इसे अब कोई ज्ञान न बना सकेगा। यदि कहें कि अविद्या ने इसे अज्ञानी बना दिया था और अविद्या के हट जाने से यह ज्ञानी ही रह जावेगा यह सङ्गत नहीं, क्योंकि अविद्या जब आत्मा का स्वरूप ही है तो वह उससे दूर हो ही न सकेगी, किसी के स्वरूप को कोई उससे पृथक् नहीं कर सकता। अतः आत्मा सदा अज्ञानी ही बना रहेगा। यदि कहें कि अविद्या आत्म स्वरूप नहीं आत्मा से भिन्न ही तत्व है, और आत्मा पर छा जाने से वह उसे अज्ञानी बना देती है। इस अवस्था में हम यह जानना चाहेंगे कि अविद्या आत्मा के किसी एक भाग को आच्छादित करती है या सम्पूर्ण को। यदि एक भाग को तो आत्मा का कोई भाग ज्ञानी और कोई भाग अज्ञानी है ऐसा मानना पड़ेगा। परन्तु नित्य निरवयव

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक आत्मा में ऐसा होना असम्भव है। वह तो एक अखण्ड होने से या तो सारा ज्ञानी ही रहेगा या अज्ञानी ही। और यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सहस्रों मेघों से आच्छादित कर देने पर भी सूर्य के प्रकाश को हम से तो छिपाया जासकता है परन्तु सूर्य से सूर्य के प्रकाश को कोई नहीं छिपा सकता। इसी प्रकार अविद्या से आच्छादित कर आत्मा के ज्ञान को किसी और से तो कोई छिपा सकता है आत्मा से उसके ज्ञान को कोई नहीं छिपा सकता। हरे शीशे से ढकी हुई सूर्य की किरणें हमें तो हरी दिखाई देने लग जाती हैं परन्तु यदि सूर्य चेतन हो तो उसे अपनी किरणें वैसी ही दिखाई देंगी जैसी कि वे हैं। क्योंकि आवरण सूर्य के बाहर है अन्दर नहीं। इसी प्रकार आत्मा भी अपने आपको अज्ञानी मान न सकेगा क्योंकि अविद्या का पर्दा उस के बाहर है अन्दर नहीं। अतः अल्पज्ञ होने के कारण आत्मा को व्यापक नहीं माना जासकता।

अब शेष रह जाता है अणु परिमाण अतः अब विवश आत्मा का यह ही परिमाण मानना पड़ेगा।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि आत्मा का परिमाण अणु है तो वह शरीर के एक भाग में ही रहेगा। और यदि ऐसा है तो चैतन्य से होने वाली अनेक क्रियाएँ शरीर के सब भागों में किसी प्रकार सम्पन्न हो रही है?

इस प्रश्न के उत्तर में निवेदन है कि जिस प्रकार राजा साम्राज्य के एक भाग राजधानी में ही बैठा रहता है परन्तु सारे साम्राज्य के सब विभागों के कार्य उसकी प्रेरणा मात्र से उसके अधिकारिवर्ग के द्वारा सम्पन्न होते रहते हैं। ठीक इसी प्रकार आत्मा एक भाग में ही बैठा हुआ अपनी प्रेरणा मात्र से मन इन्द्रिय, ज्ञान तन्तु और प्राणतन्तुओं आदि साधनों द्वारा सारे शरीर में होने वाली क्रियाओं को सम्पादित करता रहता है।

अतः आत्मा के शरीर के किसी एक देश में रहने पर भी कोई चेतन जन्य कार्य रुक नहीं सकता। अतः वह अणु है और नित्य है। युक्ति सिद्ध इस विषय का उपपादन उपनिषद भी करते हैं—

"एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश। प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा" मुण्डक ३।१।९।।

यह अणु आत्मा मन से ही जानना चाहिये। पाँचों प्राणों का निवास इसी के पास है। प्राण एक सर्वत्र विद्यमान् तत्व है जिसका सारी प्रजाओं के चित्त के साथ सम्बन्ध है। चित्त के विशुद्ध होजाने पर आत्मा ईश्वरीय वैभव से अपने आपको सम्पन्न कर लेता है।)

उपनिषद के इस प्रसङ्ग में आत्मा का स्पष्ट ही अणु परिमाण माना है।

आत्मा का परिमाण अणु सिद्ध होजाने पर स्वभावतः यह जिज्ञासा होती है कि हमारे शरीर में आत्मा का निवास कहाँ होना चाहिये। उपनिषद्कार महर्षि आत्मा का निवास स्थान हृदय में मानते हैं।

क्रमशः

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुप्रोक्त अध्यात्मिक उपदेश संग्रह (१२)

स्वाध्याय

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः।
वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना॥
२।१६५

विशेष तपो, अवेदोक्त नाना व्रतों द्वारा द्विज को रहस्य समेत संपूर्ण वेद पढ़ना चाहिये।

[स्वाध्याय का मूल अर्थ स्व का विचार है। स्व शब्द के चार अर्थ हैं आत्मा, आत्मीय, ज्ञाति तथा धन। इनके विचार का निश्रंस साधन होने के कारण वेद को स्वाध्याय कहते हैं। इसी कारण योगी जन स्वाध्याय का एक अर्थात् गायत्री आदि पवित्र वैदिक मन्त्रों का चिन्तन करते हैं। पूर्ण कल्याण पाने के लिए पूरे वेद का अध्ययन करना चाहिये।]

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तपस्यन्द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते॥ २।१६६

तप तपता हुआ ब्राह्मण संन्यासी सदा वेद ही का अभ्यास करे क्योंकि इस लोक में वेदाभ्यास ब्राह्मण का उत्तम तप माना जाता है।

[योगियों ने इसी कारण नियमों में तप के पश्चात् स्वाध्याय को स्थान दिया है। तप को पूर्व और ईश्वर प्रणिधान को पश्चात् रख कर स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान की त्रिपुटि को क्रियायोग नाम दिया है। स्वाध्याय सरल नहीं है।]

आ हैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः।
यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम्॥ २।१६७

गृहस्थ होता हुआ भी जो द्विज यथा शक्ति प्रतिदिन स्वाध्याय वेद का अध्ययन करता है। वह सचमुच नखाग्रों तक परम तप का अनुष्ठान करता है।

[प्रतिदिन नियमपूर्वक वेदाध्ययन आत्मा परमात्मा मोक्ष साधन आदि का चिन्तन सचमुच बहुत कठिन तप है। मनुष्य जन्म पाकर कितने इस तप का साधन करते हैं? मनु जी ने तो अगले श्लोक में यह कह दिया कि 'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ जो द्विज वेद छोड़ कर दूसरे शास्त्रों में परिश्रम करता वह परिवार समेत जीता हुआ इसी जन्म में शूद्र हो जाता है।]

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः।
यथातथाध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता॥ ४।१७

ब्राह्मण स्वाध्याय के विरोधी सभी पदार्थों का त्याग करदे। क्यों कि जैसे तैसे अध्यापन करना (वेद पढ़ना) ही इस की सफलता है।

[जो परम तप हैं, उस में दूसरों को लगा सकना सचमुच बड़ी सफलता है। पढ़ने के साथ पढ़ाना भी ब्राह्मण का कर्म है। जो ब्राह्मण दिन रात ज्ञान दान में संलग्न रहता है, उसकी कृतकृत्यता में किस को सन्देह हो सकता है।]

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमाँश्चैव वैदिकान्॥
४।१९

शीघ्र बुद्धि की वृद्धि करने वाले, धन बढ़ाने वाले, हितकारी शास्त्रों वैदिक वचनों का नित्य विचार करे।

[शास्त्र चर्चा तो मनु जी को अत्यन्त प्रिय है किन्तु वेद के साथ। अर्थात शास्त्र की परिशुद्धि वेद से हो सकती है।]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ ॥

४।२०

क्योंकि जैसे पुरुष वेद शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करता है तैसे तैसे उसका ज्ञान बढ़ता है और विज्ञान में उस की रूचि होती है।]

[मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिये सभी उपयोगी कर्त्तव्यों को उपदेश करते हुए मनु जी ज्ञानार्जन पर बहुत बल दे रहे हैं। वैदिक धर्म्मी ज्ञान को धर्म्म का साधन मानते हैं। तभी मनु जी ने बुद्धि तथा विद्या को धर्म्म के दस लक्षणों में गिनाया है।]

वेदमेवाभ्यासेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।
तंह्यस्याहुः परं धर्म्मम् पधर्म्मोऽन्यउच्यते ॥ ४।१४७

द्विज निरालस्य होकर समयानुसार नित्य वेद ही का अभ्यास करे, क्योंकि उसे पर= सर्वोत्तम धर्म कहते हैं, और उपधर्म है।

[इसके आधार पर वेद वृहस्पति दयानन्द ने 'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म, बतलाया है। सभी ऋषियों का ऐसा ही सिद्धान्त है।]

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ।
अद्रोहेण च भूतानां जाति स्मरति पौर्विकीम् ॥

४।१४८

पौर्विकीं स्मरञ्जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः।
ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते ॥ ४।१४६

निरन्तर वेदाभ्यास, पवित्रता और तप के द्वारा तथा प्राणियों के प्रति वैर भाव त्यागने (अहिंसा से मनुष्य पूर्व जन्म का स्मरण कर सकता है।) पूर्वजन्म के संस्कारो से फिर वेदाभ्यास करता है और वेदाभ्यास के द्वारा मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

[अर्थात् पूर्व जन्म का स्मरण आनुषङ्गिक फल है।]

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ ११।२४५

प्रति दिन वेदाभ्यास तथा यथाशक्ति समर्थ महायज्ञानुष्ठान महापातक जन्म पापों को भी शीघ्र नष्ट कर देते हैं।

[ज्ञान की सफलता अनुष्ठान में है। ज्ञान और अनुष्ठान मिलकर मनुष्य का मरन कल्याण सिद्ध करते हैं। इसी लिये स्थान स्थान पर मनुजी ज्ञान के साथ तप, कर्म्म, अनुष्ठान का विधान करते हैं।]

यथैधस्ते जसा वाह्नि प्राप्तं निर्दहति क्षणात्।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित ॥

११।२४६

जैसे अग्नि अपने दाहक बल से पास आए ईन्धन को तत्काल जला देता है, ऐसे ही वेदवेत्ता मनुष्य ज्ञानरूपी अग्नि के द्वारा सब पापों को जला देता है।

[ज्ञान और फिर परमात्माप्रदत्त जान तो पवित्रता की खान है। ४।१४८ में मनुजी वेदाभ्यास आदि के द्वारा पूर्व जन्म के स्मरण की बात कह रहे हैं। योग दर्शन में भी 'अपरिग्रह स्थैर्य्ये जन्मकथन्ता संबोधः'=अपरिग्रह की परिपक्वता की सिद्धि होने पर जन्म के हेतु का ज्ञान होता है। हमारा वर्त्तमान जन्म पूर्व के कर्म्मों का फल है। मनुष्य को अपरिग्रही=निरभिमानी, निर्मम, निरहंकार होने के लिये अपने से प्रबल विश्वचालिका शक्ति का दृढ़ विश्वास होना आवश्यक है। जब मनुष्य को इस का ज्ञान और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मान होता है, तब उसे अपने असामर्थ्य का पूरा ज्ञान होने लगता है। उस समय वह अपने आप को परमात्मा के अर्पण कर उसका हथियार बनने की चेष्टा करता है। उस समय उसका अन्तरङ्ग, निमल, विशुद्ध होने से उसको अपने कर्म्मविपाक का साक्षात्कार होता है। यह कर्म्म-विपाक साक्षात्कार अर्थात् जन्मकथन्ता... आनुषङ्गिक फल है। अपरिग्रह का मु... ईश्वर प्रणिधान है। ऋषि दयानन्द ने ... विषय में जो कुछ लिखा है, उस का ... 'वेदपथ' मासिक के प्रथम वर्ष के अष्ट... 'शङ्कासमाधान' लेख में देखिये।]

ओङ्कार गायत्री प्रभृति जप

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ।
स्रवत्यनोंकृत् पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यते ॥ २।७४

वेद मन्त्र के आदि तथा अन्त में सदा प्रणव=ओ३म् को लगाए। यदि पूर्व में ओ३म् न लगाया तो वेदमन्त्र चू जाता है, और अन्त में न लगाने से बिखर सा जाता है।

[सभी ऋषिमुनि मन्त्र के आदि अन्त में ओ३म् पद लगाने का विधान करते हैं। तात्पर्य्य यह कि मन्त्र ओ३म् से कीलित होने चाहिएं अर्थात् वेदों का मुख्य तात्पर्य्य ओ३म्-वाच्य परमात्मा ही है। इसी भाव से '*सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति*—' (कठोप) सभी वेद बारबार ओ३म् पद का अभ्यास करते हैं। मुख्य तात्पर्य्य के सूचक पद को त्यागने से मुख्य अर्थ के लोप की संभावना होती है, यह चूना तथा बिखरना है।]

ऐतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सं ध्ययोर्वेद विद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ २।७८

वेदवेत्ता ब्राह्मण इस ओ३म् अक्षर को तथा व्याहृतियों- (भूर्भुवः स्वः) समेत इस गायत्री को दोनों समय की सन्ध्या में जपता हुआ वेद-पुण्य से युक्त होता है।

[वेद का फल आत्मपरमात्मज्ञान है। ओंकार जप तथा गायत्री अनुष्ठान से भी यही फल मिलता है जैसा कि ईश्वर प्रणिधान... फल बतलाते हुए योग दर्शन में कहा गया...

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमो ऽप्यन्तराया...

ईश्वरप्रणिधान से (प्रणव जापादि से) आ... प्राप्ति एवं विघ्नों का नाश होता है।]

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिकं द्विजः ।
महतोऽप्येनसो मासात् त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥

इस त्रिक [ओ३म् महाव्याहृति तथा ... वितुर्वरेण्यं—' गायत्री को बाहर एकान्त... दिन हज़ार बार जपता हुआ द्विज महा... [पापवासना] से एक मास में मुक्त हो... है, जैसे सांप कैंचुली से छूट जाता है। [... छूटने का अर्थ सर्वत्र पापवासना है... वासना पिशाची तनिक सा उद्दीपन प्र... साधक को भ्रष्ट कर देती है। जप का अ... '*तज्जपस्तदर्थभावनम्*' यो०) जप का अर्थ... और जप्य वस्तु के अर्थों की भावना है, ... अर्थ विचार करके तदनुसार अपना... बनाना जप है।]

एतयार्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ।
ब्रह्म क्षत्रिय विड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥

इस गायत्री मन्त्र तथा समय पर ... क्रिया से रहित हुआ ब्राह्मण, क्षत्रिय [...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ज्जनों में निन्दा को प्राप्त होता है।

[स्वकर्म्मरहित की निन्दा ही होती है, शंसा थोड़े होती है।]

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
पदा चैव सावित्री विज्ञेया ब्रह्मणो मुखम् ॥ २।८१

ओङ्कार पूर्वक अव्यय तीनों महाव्याहृतियां था त्रिपदा गायत्री (तत्सवितुर्व—) ये वेद का ख जानना चाहिए।

[वेदारंभ संस्कार वेदाध्ययन की दीक्षा के ए होता है। संस्कार कराकर आचार्य्य शिष्य प्रथम इस गायत्री मन्त्र का उच्चारण कराता]।]

ऽधीते ऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥ २।८२

जो तीन वर्षों तक लगातार प्रति दिन इस यत्री का जप करता है, वह आकाश की भांति र्लेप होकर प्राणारूढ़ हुआ परब्रह्म को प्राप्त लेता है।

[ज्ञान का अन्तिम फल परमात्मप्राप्ति है। भी है— *शब्द ब्रह्मणिनिष्णातः परं ब्रह्माधि-च्छति* =शब्द ब्रह्म=वेद में निष्णात मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् वेदाभ्यास त्री जप मानव जीवन सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य के र्वोत्तम साधन हैं।]

क्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः।
वेत्र्यास्तु परं नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते ॥
२।८३

ओ३म् परब्रह्म है। प्राणायाम उत्तम तप है त्री (गायत्री, से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है) से सत्य अच्छा है।

[मौन मूर्खों का भाषण है। ऋग्वेद में कहा है— *वदन् ब्रह्माऽवदतो वनीयान्* = बोलने वाला ज्ञानी मौनी से अधिक श्रेष्ठ है।]

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजति क्रियाः।
अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥ २।८४

होम यज्ञादि सभी वैदिक क्रियाएं क्रिया होने के कारण नष्ट हो जाती है। किन्तु अक्षर= ओङ्कारजप साधन बहुत कठिन है और प्रजापति परमेश्वर का पाना भी कठिन है।

[केवल होम यज्ञ पर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री न कर बैठे, प्रत्युत परमात्मप्राप्ति के साधनों का अनुष्ठान करना चाहिए।]

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छत गुणः साहस्रशो मानसः स्मृतः ॥
२।८५

विधियज्ञ [अग्निहोत्रादि] से जप यज्ञ दशगुण श्रेष्ठ है। यदि वह उपांशु हो तो सौ गुणा और मानस जप यज्ञ सहस्रगुणा उत्कुष्ट है।

[ऊँची ध्वनि की अपेक्षा उपांशु=अत्यन्त धीरे जपना उत्तम है, मन से जपना सर्वोत्तम है, किन्तु है अतीव कठिन।]

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलाँ नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २।८६

विधियज्ञों समेत जो चार पाकयज्ञ हैं, वे जपयज्ञ की सोलहवीं कला की तुलना भी नहीं कर सकते।

[अग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव, पितृयज्ञ तथा अतिथियज्ञ पाकयज्ञ कहलाते हैं। जपयज्ञ=ब्रह्म यज्ञ इन से श्रेष्ट है। इस से यह न समझना चाहिए कि इनका त्याग कर देना चाहिए। वरन् ब्रह्मयज्ञ किसी भी अवस्था में नहीं त्यागना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहिए, यह अभिप्राय है।]

जप्येनैव तु संसिध्येद ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते॥ २।८७

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ब्राह्मण जप से ही सिद्धि को प्राप्त कर सकता है, चाहे वह और कुछ करे या न करे। क्योंकि ब्राह्मण मैत्र कहलाता है।

[वेदाध्ययन से ब्राह्मण बनता है। ब्राह्मणत्व प्राप्त करके वह भगवत्प्राप्ति के साधन जप के अनुष्ठान से मोक्ष प्राप्ति के योग्य हो जाता है। दिन रात ब्रह्म की वाणी वेद के विचार, प्रचार प्रसार एवं व्यवहार के द्वारा वह परमात्मा का मित्र बन चुका है। अर्थात् उसमें अहिंसा की पराकाष्ठा आ चुकी है। बलिवैश्व आदि महायज्ञ प्राणिमात्र के प्रति प्रीतिसाधना के लिए किए जाते हैं। लोपकार परायण महात्मा को यदि इनके करने का अवकाश न मिले, तो न करने में विशेष दोष नहीं है। हां ब्रह्मयज्ञ=जप यज्ञ के त्यागने में तो दोष है। वही मित्र से मिलने का एक अचूक साधन है। जब उन पाकयज्ञों के निरन्तर, दीर्घकाल एवं श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान मन का मल धुल जाए तो अन्तः करण एवं आत्मा में विराजमान भगवान् की प्राप्ति सुसाध्य हो जाती है, उसके मिलने से मुक्ति के लिए और किसी यत्न की अपेक्षा ही नहीं रहती।]

सन्ध्या के समय का विधान करते हैं -

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्ष विभावनात्॥ २।१०१

प्रातः काल ही सन्ध्या के लिये सूर्योदय तक जप करता रहे। सायं काल की सन्ध्या में नक्षत्रों के दीखने तक बैठे।

[सन्ध्या के दो ही समय हैं प्रातः … उस समय प्रकृति एवं शरीर में लगभग … होती है। प्राण क्रिया भी विषमता से … रहित होती है। उस ध्यान के अनुष्ठा… सुविधा होती है।]

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चि…
स शूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विज कर्म…

जो न प्रातः काल सन्ध्या अनुष्ठान कर… और न सायं काल। उसका, शूद्र की … सभी द्विजकार्यों से बहिष्कार करना चा…

[ज्ञान का फल यथार्थता प्राप्त करके भग… राधन है जो उसे नहीं करता, वह द्विज …

सन्ध्या के स्थान का निर्देश करते हैं-

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थि…
सवित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥ …

जल के समीप, पवित्र हो कर, नित्य … आस्थावान् होकर, बन में जाकर, सावधा… = समाधि की युक्ति से गायत्री का … करे।

[नित्य कर्म पवित्रता एवं श्रद्धा से … एकान्त स्थान में करने चाहिये। जपके … आत्मा, मन तथा शरीर की पवित्रता की … आवश्यकता है।]

वैदोपकरणे चैवस्वाध्याये चैव नैत्यके।
नानुरोधो ऽस्त्यनध्यायो होममंत्रेषु चैवहि॥

वेद के अङ्गोपङ्गों तथा दैनिक (नित्य … स्वाध्याय वेदाध्ययन एवं आत्म चिन्त… होम के मन्त्रों में अनध्याय का अनुरोध …

[ज्ञान साधक तथा यज्ञ कर्म्मों में यथा…

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नागा नहीं करना चाहिये। शरीर को जब भोजन प्रति दिन देते हैं तो आत्मा को भूखा रखना कैसे उचित माना जाए ?]

नैत्यके नास्त्यनधयायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम्।
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥ २।१०६

नित्य कर्म्म जप ध्यान में अनध्याय नहीं होता, क्यों कि उसे ब्रह्मयज्ञ कहते हैं । अनध्याय के दिनों में यज्ञ करना तथा ब्रह्म रूपी आहुति से होम करना पुण्य=पवित्र कारक है।

[आत्म साधन में अनध्याय करने से निरन्तरपन का व्याघात होता है। चंचल चित्त पतन प्रवल होने से साधना में शिथिलता उत्पन्न कर देता है, अतः नियमपूर्वक प्रति दिन सन्ध्या ध्यान का अनुष्ठान करना चाहिये।

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुर वाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥४।६५

दीर्घ काल तक सन्ध्या करने के कारण ही ऋषि लोग दीर्घ आयु, बुद्धि, यश, कीर्ति तथा ब्रह्म तेज को प्राप्त करते हैं।

[सन्ध्या में मन की एकाग्रता से दुष्ट विचारों का संहार होता है और दीव्य भावों का संचार होता है। उत्तम आचार एवं विचार से शरीर के स्वास्थ्य पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। उत्तम स्वास्थ्य से आयु भी बढ़ता है। इसी प्रकार प्राणायाम के अनुष्ठान से जीवन का दीर्घ होना सभी स्वीकार करते हैं। दीर्घ जीवी सदाचारी स्वस्थ मनुष्य की सभी प्रशंसा एवं आदर करते हैं। सदाचारी स्वस्थ ध्यानी के मुखमण्डल पर ऐसा तेज विराजता है जिस को देख कर सभी प्रभावित होते हैं । जीवन के दीर्घ होने से स्वाध्याय एवं शास्त्राभ्यास का अवकाश अधिक मिलता है, उससे ज्ञान विज्ञान बढ़ कर बुद्धि भी चमत्कारिणी होने लगती है । अतः निरन्तर दीर्घ काल तक श्रद्धापूर्वक ब्रह्म-यज्ञ की साधना करनी चाहिये।]

॥ अप्रतिग्रह ॥

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ ४।१८६

प्रतिग्रह का अधिकारी होता हुआ भी उसके प्रसंग को हटाए, क्यों कि प्रतिग्रह से इसका ब्रह्म तेज=ब्रह्म वर्चस शीघ्र नष्ट होता है।

[ब्राह्मण के षष्टकर्मों में प्रतिग्रह=दान लेना भी है। किन्तु आवश्यकता के बिना और जहां तहां से दान लेना गिरावट का कारण बनता है। ब्राह्मण निःशुल्क विद्यादान करता है । अतः उसके भरण पोषण का उत्तरदायित्व राष्ट्र एवं समाज पर है। किन्तु ब्राह्मण को भी सावधान रहना चाहिये। यदि वह संचय में लग जाए, तो उसका ब्राह्मतेज अवश्य नष्ट हो जाये। संचय की इच्छा से ज्ञानं यज्ञ का अनुष्ठान भली भांति नहीं कर सकेगा। अतः दान लेने से यथा संभव बचने की चेष्टा करनी चाहिये।]

ब्रह्म का स्वरूप (२)

[विद्याभास्कर, श्री पं० उदयवीर शास्त्री]

प्रथम अङ्क में माण्डूक्य उपनिषद् की प्रथम कण्डिका के आधार पर ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट करने का यत्न किया गया है। कण्डिका के प्रत्येक पद का विवरण देते हुए, यह भी स्पष्ट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया है, कि उपनिषत्कार का स्वारस्य किस अर्थ में पर्यवसित है। अनेक पाठकों ने हमें सूचित किया है, कि उपनिषद् की शेष कण्डिकाओं को भी इसी रूप में प्रस्तुत करें। हम यत्न करेंगे, कि माण्डूक्य उपनिषद् की कण्डिकाओं का यथाक्रम विवरण 'वेद पथ' के पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर सकें।

पहली कण्डिका में जो ब्रह्म का स्वरूप बतलाया है, उसी को लक्ष्यकर उपनिषत्कार आगे कहता है—'सर्वं हि एतद् ब्रह्म' (हि) निश्चय से यह (एतत्) यह (ब्रह्म) परमात्मा (सर्व) पूर्ण है। उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं। ब्रह्म से अतिरिक्त और जो कुछ भी है, वह सब किसी न किसी प्रकार की न्यूनता से युक्त है, इसलिये उसको 'सर्व' अर्थात् 'पूर्ण' नहीं कह सकते। ब्रह्म ही पूर्ण है, और सब अपूर्ण है। उपनिषदों में घोषणा की गई है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यह पूर्ण एक पहेली है। वह सर्वतोमुखी पूर्ण है। वह परोक्ष प्रत्यक्ष सर्वत्र पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण ही समझा जा सकता है। जब हम उस पूर्ण के वास्तविक स्वरूप पूर्ण को जान पाते हैं, तब हमें निश्चय हो जाता है, कि वही एक पूर्ण है, उससे अतिरिक्त और कोई पूर्ण नहीं। हम अपने प्रत्येक यज्ञ के अन्त में उसको इस रूप में स्मरण करते हैं- 'सर्वं वै पूर्णम्' वही अविनाशी, जगत् के मूल उपादान प्रकृति का प्रेरक व आधार, त्रिकालातीत ब्रह्म सर्व अर्थात् पूर्ण है, उसी के निमित्त हम अपनी अन्तिम आहुति प्रस्तुत करते हैं।

यह अंतिम आहुति क्या है? थोड़ा गम्भी[र] विचार करें, तो हम उस तत्त्व को पकड़ [सकेंगे।] द्रव्याहुतियां कुछ समय तक चलती [हैं।] इनका अभाव हमें सता सकता है। पर[न्तु वह] कौनसी वस्तु है। जिसका हमें कभी अभा[व हो] ही नहीं सकता। वस्तुतः वही अन्तिम [आहुति] है, और वह है--अपना आपा, अर्था[त्] आत्मा। प्रत्येक व्यक्ति का अपना आत्मा ही अपना रूप है, और वह सदा उसके [साथ] है। अन्य अनेक प्राकृत वस्तुओं का उसको अभाव हो सकता है। परन्तु उसका आत्मा तो उसे कभी धोखा नहीं दे सकता, [वह] तो सदा उसी का रूप है। वही जीवन [की] अन्तिम आहुति है। जो व्यक्ति अपने [आपको] आहुति बनाकर ब्रह्माग्नि में होम दे[ता है,] परमात्मा उसके लिये प्रकाशित होजा[ता है।] इसी अर्थ को प्रस्तुत उपनिषद् के [अ]ग्रिम भाग में प्रस्तुत किया गया है।

उपनिषत्कार इस आत्म-यज्ञ का [...] करते हुए आगे लिखता है--'अयमात्मा [ब्रह्म'] यह आत्मा ब्रह्म है। यहां 'आत्मा' पद [का] जीवात्मा, और 'ब्रह्म' पद का अर्थ प[रमात्मा] ही है, तो क्या इसका यह अभिप्राय हुआ [कि] यह जीवात्मा ही परमात्मा है? नहीं। [इसका] वास्तविक अभिप्राय समझने के लिये [...] गम्भीर विवेचना में उतरिये। उपनि[षद् के] प्रारम्भ में ही ब्रह्म का नाम 'ओम्' बता[या] और उसकी व्याख्या द्वारा ब्रह्म का [स्वरूप] प्रस्तुत करना ही उसका उद्देश्य है। [...] गाय का स्वरूप मालूम करने वाले को [...] सींग पूँछ या पीठ पर हाथ रखकर [...]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जा सकता है, कि यह गाय हैं। परन्तु ब्रह्म का स्वरूप ऐसा नहीं; कि उसका इस प्रकार निर्देश किया जासके,क्योंकि वह इन्द्रियातीत है। लोक में भी यह देखा जाता है, कि जब हम किसी इन्द्रियग्राह्य भी सूक्ष्म वस्तु को सहसा नहीं देख पाते, तो उसके समीप की उस जैसी किसी स्थूल वस्तु का सहारा लेते हैं। जैसे अरुन्धती नामक सूक्ष्म तारे को जब हम एक दम नहीं देख पाते, तो कहा जाता है, कि पहले आकाश में सप्तर्षि मण्डल को देखो, तदनन्तर हमारा ध्यान उसके दूसरे तारे की ओर आकृष्ट किया जाता है, और कहा जाता है,कि यह अरुन्धती है। परन्तु वह वास्तविक अरुन्धती नहीं। जब हम उसको ध्यान पूर्वक देखते हुए होते हैं, तब यह कह कर वास्तविक अरुन्धती की ओर हमारी दृष्टि को आकृष्ट किया जाता है, कि इस तारे से दो अँगुल पूर्व की ओर देखो तब हम उस सूक्ष्म वास्तविक अरुन्धती को देख पाते हैं। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को पहचानने के लिये प्रथम आत्मा का साक्षात्कार आवश्यक है। इन दोनों का स्वरूप 'चेतन' रूप से समान है। जब कोई भी व्यक्ति अपने चेतन रूप का साक्षात्कार कर लेता है, तब उसे परमात्म चेतन का साक्षात्कार होना अत्यन्त सरल है। सरल क्या ? उसके साक्षात्कार का मार्ग ही यह है। इसी आशय को श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है—

आत्मतत्त्वेनं तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।

जब आत्म साक्षात्कार हो जाय, तब ब्रह्म साक्षात्कार इसी प्रकार हो जाता है, जैसे एक दीपक प्रज्वलित कर लिये जाने पर उससे दूसरा प्रदीप अनायास ही प्रज्वलित कर लिया जाता है। इसी आशय को लेकर प्रस्तुत उपनिषद् में आत्मा को ब्रह्म कह दिया है, क्योंकि उसके द्वारा ही आगे ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को बताना है। इसी अर्थ को हमने अभी पहले इस रूप में प्रकट किया है, कि जो व्यक्ति स्वयं आत्मा को आहुति बनाकर परमात्मा में अर्पण कर देता है, परमात्मा उसके लिये प्रकाशित हो जाता है। इसलिये पहले यही समझो, कि यह आत्मा ब्रह्म है।

उपनिषदों में लिखा है—ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों के लिये 'ब्रह्म' पद का प्रयोग होता है। श्वेताश्वतर में है—'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्'। यहां भोक्ता-जीवात्मा, भोग्य-प्रकृति और प्रेरित-परमात्मा इन तीनों के लिये ही ब्रह्म पद का प्रयोग होना बताया है। इसी प्रकार श्वेताश्वतर की एक और [१।६] कण्डिया में ज्ञ-परमात्मा, अज्ञ-जीवात्मा और अजा-प्रकृति का निर्देश करके कहा है—'त्रयं यदा विन्देत ब्रह्ममेतत्।'इन तीनोंको ही ब्रह्म पदसे जाना जाता है। तब इस आत्मा-जीवात्मा को भी प्रस्तुत माण्डूक्य उपनिषद् में ब्रह्म कह देना असंगत नहीं कहा जासकता, और न इसका यह अभिप्राय होसकता है, कि यह प्रत्यगात्मा नियन्ता परमात्मा का ही अभिन्न रूप है। इस प्रकार हमें प्रथम आत्मा के स्वरूप का साक्षात करना आवश्यक है। आत्मा के स्वरूप को हम अपेक्षाकृत शीघ्र समझ पाते हैं, क्योंकि वह अपना ही रूप है, कोई भी विज्ञ व्यक्ति अपनी सत्ता से नकार नहीं करता। इसीलिये उपनिष्द्कार प्रस्तुत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रसंग में प्रथम आत्मा का वर्णन करता है—
'सोऽयमात्मा चतुष्पात् '।

वह प्रसिद्ध यह आत्मा चार अवस्थाओं वाला है। इस कण्डिका में 'पाद' शब्द का अर्थ अवस्था अर्थात् स्थिति ही ग्रहण करना चाहिये। पाद शब्द के अंग या अंश आदि अनेक अर्थ हैं। कहीं २ वेदों के परमात्म संबन्धी आलँकारिक वर्णनों में परमात्मा के भी पाद आदि का उल्लेख पाया जाता है, जैसे पुरुष सूक्तों में। परन्तु यहाँ उससे कोई प्रयोजन नहीं। आत्मा की इन चार अवस्थाओं का वर्णन उपनिषद् की अगली कण्डिकाओं में प्रस्तुत किया गया है।२।

पहली अवस्था तृतीय कण्डिका में इस प्रकार बताई है—

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥३॥

जीवात्मा की चार अवस्था हैं—जागरित, स्वप्न, सुषुप्ति और मोक्ष। जागरित अवस्था में यह जीव 'बाहिः प्रज्ञ' रहता है, यह अपनी इन्द्रियों के द्वारा बाह्य विषयों में आसक्त रहता है। इसी अर्थ को कण्डिका के अगले पदों से स्पष्ट किया गया है। प्रथम पद है—'सप्ताङ्ग': इसके स्थूल शरीर के सात अङ्ग हैं—दो हाथ दो पैर, मूर्धा से बस्ति पर्यन्त धड़ के तीन भाग—मूर्धा, उरस् तथा उदर। जीव की जागरित अवस्था में शरीर के ये अंग बराबर अपने २ कार्यों में व्याप्रृत रहते हैं। इसी प्रकार 'एकोनविंशतिमुखः' अर्थात उन्नीस द्वार बराबर अपना कार्य करते रहते हैं। ये द्वार हैं-पाँच ज्ञाने[ndriya] पाँच कर्मेन्द्रिय, मन बुद्धि चित्त अहँकार पाँच स्थूल भूत। जीवात्मा अपने इन साधनों से युक्त रहकर बाह्य विषयों में [...] रहता है, उनको भोगता है, इसी लिये [...] अवस्था में 'स्थूलभुक्' है। जितने भी सांसारिक भोग हैं, सब स्थूल हैं। स्थूल [...] के रूप हैं, अत एव जागरित अवस्था में जी[व] का यह नाम अति उपयुक्त है। ये सब किसी एक ही समय में या थोड़े समय [में] नहीं होजाते। अनेक जन्म जन्मांतर वह चक्र में भ्रमण करता है। नाना शरीर [...] धारण करता है, शास्त्रों में लिखा मिल[ता है] कि जीव के लिये चौरासी लाख भिन्न २ [यो]नि हैं, और यह भी नहीं कहा जा सकता, [कि] एक योनि में, न मालूम कितनी बार आना जाना पड़ता है, इस प्रकार जीवात्[मा] विविध शरीरों में आवागमन के कारण [...] रूपता का संकेत स्पष्ट होता है। इसी [लिये] इस अवस्था में इसको 'वैश्वानर' कहा है। क्योंकि यह 'विश्व-नर' अर्थात् [...] शरीरों के साथ बराबर प्रकट होता रह[ता है]।

इस अवस्था को जागरित अवस्[था कहा] जाता है। 'प्रथमः पाद' यह पहली अव[स्था] संसार में आँख खोलते ही जीवात्मा के [...] यह सर्वप्रथम आती है। इसका परिच[य] प्रत्यक्ष रूप में उपलब्ध होता है। अ[ब] आगे स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्था का [वर्णन] किया जावेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सन्तान पर माता का प्रभाव

[श्रीमती माता प्रेम सुलभामती जी]

प्रकृति का अटल नियम है कि जिसका सम्पर्क जिसके साथ जितना अधिक घनिष्ट होगा उतना ही उसके जीवन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ेगा। इसी अटल नियम के अनुसार

(१) सन्तान पर माता के विचारों का प्रभाव स्वभाविक रीति से पड़ता है। माता का डाला हुआ संस्कार भी बहुत प्रबल होता है। इसलिये मातृशक्ति का उत्थान ही देश में वीर साहसी और देशभक्त सन्तान उत्पन्न करने के लिये अति आवश्यक है।

(२) क्योंकि आत्मा स्वयं शुद्ध पवित्र है। उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं। किन्तु अल्पज्ञयता के कारण शरीर के सम्पर्क से उसमें अनेक गुण दोष प्रतीत होने लगते हैं। जो जीव के बन्धन का कारण बनते हैं।

(३) आत्मा का स्वभाविक गुण केवल ज्ञान और कर्म ही है। इच्छा, द्वेष, सुख ये चार गुण नैमित्तिक हैं जो शरीर के निमित्त से आत्मा में आये समझे जाते हैं। शरीर की बनावट आत्मा के स्वभाविक गुणों की साक्षी है। शरीर में दो ही प्रकार की इन्द्रियां हैं, ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां। ज्ञान इन्द्रियां ज्ञान और कर्म इन्द्रियां आत्मा के कर्म गुण को सार्थक करने के लिये हैं। यदि तीसरा कोई और स्वभाविक गुण होता तो शरीर में तीसरे प्रकार की इन्द्रियों का समुदाय उस गुण के साधन रूप होने के लिये बना हुआ दृष्टि-गोचर होता।

यथार्थ में आत्मा कर्मफल वशपंच तत्व से बने हुये शरीर में आकर दोनों प्रकार की इन्द्रियों के विषयो के द्वारा अपने को कर्म के जाल में लपेट लेता है। प्रथम शरीर छोड़ते समय जीवात्मा स्मृति, वासना संस्कार सहित सूक्ष्म शरीर के साथ निकलता है। पूर्व कर्मानुसार उसे शरीर मिलता है। जीव के अपने पूर्व सञ्चित कर्म सुरक्षित रहते हैं। जब आत्मा से माता के गर्भ में आगमन करता है। तभी से जीव को नये शरीर का सम्पर्क होता है।

माता के गर्भ में अधिक समय तक निवास रहने के कारण माता की मानसिक भावनाओं का प्रभाव अधिक प्रबल होता है। सुख दुःख, इच्छा द्वेष ये गुण आत्मा में शरीर के निमित्त से ही आते हैं। और शरीर माता के रुधिर से बनता है। इसलिये शरीर के बनते समय माता के सुख, दुःख, राग द्वेष, मोह, लोभ की भावनाओं का अमिट सा मिश्रण होता है।

उसके पश्चात् जब बच्चा गर्भ के बाहर आता है, तब भी माता के मानसिक विचारों का प्रभाव प्रबलता से दूध के साथ पड़ता है। साथ ही अन्य पारिवारिक स्त्रियों के जिनका अधिक सम्पर्क होता है, विचार व्यवहार के प्रभाव की रेखा बच्चे के मन पर पड़ती है। किन्तु माता का डाला हुआ संस्कार इस शरीर के साथ अधिक स्थिरता रखता है।

उसे दूर हटा देना कोई सरल काम नहीं है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा अपने साथ जो स्मृति वासना और संस्कार सूक्ष्म शरीर के साथ लाता है, यदि वे प्रबल हों तो वे माता के डाले हुए संस्कारों को दबाकर आगे निकल जाते हैं। परन्तु तो भी बहुत काल तक दोनों साथ साथ चलते हैं। जो अधिक बलवान् होता है वही दूसरे को दबा देता है। अनेक बार ऐसा देखा गया है कि श्रेष्ठ माता की सन्तान दुष्ट निकली, किन्तु अपवाद रूप में ही ऐसा होता है।

माता के प्रभाव से निकल कर बालक जगत् के व्यवहार और समाज के प्रभाव में आता है जिसे बाह्य शिक्षा कहते हैं। बाह्य शिक्षा का प्रभाव पक्के रंग के समान गहरा होता है। हमारे इतिहास में अनेक माताओं की शिक्षा के प्रभाव का वर्णन पाया जाता है। अभिमन्यु ने माता के गर्भ में ही व्यूहचक्र का वेधना सी[खा] लिया था। मन्दालसा ने अपने कई पुत्रों [को] गर्भ से लेकर गोद में खिलाते हुये ब्रह्मज्ञानी बना दिया था। विदला ने अपने पुत्र संजय [को] महान् विजयी बनाया था।

आज भी ऐसी प्रभावशालिनी माताएं हैं परन्तु हैं अल्पसंख्या में ही। इसलिये यह आव[श्]यक है कि मातृशक्ति का यथार्थ सम्मान किया जाये और साथ श्रेष्ठ वैदिक सभ्यता के अनु[]सार गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने के लि[ये] बच्चों के पालन-पोषण के साथ उच्च कोटि [की] शिक्षा दी जावे, तभी देश का कल्याण होगा। किसी देश का उत्थान और पतन उस देश [के] नारी समाज पर ही निर्भर है।

आर्थिक विचारण में न मिलने वाली कड़ी

(श्री० मंगनभाई देसाई जी)

दस जून के अंक से लगाकर कुछ हफ्तों के 'हरिजन' के कालमों में सर्वोदय या गाँधी वादी अर्थ व्यवस्था के बारे में बड़ी दिलचस्प चर्चा चली, उद्योगपतियों और पुराने विचार के अर्थ शास्त्रियों के उस चर्चा को महत्त्व मिल सकता है, उससे वह कहीं अधिक बुनियादी और वास्तविक थी। आध्यात्मिक या नैतिक मूल्यों के प्रति लापरवाह रहने से या उनकी सर्वथा उपेक्षा करने से और जीवन के भौतिक मूल्यों को जरूरत से ज्यादा महत्त्व देने से इन विचारों की दृष्टि कुण्ठित होगई है, जीवन के नैत्तिक और आध्यात्मिक मूल्यों के आर्थिक न होने से वे उन्हें कोई महत्त्व नहीं देते। लेकिन इतिहास पुकार पुकार कर कहता है कि मानवजाति [की] व्यक्ति के सुख व शान्ति की बलि देकर [भी] इन मूल्यों की उपेक्षा की जासकती है। उन[की] दृष्टि में जो निरर्थक मालूम होता है, उस[का] दरअसल बड़ा महत्त्व है, क्योंकि मानवजा[ति] सिर्फ़ रोटी के सहारे ही नहीं जी सकती। पुरा[ने] विचारों के अर्थ-शास्त्रियों और उद्योगपतियों [की] जीवन और अर्थ-व्यवस्था विषयक दृष्टि [] महत्त्व की चीज को भूल जाती है।

भारत में आज हमें चीजों की तंगी [से] सम्बन्ध रखने वाली अर्थ-व्यवस्था का सवा[ल] हल करना है. हम अधभूखी, फटेहाल आ[र] बेकार, कम करने वाली, आलसी, सुस्त और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की महिमा न जानने वाली प्रजा हैं। इस कारण से यदि हम तंगी की अर्थ-व्यवस्था के शिकार होजाएं तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। तंगी, आलसीपन, कंगाली की यह हालत हमें मिटानी ही होगी। यह तात्कालिक हित साधन की पुकार हमारे लिए ज्यादा महत्त्व रखती है। परन्तु अंतिम हितसाधने की पुकार भी हमारे सामने मौजूद है। जो अदृश्य रूप में होते हुए भी बड़े आग्रह से हमें बुला रही है। मानवहृदय उसे सुने बिना रह ही नहीं सकता। ऐसा तो हो सकता है कि एक राष्ट्र के नाते हृदय की इस भूख का अनुभव करने से पहले हमें समृद्ध प्रजा बन जाना चाहिए।

यह माना जाता है कि इस तंगी की हालत को मिटाने का उपाय मशीन है। क्या इस मान्यता की कोई मजबूत बुनियाद है? क्या यह सच है? आज भी मशीनें ज्यादा माल तो जरूर पैदा करती हैं, पर आधुनिक विज्ञान और शिल्प-विज्ञान के कारण वे बहुत ज्यादा लोगों को बेकार भी बनाती हैं। वे बेकारी का और तैय्यार माल के लिए बाजारों का सवाल पैदा करती हैं, और देश के भीतर और बाहर जकात व व्यापार की खींच तान खड़ी करती हैं, मशीनों के उपयोग के कारण जो बेकारी या अर्ध-बेकारी पैदा होती है, उसे अक्सर 'आराम' कहा जाता है, उसका सम्बन्ध संस्कृति और उन्नति के साथ जोड़ दिया गया है। और यह संस्कृति और उन्नति कला हस्तकौशल या मन की शान्ति की अपेक्षा मशीनों और चिन्ताओं की पैदायश ज्यादा करती है, थोड़े में मशीनें अनर्थ परम्परा को जन्म देती हैं। जिनमें उनका प्रमुख स्थान है। और मनुष्य की जरूरतों की पूर्ति संस्कृति, उन्नति वगैरा उनकी गूँज में उलझ जाती है।

इसके अलावा मशीनें ऐसी हालत पैदा करती हैं, जिससे दौलत और आर्थिक सत्ता कुछ इने-गिने लोगों के हाथ में पूरी तरह चली जाती है। फिर भले वे मालिक हो, पूंजीपति हों, शरीफ़ हों, निष्णात हों, राजकारोबार चलाने वाले हों, या व्यवस्थापक हों। समाज का आर्थिक व्यवहार पूरी तरह इन मुट्ठी भर लोगों के हाथों में चला जाता है, ये लोग ऐसी व्यवस्था कायम करते हैं, जिसे महात्मा टॉल-स्टाय ने हमारे जमाने की गुलामी जैसा उचित नाम दिया है।

आनायास या बिना किसी उचित प्रयास के पाए हुए, और आलसीपन में बिताए हुए आराम में से पैदा हुए मानसिक और सांस्कृतिक प्रश्न हमारे जमाने की एक विशेषता है, मशीन जब सचमुच उन्हें समझ भी नहीं सकती, तो फिर उन्हें हल तो कर ही कैसे सकती है? इस तरह मशीन द्वारा पैदा की हुई विपुलता से एक तरफ मुट्ठी भर धनवान् लोगों का आर्थिक शासन पैदा होता है, और दूसरी तरफ मनुष्यों में विकृति और भयंकर भीतरी अतृप्ति पैदा होती है। और शराब खोरी; जुआ, व्यभिचार, मुक्तप्रेम; और आज के सिनेमा द्वारा उसे सन्तुष्ट करने का व्यर्थ प्रयत्न किया जाता है। मैंने जिसे अन्तिम हित या श्रेय कहा है। उसे छोड़कर तत्कालिक हित के पीछे पड़ने वाले मनुष्यों को हमेशा ऐसी कीमत चुकानी पड़ती इसका यह मतलब नहीं कि मैं तंगी और गरीबी वाली व्यवस्था की हिमायत करता हूँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मेरा यह कहना भी नहीं है कि सच्ची सुखदायी अर्थ-व्यवस्था कायम करने के लिये 'न मिलने वाली कड़ी' के साथ इस सब का मेल बैठता है। भयंकर तंगी और भीषण विपुलता दोनों एक ही सिक्के की दो भुजायें हैं। हमें न सिर्फ पहला प्रश्न, बल्कि दूसरा प्रश्न भी हल करना है। क्योंकि ऐसी अर्थ व्यवस्था जिसमें मनुष्य के अन्तिम हित या श्रेय की उपेक्षा न की गई हो, कायम करने में ही मनुष्य के अन्तिम सन्तोष की सिद्धी रही है, उस चीज को न देखना हमारे मशीन युग का और मुट्ठी भर शासकों वाली समाज व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था का एक खास तरह का अन्धापन है।

हमारे देश से बिल्कुल उलटी हालत देखना हो तो अमेरिका को उद्योग पतियों और अर्थ-शास्त्रियों की कल्पना का स्वर्ग कह सकते हैं। क्या यह कहा जा सकता है कि अमेरिका वाले मशीनों के द्वारा इस सवाल को हल कर सकते है? वे बड़ी भारी विपुलता वाली अर्थ-व्यवस्था के नागफांस में फन्से हुए हैं। और इसका उन्हें कैसा अनुभव हुआ है, यहां एक अमेरिकन लेखक का मत देना ठीक होगा। वह सारी बातें साफ २ हमारे सामने रखता है।

"हरेक संस्कृति की अपनी आकांक्षाएँ होती हैं, हमारी संस्कृति में शिल्प विज्ञान का सबसे महत्त्व का स्थान है, हमें चीजों के ढेर के ढेर चाहियें, और बहुत बार हम भौतिक चीजों की विपुलता से ही सुख को नापते हैं। मोटरों का उत्पादन कितना बढ़ा, बिजली का उपयोग कितना बढ़ा, रेफ्रिजि-रेटर कितने बढ़े, और दूध की बोतलें कितनी बढ़ीं—इस पर से हम प्रगति का माप निकालते हैं। हम जिस जीवन स्तर को महत्त्व का मानते हैं, उसे ध्यान में रखकर दूसरे लोगों के बारे में फैसला देते हैं और बहुत बार वह चीज भूला देते हैं कि अच्छा जीवन पाने के लिये दूसरे आदर्श भी होते हैं। जो लोग एक तरह की जरूरतों के आदी हो जाते हैं, उन्हें यह सीख लेना चाहिये कि जरूरतें अलग अलग तरह की होती हैं।

"सौंदर्य को कितना महत्त्व दिया जाए? दुनियाँ की चीजें कितनी मात्रा में इकठी की जाएँ? जीवन में धर्म का कितना स्थान होना चाहिये? मनुष्य जाति को शहर से बाहर बं... और दोमोटर वाले गेरेज के पीछे पड़ना चाहि... या गांधी जी का अनुसरण करना चाहिये? शृंगार को कितना स्थान दिया जाए और सि... पताका के रूप में वैभव के ढोंग भरे प्रदर्शन... कितना स्थान दिया जाए? काम और आ... के बीच हमारी शक्तियों को किस तरह ब... जाये? हमारे समाजों को आय की भारी वि... मता को प्रोत्साहन देना चाहिये या नहीं?

"समाजशास्त्रियों ने इस क्षेत्र में ... छानबीन करने का प्रयत्न नहीं किया... हमारी शिक्षा ने हमारी संस्कृति के औचि... को मान लिया है, उस में क्या चीज भ... इस की जांच उसने नहीं की, हमें इस... की ज्यादा से ज्यादा और अलग अलग ... की चीजें चाहिएं। इन चीजों की मांग ... करना अर्थ व्यवस्था का एक मात्र काम ... लिया गया है।"

"रोजाना इस्तेमाल की चीजें बरतने... व्यक्ति के नाते मनुष्य को जो शिक्षा दी... चाहिए, उस में उसके सामने मौजूद वि...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी उचित ढंग से पेश किये जाने चाहिए। इस से यह आशा रखी जा सकती है कि परम्परा से चले आये रिवाज और बलवान् असर डालने वाली आसपास की परिस्थिति का उस पर कम असर होगा। जैसा कि थार्स्टीन वेब्लेन कहता है, अगर हम अपने से ज्यादा दौलतमन्द लोगों से होड़ लगाने की बेकार कोशिश में ही अपनी जिन्दगी बिता रहे हैं। तो हमारे लिए यह ज्यादा जरूरी हो जाता है कि हम जीवन के ज्यादा सच्चे मूल्यों की खोज करें।"

"हम बिना सोचे विचारे यह नहीं कह सकते कि जरूरत की चीजों को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाते ही जाना चाहिए, लेकिन हम यह खोजने की कोशिश तो कर ही सकते हैं कि अर्थ-व्यवस्था जनता की जरूरत की चीजें इतनी मात्रा में कैसे मुहैया कर सकती है कि वह (जनता) अपनी गैर जरूरी जरूरतों के बारे में उचित निर्णय कर सके।"

(कन्ज्यूमर एज्यूकेशन पृ० ५-६)

मशीनें अधिक माल देने के सिवा और कुछ नहीं कर सकतीं। वे एक ऐसी व्यवस्था पैदा करती हैं जिस के लिए निश्चित रूप से वे ही जिम्मेदार हैं। समस्या यह है कि उस सहउपज के साथ मशीनों का मेल कैसे किया जाए? या यह समस्या ऐसी है जो हल हो ही नहीं सकती?

दूसरी बात—मशीनों से पैदा हुई अर्थव्यवस्था, जिस तरह मुट्ठी भर सत्ताधारी धनी लोग हमें विश्वास कराना चाहते हैं वैसी परिणाम में सचमुच समृद्धि की अर्थ अवस्था नहीं, बल्कि लड़ाई की अर्थ व्यवस्था है। दुनिया आज उस के बोझ के नीचे त्राहि त्राहि पुकार रही है, और सच्ची शान्तिवादी अर्थ व्यवस्था के लिए लालायित हो रही है। यही अन्तिम हित या श्रेय खोजे नहीं मिलता। प्राणि-शास्त्र की न मिलने वाली कड़ी की तरह जीवन सम्बन्धी आज की आर्थिक और सामाजिक दृष्टि में भी एक कड़ी नहीं मिल रही है। सत्ता और समृद्धि में गर्क मुट्ठीभर धनी लोग क्या इस तरफ ध्यान देंगे? (उद्धृत)

[योरुप ने विकास Evolution का वाद चलाया। उस काल्पनिक वाद में कई कड़ियां नहीं मिलती। उसको उदाहरण बनाकर लेखक ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि पश्चिम की प्रचारित अर्थ व्यवस्था का मानव जीवन के साथ सामञ्जस्य नहीं बैठता। मनुष्य को केवल यन्त्र मानकर निर्धारित की गई अर्थव्यवस्था से मनुष्य के मन, आत्मा की सन्तृप्ति एवं परितुष्टि नहीं हो पाती। अतः अर्थव्यवस्था को आध्यात्मिक रूप देने का सुझाव लेखक का है। इस अर्थव्यवस्था को आध्यात्मिक रूप देने के लिए वैदिक वर्णव्यवस्था ही सब से उपयुक्त साधन है।—सम्पादक—]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सार्वदेशिक दयानन्द सं० वा० मण्डल (हरिद्वार)

२८ पौष संवत् २००५ (१२३ द०) से ३१ चैत्र २००५ (१२४द०) [१२ जनवरी १६४८ से १२ अप्रैल १६४६] तक का विवरण

१. मण्डल के इस वर्ष निम्नलिखित अधिकारी एवं सदस्य रहे:—

१. स्वामी वेदानन्द तीर्थ — अध्यक्ष
२. श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज उपप्रधान
३. श्री भक्त सुन्दरदास जी मन्त्री, आश्रम उप समिति के प्रधान
४. श्री म० हरप्रकाश जी — उप मन्त्री, तथा आश्रम उपसमिति के मन्त्री
५ श्री ला० नाराणदत्त जी — कोषाध्यक्ष
६. श्री महा० प्रेमाराम जी — पुस्तकाध्यक्ष
७. श्री स्वामी जीवन मुनि जी
८. ,, ,, वत्सलानन्द जी
६. ,, ,, आत्मानन्द जी
१०. ,, ,, अभेदानन्द जी
११. ,, ,, प्रेमभिक्षु जी
१२. ,, ,, देवानन्द जी
१३. ,, ,, ,, (हृषीकेश)
१४. ,, ,, नारायणानन्द जी
१५. ,, प्रेमसुलभायती
१६. ,, महा० ज्योतिप्रसाद जी
१७. ,, पण्डित गङ्गाप्रसाद जी
१८. ,, महाशय कृष्ण जी

२. अधिवेशन:—विवरणीय वर्ष में मण्डल के तीन अधिवेशन २८-१-२००४, २-१-२००५ तथा ३-१-२००५ को हुए। उन में सदस्यों की उपस्थिति इस भांति थी:—

१. श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ ३/३
२. श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महा ३/३
३. पं० मङ्गलप्रसाद जी १+१+१
४. म० हरप्रकाश जी १+१+१
५. म० ज्योतिप्रसाद जी १+१+१
६. स्वामी वेदानन्द जी (हृषीकेश) १
७. ला० नारायणदत्त जी १
८. म० कृष्ण जी १
६. स्वामी देवानन्द जी १+१
१०. भक्त सुन्दरदास जी १+१
११. श्रीमती प्रेमसुलभाव्रती जी १+१+
१२. स्वामी नारायणानन्द जी ०+१+
१३. स्वामी वत्सलानन्द जी ०+१+
१४. म० प्रेमाराम जी ०+१+
१५. स्वामी आत्मानन्द जी ०+०+
१६. स्वामी प्रेमभिक्षु जी ०+०+
१७. स्वामी जीवनमुनि ०+०+
१८. स्वामी अभेदानन्द जी ०+०

३. सदस्य विश्रान्ति:—इस प्र... नियम की 'ख' धारा के अनुसार भक्... दास जी तथा म० कृष्ण जी विश्रान्त ... और उनके स्थान में पुनः वही दोनों ... निर्वाचित किए गए।

४. प्रचार कार्य्य:—मण्डल ... से श्री स्वामी नारायणानन्द जी त... आनन्दभिक्षु जी प्रचार का कार्य्य कर... स्वामी जी ने मध्यभारत, गुजरात, संयुक्त... पंजाब, विहार एवं बङ्गाल प्रान्त में प्रचा... स्वामी जी के उपदेश-व्याख्यान ब... शिक्षाप्रद एवं ओजस्वी होते हैं। श्री...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने प्रचार कार्य्य के साथ अनेक स्थानों पर यज्ञ भी कराये।

महात्मा आनन्दभिक्षु वन जी ने पंजाब, राजस्थान तथा संयुक्त प्रान्त में विशेष प्रचार किया। भिक्षु जी की वाणी माधुर्य्यमयी है। आप व्याख्यानों, बृहद्यज्ञों के अतिरिक्त पारिवारिक सुधार का कार्य्य अत्यन्त तत्परता एवं लग्न से करते हैं। अध्यक्ष जी की अनुमति से इस समय वे इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल में कार्य्य कर रहे हैं। समय समय पर प्रचार भी करते हैं।

(ख) शुद्धि कार्य्यः—अध्यक्ष की प्रेरणा पर सार्वदेशिकार्य प्रतिनिधि सभा ने शुद्धि का विशेष कार्य आरम्भ किया। मण्डल की ओर से महात्मा आनन्दभिक्षुवन जी ने वहां जा कर कार्य्य किया। उन के कार्य्य की स्थानिक जनता ने भूरि भूरि प्रशंसा की। आश्रम में एक जन्म के मुसलमान की शुद्धि भी की गई।

(घ) मण्डल के अनेक सज्जन समीपवर्त्ती समाजों में प्रवचन आदि के लिए जाते रहे। अध्यक्ष जी प्रायः प्रचारार्थ जाते रहते हैं। विहार प्रान्त में मण्डल की शाखा स्थापित हो चुकी है, श्री स्वामी रामानन्द जी प्रधान तथा साधु निरंजनानन्द जी उस के मन्त्री हैं। यह मण्डल समय समय पर सूचनापत्र प्रकाशित करता रहता है।

बृहद्यज्ञः—आश्रम में प्रतिदिन यज्ञ होता था। इस के साथ पौर्णमासी, अमावस्या तथा अन्य आर्य्य पर्वों पर विशेष यज्ञ होते रहते हैं। इन के अतिरिक्त इस वर्ष तीन बृहद्यज्ञ हुए। एक तो मण्डल के वार्षिक उत्सव के उपलक्ष में। मण्डल ने ३-१-२००५ के अधिवेशन के २ संख्यक प्रस्ताव द्वारा आश्विन के नवरात्र तथा चैत्र नवरात्र में अर्थात् प्रतिवर्ष दो बृहद्यज्ञ करने का निश्चय किया। तदनुसार आश्विन २००५ के नवरात्र तथा चैत्र के नवरात्र में बृहद्यज्ञ कराये गए। आश्विन नवरात्र में सामवेद का यज्ञ कराया गया और चैत्र नवरात्र में अथर्ववेद के प्रथम सात काण्डों का यज्ञ कराया गया। ये दोनों ही यज्ञ गायत्री संपुट थे, अर्थात् प्रत्येक मन्त्र के पश्चात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण तथा आहुति की जाती थी। इस का विशेष लाभ हुआ। सभी उपस्थित नर नारी यज्ञ में ही लीन रहते थे।

यज्ञ के पश्चात् प्रतिदिन पठित भाग के किन्ही वेदमन्त्रों की व्याख्या भी की जाती थी। यज्ञों के ब्रह्मा मण्डलाध्यक्ष ही रहे।

२००५ के वैशाख मास में हुए यज्ञ पर किन्ही वैदिक विषयों पर निबन्ध भी पढ़े गए।

चैत्र नवरात्र के यज्ञ के दिनों में प्रति दिन सांयकाल को व्याख्यान कराये गए। अध्यक्ष के अतिरिक्त, श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी महाराज, श्री स्वामी नारायणानन्द सरस्वती जी महाराज स्वामी प्रभु-आश्रित जी तथा महा० सत्यभूषण जी के व्याख्यान हुए।

चैत्र नवरात्र के यज्ञ के दिनों में आश्रमवासियों के लिए एक विशेष आध्यात्मिक कार्य्यक्रम नियत किया गया था जिस से सभी लाभान्वित हुए।

६. कथा-बृहद्यज्ञों से पूर्व कथा का आयोजन किया। आश्विन वाले यज्ञ से पौने दो मास पूर्व निरन्तर और चैत्र नवरात्र से पूर्व १५ दिन निरन्तर कथा चलती रही। कथा मण्डलाध्यक्ष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जी करते थे। इस वेद कथा को श्रवण करने के के लिए पञ्चपुरी के अतिरिक्त दूर २ से लोग आ कर आश्रम में वास करते रहे। और लाभ उठाते रहे। सैंकड़ों की उपस्थिति होती रही। ये यज्ञ तथा कथाएं वेद प्रचार का एक उत्तम साधन सिद्ध हुई हैं।

७. विद्यालय (क) यज्ञों में पठनीय वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के लिए अध्यक्ष ने समस्त आश्रमवासियों को संपूर्ण सामवेद तथा अथर्ववेद के प्रथम साता काण्डों का शुद्ध पाठ सिखाय इस में आश्रमवासियों के अतिरिक्त कुछ अन्य सज्जन भी सम्मिलित होते रहे। इस के साथ 'आर्य्याभिविनय' का पाठ भी प्रत्येक मन्त्र का पदच्छेद कर के बोर्ड पर लिख कर कराया गया जिस की प्रतिलिपि सभी कर लेते रहे। कइयों ने आर्य्याभिविनय कठस्थ भी कर ली है।

(ख) इस के अतिरिक्त छः युवक विद्यार्थी अष्टाध्यायी आदि पढ़ने के लिए आश्रम में आ कर ठहरे हैं। उन के भोजन आदि का प्रबन्ध मण्डल की ओर से है। यह मण्डल के विद्यालय का पूर्वरूप समझना चाहिए।

विद्यालय का चलाना मण्डल के उद्देश्यों में है। एक ऐसा विद्यालय, जिस में युवक शिक्षा ग्रहण करके उपदेशक बन सकें, खोलना नितान्त आवश्यक है।

(८) नारायण आश्रम, रामगढ़—रामगढ़ मे महात्मा नारायणस्वामी जी महाराज का आश्रम था, जहां स्वामी जी ने वानप्रस्थ दशा तथा सन्यास दशा में तप किया था। देहान्त से पूर्व उन्हों ने यह आश्रम मण्डल को सौंप दिया। अध्यक्ष जी के निर्देश से श्री स्वामी जीवनमुनि जी इस का प्रबन्ध कर अध्यक्ष जी स्वयं भी दो बार उस आश्र निरीक्षण करते गए।

(९) पुस्तकालय—पुस्तकालय में पर्याप्त कांट छांट की गई है। कुछ पुस्तकें का आश्रम में कोई उपयोग नहीं था, जो स्थान ही घेरती थीं, पुस्तकालय से अध्यक्ष के आदेशानुसार निकाल दी गई हैं। बहुत नई पुस्तकें भी मंगाई गई हैं। चूंकि सूची पूरी नहीं हो सकी, अतः पुस्तक संख्या बताई जा सकती।

पुस्तकालय का भवन पर्याप्त न हो नारायणाश्रम का पुस्तकालय यहां न ला जा सका। यद्यपि आश्रम की बढ़ती आ कताओं को लक्ष्य करके पुस्तकालय के एक को कमरे का रूप दे दिया गया है, तथा पर्याप्त नहीं है।

(१०) वानप्रस्थाश्रम--आश्रम में रूप से कई वानप्रस्थी एवं संन्यासी रहते हैं में सब मिला कर ८२ कुटियाएं हैं। स्था संकीर्णता देख कर कई एक कुटियाओं के स्थान में दो २ का रूप दे दिया गया है से कुछ सुविधा हो गई है। आश्रम के प्र लिए एक उपसमिति है जिस के निम्न अधिकारी एवं सदस्य हैं:—

१. श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ अध्यक्ष
२. श्री भक्त सुन्दरदास जी प्रधान
३. महा० हरप्रकाश जी मन्त्री
४. " ज्योतिप्रसाद जी
५. " प्रेमाराम जी
६. श्री प० गङ्गाप्रसाद जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

७ महा० रणजीतसिंह जी
८. '' देवानन्द जी
६. स्वा० जीवन मुनि जी

११ चिकित्सालय —मण्डल की ओर से एक चिकित्सालय है जिसमें मूल्य के बिना औषधि दी जाती हैं। आस पास के लोग पर्य्याप्त लाभ उठातेहैं। इसका संचालन श्री डा० जगन्नाथ जी करते हैं। डाक्टर जी बहुत सी औषधियों का व्यय भी अपने पास से देते हैं। औषधालय से ३३१६ रोगियों ने लाभ उठाया। इसके लिए डा० जी विशेष धन्यावद के पात्र हैं।

१२. प्रकाशन कार्य (क) महात्मा नारायण स्वामी स्मारक ग्रन्थ माला निधि—अध्यक्ष जी के उद्योग से स्थापित की गई।

(ख) डाक्टर लाल चन्द लक्ष्मी देवी वेद प्रचार निधि की स्थापना—

प्रकाशन सम्बन्धी मण्डल के उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए श्री डाक्टर लाल चन्द्र जी, जो वर्षों से आश्रम में रहते हैं, विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। उन्हों ने 'डाक्टर लाल चन्द लक्ष्मी देवी वेद प्रचार निधि' स्थापित कराके इस कार्य्य का सूत्रपात् कराया है। उस निधि से 'नैमितिक वैदिक पाठ' पुस्तक की ३००० प्रतियां छापी गई। और भी पुस्तकें तैय्यार हैं, किन्तु यहां मुद्रण सम्बन्धो असुविधाओं के कारण उनका प्रकाशन अभी नहीं हो सका। आशा है अन्य दानी मानी सज्जन इस प्रकार की निधियां स्थापित करा कर साहित्य प्रचार में योग देकर पुण्यभागी होंगे।

१३. वैदिक साहित्य सम्मेलन——ऊपर बताया जा चुका है कि वैशाखं सन् २००५ के वार्षिको त्सव में विभिन्न वैदिक विषयों पर विद्वानां ने निबन्ध पढ़े थे। एक प्रकार से वह कार्य्य वैदिक साहित्य सम्मेलन का सूत्रपात था। चैत्र २००५ में इस के आयोजन का प्रबन्ध किया गया था, विद्वानों के परामर्श से उसे स्थापित करना पड़ा। आशा है आश्विन नवरात्र के यज्ञ के समय उसका पुनः आयोजन किया जाएगा। इस सम्मेलन का विशेष उद्देश्य विवादास्पद वैदिक विषयों का आर्ष प्रणाली से निर्णय करना है। इस कार्य में अनेक गण्यमान्य विद्वानों का हमें सहयोग प्राप्त है—

१४. सम्मेलन— इस वर्ष चैत्र मासीय वृहद्यज्ञ के अवसर पर तीन महत्त्व पूर्ण सम्मेलन हुए। दो दिन वानप्रस्थ सम्मेलन तथा दो दिन संन्यासी सम्मेलन और एक दिन संन्यासी वानप्रस्थ-(विरक्त-) सम्मेलन हुए जिसमें विरक्तों के वेषभूषादि के सम्बन्ध में महत्त्व-पूण निर्णय स्वीकृत हुए। उन निर्णयों का सारांश यह है—

(क) वानप्रस्थ —(क) जैसे संन्यासियों के लिये 'स्वामी' शब्द संबोधनादि के लिए प्रयुक्त होता है, वैसे वानप्रस्थों के लिए 'महात्मा' शब्द प्रयोग करना चाहिये।

(ख) वानप्रस्थ की दीक्षा लेने वाले का नाम अवश्य बदला देना चाहिए।

(ख) नाम के अन्त में 'देव वन' अवश्य लगाना चाहिये।

(मू) वेषभूषा—(क) चाहे जटिल रहें चाहे मुण्डी, किन्तु मुण्डि दशा में शिखा के अतिरिक्त सिर, दाढ़ी मूंछ आदि भी अवश्य मुण्डवाने चाहिएं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(ख) वस्त्रादि-बिना लांग की धोती, कौपीन, कुर्त्ता लम्बा या साधारण इच्छानुसार, गले में दुपट्टा, कन्धे तक लाठी।

(ग) कौपीन के अतिरिक्त सभी वस्त्रों का रंग गैरिक ही होना चाहिए। कौपीन श्वेत रंग की ही होनी चहिए।

(ख) सन्यासी—(१) वानप्रस्थों की भांति जटिल अथवा मुन्डी

(२) खुण्डे वाली यष्टिका

(३) अधातु पात्र

(४) सिर नंगा, कुर्त्ता साधारण, विना लांग की धोती, गले में दुपट्टा, (चमड़े का बूट पहनना वर्जित है।)

(५) नाम के अन्त में 'सरस्वती' शब्द शब्द का प्रयोग करना

(६) अपना आचार्य महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती बताना चाहिए।

१५. संस्कार—आश्रम में समय समय पर लोग आकर विविध संस्कार कराते रहे हैं। विशेष उल्लेख योग्य निम्न लिखित हैं—

वान प्रस्थ संस्कार	पांच
संन्यास	एक

१६. कार्य्यक्रम योजना—मण्डल ने अपने ३. १. २००५ के अधिवेशन में आर्यसमाज के भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में निम्न लिखित योजना स्वीकार की—

(क) आर्य नाम का प्रचार अर्थात् आर्य जाति के सभी सम्प्रदायों को हिन्दू नाम त्याग कर आर्य नाम ग्रहण करने की प्रेरणा करना।

(ख) आर्यों से अछूतपन विनाश करना

(ग) आर्येतरों को आर्य बनाना अर्थात् ईसाई मुसलमान आदि को शुद्ध करना।

(घ) मद्यमांसादि का निवारण करना

(ङ) पञ्जाब की अखण्डता बनाए रखने के लिये यत्न करना

(च) Anti-corruption कार्य में सरकार को सहयोग देना।

मण्डल के उपप्रधान श्री स्वामी स्वतन्त्रानंद सरस्वती जी महाराज ने पंजाब की समस्या के संबन्धमें विभिन्न समाचार पत्रों में लेख लिखे। इसी प्रकार मांस मदिरा के विरोध में भी कई लेख लिखे। मांस मदिरा विषयक उनके लेखों को प्रस्तिका रूप में, शीघ्र प्रकशित किया जाएगा। ['मांस-मदिरा निषेध' छप चुका है। मू० तीन आने हैं]

अध्यक्ष जी ने प्रेरणा करके अपने लिखे 'हमारा नाम आर्य है, हिन्दू नहीं, का गुजराती भाषा में अनुवाद कराया जो श्री ज्ञानेन्द्र जी सि० भू० ने अपने मासिक पत्र 'तरणि' में प्रकाशित कराया। बंगला में भी उसका अनुवाद होकर छप चुका है। मूल पुस्तक शीघ्र ही पुनः प्रकाशित होगी। [कुम्भ के अवसर पर छप चुकी है]

शेष विषयों पर भी लेख व्याख्यान दिये जाते रहे हैं।

यह समस्त योजना टीकासहित विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित कराई गई। उन सब पत्रों का मंडल धन्यवाद करता है।

हमारी सरकार के कुछ प्रमुख व्यक्ति हमारे देश का नाम 'भारतवर्ष' न रखकर 'इण्डिया' रखना चाहते हैं। मण्डल को इसका घोर विरोध करना होगा। प्रसन्नता की बात है कि अब देश का नाम सरकार ने 'भारत' स्वीकार कर लिया

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। इसी प्रकार राष्ट्र पर राष्ट्रभाषा के स्थान पर हिन्दोस्तानी के नाम से उर्दू के लादने की चेष्टा हो रही है। मण्डल को उसका भी विरोध करना चाहिए। [हर्ष की बात है कि देश की राष्ट्र तथा राजकीय भाषा के रूप में हिन्दी को अपना न्याय प्राप्त आसन प्राप्त हो गया है, किन्तु अब उसके रूप को विकृत करने का प्रयत्न हो रहा है। राष्ट्रभाषा के भक्तों को सावधान होने की आवश्यकता है।]

जनगणना समीप आरही है। अतः मण्डल को जाति के नाम के सम्बन्ध में विशेष सावधान होना चाहिए। और इस विषय में समान-विचार वाली संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

इसी प्रकार मण्डल को वैदिक धर्म प्रचार के प्रकार में भी परिवर्तन की कोई योजना बनानी चाहिए, जिस से प्रचार में आया गतिरोध नष्ट हो सके।

जनगणना समीप आ रही है। अतः मण्डल को जाति के नाम के संबन्ध में विशेष सावधान होना चाहिये। और इस विषय में समान विचार वाली संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए। इसी प्रकार मण्डल को वैदिक धर्मप्रचार के प्रकार में भी परिवर्तन की कोई योजना बनानी चाहिए। जिस से प्रचार में आया गतिरोध नष्ट हो सके।

आर्थिक अवस्था—

मण्डल का धन विविध बैंकों तथा डाकखाने में रहता है। नियुक्त निधियों के अतिरिक्त ३८८०६॥≡)॥ अड़तीस हजार आठसौ रुपये साढ़े ग्यारह आने होने चाहिए जिसमें से शिमला बैंक में १८२३६।-) अठारह हजार दो सौ छत्तीस रुपये छः आने निहित = Fixed Deposit के रुपये थे। बैंक के कार्य्य स्थगित कर देने से वह राशि अब सन्दिग्ध दशा में है। जाने, उस में से कितना प्राप्त हो सकेगा। इस लिए इस समय २०५७३।-)॥ बीस हजार पांच सौ तिहत्तर रुपये साढ़े पांच आने शेष है। सामान्य रूप से इसी को आधार मान कर हमें व्यय करना होगा।

गतवर्ष का आय १३५९५≡)॥। तेरह हजार पांचसौ पचानवे रुपये पौने चार आने है और व्यय है १३७२८।-) तेरह हजार सातसौ अठाईस रुपये पांच आने हैं। अर्थात् १३३-)। एकसौ तेतीस रुपये सवा आना घाटा है।

सम्पादकीय

भारत पर दैवी कोप— (१) भारत के पूर्वोत्तरीय सीमा प्रदेश असम (आसाम) पर भूकम्प के रूप भयङ्कर विपत्ति आई है। अनेक ग्रामों, उपनगरों का ध्वंस हो गया है। जंगल के जंगल नष्ट हो गये हैं। भूकंप ने लाखों वृक्षों को मूल से उन्मूलित कर दिया है। लाखों मनुष्य वे घर हो गए हैं। प्रादेशिक नदियों में बाढ़ आदि के कारण भी देश की बहुत हानि हुई है। यातायात के सभी साधन नष्ट हो गए हैं केवल वायुयान ही से कहीं आना जाना सम्भव है। लोगों तक भोजन सामग्री वायुयानों द्वारा पहुँचाने की व्यवस्था सरकार कर रही है।

(२) उत्तर भारत के अनेक स्थानोंमें अतिवृष्टि के कारण नदियों में बाढ़ आरही है। यमुना ने करनाल के कई ग्रामों को जल मग्न कर दिया है। उत्तर प्रदेश के ६०० के लगभग ग्राम जल मग्न बताए जाते हैं। बिहार में सीता मढ़ी आदि अनेक नगरों की ऐसी ही दुर्दशा बताई जा रही है। इस दैवी विपत्ति से अन्न की समस्या और भयङ्कर रूप धारण करेगी।

(३) भारत में अन्न की न्यूनता है। इसमें अनेकों को सन्देह है। किन्तु यह तो देहस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहित हैं कि दूसरों के कष्टों से लाभ उठाने की मनोवृत्ति वाले संग्रही लोगों ने सचमुच देश में अन्न संकट को विकट अवस्था तक पहुँचा दिया है। बाढ़ के कारण तथा पूर्वबंग की राजनैतिक विषम दशाके कारण पश्चिमबंग का बुराहाल है। बिहार के कई भागों से भूख से तड़प कर मरने के वृत्त आए हैं। मद्रास में भी अन्नाभाव के करुण क्रन्दन सुनने को आरहे हैं। केन्द्र तथा प्रादेशिक शासकों का इस विषय में मत भेद है, किन्तु इतनी बात स्पष्ट है कि कहीं न कहीं व्यवस्था में अव्यवस्था अवश्य है जिसे नियन्त्रित करने की अपेक्षा है।

एक बात कभी भी नहीं भूलनी चाहिए, किसी देश की सरकार किसी भी संकट को दूर नहीं कर सकती, जब तक जनता का सहकार उसे प्राप्त न हो। संकट सरकार की अपेक्षा जनता पर अधिक है। अतः जनता को प्रान्तीय भावना का त्याग करके समूचे भारत को एक मान कर, एक प्रदेश पर आये कष्ट समस्त देश का संकट मानकर उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। और जन कष्टसे लाभ उठाने की भावना वाले पणियों को खोज निकलाने, दण्ड दिलानेमें सरकार को बिन मागे सहयोग दे।

(४) ग्वालियर में छात्रों पर गोली चलाई। इसके सम्बन्ध में जो सूचनाएं प्राप्त हुई हैं, वे पर्याप्त रोमांचकारी हैं। उनसे क्रोध, क्षोभ होना स्वाभाविक है। गणतन्त्र में यह गनतन्त्र !!! आश्चर्यं शान्तं पापम् !!! किसी पर कोई दोषारोप न करके हम इतना ही कहना चाहते हैं कि नए बने शासक संभल कर चलें। कहीं हमारी इस मूर्खता से नव प्राप्त स्वतन्त्रता का नाश न हो जाए।

(५) बम्बई की कपड़े की मिलों में हड़ताल हो गई है। मिल मालिकों और मजदूरों में तनातनी इसका मूल है। उत्तेजक साधन अन्य भी हैं। अधिकारलोलुप इसे शांत करने के स्थान में अपनी चौधर सिद्ध करने के साधन बनाएंगे। धनिकों तथा मजदूरों का पारस्परिक सौहार्द ही इस समस्या का समाधान है। धनिक वर्ग पहला पग उठाए तो कदाचित् गड़ बड़ मिट जाए।

उपर्लिखित सारी घटनायें दैवी कोप हैं। इनको आकस्मिक मानने से शान्ति नहीं मिल सकती। धर्मनिरपेक्ष सरकार को इसकी अपेक्षा भी नहीं। है तो यह विचारने की बात, टालने से कार्य न चलेगा।

देश में आचार का स्तर—शतियों की दासता के कारण आत्म गौरव की भव्य भावना के नाश होने के साथ अनेक प्रकार के नैतिक पतनोंसे हमारा देश आक्रान्त होगया। स्वतन्त्रता प्राप्तहोनेपर नैतिक स्तर और अधिक नीचा होगया है। प्रत्येकके मनमें अर्थ संचय की चिन्ता पिशाचि ने बसेरा कर रखा है। उचित-अनुचित सभी उपायों से धन हरण के प्रकरण सुनने में आ रहे हैं। जिस संस्था से देश को अनेक आशाएं थीं गान्धी जी के नव जीवन पत्र के सम्पादक श्री मशरूवाला के शब्दों में 'वह (कांग्रेस) इतनी पतित हो चुकी है कि किसी सज्जन को उससे सम्पर्क न रखना चाहिये।' भले ही कांग्रेस विरोधी इससे प्रसन्न हों परन्तु समस्त देश को एक शरीर मानने वालों को शरीर के एक अंग में विकार आने से अवश्य उद्विनता हुए बिना न रहेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेस की उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। इसलिये या तो इसे समाप्त कर दिया जाए या इसका रूपान्तर कर दिया जाए जिससे यह देशहित की साधिका बन सके।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक धर्म्म प्रचार की एक अभूतपूर्व योजना

१. इस समय संसार में वर्गवाद (कम्यूनिज्म) का प्रायः सर्वत्र बोल बाला प्रतीत हो रहा है। क्यों आप ने कभी सोचा ऐसे कैसे संभव हो सका ?

२. इस समय स्वतन्त्र होने पर भी भारत विचारों की दृष्टि से परतन्त्र है। क्या आप इस का कारण जानते हैं ?

३. वैदिक सभ्यता, वैदिक संस्कृति की आज भी थोड़ी बहुत चर्चा है। इसके कारण को कभी आपने जानने की चेष्टा की है ?

४. योरुप के लोगों ने पहले पहल भारतीयों को जंगली बताया, किन्तु पश्चात् वे उन को संसार का गुरु तक कहने लग गए। इसका क्या हेतु ?

५. ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों प्रचार के किस साधन को सब से अधिक अपनाया ?

इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है—साहित्य। मार्क्स लेनिन आदि ने सोचा, प्रचारक का सब स्थानों में पहुंचना असंभव सा है किन्तु साहित्य का प्रसार संभव है। इस तत्त्व को सम्मुख रख कर संसार की समस्त भाषाओं में साहित्य निर्माण कराया और फैलाया। वैदिकधर्म को विश्वकल्याण का एक मात्र साधन मानने वालों ने इसका हजारवां भाग भी प्रयत्न नहीं किया।

अंग्रेज ने भारतीयों को परतन्त्र बनाए रखने के लिए पाश्चात्य सभ्यता के विचारों का साहित्य द्वारा प्रचार किया। भारतीय नेता अपने विचार गुप्त रखते थे। परिणाम अब सामने है। कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् का जयघोष करने वाले भी अपने मन्दिरों से बाहर वैदिकधर्म्म की चर्चा नहीं करते। फल सामने है।

यदि हमारे पूर्वज ऋषिमुनि अपने विचारों को साहित्य द्वारा सुरक्षित न कर जाते तो आज वैदिकधर्म्म का लोप हो चुका होता।

योरुप के लोगों ने जब हमारा वैदिक साहित्य देखा तो वे चकित रह गए। कईयों ने तो विकासवाद से विश्वास हटा लिया। साहित्य की महिमा को कौन पूरी तरह वर्णन कर सकता है।

अपने विचारों को स्थायी रूप देने के लिये ऋषि अपने कार्य्य काल में सदैव सचेष्ट रहे किन्तु जीवन के अन्तिम वर्षों में तो वे साहित्य निर्माण में अधिक समय देते थे। ऋषि निर्मित साहित्य का परिमाण सब को चकित कर देता है।

ऋषि के पश्चात् पं० लेखराम आदि कई महानुभावों ने इस दिशा में अवश्य प्रयत्न किया किन्तु वह व्यक्तिगत था। जो उनकी जीवन लीला की समाप्ति के साथ समाप्त हो जाता रहा। सारे उपदेशक मिलकर उतना प्रचार, कार्य्य नहीं कर रहे जितना स्वामी दयानन्द जी के लघुग्रन्थ। इस एक उदाहरण से साहित्य का महत्व समझ में, आ सकता है।

साहित्य की इस चमत्कारिणी महत्ता को जानकर इस से पूरा लाभ उठाने की भावना से कुछ एक गण्य मान्य विद्वानों ने आज से आठ वर्ष पूर्व लाहौर में **विरजानन्द वैदिक संस्थान** की स्थापना की। संस्थान ने जो कार्य्य किया वह तो लाहौर के भारत में न रहने से नष्ट हो गया। अनेक साहित्य प्रेमियों की सत्प्रेरणा से इसका पुनः स्थापन कर दिया गया है। इसको स्थिर तथा सुचारु रूप से चलाने के लिये एक लाख रुपये की तुरन्त आवश्यकता है। आशा है वेदभक्त इस राशी को शीघ्र पूरा करने की कृपा करेंगे।

स्वामी वेदानन्द अध्यक्ष विरजानन्द वैदिक संस्थान
ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सार्वदेशिक दयानन्द सन्यासि वानप्रस्थमण्डल ज्वालापुर (जि सहारनपुर) के

प्रकाशन

१. स्वाध्याय सन्दोह—वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है। इस आर्ष आदेश का विचार करके अनेक विद्वानों ने जन साधरण के लिए वेदमन्त्रों के संग्रह प्रकाशित किये। उन सब संग्रहों में स्वामी वेदानन्दतीर्थ के लिखे स्वाध्याय सन्दोह को सभी ने सब से उत्तम और बढ़िया माना है। वर्षभर के पढ़ने के लिए ३६६ मन्त्रों का संग्रह इस में है। प्रत्येक मन्त्र की व्याख्या में प्रसंग से अनेक मन्त्रों, उपनिषद्वाक्यों, आर्षवचनों के उद्धरण दिये गये हैं। व्याख्या बहुत मनोहर, भाषा अतीव मीठी है। हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि स्वाध्याय करने के लिये इस से उत्तम ग्रन्थ, आर्षग्रन्थों के अतिरिक्त, और कोई इस समय नहीं है। बड़े आकार के पांच सौ पृष्ठों के इस महान् ग्रन्थ का मूल्य लागत मात्र ६) है डाक व्यय इस से पृथक।

मांसमदिरानिषेध—लेखक(श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज) सरकार इस समय मादकद्रव्यों के निषेध में प्रयत्नशील है। मादकद्रव्यों से क्या हानि है, इसका ज्ञान इसपुस्तिका से भली भांति हो सकता है। मूल्य एक प्रति =),सौ प्रति इकट्ठी लेने पर =) प्रति, डाकव्याय पृथक्

३. ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः—विश्वानि देवआदि आठ मन्त्रों की भव्य,ल[illegible] हृदयहारिणी व्याख्या। मूल्य एक प्रति =) इकट्ठी सौ प्रति लेने पर —)॥ एक प्रति

मन्त्री, सार्वदेशिक दयानन्द संयासिवानप्र[illegible] मण्डल ज्वालापुर (जि सहारनपुर)

विरजानन्द वैदिक संस्थान के प्रकाशन

आर्य्यसमाज के दृष्टिकोण से अनुसन्धान करने वाली यदि कोई, संस्थान है तो विरजानन्द वैदिक संस्थान--इस संस्थान ने लगभग बीस ग्रन्थ प्रकाशित कराए थे जो संस्थान की अन्य बहुमूल्य सम्पति के साथ पाकिस्थान की भेंट हो गये। भगवत्कृपा से दो चार ग्रन्थ किसी प्रकार बच कर भारत में हमारे साथ आ गये। उन में से एकसांख्य दर्शन का इतिहा[स] है। इस के लिखाने छपाने में हज़ारों रुपये [व्यय] हुए हैं। ग्रन्थ छप चुका है। जिल्द बंध रही [है] इस ग्रन्थ की एक,एक प्रति प्रत्येक पुस्तकाल[य] में रहनी चाहिये। मूल्य लागत मात्र ३०) [तीस] रुपये, डाक व्यय पृथक्)

सावित्री प्रकाश

गायत्री मन्त्र का आर्य्यों में बहुत गौरव है। ऋषि मुनि सन्तजन सदा इस के जप पर बल देते आए हैं किन्तु साधारण जनों की बात जाने दीजिए अच्छे २ विद्वान् भी गायत्री के गौरव का कारण तथा जप की विधि नहीं जानते हैं। इन सब बातों का युक्तिप्रमाण सहित समाधान आप को सावित्री प्रकाश में मिलेगा। इस के अतिरिक्त अन्य अनेक आध्यात्मिक तत्व [आप] को इस में मिलेंगे। अनेक विद्वानों, तथा स[मा]चार पत्रों ने इस की प्रशंसा की है तथा इस[े] गायत्री मन्त्र को सर्वश्रेष्ठ व्याख्या बतलाया [है]। मूल्य १) डाकव्यय पृथक्। जो सज्जन १)[े] मनी आर्डर भेजेंगे उन से डाकव्यय नहीं [लिया] जायेगा:—

मन्त्री, विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर (जि सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

वेद-पथ

मासिक

❀ वैदिक आचार--विचार--व्यवहार--प्रसारक ❀

तृतीय वर्ष — इष = आश्विन २००७ वि० (१२६ द०) = अक्तूबर १९५० ई० — तृतीय अंक

ग्राहकों से प्रार्थना

जिन सज्जनों ने द्वितीय वर्ष के लिए चन्दा नहीं भेजा वे शीघ्र भेजने की कृपा करें। वी० पी० से जहां उनको व्यय अधिक होगा वहां पत्र मिलने में भी विलम्ब होगा ॥

व्यवस्थापक
'वेदपथ' मासिक
देहली

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा ५≡)
वी० पी० द्वारा ५।।)
एक प्रति ।।)

सम्पादक—
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल
ज्वालापुर, जि० सहारनपुर।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

१. श्रुति सुधा
२. कामना
३. यज्ञोपवीत विधायक ऋचाएं — लेखक–श्री स्वामी अभेदानन्द सरस्वती जी
४. परिवर्त्तन शील संसार — लेखक–क्रान्तदर्शी महाराज
५. मनुप्रोक्त आध्यात्मिक उपदेश संग्रह (११) — लेखक--श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान
६. अध्यात्म की प्रेरणा — लेखक--श्रीमान् आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी पंचवटी, नासिक
७. मानस तरङ्ग — लेखक--ब्र० श्री भूषण चैतन्य शास्त्री साहित्याचार्य लुधियाना
८. योग प्रकाश — लेखक--स्वामी वेदानन्द जी महाराज, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान
९. सम्पादकीय
१०. उपनिषत्सार — लेखक स्वामी वेदानन्द जी

आवश्यक सूचना

ग्राहकों की असुविधा को देखकर वेदपथ का प्रकाशन स्थान देहली कर दिया गया है। अब पत्र देहली से ग्राहकों के पास जाया करेगा। इस वास्ते अब प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यव 'वेदपथ' मासिक, पाटौदी हाऊस दरिया गंज, देहली के पते पर करने की कृपा करें। सम्पाद नाम पत्र, लेख यथापूर्व ज्वालापुर के पते पर भेजे जाएँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म् दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ०१।४१।४)

वेद पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल(हरद्वार) का मुखपत्र

द्वितीय वर्ष — देहली — इष=आश्विन २००७ वि० (१२६ द०)=अक्तूबर १९५० ई० — तृतीयांक

❀ श्रुति सुधा ❀

माधुर्य्य

ओ३म् । मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥ (अ: १।३४।३) ।

(मे) मेरा (निक्रमणम्) निकलना(मधुमत्) मधुर हो । (मे) मेरा (परायणम्) लौटना(मधुमत्) मीठा हो। मैं (वाचा) वाणी से (मधुमद्) मधुर (वदामि) बोलता हूँ, मैं (मधुसन्दृशः) मीठा दीखने वाला (भूयासम्) होऊं ।

निकलना तथा लौटना से तात्पर्य्य जाना, आना, चाल ढाल है। भाषा की कहावत है--'फूहड़ चले नौ घर हिले' अर्थात् जो व्यवहार में सुघड़ नहीं हैं, संस्कृत नहीं हैं, उन की गति विधि उद्वेजक हुआ करती है । वह आकर्षक होने के स्थान में पराक्षेपक=दूर फेंकने वाला होता है। इस से लोकसंग्रह न हो कर लोक विग्रह होता है। अतः वैदिक भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है—मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् मेरा जाना, आना, चलना फिरना, चालचलन आचार व्यवहार मधुमय हो। उस के लिये मैं वाणी से मधुर बोलता हूँ। तलवार का घाव भर जाता है, वाणी का घाव नहीं भरता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मीठे बोल का महत्व देखना हो तो गान पर ध्यान दो। जड़मति भी गान पर मुग्ध हो जाते हैं। कोकिल की कूज किस को आकर्षित नहीं करती। चाल ढाल के मधुमय होने का प्रमाण मीठा बोलना=मधुर भाषण है। वैदिक भक्त अपने मधुर भाषण का हेतु भी बता सकता है-- जिह्वा या अग्रे मधुमे जिह्वामूले मधुलकम्। (अ. १।३४।२ क्योंकि मेरी जिह्वा के अगले भाग में मधु है, और जिह्वा के मूल में भी मधु का स्रोत है। तात्पर्य्य यह कि मेरे अन्तरङ्ग में मधु है, अतः उस के भाव प्राकाशन के साधन वाणी में भी मधुरता है। भक्त कहा है—मधो रस्मि मधुरतः (अ.१।३४ मैं तो मधु से भी अधिक मधुर हूँ। वैदिक भक्त लोक संग्रह का अभिलाषी है, अतः भगवान् से प्रार्थना करता है कि भूयासं मधुसन्दृशः मैं मधुर दीखने वाला होऊं। अर्थात् जगत् भी मुझे मधुर माने।

स्वामी वेदानन्द

कामना

प्रभो, तू रस से भरपूर है, मैं रस का प्यासा हूँ;
तू कामना रहित है, में कामनाक्रान्त हूँ;
तू धीर गम्भीर है, मैं अधीर चंचल हूं;
तू अमृत है, मैं जन्ममरण के चक्र खा रहा हूँ;
तू सर्व ज्ञाननिधान है, मैं निपट अज्ञान हूँ;
तू सर्वत्र व्यापक है, मैं नितान्ता एक देशी हूँ;
तू महतो महीयान् है, मैं अति अल्पीयान् हूँ;
तू बलवानों से भी बलवान् है, मैं दुर्बलतम हूँ;
तू सब का विधाता है, मैं तेरा विधेय हूँ;
तू सर्वशक्तिमान है, मैं अतीव अशक्त हूं;
तू सकल गुणागार है, मैं गणगण हीन हूं;
तू त्रिलोकी का नाथ है, मैं निपट अनाथ हूँ;
तू सकलैश्वर्यसंपन्न है, मै सर्वथा अकिंचन हूं;
तू समग्रसंपत्संपन्न है, मैं नितान्त विपन्न हूँ;
तू सर्वसंसार का आधार है, मैं निराधार सा हूँ;
तू सर्वत्र समा रहा है, मैं बिना ठौर के हूँ;
तू अमल धवल है, मैं नितरां समल हूं;
तू सबके मल धो देता है, मैं अपना भी नहीं धो पाता
तू सब को त्राण दान करता है, मैं त्राण चाहता हूं;
तू सब का जीवन दाता है, मैं जीवन चाहता हूं;
तू देशकी परिधि से रहित है, मैं शरीर में बंधा हूं
तू कालके परिच्छेद से रहित है, मुझ पर काल आरूढ़
तू काल का भी काल है, मैं काल से कवलित हूं
तू विश्वम्भर है, मैं तो अपना उदर भी नहीं भर पाता
तू अगतिक गति है, मैं गति की खोज में हूं
तू सब का अवलम्ब है, मैं निरालम्ब हूं
तू निश्वेश्वर परमेश्वर है, मैं अनीश्वर हूं
तू आनन्द कन्द है, मैं निरानन्द हूं
तू सर्वदा एक रस है, मैं पल पल में बदलता

प्रभो! तुझ से मुझ में इतना अन्तर है, इत भेद है, किन्तु मेरी कामना है, तेरा सखा बनूं तू ही बता, यह कैसे संभव होगा? तू सब कामनाओं, भावनाओं को पूरा करता है, क मेरी यह छोटी सी कामना पूरी न करोगे नाथ! और कुछ न चाहिए, केवल तू चाहि तेरे बिना मुझे कहीं निस्तार नहीं दीखता नाथ! अपनाले, अपना बना ले, मेरा पन या गंवा, यह तेरे आधीन। प्रभो! क्या कहूँ और कुछ कहा नहीं जाता।

परमात्मा के सख्य का अभिलाषी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यज्ञोपवीत विधायक ऋचाएं

[श्रीमान् स्वामी अभेदानन्द सरस्वती जी महाराज]

आर्य्य लोग अपने सभी संस्कारों तथा क्रिया कलापों के लिए प्रायः संहितामात्र से आदेश, निर्देश की आशा रखते हैं। और रखें भी क्यों न जब कि "वेदो ऽखिलो धर्म्ममूलम् [=संपूर्ण वेद धर्म्म का मूल हैं] ही हमारी प्रधान घोषणा है। विद्वानों ने समय समय पर भाषणों और लेखों के द्वारा पर्य्याप्त सफलता के साथ इस दिशा में प्रयत्न किया है। वेद पथ के विज्ञ पाठकों के अवलोकनार्थ ऋग्वेद के तीन मन्त्रों को, जिन में उपवीत का स्पष्ट वर्णन आया है, अर्थ के साथ उद्धरण करते हैं—

(१) स सूर्य्यस्य रश्मिभिः परिव्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥ ऋ. ६।८६।३२

वह ज्ञान सूर्य्य की किरणों के साथ साथ यथार्थ ज्ञान के लिए तीन लड़ी वाले धागे को निर्माण कर धारण करना है और सार्वभौम ज्ञान की नई नई प्रयोग विधियों को आगे बढ़ाता हुआ जनता का नेता, पालक, रक्षक हो कर अपने योग्य स्थान को प्राप्त करता है।

इस मन्त्र में आए "त्रिवृतं तन्तुम्" [=तीन लड़ी वाले धागे को] शब्द स्पष्ट उपवीत की ओर संकेत कर रहे हैं।

[२] युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जयिमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ ऋ ३।८।४

सुन्दर वस्त्रधारी युवक परिवीत हो कर आया है, सचमुच विद्यानिष्णात हो कर अत्यन्त श्रेष्ठ हुआ है क्योंकि उत्तम विचार शील ध्यानी क्रान्तदर्शी देवत्व की इच्छा करने वाले महात्माओं ने मनसा से उस की उन्नति की है।

परिवीत और उपवीत सदृश शब्द हैं। स्नातक हो चुके का यह वर्णन है।

(३) यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः।
तमाहुतं नशीमहि ॥ ऋ. १०।५७।२

जो यज्ञ का उत्तम साधन रूप तन्तु [उपवीत का धागा] विद्वानों में प्रचलित है उस विधि विहित सूत्र को हम प्राप्त करें।

यह सामान्य जनों की कामना है। उस में तन्तु को यज्ञ का प्रसाधन कहा है। इस के आधार पर यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त होता है।

विस्तार भय से इन मन्त्रों की व्याख्या नहीं की। पाठक मनन करें और यह धारण करें कि यज्ञोपवीत का धारण करना तथा उस की तीन लड़ियों का होना वेदविहित एवं वेदमूलक है। इस के उपयोग के सम्बन्ध में पुनः कभी विचार करेंगे। इस समय इतना लिखना पर्य्याप्त है कि इस विद्या के चिह्न से अपेक्षा करना अच्छा नहीं है। यह हमारी संस्कृति का एक अंग है। अतः संस्कृति रक्षा की दृष्टि से उस का धारण करना नितान्त आवश्यक है।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिवर्त्तन शील संसार

[क्रान्तदर्शी]

'जगत्' शब्द का अर्थ है जो निरन्तर चलता रहे, ठहरे नहीं । उसी प्रकार संसार शब्द का अर्थ है जो लगातार खिसकता रहे, सरकता रहे । इसी प्रकार इन के संस्कृत में जितने पर्य्यायवाची शब्द हैं उन सब के अर्थों में अस्थिरता की ध्वनि पायी जाती है । लगातार चलते रहने, खिसकते रहने का सीधा भाव यही है कि परिवर्त्तन अनिवार्य्य है । नित्य जीव को भी सुखसंयोग सुखवियोग आदिविविध अवस्थाओं से संबद्ध होना पड़ता है । अविकारी, अपरिवर्त्तन शील केवल एक परमात्मा ही है । शेष सब में किसी न किसी प्रकार का परिवर्त्तन होता ही है ।

राजाओं को राज्य का, धन्नयों को धन का अभिमान होता है । वेद धन की अस्थिरता का वर्णन इन शब्दों में करता है—

ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः

॥ ऋ.१०।११७५

अरे धन रथ के पहियों की भांति परिवर्त्तन शील हैं । वे एक से दूसरे के पास जाते रहते हैं ।

इस की यथार्थता के लिये कुछ उदाहरण उपस्थित करना अप्रासंगिक न होगा । संवत १९७१ (सन १९१४) से पूर्व योरुप की जो दशा थी, आज उस में महान् अन्तर आ चुका है । कई देश जिन के राजाओं की धाक थी आज वर्गवादी शासन पद्धति के अनुयायी हैं, और उन के राजा इधर उधर भटक रहे हैं ।

युगोस्लाविया के युवक राजा पीटर को मार्शल टीटो ने देश त्यागने पर विवश किया । सं २००२ वि० से वह निर्वासित है । उसी की आयु इस समय २७ सत्ताईस वर्ष है । वह अपने निर्वासन को दार्शनिक दृष्टि से विचारता है । वह जब किसी होटल में जाता है तो अपने नाम के साथ 'भूतपूर्व राजा, लिखने में आनन्द मानता है । एक समय वह संसार के धनिक राजकुमारों में से था । उस के पिता ने उस के लिये ढाई करोड़ रुपयों की विपुल सम्पत्ति छोड़ी थी जो अधिकतर बिदेशों में सुरक्षित थी। किन्तु आज यह दशा है कि वह अपने परिवार का उचित रीति से पालनपोषण नहीं कर सकता। उस की धर्म्म पत्नी एलेक्जेंडरा यूनान देश की राजकुमारी है । उस का एक पुत्र है जिस की आयु इस समय पांच वर्ष है । पेंटर अपने परिवार समेत अधिकतर पैरिस तथा मोनाको में रहता है । अब वह लण्डन में निवासस्थान की खोज में है गत वर्ष पैरिस के एक न्यायालय ने पीटर को ढाई लाख रुपये दिलवाए जो उसके पिता ने पैरिस के एक बैंक में निक्षेप (अमानत) रखे थे । किन्तु मार्शल टीटो ने उस की सब लाख मासिक पेन्शन बन्द कर दी । उस की सम्पत्ति छीन ली तथा उसे युगोस्लाविया के दैशिक होने के अधिकारों से वञ्चित कर दिया । अतः पीटर अब किसी कार्य्य की खोज में है । वह उत्तम यन्त्रिक (mechanic) है मोटर के इंजनों के साथ खटपट करने में सुख अनुभव करता है, तथा अपना वायुयान आप चलाता है ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रूमानिया का राजा माईकल भी अपने देश से निर्वासित है। उस की प्रवृत्ति भी यान्त्रिक है। वह निर्वासित राजाओं में सब से अधिक निर्धन है। वह भी कार्य्य की खोज में है। उस की ढाई करोड़ रुपयों की सम्पत्ति रूमानिया में है किन्तु वर्त्तमान शासक उसे उस का उपयोग नहीं करने देते। उस की इस सम्पत्ति में १५६ दुर्ग बहुमूल्य मुकुट के हीरे तथा अमूल्य कला संग्रह है। किन्तु इस निर्वासन से माईकल को एक लाभ भी हुआ है। जब वह लण्डन में था, तब उस का अपनी रक्तसम्बन्धिनी राजकुमारी अएणे से परिचय हुआ। एक दूसरे को मिलने से दोनों में प्रेम हो गया। धार्मिक आदि कई प्रकार की बाधाएं होते हुए भी उन का एथन्स में विवाह हो गया। स्विट्ज़रलैंड में उस का एक छोटा सा घर है। अब उस के दूसरा सन्तान होने की भी सम्भावना है। माईकल अपना वायुयान स्वयं चलाता है। वह बुखारेस्ट के एक मोटरों के कारखाने में कार्य्य करता रहा है। वह प्रभूतमात्र में यात्राएं करता है। अपना परिचय होहेनज़ोल्लर्न का राज कुमार माईकल के नाम से देता है, निर्वासन से पूर्व उस ने रूमानिया से नात्सियों के अधिकार समाप्त करने में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

मिश्र के अलेक्जेंडरिया नगर में दो निर्मुकुट निर्वासित राजा रहते हैं। अलबानिया का बूढ़ा राजा ज़ांग तथा बलगेरिया का बालक—१३ वर्षीय राजा साईम्योन।

साईम्योन अपनी माता के साथ शांति से एक कोठी में रहता है। वह छः वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा जब कि उस के पिता की हत्या कर दी गई थी। तीन वर्ष बाद उसे जनता का राज्य होने पर उसे देश छोड़ना पड़ा। उन की आर्थिक स्थिति की कल्पना इसी से की जा सकती है कि उस की माता ने अन्त जातीय शरणार्थि संघ से पूछा है कि विस्थापित होने से उसे संघ से सहायता मिल सकती है या नहीं। उसे उत्तर मिला है कि विधिपूर्वक प्रार्थना पत्र भर कर भेजे। साईम्योन की माता इटली की राजकुमारी है। इटली के भूतपूर्व राजा विक्टर इम्मानुएल की सम्पत्ति पर उस का भी अधिकार है। इटली के एक न्यायालय ने उस के इस अधिकार को स्वीकार किया है। यदि यह संपत्ति मिल गई तो पुत्र तथा माता को भिक्षा न लेना पड़ेगी।

ज़ोग एक डकैत सरदार का पुत्र है। उस ने अपने पुरुषार्थ से अपने लिये एक राज्य का निर्माण किया। और बल्गेरिया की एक राजकुमारी से विवाह किया। सं १९९६ (सन् १९३९) में जब इटली ने अल्बानिया पर आक्रमण किया वह अपनी रानी समेत भाग गया। उसे आशा थी युद्ध समाप्ति के पश्चात् उसे बुला लिया जाएगा किन्तु देश की राजनैतिक परिस्थिति और हो गई। ज़ोग अपने आप को आज कल 'श्येन पुत्र प्रधाना (chief of the sons of the Eagle) कहता है। वह अपेक्षाकृत सुखी है। उस ने नाशोन्मुख संपत्ति में से चार लाख रुपए बचा लिये और अभी पिछले दिनों उसे यूनान से सवा करोड़ रुपयों का सुवर्ण प्राप्त हुआ है।

दैवदुर्विपाक उस को पराजित कर के देश से भागने पर विवश करने वाला इटली का राजा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विक्टर भी उस का पड़ौसी हो गया। देश से निर्वासित होने पर उसे यहीं आश्रय मिला था। अब उस का देहान्त हो गया है।

भारत के लगभग छः सौ राजा भी अब राजा नहीं रहे। तीन चार शेष हैं। उन के दिन भी पूरे होते दीख रहे हैं। किन्तु ये भारतीय राजा भाग्यवान् तथा बुद्धिमान् थे। वायु का प्रवाह देख कर, काल चक्र का अनुभव कर के प्रेरणा मिलने पर इन्हों ने स्वयं ही राज्य पाठ त्याग दिया। अतः उन्हें उस भीषण आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा और न ही निर्वासन के अपमान से अपमानित होना पड़ा।

टर्की का खलीफ़ा टर्की से निर्वासित हुआ तो हैदराबाद के निज़ाम ने उस के भरण पौषण की व्यवस्था की। रूस का ज़ार सपरिवार मृत्यु के घाट उतार दिया गया। जर्मन का कैसर देश में वापस न आ सका।

अभी थोड़े दिनों की बात है, बेल्जियम का राजा ल्योपोल्ड निर्वासन से लौटा किन्तु प्रजा के दबाव पर राज मुकुट अपने पुत्र के सिर धर पुनः देश से निर्वासित होने पर विवश हुआ है।

सामान्य प्रजा की चर्चा हम ने जान बूझ कर नहीं की। जिन राजाओं का कल आतंक था, आज वे स्वयं आतंक में हैं। किन्तु लोग इस से शिक्षा ग्रहण करते नहीं प्रतीत होते। उन्हें यह विश्वास है कि उन की दशा में कोई परिवर्त्तन न होगा। वे इसी भांति अपनी स्थिति में स्थिर रहेंगे। कदाचित् ऐसे के लिए ही कहा गया है—पश्यन्नपि न पश्यति मनुष्य देखता हुआ भी नहीं देखता है।

मनुप्रोक्त आध्यात्मिक उपदेश संग्रह—११

प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोपि विधिवत्कृताः।
व्याहृति प्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः॥ ६।७०

व्याहृति और प्रणव से युक्त तीन भी प्राणायाम विधिपूर्वक किए हुए ब्राह्मण के लिये परम तप जानना चाहिये।

[भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्—ये सात व्याहृति कहलाती हैं। ओ३म को प्रणव कहते हैं। 'ओ३म् भूः, ओ३म् भुवः, ओ३म् स्वः, ओ३म् महः, ओ३म् जनः, ओ३म् तपः, ओ३म् सत्यम्' इतना प्राणायाम मन्त्र है। अर्थात् प्राणायाम करते समय इस का मानसिक जाप करना चाहिये।]

प्राणायाम के परम तप होने हेतु में देते हैं—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ ६।७१

जैसे धौंकाई जाती हुई धातुओं के मल जल जाते हैं, वैसे ही प्राण के निग्रह से (प्राणायाम से) इन्द्रियों के दोष जल जाते हैं।

[योगदर्शन में प्राणायाम का फल बताते हैं—ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् (२।५२)=प्राणायाम के द्वारा ज्ञान प्रकाश पर का आवरण नष्ट होता है। जैसे अंगारों पर राख का परदा आ जाता है। फूंक से उसे दूर करने पर अंगारों का ताप तथा तेज पूर्ववत् प्रदीप्त हो जाता है, ऐसे ही इन्द्रियों की शक्ति प्राणायाम से बढ़ती है, केवल इतना ही नहीं, वरना 'धारणासु च योग्यता मनसः'

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मन धारणा के योग्य हो जाता है ।

प्राणायामैर्दहेद् दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ ६।७२

अतः मनुष्य प्राणायामों के द्वारा दोषों को जलाए, धारणाओं के द्वारा किल्बिष को, प्रत्याहार के द्वारा संसर्गों को=आसक्ति को तथा ध्यान के द्वारा अनीश्वर गुणों को जलाए।

[प्राणायाम प्रत्याहार धारणा तथा ध्यान के फल संक्षेप में बताए गए हैं । मनुष्य के इन्द्रियों, तथा मन में तथा उन के कारण इन्द्रियों में जो दोष, त्रुटियां आ जाती हैं । उन को दूर करने के मनु जी ने सब योगियों के अनुभव से सिद्ध साधन यहां बताए हैं । ध्यान के द्वारा ईश्वर गुणों की प्राप्ति होती है ।]

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन संपश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ६।७३

अपरिष्कृत आत्माओं के विविध प्रकार के प्राणियों में इस अन्तरात्मा की दुर्ज्ञेय गति विधि को ध्यान योग के द्वारा मनुष्य भली प्रकार देखे।

विविध प्रकार की योनियों में आत्मा की दशा को साधारण प्राकृत मनुष्य अनुभव नहीं कर सकते । इसके लिए ध्यान योग का अनुष्ठान साधन है। उस से इन विविध योनियों में आत्मा की दुरावस्था का अनुभव कर के मनुष्य विषय वासना से परे हटता है।]

सम्यग्दर्शन संपन्नः कर्म्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ६। ७४

ध्यान योग के द्वारा यथार्थ ज्ञान संपन्न मनुष्य कर्मों से नहीं बंधता, किन्तु दर्शन=ज्ञान से विहीन मनुष्य संसार को प्राप्त होता है।

[वात्स्यायन मुनि न्याय दर्शन १-१-२ के भाष्य में कहते हैं—'त इमे मिथ्याज्ञानादयो दुःखान्ता धर्म्मा अविच्छेदेन प्रवर्त्तमान संसार इति।'=मिथ्या ज्ञान से ले कर दुःख पर्य्यन्त (मिथ्या ज्ञान, दोष, प्रवृत्ति, जन्म और दुःख) धर्म्म ही संसार है यदि ये लगातार बने रहे। जिसे यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ, मिथ्या ज्ञान के कारण वह राग, द्वेष मोह दोषों का वशवर्त्ती होगा । उन के कारण भली बुरी प्रवृत्ति करेगा और उन के फल स्वरूप दुःख रूप जन्म पाएगा।

अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्म्मभिः ।
तपश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ ६।७५

साधक लोग अहिंसा, इन्द्रियासक्ति, वैदिक कर्म्मों और उग्र तपश्चर्य्याओं के द्वारा इसी जन्म में उस परम पद को सिद्ध करते हैं।

[अहिंसा के द्वारा विश्वप्रेम, इन्द्रियासक्ति से असंगति, विषय से निर्लेपता, वैदिक कर्मों के द्वारा अंतःकरण की शुद्धि तथा तप के द्वारा आत्मा की शुद्धि कर के इसी जीवन में मुक्ति प्राप्त कर ली जा सकती है । मनु जी ने संक्षेप में वैदिक धर्म्म का मर्म बतला दिया है । मुक्ति वैदिक धर्म का अन्तिम साध्य है। उस के साधन अहिंसा आदि हैं । इन के अनुष्ठान से अवश्य कल्याण होगा, ऐसा मनु जी कह रहे हैं।]

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ।
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ ६।७६

अपने प्रियों के प्रति भलाई और अप्रियों के प्रति बुराई का त्याग कर के, ध्यान योग के द्वारा मनुष्य सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है।

[अपने पराये का विचार त्याग कर सब को अपना मानने से मनुष्य का परम कल्याण होता है । 'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—यह अपना है, वह पराया है, यह तुच्छ हृदय वालों का विचार है। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्—किन्तु उदार हृदय मनुष्यों का तो सारा संसार परिवार है। इस आशय वाला अवश्य परमात्मा को पाता है।]

प्राणायाम का अर्थ है प्राण को दीर्घ कर के अपने वश में करना। साधारणतया नाक के द्वारा आने वाले वायु को प्राण कहा जाता है। किन्तु वास्तव में यह गौण अर्थ है। इस का मुख्य अर्थ है जीवन शक्ति Vitality। जीवन शक्ति को दीर्घ करना और वश में करना वास्तविक प्राणायाम है। जीवन्नरो भद्रशतानि पश्यति मनुष्य जीता हुआ सैंकड़ों कल्याणों के दर्शन करता है। मरना कोई पुरुषार्थ नहीं है। जीने से भी बढ़ कर जीने को अपने आधीन करना है। किन्हीं विरले योगियों को छोड़ कर सामान्य मनुष्यों का अपने जीवन पर कोई अधिकार नहीं, जीवन पर अधिकार प्राप्त करने के प्राणायाम विज्ञान का अनुष्ठान एक परमावश्यक उपाय है।

प्राणायाम के अनुष्ठान की विधि किसी योगी से सीखना उचित है, तथापि हम यहां एक ऐसी विधी लिखते हैं जिस के करने में किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती, लाभ ही लाभ होता है।

"जैसे अत्यन्त वेग से वमन हो कर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर फैंक के बाहर ही यथा शक्ति रोक देवे, जब प्राण को बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखे तब तक प्राण बाहर रहता है। इस प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे २ भीतर वायु को ले के फिर भी वैसे ही करता जाए जितना सामर्थ्य और इच्छा हो और मन में (ओ३म्) इस का जाप करता जाए। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।" (स० प्र०)

आजकल की परिभाषा में बाहर निकालने को रेचक, भीतर लेने को पूरक तथा भीतर अथवा बाहर रोकने को कुम्भक कहते हैं। इस का फल ऋषि ने इस प्रकार बताया है—"प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहन करती है। इस से मनुष्य, शरीर में वीर्य्य बुद्धि को प्राप्त हो कर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।"

प्रत्याहार का लक्षण योग दर्शन में इस प्रकार किया—'स्वविषया सम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः (२।५४) इन्द्रियों का अपने विषयों से हट जाने पर चित्त आत्म शक्ति के अनुसार हो जाने को प्रत्याहार कहते हैं।

इस का फल है—ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् (यो० २।५५ इस से इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है।

धारणा का लक्षण है—देहबन्धश्चित्तस्य धारणा (यो० ३।४) शरीर में किसी स्थान पर मन के लगाना धारणा है। वही धारणा यदि अविच्छिन्न बनी रहे, बीच में टूटे नहीं तो ध्यान हो जाती है। जैसा कि योग दर्शन में कहा है—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (३।२)—अर्थात् धारणा में ज्ञान की एक धारा का नाम ध्यान है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मसत्कार

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथाऽत्मनः ।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ ८।८४

आत्मा ही आत्मा का साक्षी है तथा आत्मा ही आत्मा की गति है। अतः मनुष्यों के श्रेष्ठ साक्षी अपने आत्मा का अवमान=अवज्ञा=तिरस्कार मत करो।

[मनुष्य के मन में जब पाप की भावना उठती है तब अन्दर से धिक्कार की ध्वनि उठती है। आत्मा समझता है अहो यह पाप है। इन्द्रियों के संपर्क से जब आत्मा छूटता है तब वह अपने स्वरूप को पाने में समर्थ होता है इसी लिए मनु जी ने कहा—गतिरात्मा तथा आत्मनः। आत्मा कृतकर्म्मों का साक्षी है। दूसरे स्थान पर मनु जी ने कहा है—नात्मानमवसादयेत्पूर्वाभिरसमृद्धिभिः=पहले की त्रुटियों के कारण आत्मा को खिन्न न करे। तात्पर्य्य यह कि आत्मा को तुच्छ न माने।

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तपूरुषः ॥ ८।८५

पाप करने वाले मनुष्य यह मानते हैं कि कोई नहीं देखता है। [वे भूल में हैं क्योंकि] उनको तो दैवी शक्तियां तथा अपना अन्तरात्मा भली भांति देख रहे हैं।

[यदि मनुष्य को आत्मा की सत्ता पर पूर्ण विश्वास हो तो पाप में उस की प्रवृत्ति हो नहीं सकती। आत्मा की सत्ता पर दृढ़ विश्वास से मनुष्य को आत्मा के आत्मा अन्तरात्मा पर श्रद्धा होती है और उस की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता पर आस्था होने से मनुष्य की पापवासना नष्ट हो जाती है। अतः मनुष्य को आत्मा का स्वरूप जानने तथा पहचानने का प्रयत्न मुख्य रूप से करना चाहिये।]

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः
रात्रिःसन्ध्ये च धर्म्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥८।८६

द्यौ, भूमि, जल, हृदय, चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि, वायु, रात्रि, दोनों सन्ध्याकाल, और धर्म्म में सब प्राणियों के वृत्त=चरित को जानते हैं।

[तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य यह समझ कर कि मुझे कोई नहीं देख रहा, पाप करता है तो उसे यह सोचना चाहिये कि ये दैवी शक्तियां उस के पाप पुण्य की साक्षी हैं। सब से प्रबल साक्षी हृदय है। हम ने इस श्लोक को इस दृष्टि से यहां दिया है। सार यह कि मनुष्य का अपना हृदय अपने कृतकार्यों का सब से बड़ा साक्षी है। महात्माओं में एक उपदेश प्रचलित है—'सब को धोखा दो किन्तु अपने आत्मा को धोखा मत दो' जब कोई मनुष्य पाप करने लगता है तो आत्मा के विरुद्ध चलने से वह आत्मा को धोखा देना होता है। आत्मप्रवंचन तो भयङ्कर पाप है।]

निःश्रेयस्कर=मोक्षसाधक

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरंपरम् ॥ १२।८३

वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा तथा गुरु सेवा सर्वोत्कृष्ट मोक्षसाधक हैं।

[मुक्ति प्राप्ति के साधनों में गुरु सेवा का निर्देश मनन करने योग्य है। कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य का ज्ञान, साधनों का अनुष्ठान गुरु ही सिखाता है। साधक यदि गुरु की अपेक्षा करता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है तो गुरु को क्या पड़ी है कि वह उस के पीछे भटकता फिरे। साधन करते समय आने वाली अड़चनों को भी गुरु ही दूर करता है। अतः गुरु का मान वैदिक धर्म्म में अतिमात्र है। हां गुरु, गुरु होना चाहिये।]

सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्म्मणाम्।
किंचिच्छ्रेयस्करतरं कर्म्मोक्तं पुरुषं प्रति॥ १२।८४

इस संसार में इन सभी कर्म्मों में पुरुष के प्रति कोई एक कार्य्य अधिक कल्याण कारक है।

[शुभ कर्म्म अनेक तथा अनेक प्रकार के हैं। कोई शुभ है, कोई शुभतर है, कोई शुभतम है। इस का विवेक करके यथासंभव शुभतर, शुभतम कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। उन का अनुष्ठान करते हुए आत्मा के निःश्रेयस= कल्याण =मोक्ष का अवश्य विचार कर लेना चाहिए। कर्म्म तो आत्मा के लिए ही किए जाते हैं। अतः कर्म्म करते हुए आत्म कल्याण की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।]

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानम् परं स्मृतम्।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविधानम् प्राप्यते ह्यमृतं ततः॥ १२।८५

इन सभी में आत्मज्ञान को सब से श्रेष्ठ माना जाता है। क्यों कि वह सब विद्याओं का अगुआ है, यतः उसी से मोक्ष प्राप्त होता है।

[ज्ञान के समान कोई पवित्र कारक नहीं, किन्तु ज्ञानों में भी आत्मज्ञान सर्वतो महान् है। समस्त संसार को जान लिया, किन्तु अपने आप को न जाना तो कुछ भी नहीं जाना। ये सभी ज्ञान आत्मज्ञान के परिष्कार के लिए हैं। आत्मा का ज्ञान होने पर आत्मपदार्थों में रति नहीं रहती, अतः वह मृत्युपाश से छूट जाता है। अनात्मपदार्थों में रति आत्मा को जन्म मरण के चक्र में फिराया करती है]

षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्म्मणां प्रेत्य चेह च।
श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म्म वैदिकम्॥ १२।

इन छः तथा अन्य सब कर्म्मों में वैदि कर्म्म को ही लोक परलोक में सदा सब अधिक कल्याण कारक मानना चाहिये।

[८३ वें श्लोक में कहे वेदाभ्यास आ छः कर्म्मों में साध्य आत्मज्ञान जिस का व ८५ वें श्लोक में है) अधिक कल्याण कारी आत्मज्ञानी इस लोक में भी सुखी रहता परलोक में मुक्ति लाभ करता है। अर्थात् आ ज्ञान साधन सर्वोत्तम वैदिक कर्म्म है। वे भ्यास किया और आत्मा को न जाना तो वे भ्यास व्यर्थ है जैसा स्वयं वेद में कहा है यस्तन्न वेदकिमृचा करिष्यति=जो परमात्मा नहीं जानता वह वेद से क्या करेगा। आत्मज्ञान सर्वश्रेष्ठ है।]

वैदिके कर्म्मयोग तु सर्वाण्यतान्यशेषतः।
अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन् क्रियाविधौ॥ १

ये सब कर्म्म क्रमशः उस क्रियावि संपूर्णतया अन्तर्गत हो जाते हैं।

[वैदिक कर्म्म योग से अभिप्राय परम पासना रूप आत्म ज्ञान से है। ये वेदाभ्या समस्त कर्म्म उस के अंग हैं। यथा वेदाभ्य तपः, ज्ञान नियम हैं, इन्द्रिय संयम=ब्रह्म अहिंसा ये यम हैं। इन के साधन की प्र का ज्ञान गुरु से प्राप्त होता है। इस प्र अन्य शुभ कर्म्म भी इस आत्मज्ञान की प्र कराने वाले वैदिक कर्म्म योग के अङ्गभूत हैं

सुखाभ्युदयिकं चैव नैः श्रेयसिकमेव च।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म्म वैदिकम्॥ २

सांसारिक सुखोन्नतिकारक तथा निः

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निःश्रेयसकर=मोक्षसाधक कारक तथा प्रवृत्ति निवृत्ति रूप दोषकार का वैदिक कर्म्म है।

[कर्म्म, अकर्म्म, विकर्म कर्म की तीन गतियां हैं। उल्टा कर्म्म विकर्म्म तथा अकर्म वेद में निषिद्ध है कर्म्म के भी दो भेद हैं एक सांसारिक सुखों की उन्नति दूसरा मोक्ष साधन। एक और प्रकार से भेद किया जाता है, वह है प्रवृत्त तथा निवृत्त उस की व्याख्या अगले श्लोक में है]

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म्म कीर्त्यते।
निष्कामं ज्ञानपूर्वन्तु निवृत्तिमुपदिश्यते ॥ १२।८६

इस लोक अथवा परलोक संबन्धी किसी कामना से किए गए कर्म्म को प्रवृत्त कहते हैं। ज्ञानपूर्वक निष्काम कर्म्म को निवृत्त कहते हैं।

[मनु जी काम्य कर्म्म को प्रवृत्त कहते हैं। और कर्म्म नित्य, नैमित्तिक, काम्य तीन प्रकार के होते हैं। काम्य भी शुभ होते हैं, उन की अपेक्षा नैमित्तिक शुभतर तथा नित्य शुभतम होते हैं। यदि वे कामना रहित हों, केवल कर्त्तव्य बुद्धि से हों तो वे निष्काम होंगे।]

प्रवृत्तं कर्म्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम्।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥ १२।६०

प्रवृत्त कर्म्म का भली भांति सेवन करके मनुष्य देवों की समता को प्राप्त करता है। निवृत्त का सेवन करने वाला तो पंच भूतों को उल्लंघन कर जाता है।

[समस्त भूत किसी न किसी कार्य्य में लगे हैं। किसी न किसी कार्य्य में लगा रहना जड़ देवों की समता प्राप्त करना है। किन्तु इस से ऊपर उठ कर ज्ञान पूर्वक निष्काम कार्यों का अनुष्ठान कर के आत्म ज्ञान प्राप्त करना जड़ता से ऊपर उठना है।]

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥ १२।६१

सब भूतों में परमात्मा और परमात्मा में सब भूतों को समान रूप से जानने वाला आत्मयाजी मनुष्य स्वाराज्य=मुक्ति को प्राप्त करता है।

[य ४०।६ में कहा है—यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ जो सब भूतों को परमात्मा में और सब भूतों में परमात्मा को देखता है वह संशय रहित हो जाता है। मनु का श्लोक इस वेद मन्त्र का अनुवादमात्र है।]

यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥ १२।६२

ब्राह्मण, सन्यासी यथोक्त कर्मों का त्याग कर के भी आत्मज्ञान, शम तथा वेदाभ्यास में यत्नवान होवे।

[श्रेष्ठ कर्म्मों में ये तीन श्रेष्ठ हैं। सर्वश्रेष्ठ आत्मज्ञान है, यदि उस से शम=शान्ति प्राप्त हो जाए। आत्म ज्ञान तथा वेदाभ्यास की सिद्धि की कसौटी ही शम है। शम का साधन आत्मज्ञान और आत्म ज्ञान का साधन वेदाभ्यास तथा तदनुसार अनुष्ठान है।]

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः।
प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥ १२।६३

विशेष कर ब्राह्मण की यही जन्म सफलता है, क्योंकि इसे प्राप्त कर के द्विज कृतकृत्य हो जाता है किन्तु अन्य किसी उपाय से नहीं।

[पढ़ाने से जो न पढ़ सके, वह शूद्र। शेष का वेदाभ्यास में अधिकार है, गुणकर्म से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्राह्मण का कार्य्य वेद पढ़ने के साथ पढ़ाना भी है, अतः उसकी सफलता इस में है कि वह वेदाभ्यासी, आत्मज्ञानी तथा शमी हो ।]

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुःसनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥ १२।९४

पितृ (सकाम ज्ञानी) देव (निष्काम ज्ञानी) तथा सामान्य मनुष्यों के लिए वेद सनातन नेत्र हैं । सिद्धान्त यह है कि वेद रूपी शास्त्र किसी मनुष्य की रचना नहीं है और न ही इस का पूर्ण ज्ञान किसी एक मनुष्य में संभव है ।

[वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है अतः सभी प्रकार के मनुष्यों को यह यथार्थ मार्ग प्रदर्शक होने से चक्षु तुल्य है । वेद नित्य है अतः यह सनातन चक्षु है । मनु जी बतलाते हैं वेद किसी मनुष्य से नहीं रचा जा सकता । अर्थात् परमात्मा की रचना है ।]

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ १२।९९

वेद रूपी सनातन शास्त्र सर्व प्राणियों का पालन करता है, इसी लिए मैं इसे सर्वश्रेष्ठ मानता हूं, क्योंकि यह इस जीव का जीवन साधन है ।

[वेद में बलिवैश्वादि यज्ञों का विधान होने से सब प्राणियों की रक्षा का उपदेश है । सब से बढ़ कर यह कि यह प्राणी के परम लक्ष्य मोक्ष का साधन है ।]

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठाः ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥
१२।१००

मूर्खों की अपेक्षा ग्रन्थी श्रेष्ठ हैं, ग्रन्थियों की अपेक्षा धारी उत्तम हैं । धारियों से ज्ञा[नी] श्रेष्ठ हैं और ज्ञानियों से तदनुसार कर्म्म क[रने] वाले बढ़िया हैं ।

[ग्रन्थों की रक्षा करने वाले मनुष्य मू[र्खों] की अपेक्षा उत्तम हैं, क्यों कि ग्रन्थ रक्षा से [ ] ज्ञान की रक्षा होती है । ग्रन्थ रखने मात्र वा[लों] की अपेक्षा धारी = कण्ठ करने वाले, उन[की] अपेक्षा उन को समझने वाले तथा उन[की] अपेक्षा तदनुसार आचरण करने उत्तरो[त्तर] श्रेष्ठ हैं । ज्ञान का पर्य्यवसान अनुष्ठान में है ।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्यामृतमश्नुते ॥ १२।१०[४]

तप तथा ज्ञान ब्राह्मण के लिए परम कल्या[ण] कारक है । तपसे वह किल्विष का नाश क[रता] है और ज्ञान से मोक्ष प्राप्त करता है ।

[यह श्लोक य० ४०।१४ का अनुवाद है । वह मन्त्र यह है—"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वे[दो]भयꣳसह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्या[मृत]मश्नुते ॥ = जो मनुष्य विद्या = ज्ञान तथा अवि[द्या] = कर्म को साथ रहने वाला जानता तथा तद[नु]सार करता है वह अविद्या = कर्म के द्वारा [मृत्यु] = किल्विष को पार कर के विद्या के द्वारा [मोक्ष] प्राप्त करता है ।]

सर्वमात्मनि संपश्येत् सच्चासच्च समाहि[तः] ।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥ १२।[ ]

सावधान हो कर सभी सत् = व्यक्त तथा अ[सत्] = अव्यक्त पदार्थों को आत्मा के निमित्त सम[झे] । सब को आत्मा के निमित्त समझने वाला पा[प में] मन नहीं लगाता । अथवा सावधान हो कर [व्यक्त] अव्यक्त सभी पदार्थों को परमात्मा में [स्थित] समझे, क्यों कि सब को परमात्मास्थ मानने [वाला] पाप में मन नहीं लगाता ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

[पाप से बचने का उपाय यह है कि इस सृष्टि को आत्मा के भोग मोक्ष के लिए माने तब जो प्राप्तव्य है, वह अवश्य मिलेगा ही। ऐसा निश्चय होने से अन्याय कर्मों से हट जाएगा। अथवा परमात्मा को सर्वाधार मानने से पाप प्रवृत्ति से निवृत्ति हो सकती है।

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम्॥ १२।११९

परमात्मा ही सब देवता है। सब कुछ परमात्मा में स्थित है। इन प्राणियों के कर्म फल को परमात्मा ही उत्पन्न करता है।

[जो भी दिव्य गुण हैं वे सब परमात्मा के हैं। इन जड़ या चेतन पदार्थों में परमात्मा की सत्ता के कारण विभूतिमत्ता है। यही परमात्मा सब के कर्मों का फल देता है। जब परमात्मा कर्म फल प्रदाता है तब मनुष्य को निष्काम होकर कर्म्म करने चाहिए। फलदाता फल देगा ही।

परमात्मा-[अन्तर्यामी]

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः॥ ८।९१

भले मनुष्य। यह जो तू मान रहा है कि तू अकेला है [यह तेरी भूल है क्यों कि] यह पुण्य पाप का साक्षी भगवान् सदा तेरे हृदय में स्थित है।

[जो लोग यह मानते हैं कि आत्मा के अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं है। मनु जी प्यार से समझाते हैं कि भाई तुम्हारे पाप पुण्यों का साक्षी तुम्हारे हृदय में विद्यमान है। आत्मा जब अज्ञान वश पापानुष्ठान में प्रवर्त्तमान होने लगता है तब उसे कौन सावधान करता है? अरे वही परमात्मा है। पिछले प्रकरण में परमात्मा को कर्म्म फल प्रदाता बताया गया है। इस श्लोक में कर्म्म फल प्रदातृत्व के हेतु बताया गया है कि वह सब प्राणियों के पुण्य पापों का साक्षी = ज्ञाता है। अर्थात् परमात्मा सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ होने से वह यथा योग्य सब के कर्मों का फल देने में समर्थ है। उस सर्वज्ञ परमात्मा की सत्ता स्वीकार करने से मनुष्य पाप से बच जाता है। जो लोग केवल परमात्मा की सत्ता स्वीकार करते हैं अपनी आत्मा को भी परमात्मा मानते हैं, मनु जी कहते हैं कि अपनी सत्ता का अपलाप कौन बुद्धिमान कर सकता है। अतः उन्हों ने इस अद्वैतवाद के खण्डन की आवश्यकता ही नहीं समझी।]

परमात्मा के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन करते हैं—

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥ १२।१२२

उस परम पुरुष को मनुष्य सब का प्रशासिता = शुभप्रेरक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर, तेजोमय, योग बुद्धि से प्राप्य जाने।

[संसार में जितने शुभ कर्म हैं उन सब का प्रेरक परमात्मा है। इन सब प्राकृत पदार्थों का मूल प्रकृति सूक्ष्म है। सूक्ष्म प्रकृति से चेतन जीव सूक्ष्मतर है। परमात्मा उन जीवों से भी सूक्ष्मतर है। उपनिषदों में इसे "अणोरणीयान्" कहा गया है। वेद में परमात्मा को हिरण्यगर्भ कहा है, मनु जी ने रुक्माभ कहा है। स्वप्नधीगम्य का भाव सुषुप्ति दशा के ज्ञान समान ज्ञान से वह जाना जा सकता है। सुषुप्ति दशा समाधि के समान होती है। स्वप्नधीगम्य का अर्थ बना समाधिगम्य।]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् । १२।१२३

इस परम पुरुष को कोई अग्नि कहते हैं, दूसरे उसे मनु, कई प्रजापति, कई उसे इन्द्र, कई प्राण और दूसरे उसे शाश्वत ब्रह्म कहते हैं।

[भगवान् के विविध नाम हैं। उनमें से कुछ एक नामों का निर्देश यहां कर दिया गया है यथा अग्नि, मनु, प्रजापति, इन्द्र, प्राण तथा शाश्वत ब्रह्म। अर्थात् अग्नि, प्राण, मनु, प्रजापति, इन्द्र उसी शाश्वत ब्रह्म के नाम हैं। जो लोग अग्नि आदि का अर्थ आग आदि करते हैं, वे इस श्लोक का मनन करें। इन नाना नामों का मूल यौगिक वाद है। धातु और प्रत्यय के अनुसार अर्थ करने की पद्धति को यौगिकवाद कहते हैं]।

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्त्तिभिः।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ १२।१२४

यह परम पुरुष पंच भूतों के साथ सब भूतों में व्याप्त हो कर चक्र के समान सब भूतों को जन्म, वृद्धि तथा क्षय के द्वारा नित्य संसारस्थ करता रहता है।

[अर्थ, जन्म, वृद्धि तथा क्षय की व्यवस्था उसी परम पुरुष के हाथ में है। जैसे पहिया घूमता रहता है, वैसे ही ये जीव भी अपने कर्मों के अनुसार जन्म मृत्यु के चक्र में घूमते रहते हैं। जैसे चक्र को कोई चेतन घुमाता है, वैसे ही इस संसार चक्र का संचालक भी कोई है, वह संचालक परमात्मा ही है।]

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ १२।१२

इस प्रकार जो मनुष्य आत्मा के द्वारा सब भूतों में परमात्मा के दर्शन करता है। यह सब की समता को प्राप्त हो कर परम पद रूप ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

[इस श्लोक में कई गहरे तात्विक सिद्धान्तों का निर्देश हुआ है—(१) परमात्मा सर्वव्यापक है। (२) वह आत्मैकसंवेद्य है। (३) इस प्रकार परमात्मा को सब में व्यापक मानने से सब के साथ समानता प्राप्त हो जाती है। जब परमात्मा सब में है तो सब की समानता स्वतः सिद्ध है। (४) सब में ब्रह्म की व्यापकता मान कर सब की समता का सिद्धान्त मानने से परमात्मा की प्राप्ति सुलभ है।]

संक्षेप से मनु प्रोक्त आध्यात्मिक उपदेशों का संग्रह यहां किया गया है। इस का मनन करने से यह बात अनायास सिद्ध होती है कि मनु के आध्यात्मिक उपदेशों का उपनिषदों, वेदों तथा योगदर्शन से पूर्णतया समन्वय है।

इति परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य श्री महदानन्दतीर्थापराभिधानेन श्री वेदानन्दसरस्वतीस्वामिना संगृहीतः मनुप्रोक्ताध्यात्मिकोपदेशसंग्रहः समाप्तः ॥ ॥ ओ३म् शम् ॥

अध्यात्म की प्रेरणा

श्रीमान् आचार्य वैद्यनाथशास्त्री जी पंचवटी, नासिक

मनुष्य इस संसार में आकर विषयों में फंसकर इन्द्रियों का दास बन जाता है। यह दासता उसे विजय-भावनाओं की तरफ झुकाती रहती है और वह आत्मा परमात्मा के विषय में सोच भी नहीं पाता। वह समझता है कि इन्द्रियों और संसार के सम्बन्ध से जो कुछ प्राप्त है

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहा है वही पर्याप्त है। शुरू से परे कोई वस्तु नहीं है। वह सदा इन्हीं के उधेड़ बुन में रहता है और तनिक सा भी सुख प्राप्त हो जाने पर कहता है कि मैं सुख की नींद सो रहा हूँ। थोड़ा लौकिक ज्ञान हो जाने का अभिमान करता है, और कहता है कि मैं सदा संसार में जागरूक रहता हूँ। मुझे ही ज्ञान का सारा भाण्डार मिल गया है। इस प्रकार इन्द्रियों से समुपलब्ध भोग और ज्ञान को ही वह परम सुख और ज्ञान समझ कर फूला नहीं समाता। अध्यात्म के प्रतिपादक शास्त्रों में ऐसी स्थिति को साधारण स्थिति से खराब माना गया है। यह ठीक है कि संसार के ज्ञान के लिये इन्द्रियों की परमावश्यकता है परन्तु उसी को सर्वस्व मान कर उत्तान रहने और उस से आगे और कुछ नहीं ऐसा मानने वालों को अविद्याग्रस्त कहा गया है। यह इस कारण कि संसार शरीर इन्द्रिय आदि भोग और अपवर्ग दोनों के लिये साधन भूत हैं। इन्हें भोग मात्र में परिसमाप्त समझना तथ्यतः अज्ञानता है। इन्द्रियों के दास व्यक्ति वास्तव में कितना ही कहते रहें परन्तु न तो वह जागने की अवस्था में ही हैं और न सोने की ही, वे त्रिशंकुवत् लटके हुए हैं, अध्यात्म दृष्टि से कहा जाता है। इस भावना के अनुसार जागने वाला वह है जिसे सत् और असत् का विवेक है तथा सुख से सोने वाला वह है जो इन्द्रियों की स्थिति से परे हो कर समाधि में स्थित है। इन्द्रियारामों को ये दोनों ही अवस्थायें प्राप्त नहीं न तो वे सदसद्विवेकी ही हैं और न समाधिनिष्ठ ही। ये सदा शरीर और इन्द्रियों की पालना में ही रहते हैं। इन्हें नहीं मालूम कि शरीर और इन्द्रियों की प्राप्ति का अन्तिम उद्देश्य क्या है।

जो इन्द्रियों को अच्छी प्रकार उन की प्रकृति और उन के उद्देश्यों के विश्लेषण से समझ गया है वह इन में नहीं फंसता वह समझता है कि इनकी स्थिति जिस शरीर में है वह ही कल क्या होगा इस बात का पता नहीं। फिर इन की स्थिति ही क्या। अतः उस विषय को ढूंढना चाहिये जिस के लिये ये प्राप्त हुए हैं। वह इन त्रुटियों और संसार की घटनाओं को देखता है और वास्तविक स्थिरतत्व को खोजने का प्रयत्न करता है। वह शरीर की स्थिति, इन्द्रियों की अवस्था और उन के सम्बद्ध अपने स्वरूप को - पुनः अपने वास्तविक स्वरूप को जानने को समुद्यत होता है। ऐसे उद्यमी और तत्वखोजी को जीव का वास्तविक स्वरूप बताते हुए वेद इस दिशा में बहुत उत्तम उपदेश देता है। जोकि यजुर्वेद १२/७६ में इस प्रकार है :—

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णेवो वस्तिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥ अर्थात हे जीव जब तू निश्चय ही इन्द्रियों का भक्त है। इस अवस्था में तेरी स्थिति क्षणभंगुर संसार में है और तेरा निवास पत्ते के समान अस्थिर शरीर में है। इस मंत्र में "अश्वत्थ" संसार का उपलक्षण है। संसार वास्तव में क्षणभगुर है। इस लिये अश्वत्थ उसका नाम ठीक ही है। यद्यपि संसार वैसा मिथ्या नहीं जैसा नवीन वेदान्तियों की दृष्टि में है परन्तु उस के परिणाम जो क्षण में होते रहते हैं वे उसे अस्थिर बताते हैं। वह सत् होते हुए भी विनाशी और क्षणभंगुर कहा जाता है। वेद के इस आधार को ही दृष्टि में रख कर मालूम होता है। कठोपनिषद् के प्रवक्ता ऋषि ने भी संसार और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उस के कारणभूत प्रकृति को "अश्वत्थे" कहा। प्रकृति नित्य और सनतान होते हुए भी परिणामी है। उसका कार्य जगत् तो परिणामग्रस्त है ही। इसी दृष्टि से "अश्वत्थ" वहां पर सार्थकता दिखाता है। गीता में भी "अश्वत्थ" का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। वह भी उपनिषदों से लिया गया ज्ञात होता है। गीता में कुछ पल्लवन के साथ वर्णन है। वहां पर वृक्ष के अन्य अंगों का भी वर्णन है। इस वर्णन से यह ज्ञात होता है कि संसार एक अश्वत्थ वृक्ष है। नाना योनियां इस की शाखायें हैं जो कि ऊपर नीचे चारों तरफ फैली हुई हैं। इनको सत्व, रजस् और तमस् गुणों से वृद्धि मिल रही है। विभिन्न शब्द स्पर्श आदि विषय इस वृक्ष की कोपलें हैं। इसकी जड़ें मनुष्य लोक में कर्म के अनुबन्ध से व्याप्त हैं।

दूसरी बात जो इस मंत्र में है वह है पर्ण। पर्ण यहां पर शरीर का उपलक्षण दिखलाया गया है। पत्ता कब मुरझा जावे कहा नहीं जा सकता। वह अपने वृक्ष से किस समय निकल कर गिर पड़े निश्चित नहीं। उसकी स्थिति भी स्थायी और सन्देह की बनी रहती है। शरीर भी किस समय क्या हो जावेगा कहा नहीं जा सकता। आज प्रत्यक्ष दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं कि इस क्षण में बात करने वाला दूसरे क्षण में हृदयगति बन्द हो जाने से मृत है। ऐसी ही संसार के प्रत्येक प्राणी की हालत है। अगले क्षण में उसे क्या होगा कोई कह नहीं सकता है। परन्तु यह अस्थिरता अध्यात्ममान से समझनी चाहिए। साधारण लोकमान से नहीं अन्यथा सन्देहवाद का जन्म हो कर निकम्मापन लोगों में आ जावेगा।

इस प्रकार अश्वत्थ और पर्ण का यदि सम्बन्ध देखा जावे तो और भी एक सच्चाई सामने प्रस्तुत होती है। "अश्वत्थ" तो स्वयं अस्थिर है ही, क्यों कि उसका अर्थ है ही न+ +श्व+थ=कलपर्यन्त न रहने वाला, फिर उस पत्ते की स्थिति तो होगी ही उससे भी अस्थिर। पत्ते का आधार वृक्ष है और शरीर की स्थिति संसार में है। वृक्ष को छोड़ कर पत्ता निराधार हो समाप्त हो जाता है। शरीर भी संसार को छोड़ कर अपनी स्थिति को विलीन कर देता है।

तीसरी बात मंत्र में बतालायी गयी कि शरीर के साथ रहते हुए जीव को इन्द्रियों से सम्बन्ध रहता है। ये इन्द्रियां विविध विषय भोगों को ग्रहण करती हैं। जीव उन भोगों में अपने को लिप्त करता है। जिस में लिप्त हो कर उन का दास बन बैठता है और अपने स्वरूप को भूल जाता है। यह अवस्था उसकी शरीर संघ के धारण समय में ही रहती है स्वरूप से नहीं इसी लिये मंत्र में बहुत बारीकी से कहा गया कि "जब तू जीव शरीर की उपासना करता है" इसका तात्पर्य यह है कि जीव स्वरूप से इन्द्रि का अनुगामी नहीं। उसकी यह अवस्था शरीर संघात के साथ रहने पर ही होती है। पुरुष शब्द से मंत्र में अन्नरसमय शरीर से अभिप्रेत है।

जब मंत्र की पूरी परिस्थिति पर विचार किया जाता है तो तब यह प्रत्यक्ष भासित होने लगता है कि यह सारा उपदेश एक विशेष उद्देश्य रखता है। वह उद्देश्य है शरीर, और संसार से हटाकर शरीरी मोक्ष और आत्म तत्व में प्रवृत्ति पैदा करना।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उस की पूर्त्ति इस के आन्तरिक विवेचन से हो जाती है। संसार जब वृत्त है तो उस का कोई आधार भी होना ही चाहिए। वह आधार क्या है परमेश्वर। इसी लिए उपनिषदों में वृत्त का आधार परमेश्वर को बताया गया है। संसार का आधार जब परमेश्वर है तो उस आधार को जानना आवश्यक है ही। जिस को "गोभाज" कहा जा रहा है वह भी तो आखिर इन गो=इंद्रियों से पृथक् होगा ही। क्यों कि मंत्र में जीव के अस्तित्व को इन्द्रिय और संघात के अस्तित्व से पृथक् व्यक्त किया जाता हुआ प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार अवश्य अस्थिर संसार का विवेचन उस के स्थिर आधार ब्रह्म की तरफ़ ले जाता है और संघात तथा इन्द्रियों के परार्थ होने से उन की प्रवृत्ति के प्रवर्तक पृथक् जीव का बोध होता है। इस तरह संसार, जीव और परमेश्वर का ज्ञान करने की मंत्र शिक्षा देता है। इन को और परस्पर इन के क्या सम्बन्ध हैं इत्यादि का ज्ञान करना ही अध्यात्म में प्रवेश करना है। परमेश्वर अपनी शिक्षा द्वारा जीव को संसार और शरीर को क्षणभंगुर समझ कर अध्यात्म में रमने का उपदेश इस मंत्र द्वारा दे रहा है। मनुष्य को चाहिए कि वह संसार में आ कर विषयों में ही न फंसा रहे अपितु अपने स्वरूप को समझे। अपने स्वरूप के लाभ से ही प्रभु का स्वरूप समझा जा सकता है। प्रकृति के वस्त्रों से अपने को ज्ञान वैराग्य से नग्न केवल कर के ही उस परमेश्वर का स्वरूप देखा जाता है। अतः स्वरूप को समझने का यह उत्तम उपदेश वेद से दिया गया है। कैसी उत्तम अध्यात्म प्रेरणा है।

मानस तरङ्ग

[ब्र० श्री भूषण चैतन्य शास्त्री-साहित्याचार्य लुधियाना]

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु

"बीत चली संध्या की वेला-
अन्त रीक्ष में आकुल आतुर,
कभी इधर उड़ कभी उधर उड़-
पथ नीड़ का खोज रहा है
बिछुड़ा पंछी एक अकेला॥"

मैं रोना नहीं चाहता था पर आज बहुत ही अन्तर्वेदना से व्यथित हो उठा था। विवशता परवशता में अपने आप को छोड़ दिया था। करता भी क्या? यदि हृदय के अन्दर छिपा रखता तो सम्भव था कि मैं सदा के लिये बन जाता। जगन्मातः! जननी करुणामयी है इसी लिये तो बिना संकोच तेरे सामने दिया। उच्च स्वर से रोया। अब से अपना भेद बिन्दुमात्र भी कभी तुझ से छिपा नहीं रखूं गा। रख भी तो नहीं सकता। जननी सामने हो तो भय किस का? उस समय तो क्षण में भस्म कर देने वाली गगनस्पर्शी धधकती हुई शिखा वाली अग्नि को भी बालक अति तुच्छ समझता है, श्वासमात्र से प्राण को हरने वाला भयङ्कर विषधर सर्प से खेलने के लिए असीम उत्साह के साथ आगे बढ़ जाता है, भीमगर्जन से भयावह, प्रलय आह्वानकारी उन्मत्त, उत्ताल तरंगो से समन्वित शस्यश्यामल तृणगुल्म-लता-विटपी-आच्छादित श्याम आभा से आभासित अनुपम रमणीय तट भूमिस्थित भूभागों को पलमात्र में नष्ट भ्रष्ट कर देने वाले जलधि में तैरने के लिये लेशमात्र संकोच नहीं करता, असीम जलधि को पार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर जाना सरल समझता है। वह कभी भी अपने पराजय को, अपनी असफलता को जानता ही नहीं, क्योंकि जननी जो सतत उस के समीप है। मुझे उत्तम कार्यों में तल्लीन देख कर माता अतिशय-प्रसन्न होगी, आगे बढ़ने के लिये सतत प्रेरणा करती रहेगी, दारुण विप्लव में मेरे सन्मुख आ कर खड़ी हो जावेगी। अप्रतिद्वन्दी शक्ति वाली माता की आज्ञा पालन करने वाले सन्तान को सतत विजयी बना रखती है। हे जगज्जननी मैं आज इसी आशा से अटल विश्वास पूर्वक गन्तव्य स्थान में पहुँचने के लिये यात्रा प्रारम्भ कर चुका हूँ। यद्यपि मानस समुद्र एक सीमित शरीर के अन्दर आबद्ध है ऐसा अनुभव कर रहा हूं, पर यह है विशाल। प्रतिक्षण इस में आशा तरंगे नाना प्रकार के विभिन्न रूप से जागरित हो उठती हैं।' सूर्य आदि नानाविध प्रकाशमान ग्रह उपग्रहों की तीव्र गतिसम्पन्न किरणों से भी इस की गति अधिक तीव्र है। यह मन मानवों को दूर से अति दूर पर्यन्त पल भर में पहुँचा देता है, कभी सुखी बना देता है तो कभी दुःखी अतः जननी मेरी सम्पूर्ण यात्रा में "तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु"। आशा के बिना मानव संसार में कभी विजयी नहीं बन सकता और आशा के वशीभूत हो कर भी मानव संसार में कभी विजयी न बन सकता और न बन सकने की संभावना है। जिस प्रकार अग्नि सदा सर्वत्र भिन्न २ रूप से विद्यमान है, अनुकूल वस्तुओं को पा कर प्रज्वलित हो उठतीहै, ठीक उसी प्रकार हमारे हृदय में आशा छिपी रहती है, समयानुसार अपनी अनुकूल वस्तुओं को पाकर बलशालिनी हो उठती है और मानवता के पूजारी मानब को दानव बना देती है, या देवता विश्व

जिस समय निस्तब्ध होता है, यामिनी [illegible]
यौवन में होती है, घनघोर तमिस्रा से सम्[illegible]
विश्व आच्छादित होता है, प्रकाश का स[illegible]
अभाव देखा जाता है, मानों अन्धकार के [illegible]
कार से अधिकृत सम्पूर्ण मानव समाज [illegible]
हीन हो जाता है, उस समय एक खूनी [illegible]
आशा से हाथ में तलवार ले कर आगे बढ़[illegible]
है, अतुल सम्पद् विभव, तथा नानावि[illegible]
विलास के साधन होते हुए भी न्याय करने[illegible]
एक दण्डधारी राजा किसी आशा से प्रेरि[illegible]
कर एक भगिनी अथवा जननी के सम्मुख[illegible]
वासना के अधीन होकर अपनी मर्या[illegible]
उल्लङ्घन कर बैठता है। पवित्रता का पुजारी[illegible]
रक्त-मांस-मल-मूत्र-मय एक शरीर को प्र[illegible]
भावना से ग्रहण कर अपनी पवित्रता[illegible]
आशा से खो बैठता है, एक धनलोभी भू[illegible]
कर, धोखा दे कर, कितने ही अन्याय मा[illegible]
अनुसरण कर धन का एकत्रीकरण किसी[illegible]
से करता है। एक जिव्हा लोलुप सब को[illegible]
दिखा कर, जब कि उस की आखों के[illegible]
शत शत नर नारी अपनी जठराग्नि को[illegible]
करने के लिये व्याकुल, बेचैन हो रहे हैं[illegible]
अभिमान के साथ किसी आशा से अप[illegible]
भरता जाता है। एक मानव धन, जन[illegible]
अधिकार आदि पदों से समुन्नत अपने[illegible]
हुए अन्यों को देख कर किसी आशा से[illegible]
प्रसन्न होता है। जननी ! मैं तो नित्य[illegible]
रहा हूं अनुभव कर रहा हूँ कि इस का[illegible]
अत्यन्त भयावह है। मानवों को अध[illegible]
ओर ले जाने वाला है। मानव को म[illegible]
वंचित रखने वाली आशा आपात मधुर[illegible]
में आकर्षित कर विपथ गामी बना रही[illegible]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मेरी आशा सदा सर्वत्र सर्व अवस्थाओं में "शिव संकल्पमस्तु" हो। मेरी आशा तो मेरे अनुकूल विचार के साथ इतनी बलवती हो कि मैं उस के द्वारा सम्पूर्ण मानव समाज में एक ऐसी पवित्र प्रबल विचार धारा फैला सकूं जिससे प्रत्येक मानव केवल सुरक्षित ही नहीं अरक्षित पथ, घाट बाट, मठ, वन उपवन व बीहड़ पर्वतों के अत्यन्त भयावह स्थानों में भी अपने को संकट रहित समझे। जननी मैं तो इस आशा के साथ अपने मार्ग पर बढ़ जाना चाहता हूं कि मेरी प्रत्येक इन्द्रिय का स्पन्दन जगत् के अपरिचित स्त्री पुरुषों में भी मातृत्व, भगिनीत्व और भ्रातृत्व के प्रबल निर्मल शान्तिदायक उच्छ्वास छोड़ जा सकूं अप्रतिहत गति के अभिलाषी इस पथिक की आशा मलमूत्र कीटाणु परिपूर्ण एक दो शरीर का जघन्य कीटाणु न बन कर असंख्य मानव शरीरों को, हे जननी ! तेरी साधना का पवित्र मन्दिर बनाने वाली हो। जननी ! मेरी आशा मुझे इस प्रकार सुलभ सात्विक अन्न को ग्राह्य बनाती जाय जिस को देख कर अन्य मानव अपनी अपनी अनवच्छिन्न दृष्टिपातों से मुझ को सामाजिक सुदृढ़ सम्बन्ध से पृथक न समझ बैठें। जननी ! मेरी आशा निरन्तर मेरे अन्दर किसी विद्याहीन को मुझ से भी अधिक विद्या सम्पन्न, धनहीन को धन सम्पन्न, मर्यादाहीन को मर्यादा सम्पन्न, अन्न वस्त्र हीन को अन्न वस्त्र सम्पन्न, गृह हीन को गृह सम्पन्न, आश्रय हीन को आश्रय सम्पन्न, दुःखी को सुखी, रोगी को निरोगी, और अमित्र को मित्र बनाने की निष्कपट भावना को सदा उत्तरोत्तर प्रबल बनाती जाय। जननी ! जीवन के अनेक अमूल्य समय अनियमित रूप से व्यतीत हो चुके हैं। यात्रा तेरे भरोसे पर प्रारम्भ कर चुका हूं। गन्तव्य स्थान में पहुंचना है। असंख्य मार्गों के व्यवधान में हूँ। "स्वल्प तथायुर्व इवश्च विघ्नाः,, (आयु थोड़ी विघ्न बहुत) कहीं मेरी आशा ही मुझे निराशा की बन्दी बना कर पिशाची, दानवी न बन जाय। अतः मातः ! "सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु,, मेरी सब आशायें प्राणीमात्र के मित्र बनें। जननी ! तू चिर रमणीय अमल सुख के अभिलाषी स्वतन्त्र हंस के लिए कहीं न कहीं मान सरोवर बना रखती है, चिर बसन्त के इच्छुक कोयल के लिए संतप्त विश्व के संताप-हारी अति मृदु नव नव पत्र पुष्प से आच्छादित, अलि गुञ्जनों से गुञ्जित, मलयवायु से समन्वित बसन्त ऋतु को कहीं न कहीं विद्यमान रखती है। जननी ! तेरा मां नाम कितना मधुर है, संताप-हारी है, हृदयस्पर्शी है। विश्व में कौन ऐसा संतप्त हृदय मानव है जिस ने नद, नदी, नद, जलधि वन, उपवन के विहङ्गमों के कल कल ध्वनि से कल्लोलित, नदी, प्रास्रवण आदि के मधुर प्रवाह झंकार से झंकृत, निर्जन स्थानों में सायं प्रातः काल के शुभ महुर्त्त में तुझ को कुछ देर के लिए मां ! मां !! कह कर पुकारता हुआ जीवन में अनुपम स्वर्गीय आनन्द का उपभोग नहीं किया। जननी ! मेरे जीवन के शुभ महुर्त्त के संकल्प से संकल्पित यात्रा कहीं अपूर्ण न रह जाय इस लिए मेरी "सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु"। सर्वा आशा मम (सर्वेषाम्) मित्रं भवन्तु।

ग्राहकों से प्रार्थना

जिन सज्जनों ने द्वितीय वर्ष के लिए अपना चन्दा नहीं भेजा, वे शीघ्र भेजने की कृपा करें। वी० पी० से जहां उन का व्यय अधिक होगा, वहां पत्र मिलने में भी विलम्ब होगा॥

व्यवस्थापक—'वेद पथ' मासिक, देहली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

योग प्रकाश

(स्वामी वेदानन्द तीर्थ, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान)

(५)

अष्टाँग योग

किसी गत प्रकरण में बताया जा चुका है कि मन्द अधिकारियों के लिये अष्टांग योग है ! इस का अभिप्राय यह है कि अष्टांग योग इतना सरल है कि अध्यात्म विकास में निम्नतम तल पर रहने वाला मनुष्य भी इससे अपना कल्याण सिद्ध कर सकता है। इसके कहने की अवश्यकता नहीं कि सब कार्य्यों का मूल इच्छा ही इस का प्रथम साधन है। जिन में कल्याण की कामना न हो। उनके सम्बन्ध में वेद ने कहा है :—उतत्वः पश्यन्न ददर्श उतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् (ऋ० १० । ७१ । ४)=कोई इसे देखता हुआ नहीं देखता कोई इसे सुनता हुआ नहीं सुनता। सचमुच आत्मिक कल्याण की कामना बड़े भाग्यों से जागरित होती है । हां तो जिन के मन में आत्म कल्याण की कामना न हो, योगारूढ़ महामनुष्यों का कर्त्तव्य है, कि उनके भीतर इस कामना को जगाएं, ताकि वे मन्द श्रेणी में आजायें।

अष्टाङ्ग योग, जैसा कि इस का नाम प्रकट करता है, आठ अंगों वाला है। वे आठ अंग ये हैं :-- (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्यहार (६) धारण (७) ध्यान तथा (८) समाधि ।

इन आठों अंगों के विवरण से स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा कि अष्टांग योग की पद्धति शरीर, मन तथा आत्मा के समुच्चित विकास के लिये समुचित साधन है। न केवल शरीर, मन तथा आत्मा के विकास के लिये अष्टांग योग आ[वश्]यक है, प्रत्युत सामाजिक संस्थिति के लिये इस का उपयोग कम महत्त्वमय नहीं है। अ[ष्टांग] योग प्रक्रिया मनुष्य को सामाजिक प्राणी [मान] कर प्रवृत्त होती है। इसका अकाट्य प्रमाण [इस] प्रक्रिया में यमों को प्रथम स्थान देना है। यमों [के] विवरण में यह सिद्ध हो जाएगा कि यम सा[मा]जिक आचार ही हैं। तनिक विचारा जाये [तो] मनुष्य का सामाजिक होना निसर्ग से [सिद्ध] है। उत्पत्ति के समय से लेकर सदा इसे [अपने] जैसे प्राणियों से व्यवहार पड़ता ही रहता [है।] एक दूसरे के प्रत्यक्ष या परोक्ष अवलम्ब [से] अपना कार्य्य व्यवहार चलाना सामाजि[कता] है। इसी कारण असभ्यतम कहे जाने [वाले] मानव समुदायों में किसी न किसी [प्रकार की] समाज-व्यवस्था अवश्य पाई जाती है। [और] कहीं तो सभ्य कहे जाने वालों से उन की [व्यवस्था] अतीव उत्कृष्ट हैं।

यद्यपि आपाततः यही प्रतीत होता है [कि] योग साधन का प्रयोजन अकेलापन प्राप्त [करना] है किन्तु तनिक गहरा विचार करने से [ज्ञात] होता है कि इस का लक्ष्य इससे कुछ वि[लक्षण] है। योग साधन के परिपाक से जब [मनुष्य] आत्मस्थ होता है, तब उसे इस बात का [अनुभव] होता है जो यजुः ४०।६,७ में कही गई [है]

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यस्मिंस्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।

जो साधक सब भूतों को परमात्मा में अनुभव करता है तथा सब भूतों में परमात्मा का दर्शन करता है, वह संशयरहित हो जाता है। जिस अवस्था में विज्ञानी को यह भान हो जाता है कि परमात्मा सब भूतो में ओत प्रोत है, इन के भीतर बाहर सर्वत्र विद्यमान है, तब उस एकत्व दर्शन करने को कैसा शोक और कैसा मोह।

अर्थात् योगी, समता का, एकता का अनुभव करने लगता है। इस एकताज्ञान का तनिक व्याख्यान करने की आवश्यता है। अपने शरीर पर दृष्टिपात करने से वह बात सरलता से समझी जा सकती है। एक अंगुल में तीन पोर हैं, वे आकार प्रकार में भिन्न हैं, किन्तु तीन मिल कर एक अंगुली कहलाते हैं। इसी प्रकार हाथ, पांव, भुजा, टांग, ग्रीवा, सिर, छाती आदि अवयव पृथक् कर पृथक् हैं, किन्तु सब मिल कर एक 'शरीर' का नाम पाते हैं। इस का विशेष कारण है। इस समस्त की स्थिति का हेतु है आत्मा। आत्मा जब शरीर से निकल जाता है तब शरीर बिखरने लगता है और सड़ांद उत्पन्न करने लगता है। शरीर का अभिमानी आत्मा एक होने से अनेक होता हुआ भी शरीर एक कहलता है। अब तनिक आगे चलिये। परमात्मा आत्मा तथा अनात्मा सभी पदार्थों में व्यापक है जैसे कि यजुः ३२।८ में कहा है। सः ओतः प्रोतश्चविभूः प्रजासु=वह व्यापक परमात्मा समस्त प्रजाओं में ओत प्रोत है। सब आत्माओं का प्रभु को शरीरस्थानी मान लिया जाए और परमात्मा को सब आत्माओं का आत्मा जैसा कि वह है भी तो सब आत्मा भिन्न भिन्न होते हुये भी एक हो जाएंगे, जैसे कि शरीर के अवयव भिन्न भिन्न होते हुए भी एक कहलाते हैं। इस एकत्व ज्ञान से महान् लाभ है। इस समय मानव में विभेद बुद्धि के कारण बहुत कलह हो रहे हैं। उन के कारण कभी हानि होती है, कभी लाभ। हानि होने पर शोक, लाभ होने पर मोह होता है। शरीर के एक मानने या होने से जो क्रिया वहां हो रही है, उस पर विचार करने से हमारी वक्ष्यमाण बात अधिक विशद हो जाएगी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, हाथ पांव आदि अंग भिन्न भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं क्योंकि एक आत्मा के वे करण-उपकरण हैं। हाथ कभी पांव पर आक्रमण नहीं करता, क्योंकि शरीर की एकता के कारण उन में परस्पर विरोध नहीं है। इसी भांति जब आत्मा अपने आप को परमात्मा का व्याप्य (जो वास्तविक है) मानने लगेंगे तब उन में विरोध की भावना नहीं रह सकेगी। जिस प्रकार पांव में कांटा लगने पर सिर हाथ आदि सब उधर को झुक जाते हैं उसी एकत्व मानने वाले किसी एक मनुष्य को पीड़ित जान कर उस की पीड़ा के निवारण में तत्पर हो जाएंगे।

यतः अब भेद भावना नहीं, एकत्व भाव स्थापित हो चुका है, अतः कलह शान्त है। अतएव न हानि है न लाभ है, न जय है, न पराजय है। अतएव किसी को किसी से भय भी नहीं है। दूसरा हो तो भय भी हो। इस वैदिक यथार्थ अद्वैतवाद को न समझ कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कुछ लोगों ने ब्रह्म से अतिरिक्त सब के लोप का प्रचार किया है जो तर्क और शास्त्र दोनों से विरुद्ध है।

इस तरह सिद्ध हो गया कि योग का आरंभ तथा अवसान दोनों सामाजिकता के लिये हैं।

नियमों में वैयक्तिक अचार का समावेश है आसनों से शरीर की सिद्धि के साथ मन की चंचलता भी दूर होती है। प्राणायाम शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक उत्कर्ष का विलक्षण साधन है। प्रत्याहार अन्तर्मुख होने की प्रवृत्ति का मानो प्रारंभ है। धारणा मनोनिग्रह का प्रथम अभ्यास है। ध्यान ज्ञान की एकतानता है। विचार के लगातार एक तार बने रहने को ध्यान कहते हैं। समाधि अन्तिम अवस्था है जिसमें ध्येय के अतिरिक्त दूसरी वस्तु की प्रतीति विघ्न नहीं करती।

इस प्रकार विचार करने से ज्ञात होता है कि योग केवल परलोक का ही साधन नहीं है, वरन् इस लोक में भी उन्नत होने का एक महान् उत्तम साधन है। अब इस के आगे क्रमशः एक एक अङ्ग का साङ्गोपाङ्ग विशद वर्णन करेंगे।

सम्पादकीय

उपनिषत्सारः—संसार में वेद से उतर कर यदि कोई ग्रन्थ अध्यात्म का मनोरम, यथार्थ निरुपण करते हैं, तो वे उपनिषत् हैं। दिन रात आत्मध्यान कर के अनुभव के अन्तिम सोपान पर आरुढ़ महात्माओं के अनुभवों को इन उपनिषदों में निबद्ध किया गया है। इन में सीधी सादी भाषा में उन तत्त्वों का वर्णन किया गया है जो कल भी सत्य थे, वे आज भी सत्य हैं और कल को भी सत्य रहेंगे, जैसे भारत में अबाध्य हैं, वैसे अन्य देशों में भी अकाट्य हैं।

संस्कृत भाषा में इन पर अनेक भाष्य तथा टीकाएं हैं। दाराशिकोह ने इन का फ़ारसी भाषा में अनुवाद किया था। उस फ़ारसी अनुवाद का उल्था एक फ्रांसीसी ने लेटिन भाषा में किया। आज तो योरुप की सभी भाषाओं में उपनिषदों के अनुवाद तथा टीकाटिप्पण मिलते हैं। भारत की तो कोई अभागी ही भाषा होगी जिस में उपनिषदों के भाष्य, अनुवाद आदि न हों।

इतना होते हुए भी साधारण मनुष्य को उन तक पहुँचने के लिये अधिक सरल साधन की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था, उस की पूर्ति के लिये उपनिषत्सार लिखने की आयोजना की गई है। ईश, केन तथा कठ उपनिषदों के सार श्री स्वामी दर्शानानन्दकृत उपनिषत्प्रकाश के साथ प्रकाशित हो चुके हैं। उस से आगे की उपनिषदों के सार क्रमशः वेदपथ में प्रकाशित किये जाएंगे।

यद्यपि उपनिषदों की संख्या २५६ तक पहुंच चुकी है, तथापि प्रामाणिक दस ही मानी जाती हैं ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक इस के अतिरिक्त श्वेतश्वेतर आदि दो एक अन्य उपयोगी उपनिषदें हैं। इन सब का सार समुद्धार यहां प्रस्तुत किया जाएगा।

जन०स्मट्स का देहान्त गत मास दक्षिण अफ्रीका के भूत पूर्व प्रधान मन्त्री, स्मट्स का जिन्हें मलान ने पराजित किया था, शरीरान्त हो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गया। वह एक सफल राजनीतिज्ञ, विद्वान्, दार्शनिक, साहसी योद्धा था बोअर युद्ध में वह अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ा था। गान्धी जी की प्रेरणा से उस समय दक्षिण अफ्रीकावासी भारतीयों ने अंग्रेज़ों का पक्ष लिया था युद्ध में बोअरों का एक तरह विजय हुआ था। उस का परिणाम भारतीयों पर संकट परम्परा का आरम्भ हुआ, जो आज तक निरन्तर चला आता है। मलान सरकार भारतीयों को विपन्न करने के लिये जो जो मलिन कृत्य करती रही है, कर रही है, स्मट्स ने यद्यपि उन का विरोध किया, किन्तु उस का विरोध कूट राजनीति पर अवलम्बित था। जैसे श्रमिक दल वाले इंग्लैण्ड में उदार अथवा अनुदार सरकार की नीति की आलोचना में अग्रसर रहा करते थे किन्तु प्रथम श्रमिक सरकार ने (मैकूडानल्द के प्रधान मन्त्रित्व में) भारत पर जो अत्याचार किये उन को स्मरण करने से आज भी रोमांच हो जाता है, ऐसे ही स्मट्स का व्यहार भारतीयों के प्रति था। भारतीय प्रकृति से उदार होते हैं, ये किसी से चिर वैर रखना नहीं जानते, और फिर भारतीयों को तो सिखाया गया है—मरणान्तानि वैराणि=यदि किसी के साथ वैर हो भी तो मरने पर समाप्त हो जाना चाहिये। उस के मरने से उस के देश तथा परिवार को जो क्षति हुई है, वह पूरी नहीं हो सकेगी, अतः उन के साथ हम समवेदना प्रकट करते हैं।

स्मट्स की इच्छा के अनुसार उस के शव का दाह कर्म्म किया गया। 'भस्मान्तꣳशरीरम्' (य० ४०।१५) =शरीर का अन्त जल कर राख होना है, इस वैदिक वैज्ञानिक आचार का पालन करने का आदेश कर के स्मट्स ने अपनी विद्वत्ता दार्शनिकता का परिचय दिया है। स्मट्स न मांस खाते थे, न शराब पीते थे और न ही सिगरेट आदि का सेवन करते थे इस दृष्टि से वे अति संयमी थे।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा का वार्षिक अधिवेशन—

स्वतन्त्रता से पूर्व अ. भा. रा. महासभा के अधिवेशन के लिए जनता में जो उत्सुकता तथा उत्साह होता था, वह अब नहीं रहा। अतः अबकी बार महासभा के अधिवेशन में दर्शकों के लिए विशेष व्यवस्था नही की गई। गांधी जी के जीवनकाल में कदाचित् एक बार अध्यक्ष के चुनाव में गरमी उत्पन्न हुई थी। वे जिसको चाहते थे कार्य्यकारिणी सभा तथा समूचा देश उसे स्वीकार कर लेता था। गतवार अध्यक्ष के चुनाव में अच्छी चहल पहल रही, टंडन जी हार गए और पट्टाभि सीतारमैया अध्यक्ष निर्वाचित हुए। पट्टाभि जी कांग्रेस के गिरते गौरव को ऊंचा न कर सकें, संभाल न सके। कई आलोचकों का तो यहां तक विचार है कि वे कुछ गिराने में कारण बने। अब की बार टंडन जी भी भारी बहु मत से जी. कृपलानी तथा शङ्करराव देव का पछाड़ कर अध्यक्ष बने हैं। टंडन जी को हराने के लिए प्रधान मन्त्री नेहरू जी के नाम का दुरुपयोग भी किया गया, और भी कई प्रकार के उपाय किये किन्तु टंडन जी को दोनों के सम्मिलित वोटों से भी अधिक वोट प्राप्त हुए।

कई लोगों का विचार है कि टंडन जी के अध्यक्ष बनने से कांग्रेस की नीति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्त्तन होगा। हमारा विचार है कि ऐसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोग भ्रम में हैं। कांग्रेस की नीति का निर्धारण कार्य्यकारिणी के हाथ में है। उस से किसी परिवर्त्तन की आशा करना दुराशा है। देश में इस समय अनेक समस्याएं समुपस्थित हैं। दलों की दलदल से बाहर निकल कर देश को लक्ष्य मान कर उन समस्याओं का सुलझाना परमावश्यक है। देखना यह है कि उन समस्याओं को नई कांग्रेस किस दृष्टि से देखती है ?

सभा पति टंडन जी ने कोई नई बात नहीं की। भारत सरकार की नीति का सब प्रकार से समर्थन किया है किसी भी विषय में सरकार की नीति से मत भेद प्रकट नहीं किया। विस्थापितों के संबन्ध में भी उन्हों ने कोई ऐसा सुझाव नहीं दिया जिससे विस्थापितों का मन सन्तुष्ट हो सकता।

टंडन जी पक्के कांग्रेसी हैं। उनका दृष्टिकोण और हो ही कैसे सकता था। इस विषय में कांग्रेस अत्यन्त सुनियन्त्रित है। जो दो चार उच्च पदस्थ नेता विशेषक नेहरू पटेल जो कहते हैं। सभी कांग्रेसी ननुनच के बिना उसे स्वीकार करते हैं। मतभेद प्रकाशित करने का किसी को साहस भी नहीं हो सकता।

यह अवस्था यहां ही नहीं है। सारे जगत् में ऐसा ही है। दल की रक्षा के लिए दल के प्रति उत्सर्ग पूर्ण भक्ति नितान्त आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हुआ करती है। दल के सामने जब कोई भव्य लक्ष्य हो अथवा प्रतिफल देने वाली शक्ति हो तो उस का आकर्षण भी प्रबल होता है। पाश्चात्य देशों में चाहे वहां प्रजातन्त्रात्मक शासन है अथवा दूसरे प्रकार का, सर्वत्र नेता या नेताओं की बात का पूरे मान एवं आदर के साथ पालन होता है। अनुशासन में बंधे लोग सत्य असत्य, युक्त अयुक्त का विचार नहीं करते इसी कारण उनके संगठन, बलिष्ठ हैं। टंडन जी यदि कांग्रेस की मानी हुई, निर्धारित की हुई नीति से विद्रोह करते तो कांग्रेस में फूट डालने के हेतु बनते जो उन्हें कभी भी अभीष्ट नहीं है। इसी लिए उन्होंने देश को कोई नया सन्देश नहीं दिया। इस दृष्टि से टंडन जी कांग्रेस का अत्यन्त खरा सिक्का प्रमाणित हुए। कांग्रेस में फूट के स्वप्न देखने वालों के स्वप्न दुःस्वप्न सिद्ध हुए।

भारतीय पंजाब की राजनैतिक दशा

साम्प्रदायिक वैमनस्य के कारण भारत के पहले दो टुकड़े हुए। उस का प्रभाव पंजाब तथा बंगाल पर सब से अधिक पड़ा। अभी तक अवस्था संभल नहीं पाई। सिखों ने देश की इस विषम दशा से लाभ उठाने की ठानी। दुर्भाग्य से पंजाब के कांग्रेसी दो धड़ों में बंटे हुए हैं। दोनों ही धड़े पदलोलुप हैं। देश की दुरवस्था का किसी को भी ध्यान नहीं है। अतः अपनी गद्दी बनाए रखने के लिये वे अनुचित कार्य्य करने से भी संकोच नहीं करते रहे। भावी का इतिहास लेखक इन की काली कर्तूतों का पूरा विवरण लिख पाएगा। किन्तु इन दो दलों ने दो कुकर्म्म ऐसे किए, जो अक्षम्य हैं। एक सच्चर फारमूला और दूसरे सिखों में अछूतों की सत्ता स्वीकार करना। सच्चर फारमूला के द्वारा इन देशभक्तों ने भाषा की हत्या कर दी। और जो गुरुमुखी नहीं भी पढ़ना चाहते उन्हें गुरुमुखी पढ़ने पर विवश कर दिया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपनिषत्सार

[औपनिषद स्वामी वेदानन्द]

(४)

प्रश्नोपनिषत्सार

दस उपनिषदों में प्रश्नोपनिषत् बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपनिषत् है। प्रत्येक उपनिषत् का किसी न किसी वेद से अवश्य सम्बन्ध बतलाया जाता है। यथा-ईशोपनिषत् तो है ही साक्षात् यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय। केन का सम्बन्ध परम्परा से सामवेद से बताया जाता है। कठ यजुर्वेद से सम्बद्ध है, मुण्डक तथा माण्डूक्य अथर्ववेद से सम्बद्ध मानी जाती हैं। तैत्तरीय तथा बृहदारण्यक यजुर्वेदीय हैं। ऐतरेय ऋग्वेदीय है, छान्दोग्य सामवेद के ताण्डय महाब्राह्मण का भाग होने से असन्दिग्ध सामवेदीय है। प्रकृत प्रश्नोपनिषत् को अथर्ववेदीय साहित्य के अन्तर्गत माना जाता है।

उपनिषदों का इस प्रकार किसी न किसी वेद के साथ सम्बद्ध होना एक मार्मिक सिद्धान्त का बोध कराना है। अर्थात् सभी वेद ब्रह्मविद्या सम्बन्धी हैं। जो लोग मन्त्रात्मक वेद को केवल कर्म्मकाण्ड का उपयोगी मानते हैं। उन के मत का निराकरण ईशोपनिषत्सार में किया जा चुका है। जो बात मूल में न हो, वह शाखाओं एवं पत्रों में भी नहीं आ सकती। यदि ब्रह्म-विद्या मूल वेद में न हो तो ब्राह्मणों, आरण्यकों आदि में भी नहीं होनी चाहिए। उपनिषदों का इस प्रकार का वेद सम्बन्ध ऋषियों की विशाल दृष्टि का परिचायक है। इस सम्बन्ध स्थापना से उन्हों ने सदा के लिए घोषित कर दिया कि उपनिषत् वेदमूलक हैं और कि वेद ब्रह्मविद्या का आधार ग्रन्थ हैं।

आजकल अनेक वेदानभिज्ञ लोग अथर्ववेद को जादू टोना का ग्रन्थ मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हों ने मूल अथर्ववेद को पढ़ने का कभी कष्ट ही नहीं किया। अथर्ववेद में आत्मा, परमात्मा तथा तत्सम्बन्धी विषयों का इतना विशद विवेचन है कि मनुष्य चकित रह जाता है। इस प्रश्नोपनिषत् का, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सम्बन्ध अथर्ववेद से है। अतः इस में उन विषयों का विवेचन निराले ढंग से हुआ है।

इस की उत्थानिका इस प्रकार है:—कि छः महात्मा (१) भारद्वाज गोत्री सुकेशा, (२) शिवि गोत्री सत्यकाम, (३) सूर्य्य गोत्री गार्ग्य, (४) अश्वलगोत्र कौशल्य, (५) विदर्भ गोत्री (विदर्भ देशीय) भार्गव तथा (६) कल गोत्री कबन्धी वेदाध्ययन रत, परमात्म भक्त थे। शास्त्रभ्यास करने पर भी उन्हें परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हुआ था। इस के लिए वे जिज्ञासु बन कर भगवान् पिप्पलाद की सेवा में इस विचार से पहुंचे, कि वे उन की जिज्ञासा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का समाधान कर सकेंगे। उन के संम्बन्ध में तीन पद अत्यन्त मनन करने योग्य हैं ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परब्रह्मान्वेषमाणाः। ब्रह्म शब्द के कई अर्थ हैं, एक अर्थ वेद है। इस से ब्रह्मपराः का अर्थ वेदाभ्यासी बनता है। वैयाकरणों का एक सुप्रसिद्ध वचन है। शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति=शब्द ब्रह्म=वेद में पारंगत मनुष्य परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का वचन है—नावेविन्मनुते तं बृहन्तम्=वेदानभिज्ञ मनुष्य पर ब्रह्म का मनन नहीं कर सकता। अर्थात् परमात्मा के साक्षात् करने के लिए वेदाभ्यास अत्यन्त अनिवार्य्य है। सभी विज्ञानों का यह सामान्य नियम है कि उन्हें हस्तामलक करने के लिए व्यवहार दशा से (Practical) से पूर्व उन के सामान्य सिद्धान्त (Theory) का ज्ञान होना चाहिए। विज्ञानों के विज्ञान ब्रह्म विज्ञान के लिए तो यह और भी आवश्यक है। इसी लिए औपनिषद् ज्ञानियों ने कहा है—श्रोतव्यः श्रुति वाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोप पत्तिभिः=वेदवाक्यों के द्वारा आत्मा परमात्मा के संबन्ध में श्रवण करना चाहिए, तथा युक्तियों के द्वारा मनन करना चाहिए। अभिप्राय यह है कि ब्रह्म साक्षात्कार के लिए वेद ज्ञान प्रथम सोपान है। मुण्डकोपनिषद् में इसी भाव से ब्रह्म विद्या प्रदाता गुरु का श्रोत्रिय=वेदवेत्ता होना प्राथमिक धर्म बतलाया गया है।

ब्रह्म के अर्थ प्रकृति, जीव तथा परमात्मा भी होते हैं जैसा कि सुप्रसिद्ध श्वेताश्वेतर महाराज ने किये हैं— एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्। भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥१।१२॥ ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृ भोग्यार्थयुक्ता। अनन्तश्चात्मा विश्व रूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा वि[ndeg]... ब्रह्ममेतत् ॥१।१२॥ इसे सदा आत्मा में रहने [वाले] को जानना चाहिए, इससे परे और कुछ [जानने] योग्य नहीं है। भोक्ता (आत्मा), भोग्य (प्र[कृति]) तथा प्रेरिता फलप्रदाता का मनन करके [तीन] प्रकार का ब्रह्म कहा गया है ॥६॥ सर्वज्ञ [और] अल्पज्ञ ये दोनों अजन्मा हैं इन में से एक [ईश्वर] है दूसरा अनीश्वर हैं। और एक अजा (प्र[कृति]) भोक्त के भोग्य के लिए प्रेरित रहती है। प[रमा]त्मा अत्यन्त है सब का निर्माता होता हु[आ] अकर्त्ता है। इस तीन प्रकार के ब्रह्म को [जान] लेता है।

इस दृष्टि से ब्रह्म का अर्थ यदि जीव [लिया] जाए तो ब्रह्मनिष्ठ का अर्थ जीवनिष्ठ आत्मा[] स्वस्वरूपज्ञानसंपन्न बनता है। तात्पर्य [यह है] कि सुकेशा आदि महात्मा योगादि साधनों [की] संपत्ति के कारण अपने स्वरूप का साक्षा[त्] कर चुके थे। अथवा ब्रह्मनिष्ठ का यह भी [अर्थ] हो सकता है कि वे वेदज्ञान के अनुकूल [आच]रण वाले थे। निष्ठा का अर्थ दृढ़ श्रद्धा [भी] होता है, इस दृष्टि से ब्रह्मनिष्ठ का अर्थ पर[मात्म] भक्त होता है। तथा प्रकृति जीव ब्रह्म की स[त्ता में] अटूट विश्वास वाला भी हो सकता है। [उप]स्कार को यहां सभी अर्थ संमत हैं। भाव [यह कि] सुकेशा आदि महात्मा आत्मसाक्षा[त्कार वाले], परमात्मा, आत्मा तथा प्राकृति की सत्ता प[र] आस्था वाले (यतः वे वेदाभ्यासी थे), प[रमात्म] भक्त एवं अपने श्रुतः पठित ज्ञान के [अनुकूल] आचरणवान् थे, किन्तु अभी परमात्मसाक्षा[त्कार] उहें नहीं हो पाया था, अतः उस के [लिये] के लिये तत्पर थे। इस भवना से वे भ[गवान्] पिप्पलाद की सेवा में उपस्थित हुए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपनिषत्कार ने अपनी इस थोड़ी सी उत्थानिका में ब्रह्म जिज्ञासुओं के कर्त्तव्यों का अपनी अद्भुत शैली से निरूपण कर दिया है और साथ ही गुरु के गुण भी बतला दिए हैं। पिप्पलाद को यहां भगवान् कहा है, भगवान् शब्द का यह अर्थ है:—

ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्य्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(विष्णुपुराण)

(१) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य,(२)वीर्य्य (३) यश (४)श्री (५) ज्ञान तथा (६) वैराग्य इन छः का नाम भग है। समग्र ऐश्वर्य्य परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं हो सकता। वेद में कहा है—

भग एव भगवां अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम (ऋ० ७।४१।५) भग ही भगवान्=परमात्मा है। हे देवो! उस के सहारे हम भी भगवान्=ऐश्वर्यवान तथा भक्त बनें। वीर्य्य=उत्साह, शिष्यों में ज्ञानाधान का बल, ब्रह्मचर्य्य। इस सामर्थ्य से पिप्पलाद जी अवश्य धनी थे, यश=कीर्त्ति, यदि उन का ब्रह्म ज्ञान पुरान करने के सामर्थ्य का यश न होता तो ये ब्रह्मनिष्ठ लोग कैसे जिज्ञासु बन कर उन के पास आते। श्री=शोभा; ब्रह्मज्ञानी की शोभा, कान्ति विलक्षण होती है, वह बिमल अन्तः करण वालों को मोहित कर लिया करती है। ज्ञान=सामान्य ज्ञान तथा वैराग्य=ज्ञान की अन्तिसीमा (जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है,) इन दोनों के पिप्पलाद जी पूर्ण धनी थे। भाव यह कि जिसे गुरु बनाने चले हो, पहिले जांच लो। कईयों में ज्ञान तो होता है किन्तु वह दूसरे को अपनी बात समझा नहीं सकते। गुरु ऐसे महानुभाव को बनाना चाहिये जिस में दूसरे को अपना ज्ञान देने की अटकल, युक्ति आती हो। वैराग्य का उपदेशक स्वयं विरक्त होना चाहिये। अर्थात् स्वयं विषयों के विष होने का, आर्शीविषव सर्प होने का पूर्ण निश्चय हो। ऐसा ज्ञानी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ शिष्य को अज्ञान के परले पार ले जाने में समर्थ होता है।

पिप्पलाद को भगवान् कहने से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि ब्रह्मविद्या के पारंगत अचार्य्य के रूप में उन का धवल यशः सब ओर फैला हुआ था।

जब वे बिधिपूर्वक पिप्पलाद जी के पास पहुँचे, तब क्या हुआ सो उपनिषत्कार के शब्दों में ही सुनिये। वे लिखते हैं—तान् ह स ऋषिरुवाच—'भूय एव तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ। यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ। यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्यामः' इति (१।२) उन को पिप्पलाद ऋषि ने कहा—'फिर से तप ब्रह्मचर्य्य एवं श्रद्धापूर्वक एक वर्ष हमारे पास रहिये। तत्पश्चात् यथेच्छ प्रश्न पूछिये, यदि आप को हम पात्र=अधिकारी समझेंगे तो आप को सब कुछ बता देंगे।

ऐसा नहीं हुआ कि उन लोगों ने जाते ही प्रश्न कर दिये और पिप्पलाद जी ने उत्तर देने प्रारम्भ कर दिये। पिप्पलाद ने उन जिज्ञासुओं की उत्कट अभिलाषा जान कर उन के मार्ग के विघ्नों को दूर करने के लिए उन्हें तप का अनुष्ठान करने को कहा। तप के साथ ब्रह्मजिज्ञासु के लिए ब्रह्मचर्य्य अनिवार्य है। तप का फल बतलाते हुए मनु जी ने कहा है—तपसा किल्विषं हन्ति=तप से दोषों का नाश होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अग्नि में डालने से सुवर्ण आदि धातुओं के मल जल जाते हैं । ऐसे ही तप की अग्नि में जिज्ञासु के दोष नष्ट हो जाते हैं । तप का स्थूल भाव है, चिन्ता और विलाप से रहित हो कर सभी द्वन्द्वों—हर्ष, शोक, सुख, दुःख आदि—को सहना । ब्रह्मचर्य्य बहुत अर्थों वाला शब्द है। वेद में ब्रह्मचर्य्य को तप कहा है । अथर्व वेद का प्रसिद्ध वचन है—ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघनत (अ० ११-५-१९)=ब्रह्मचर्य्य तप के द्वारा विद्वान् मृत्यु को मार देते हैं । शरीर तथा आत्मा के विघ्न ही मृत्यु हैं, उन को जिस साधन से हटाया जा सकता है, उसे ब्रह्मचर्य्य कहते हैं। योग के प्रथम अङ्ग यम में ब्रह्मचर्य्य को गिना गया है, वहां इस का फल—'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः (२।३८) [=ब्रह्मचर्य्य की सिद्धि से शक्ति प्राप्त होती है] बतलाया गया है। तप और ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान से विरोधी भावों को दूर कर के अनुकूल भावों के मूल श्रद्धा को धारण करने से जिज्ञासु क प्रशस्त होता है।

यहां ऋषि ने एक और मर्म की बात क कि यदि तुम तप आदि के द्वारा पात्र ब तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दिया जाएगा। ज जब तक जिज्ञासु का अन्तरङ्ग विमल नहो ब्रह्मविद्या को वह धारण करने के समर्थ हो सकता।

पिप्पलाद को यहां ऋषि कहा गया है। का अर्थ होता है साक्षात्कारसंपन्न। पिप्प ऋषि के नाम से अथर्व वेद की एक पिप्पलादसंहिता प्रसिद्ध है। कदाचित् यह लाद वही हों।

वर्ष भर के पश्चात् ऋषि ने अनुभव कि इन जिज्ञासुओं का अन्तःकरण विक शून्य हो गया है, ब्रह्मज्ञान के आधान के प अतः इन को ज्ञान दान करना चाहिये जिज्ञासु थे। अतः एव छः प्रश्न हैं। प्रश्न गंभीर हैं।

प्रथम प्रश्न

सब से पूर्व कबन्धी कात्यायन ने प्रश्न किया कुतो ह वा इमा प्रजाः प्राजायन्त=यह प्रजाएं=सृष्टपदार्थ कहां से, किन से उत्पन्न हुए ?

देखने में यह प्रश्न सीधा सा प्रतीत होता है। किन्तु है यह अत्यन्त जटिल। प्रश्नों का प्रश्न है। समस्त संसार के दर्शन इस प्रश्न के समाधान में ही प्रवृत्त हुए हैं। इस प्रश्न के यथार्थ समाधान पर मनुष्य का कल्याण निर्भर है। प्रश्न का स्थूल भाव इतना है कि यह सृष्टि भाव से उत्पन्न हुई है या अभाव से ? इस का कर्त्ता कोई है या नहीं ? इस का कर्त्ता तथा उपादान अभिन्न हैं या भिन्न भिन्न ? यह क्यों उत्पन्न हुई है अर्थात् इस का प्रयोजन क्या है ? संसार भर के दार्शनिक विद्वान् इन्हीं प्रश्नों के समा ही रत रहते हैं। वैदिक ऋषि मुनि केवल तर्क वितर्क से ही इन का समाधान नहीं करते थे। इस के लिये वे साधनचतु अनुष्ठान करते थे। श्रवण=गुरुमुख से शास्त्र के अनुशीलन से तत्वज्ञान प्राप्त मनन=सुने पढ़े पर विचार कर के सा कर के जीवन में, आचरण में उसे ढा निदिध्यासन और सब के अन्त में इन स्वरूप साक्षात्कार ये चार साधन चतुष्टय हैं। साक्षात्कार=प्रत्यक्ष करना=reali के बिना ज्ञान को ऋषि लोग थोथा मा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साधनचतुष्टय के अनुष्ठान से जो ज्ञान उन्हें प्राप्त होता था, उसे वे यथार्थ एवं अबाध्य समझते थे। मेरे हाथ पर आँवला रखा है। मैं उसे देख रहा हूँ। संसार भर के तार्किक मिल कर मुझे बहकाना चाहें कि यह आंवला नहीं है, तो भी मैं न बहक सकूंगा। क्योंकि मुझे उस का प्रत्यक्ष हो रहा है। कठोपनिषत् में साक्षात्कार का माहात्म्य बतलाते हुए कहा है:—नैषा तर्केण मतिरापनेया=यह ज्ञान तर्क से नहीं हटाया जा सकता। ऋषि जहां स्वयंसाक्षात्कारी होते थे वहां अपने शिष्यों को भी साक्षात्कार करने की प्रेरणा करते थे। इस कारण उन के समाधान सदा दार्शनिकों के लिए समाधान कारक रहे हैं। राज कुमार दाराशिकोह को उपनिषदों ने मोह लिया था। उस के लिए उपनिषदनुवाद के लेटिन भाषा के उलथा को पढ़ कर जर्मनी के जगद्विख्यात दार्शनिक शोपनहार के मुख से विवश ये वाक्य निकले—'उपनिषत् मेरे जीवन में मुझे शान्ति देती रही हैं, मेरे मरने के पश्चात् भी ये मुझे शान्ति देंगी।' अतः इन के लिए समाधानों को विशेष ध्यान से मनन कर के जीवन का अङ्ग बनाना चाहिये।

पिप्पलाद जी ने इस का समाधान इस प्रकार किया:—

प्रजाकामो वै प्रजापतिः, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा मिथुनमुत्पादयते रयिञ्च प्राणञ्चेति। एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यतः इति ॥ (१।४) प्रजापति को जब प्रजा (सृष्टि) उत्पन्न करने की इच्छा होती है तब वह तप करता है, तप करके वह रयि और प्राण का जोड़ा उत्पन्न इस विचार से करता है कि ये दोनों मेरी अनेक प्रकार की प्रजाएं उत्पन्न करेंगे।

इस उत्तर में प्रश्न का पूर्णरूप से सामाधान कर दिया गया है। यह सृष्टि निर्निमित्त=अकर्तृक नहीं है, इस का कर्त्ता है, और उसको यहां प्रजापति कहा गया है।

आज कल उपनिषदों पर लेख लिखने वाले प्रायः यह लिख दिया करते हैं कि उपनिषदों में हेतुवाद का आश्रय नहीं लिया जाता, ऐसे लोग उपनिषदों की शैली से अनभिज्ञ होते हैं। ब्रह्म विद्या के जिज्ञासु तर्कवाद की अवस्था पार कर चुके होते हैं। श्रवण, मनन की अवस्था से ऊपर उठ कर निदिध्यासन की अवस्था वाले हो चुके होते हैं, उन्हें तो सङ्केत से बात समझानी होती है। जैसा कि जनक की सभा में एक जिज्ञासु के प्रश्न करने पर उस का हाथ याज्ञवल्क्य ने पकड़ कर कहा था—'चल भैया' बाहर चलें तुम्हें एकान्त में बात बताएंगे। जब वे बाहर से लौटे तो प्रश्नकर्त्ता अत्यन्त सन्तुष्ट था। इस उपनिषद् की कथा ही देख लीजिए। प्रश्न करने वाले ब्रह्म पर ब्रह्मनिष्ठ तथा परब्रह्म के खोजी थे। जो इतने महाविद्वान् महातपस्वी हों उन्हें तर्क वितर्क की आवश्यकता ही क्या है?

दूसरी बात यह है कि उत्तर इस प्रकार के होते हैं कि जिन में तर्क समाविष्ट होता है। जैसे यहां सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा वाले को प्रजापति कहा गया है। प्रजासृष्टि की कामना के समय भी वह प्रजापति है। अर्थात् वह सृष्टि से पूर्व भी प्रजा का पति था। दूसरे शब्दों में सृष्ट प्रजा के अतिरिक्त उस की असृष्ट=अनुत्पन्न=नित्य प्रजा भी है। अतः वह सदा प्रजापति है, प्रजा का राजा है। उस असृष्ट प्रजा के द्वारा वह सृष्टि रचता है। भाव यह कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभाव से सृष्टि नहीं होती, प्रत्युत भाव से सृष्टि होती है।

प्रजा और उस का पति भिन्न हुआ करते हैं, अतः पति=सृष्टि रचना करने वाला, तथा जिन से सृष्टि की जाती है, दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं, अभिन्न नहीं। किस मनोरम रीति से अभिन्ननिमित्तोपादान कारण वाद का खण्डन किया गया है।

सृष्टि उत्पन्न करने के लिए भी प्रजापति ने दो प्रकार की सृष्टि की—१. प्राण और २. रयि। प्राण का अर्थ प्राणी जगत्, रयि का अर्थ रमण सामग्री। सृष्टि पर दृष्टि डालिये। समस्त जगत् में आप को ये दो प्रकार के पदार्थ दृष्टिगोचर होंगे। एक प्राण=सांस लेने वाले =भोक्ता, दूसरे भोग्य। अकेला जीवात्मा भोक्ता नहीं हो सकता, शरीर इन्द्रिय आदि साधनों के बिना भोग संभव ही नहीं, ऋषि कह गए हैं—आत्मा शरीरेन्द्रियार्थं मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः=शरीर इन्द्रिय, भोग्य पदार्थ एवं मन से युक्त होने पर आत्मा को ज्ञानीजन भोक्ता कहते हैं। उपनिषत्कार ने स्पष्ट करने के लिए कह दिया प्राण। भोक्तृत्व भी परमात्मा रखता है, इस को कहने के लिए भोक्ता को प्राण कहा। तनिक विचार से कार्य लिया जाए तो सृष्टि का प्रयोजन भी सिद्ध हो गया। आत्मा को भोग प्रदान करने के लिये यह सृष्टि रची गई।

इस पर एक आक्षेप हो सकता है कि यहां प्रजा पति को प्रजा काम कहा गया है। इस से तो यही सिद्ध होता है कि परमात्मा ने अपनी इच्छा पूर्ति के लिए सृष्टि रची।

आपाततः इस आक्षेप में बल प्रतीत हो[ता] है, किन्तु इस आक्षेप के मूल में एक भूल का[म] कर रही है, वह है उपनिषदों की परम्परा स[म्ब]न्धी अनभिज्ञता। उपनिषदों को वेदों की रहस्[य] विद्या कहा जाता है। प्रश्नोपनिषद् के मू[ल] अथर्व वेद में भगवान् का वर्णन करते हुए क[हा] गया है—अकामो धीर (अ० १०।८।४४) अर्थ[ात्] परमात्मा कामना रहित अतएव अचंचल है। इस का तात्पर्य्य यह है कि परमात्मा में अप[ने] लिये कोई इच्छा नहीं है। इच्छा न्यूनता की द्योतक होती है, किन्तु परमात्मा को उपर्यु[क्त] अथर्व मन्त्र में स्पष्ट न कुतश्चनोनः कहा गया है, उस में किसी भी प्रकार की ऊनता=कमी नहीं है। अतः निष्काम या अकाम प्रभु को प्रजाका[म] कहने का तात्पर्य्य कुछ और ही है। और वह प्रजा=जीवों की इच्छा पूर्त्ति की कामनावा[ला] परमात्मा में सभी कारुणिक मानते हैं। करु[णा] का अर्थ है दूसरे के दुःखों को दूर करना। दू[सरों] के अभावों की पूर्त्ति की कामना करना। ऐ[सी] कामना का होना परमात्मा में दूषण नहीं ब[ल्कि] भूषण है। वैदिक मूर्धन्य दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश में लिखा है:—

"(प्रश्न) परमेश्वर क्या चाहता है? (उत्तर) सब की भलाई और सब के लिए [सुख] चाहता है।"

तात्पर्य्य यह है कि परमात्मा जीवों [के] कल्याण की कामना करता है और इस के लि[ए] सृष्टि के आरम्भ में उन्हें ज्ञान प्रदान करता [है] जैसा कि यजु० ४०।८ में उपदिष्ट हुआ है—[याथा]तथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः=अ[नादि] सनातन जीवरूप प्रजाओं के लिये ठीक ठी[क]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थों=पदार्थों को बनाता तथा यथार्थ वेदार्थ का प्रकाश करता है।

यह समग्र सृष्टि जिन के लिऐ बनी है, यदि उस के व्यवहार और प्रयोग तथा गुण दोषों का ज्ञान उन्हें न कराया जाये, तो वे कैसे इस से लाभ उठा सकते हैं ?

परमेश्वर के सम्बन्ध में उपर्युक्त धारणा को धारण करने से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि सृष्टि जीवों के लिये है। यह परमात्मा की बहुत बड़ी करुणा है।

रयि (भोग्य) तथा प्राण (भोक्ता) के जोड़े को समझाने के लिए भगवान् पिप्पलाद ऋषि ने कई उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। उनमें से से पहला आदित्य और चन्द्रमा का है। आदित्य को प्राण तथा चन्द्रमा को रयि बतलाया है। भोग्य पदार्थ के भोग्य होने का प्रबल प्रमाण वृद्धि एवं ह्रास है। चन्द्रमा में वृद्धि तथा ह्रास स्पष्ट दीखते हैं। बड़ी से बड़ी सम्पत्ति भी एक दिन समाप्त हो सकती है, चन्द्रमा का अमावास्य तथा प्रतिपदा के समय में न दीखना भोग्य के विलुप्त होने की सूचना दे रहा है। उस के विपरीत भोक्ता आदित्य समान एक सा बना रहता है। भोक्ता और भोग्य के इस भेद को हृदय में धरने की आवश्यकता है।

संसार के सभी प्राकृतिक पदार्थ चाहे वे दीखते हैं या नहीं दीखते हैं, भोग्य हैं अतः भगवान् पिप्पलाद ने कहा—रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तं चामूर्त्तं च (१।५) यह सभी रयि है जो मूर्त्त अथवा वायु की भांति अमूर्त्त है। वायु भी सावयव होने के कारण मूर्त्त ही है, अतः कहा—तस्मान्मूर्त्तिरेव रयिः (१।५) इस वास्ते सावयव (संयोग से बने) पदार्थ रयि भोग्य हैं। इस का भाव यह है कि उपकरणों से रहित भोक्ता निरवयव है, नित्य है। भोक्ता को अपने भोग्य पदार्थ के उपयोग प्रयोग का कुछ न कुछ ज्ञान आवश्यक है, अतः भोक्ता चेतन भी है।

सूर्य्य एक स्थान में रहता हुआ वायु संयोग से सर्वत्र प्राणों का संचार करता रहता है, उस की रश्मियां जीवन का भंडार हैं, स्रोत हैं। इसी भांति आत्मा शरीर में एक स्थान पर रहता हुआ शरीर में सर्वत्र जीवन का संचार करता रहता है।

भोक्ता प्राण को वैश्वानर विश्वरूप अग्नि का रूपक दिया है। अन्दर प्राण और बाह्य जगत् में सूर्य्य क्रिया का निमित्त है, अतः वे दोनों वैश्वानर कहलाते हैं। सूर्य्य अग्नि का महान् भंडार होने से सब रूपों का मूल होने से विश्वरूप है, प्राणात्मा विभिन्न योनियों में आने के कारण विश्वरूप है। प्राणों को अग्नि कहना तो अत्यन्त सार्थक है। इसके बिना प्रगति असंभव है। ऋषि अपने वचन की पुष्टि में एक प्रमाण उपस्थित करते हैं—

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

विश्वरूप, सब पदार्थों का हरण करने वाले, अग्निस्वरूप अथवा ज्ञान संपन्न, परायण सब से महान् अधिष्ठान, जाज्वल्यमान एक ज्योति, अनेकों रश्मियों वाला, [विविध योनियों में] नानारूप से व्यवहार करने वाला प्रजा मात्र का यह प्राण रूप सूर्य्य उदय हो रहा है।

इस प्रमाण वाक्य पर विचार करने से प्रतीत होता है कि यह भौतिक सूर्य तथा आत्मा दोनों पर समान रूप से लागू है। कदाचित्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सूर्य्य और आत्मा की इस समता के कारण वेद में सूर्य्य के सभी नाम आत्मा के भी नाम हैं।

समझाने के लिये दूसरा उदाहरण संवत्सर का दिया है, संवत्सर को प्रजापति मान कर उस के दक्षिणायन तथा उत्तरायण दो अयनों को चन्द्रमा तथा आदित्य से उपमा दी है। दक्षिणायन को पितृयाण और उत्तरायण को देवयान के समान बताया है। जिन को संसार में अपने नाम की कामना होती है, वे भौतिक यज्ञयाग अनुष्ठान, कूप, तड़ाग, धर्म्मास्थान उत्पन्न करते हैं। दक्षिणायन को रयि कहा है एषो ह वै रयिर्यः पितृयाणः (१।) सचमुच यह रयि है जो पितृयाण है। संसार मार्ग का नाम पितृयाण है मोक्षमार्ग के अभिलाषी 'तपसा ब्रह्मचर्य्येण, श्रद्धया विद्यामात्मान्वादित्यमभिजयन्ते (१।१०) तप, ब्रह्मचर्य्य, श्रद्धा तथा ज्ञान के द्वारा आत्मा की खोज कर आदित्य=प्राण को वश में कर लेते हैं। एतद् वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत्, परायणम्, एतस्मान्न पुनरावर्त्तन्ते (१।१०)=यह (आत्मा) प्राणों का ठिकाना है, अविनाशी है, अभय पद है, परागति है। आत्मज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। संवत्सर स्वरूप निरूपण के संबन्ध में ऋषि ने अथर्व वेद १।६।१२ मन्त्र उद्धृत किया है। इस के पश्चात मास को प्रजापति तथा शुक्ल पक्ष को प्राण और कृष्ण को रयि कहा है। इस के पश्चात् दिन रात को प्रजापति, दिन को प्राण तथा रात्रि को रयि बताए हुए जीवनोपयोगी महान् तात्विक उपदेश दिया है— प्राणं वा एते प्रस्कन्दति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौरत्या संयुज्यन्ते (१।१३) जो लोग दिन में स्त्री से संभोग करते हैं वे प्राणों का नाश करते हैं। जो रात्रि में स्त्री से रति... हैं, वे ब्रह्मचर्य्य का पालन करते हैं। गृहस्थ... भी ब्रह्मचर्य्य आवश्यक है, यह यहां ... हो रहा है।

इस के पश्चात् अन्न को प्रजापति कह... अन्न से वीर्य्य और वीर्य्य से सृष्टि के उत्प... होने की बात बताई है।

संवत्सर, मास, दिन रात, अन्न, ये सब सृष्टि के द्योतक हैं। पिप्पलाद ऋषि ने प्र... कर्त्ता का वास्तविक अभिप्राय समझ कर उ... में उसे कहा—तद्ये ह वै प्रजापति व्रतंचरन्ति मिथुनमुत्पादयन्ते (१।१५) जो प्रजापति के व्रत... अनुष्ठान करते हैं, वे मिथुन=जोड़े को उत्प... करते हैं।

सृष्टि चालू रखने के लिये जोड़े के बि... निर्वाह नहीं हो सकता। न अकेली स्त्री पुरु... योग के बिना सन्तान उत्पन्न करने में स... है और न ही अकेला पुरुष स्त्री संबन्ध से र... हो कर सन्तान उत्पन्न कर सकता है।... सन्तान उत्पन्न करने के लिये मिथुन... आवश्यकता है।

किन्तु जिन को मुक्ति की अभिलाषा हो, ... कोई दूसरा मार्ग लेना होता है। ऋषि ने क... 'तेषामेव ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं, सत्यं प्रतिष्ठतम् (१।१५) तेषामसौ ब्रह्मलोको येषु जिह्ममनृतं न माया चेति १।१६=मोक्ष... का होता है जो तपस्वी तथा ब्रह्मचारी हों... जिन में सत्य की पूरी प्रतिष्ठा हो। यह ... लोक=मोक्ष उन्हीं का है जिन में कुटि... मिथ्या तथा कपट नहीं होता।

अर्थात् मोक्षाभिलाषी को कुटिलता, ...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तथा ठगी का त्याग करके तप, ब्रह्मचर्य्य जितेन्द्रियता तथा वेदाभ्यास, और सत्यनिष्ठा को धारण करना चाहिये। पिप्पलाद ऋषि के इस उपदेश को तलवकार ऋषि के आदेश से मिलाइए, वे कहते हैं:–तस्यै तपो दमः कर्म्येति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गाणि सत्यामयतनम (केनो० ४।८) इस उपनिषद्विद्या के लिये तप, दम, (जितेन्द्रियता) तथा कर्म (वेदानुसार आचरण) आधार हैं वेद, वेदाङ्ग तथा सत्य (सत्य मानना, करना) उस का आयतन है।

इसी को कहते हैं लौ लगाये एकोमत। तलवकार ऋषि ने केवल कर्तव्य का निर्देश किया है। भगवान् पिप्पलाद ने कर्तव्य के साथ त्याग= त्यागने योग्य बातों का भी आदेश कर दिया है। दुर्गुण त्यागे बिना सद्गुण का धारण असम्भव है।

द्वितीय प्रश्न

इस के पश्चात् भागर्व वैदर्भि ने प्रश्न किया–:

भगवन् कत्येन देवाः प्रजां विधारयन्ते, कतर एतत्प्रकाशयन्ते, क एषां वरिष्ठः इति (२।१=महाराज! कितने देव सृष्टि को धारण करते हैं इन में से कौन से इस के प्रकाशक हैं और इन में सर्वश्रेष्ठ कौन है?

इस प्रश्न में स्पष्ट ही तीन प्रश्न हैं—(१) इस प्रजा (शरीर अथवा सृष्टि) का उपादान कारण क्या है? (२) इस शरीरधारी की सत्ता का प्रकाशक=ज्ञापक=बोधक=प्रमाण क्या है? तथा (३) इन सब में श्रेष्ठ कौन है? शरीर के उपादान कारण, इन्द्रियों तथा प्राण की सत्ता के सम्बन्ध में ये प्रश्न हैं।

पिप्पलाद ऋषि ने जो उत्तर दिया, वह अत्यन्त शोभन है। उन्हों ने कहा—आकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी, वाङ्मनः चक्षुः श्रोत्रं च। ते प्रकाश्याभिवदन्ति–वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः। २

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाणी, मन, नेत्र तथा श्रोत्र। ये प्रकाश कर के कहते हैं, हम इस शरीर को धारण करते हैं।

अर्थात् यह शरीर पांचभौतिक है। वाणी [कर्म्मेन्द्रियों का उपलक्षण है] चक्षुः श्रोत्र [ये ज्ञानेन्द्रियों के उपलक्षण हैं] तथा मनः=अन्तःकरण इस बाण=शरीर के धारक प्राण के प्रकाशक हैं, बोधक है। ऋषि ने अपनी अध्यात्म रीति से यह कहा कि कई लोगों का विचार है कि शरीर तथा इन्द्रियों के अतिरिक्त कोई पृथक् प्राण नहीं है। इस बात को उन्हों ने यों कहा कि पंचभूत तथा बाह्य एवं आभ्यन्तर करणों ने कहा हम ही इस शरीर के धारक हैं।

इस पर वरिष्ठ प्राण ने इन को कहा—मा मोहमापद्यथ, अहमेवैतत्पंचधात्मानं प्रविभज्येतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि इति ॥३॥ मत भ्रम में पड़ो, मैं ही अपने को पांच प्रकार का बना कर इस शरीर को धारण करता हूं।

प्राण को अंग्रेजी भाषा में Vitality कहते हैं। जीवन शक्ति का नाम प्राण है। तात्पर्य यह कि जीवन शक्ति=प्राण के बिना शरीर खड़ा ही नहीं रह सकता। आंख, नाक, कान वाणी की तो बात ही क्या, वे तो शरीर के सहारे रहते हैं प्राण के निकल जाने पर शरीर मृतक निश्चेष्ठ हो जाता है। इन्द्रिय भी तब कोई कार्य्य नहीं कर सकती। अतः प्राण इन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सब से श्रेष्ठ=वरिष्ठ है।

इन्द्रियों को प्राण की इस बात पर विश्वास न हुआ। उन्हें अभिमान था कि हमारे बिना शरीर की सत्ता नष्ट हो जाएगी। एक एक करके सभी निकलीं। शरीर में विकार अवश्य हुआ किन्तु उस का नाश या पतन न हुआ। आंख के चले जाने पर अन्धा, कान के चले जाने पर बहिरा, वाणी के निकल जाने पर गूंगा हो गया. इसी भांति दूसरी इन्द्रियों के निकल जाने पर शरीर में तत्तन्द्रिय सम्बन्धी दोष अवश्य हुआ, किन्तु शरीर बना रहा। अब इस के बाद प्राण ने निकलने की योजना की। परिणाम यह हुआ कि आंखें अन्धी होने लगी, कान बहिरे होने लगे, वाणी गूंगी होने लगीं, शरीर टूटने लगा। इन्द्रियों के चले जाने पर प्राण का आसन शरीर में अडोल रहा, किन्तु प्राण के निकलने की योजनामात्र से इन्द्रियों का चालान होने लगा। जैसे रानी मक्खी के चलने पर सभी मक्खियां उड़ पड़ती हैं और उस के बैठ जाने पर सभी बैठ जाती हैं, ऐसे ही प्राण के प्रयाण पर सभी इन्द्रिय निष्प्राण हो जाते हैं और उसके स्थित रहने पर सब की सत्ता बनी रहती है। इन्द्रियों को जब अनुभव हुआ कि हमारी सत्ता तो प्राण के अधीन है तब वे प्राण की स्तुति करती हुई कहने लगीं:— आप मत निकलिये। प्राण की स्तुति देखने से प्रतीत होता है कि समस्त संसार में जो जो भी जीवन हेतु हैं, वह वह प्राण हैं यथा—यह आग है, यह सूर्य है, यह बादल है, यह बिजली है, यह वायु है, यह रोगसाधन है, यह व्यक्ताव्यक्त तथा अविनाशी है। तात्पर्य यह कार्य्यशरीर में इन तत्त्वों को प्राण धारण करता है, अतः लक्षणा से इन पदार्थों को प्राण नाम दिया गया है। वास्त प्राण सर्वाधार है जैसा कि इस के आगे गया है:—

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च॥

जैसे रथ की नाभी में अरे टिके रहते हैं प्रकार चारों वेद, यज्ञ, शारीरिक बल तथा बल तथा सब कुछ प्राण के सहारे रहता है।

तात्पर्य्य यह है कि आत्मा की सब शक्ति प्राण के सहारे प्रकाशित एवं विकसित होती

इस के आगे प्राण को गर्भस्थ प्रजा तथा जन्मने वाला कह कर कहा है कि यह सृष्टि तुझे कर दे रही है। तू ही देवों का सर्व धारक है तू ही पितरों की मुख्य शक्ति है, ऋषियों का चरित है तथा तू ही अथर्वाङ्गि का सत्य है।८। हे प्राण! तू तेज के कारण है, तू ही रुलाने वाला तथा बचाने वाला ही अन्तरिक्ष में सूर्य्य हो कर विचरता प्रकाशों का पति है।९। हे प्राण! जब तू बर है ये तेरी प्रजाएं आनन्द मग्न हो जाती हमारे लिए इच्छा पूर्वक अन्न होगा।१ प्राण! तू व्रात्य है, प्रधान ऋषि=द्रष्टा भोक्ता है तथा विश्व का सत्पति है, हम भो दाता हैं अन्तरिक्षचारी वायु का पिता है हे प्राण! तू व्रात्य है, प्रधान ऋषि=द्रष्टा भक्ता है तथा विश्व का सत्पति है, हम भो दाता हैं तू अन्तरिक्षचारी वायु का पिता है तेरा जो विस्तार (तन) वाणी में स्थित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कान में, जो नेत्र में तथा जो मन में फैला हुआ है, उसे कल्याणमय करो किन्तु मोत्क्रमीः=तू निकल मत। १२॥ क्योंकि जो कुछ त्रिलोकी में है, वह सब प्राण के सहारे ठहरा हुआ है। अतः हे प्राण। तू हमारा त्राण=रक्षण इस भांति कर जिस भांति माता पुत्रों की रक्षा करती है और हमें शोभा=लक्ष्मी तथा ज्ञान प्रदान कर ॥१३॥

बड़े बड़े वैज्ञानिकों को भी सूक्ष्म प्राण की सत्ता पर विश्वास नहीं है। अतः परम आत्म-वैज्ञानिक पिप्पलाद क्रम से आत्मसोपान पर चढ़ाने के लिए प्रथम प्राण और रयि का बोध करा के ब्रह्मज्ञान के समान साधनों का निरुपण करते हुए प्राण विद्या का संक्षेप में वर्णन करते हैं। प्राण की इस महिमा का व्याख्यान करने का प्रयोजन यह है कि अध्यात्मज्ञानाभिलाषी के लिए प्राण को वश करना अनिवार्य है, चाहे वह प्राणायाम के अभ्यास द्वारा करे अथवा ध्यान द्वारा।

प्राण का जो महत्त्व यहां वर्णित हुआ है, वह शतपथ ब्राह्मण में तनिक विस्तार से कहा गया है, उस के लिये लेखक की योगोपनिषद् देखनी चाहिये। यह सारा माहात्म्य अथर्ववेद (११।४) प्राणसूक्त के आधार पर ऋषि ने किया है। उस का थोड़ा सा भाग यहां उद्धृत करते हैं—

प्राणाय नमो यस्या सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१॥ प्राण को नमस्कार है यह सारा जगत् जिस के वश में है, जो तथ्य सब का ईश्वर है तथा जिस में सब ठहरा है। यदा प्राणोऽभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवी महीम्। पशवस्तत्र प्रमोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥४॥ यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवी महीम्। ओषधयः जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥१७॥ जब प्राण वर्षा द्वारा उस विशाल पृथिवी पर बरसता है तब पशु प्रसन्न होते हैं कि हमारे लिये पुष्कल भोजन होगा; क्यों जब प्राण वर्षा द्वारा विशाल पृथिवी पर बरसता है तब सब प्रकार ओषधियां लताएं आदि उत्पन्न होती हैं ॥ यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिँश्चासि प्रतिष्ठितः। सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥१८॥ यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यम् सर्वाः प्रजा इमाः। एवा तस्मै बलिंहरान्यस्त्वा शृणावद् सुश्रवः ॥१९॥ हे प्राण। जो तेरे इस रहस्य को जानता है तथा जिस में तू उत्तम रीति से स्थित है। सभी उस के लिये मुक्ति के निमित्त बलि=कर अर्पण करते हैं। हे प्राण ! जैसे यह समस्त प्रजाएं तेरी करदात्री हैं, इसी प्रकार उस को भी कर देती है, जो उत्तम श्रोता तेरी बात सुनता है।

प्राण की बात सुनने वाले बिरले होते हैं।

अन्तर्गर्भाश्चरति देवतास्वभूतो भूतः स उ जायते पुनः ॥ २० ॥

गर्भ के भीतर वह आकाश आदि देवों के भीतर रहता हुआ विचारता है और उस का पुनर्जन्म होता है।

प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्। प्राणो ह सर्वस्येश्वर यच्च प्राणति यच्चना ॥ १० ॥ प्रजाओं को प्राण इस तरह ढांपता है जैसे पिता प्रिय पुत्र को। प्राणी अप्राणी सभी का प्राण स्वामी है।

इस का विस्तार अथर्ववेदीय प्राणोपनिषत् में किया जाएगा। यहां इतना बतलाना अभीष्ट है कि पिप्पलाद ऋषि का यह समाधान वेदमूलक है तथा वेद में कहा हुआ तत्त्व उपनिषत् की अपेक्षा अधिक स्पष्ट एवं विस्तृत है तथा उस में कई ऐसी बातें भी हैं जो उपनिषत् में नहीं हैं। इस से साक्षात् वेदोक्त ब्रह्मविद्या का महत्त्व समझ में आता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तृतीय प्रश्न

प्राण की महत्ता का ज्ञान होने पर प्राण के विषय में अन्य जिज्ञासाओं का होना स्वाभाविक ही है। उन का प्रकाशन आश्वलायन कौशल्य ने इस भांति किया हैः—

भगवन्! कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिन् शरीरे, आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रतिष्ठते केनोत्क्रमते, कथं बाह्यमभिधत्ते, कथमध्यात्ममिति ॥

भगवन्! यह प्राण किस निमित्त से उत्पन्न होता है, इस शरीर में कैसे आता हैं, प्राण अपान आदि रूप में अपना विभाग कर के कैसे रहता है, किस कारण से शरीर का त्याग करता है। बाहर के पदार्थों को कैसे पकड़ता है और कैसे भीतर के पदार्थों को ?

इस एक प्रश्न में प्राण सम्बन्धी छः प्रश्न हैं— (१)प्राण का कारण(२) शरीर में आने का साधन (३)प्राणापान आदि विभाग कैसे(४) निकलने का का हेतु (५) बाह्य पदार्थों को किस प्रकार धारण करता है। तथा (६) भीतर के पदार्थों को कैसे धारण करता है।

सामान्य प्रतीत हुए भी ये प्रश्न सामान्य नहीं है। समाधान करने वाले पिप्पलाद ने इसी वास्ते समाधान देने से पूर्व कहाः—

अति प्रश्नान् पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोसीति तस्मात्तेऽहंब्रवीमि॥२॥

तुम अति प्रश्नों (कठिन प्रश्नों) को पूछते होते हो [इस से ज्ञात होता है कि] तुम ब्रह्मिष्ठ ब्रह्म में आस्था रखने वाले हो अतः तुम्हें बताता हूँ। इस के आगे प्रश्नों का समाधान हैः—

(१) आत्मा से प्राण की उत्पत्ति होती है, अर्थात् आत्मा के कारण प्राण की उत्पत्ति होती है। जैसे शरीर में छाया होती है, वैसे देह में यह फैला हुआ है।

(२) मन की वासनाओं के कारण यह (प्राण) शरीर में आता है।

(३) जैसे सम्राट अधिकारियों को नियुक्त करता है कि तुम अमुक स्थान में कार्य्य करो तुम अमुक में इसी प्रकार शरीर में भिन्न भिन्न स्थानों पर प्राण अपनी शक्ति को विनियुक्त करता है। यथा मलेन्द्रिय तथा मूत्रेन्द्रिय में अपान मुख नासिका समेत नेत्र तथा कान में प्राण मध्य में समान नामक प्राण खाए हुए अन्न को पकाता है जिस से इन्द्रिय शक्ति प्रदीप्त होती है। आत्मा के निवासस्थान हृदय में असंख्य नाड़ियां निकलती हैं, इन में ध्यान विचरता है इन में से एक नाड़ी द्वारा उदान पुण्यकर्मी को पुण्य लोक में, पापी को पापलोक में तथा पाप पुण्य तुल्य होने पर मनुष्य लोक में ले जाता है।

इस तीसरे उत्तर में चौथे, पांचवें, छटे प्रश्न के उत्तर भी आ गए हैं। भिन्न भिन्न स्थानों में प्राण अपनी अपान आदि शक्तियों से धारण कर रहा है। उदान के कारण उत्क्रमण=शरीर से बाहर निकलना बनता है।

भीतर प्राणादि की क्रिया का कथन कर प्रश्न बाहर उन की क्रिया का वर्णन करते हैं—सूर्य बाह्य प्राण है, पृथिवीस्थ शक्ति अपान आकाश समान है, वायु व्यान है, अग्नि उदान है। इसी लिए शरीरस्थ अग्नि के शान्त होने पर इन्द्रियों के साथ पुनर्जन्म होता है।

अर्थात् पुनर्जन्म में सूक्ष्म शरीर, जिस में प्राण तथा इन्द्रियों का समावेश है, आत्मा के साथ आता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने उपदेश को समाप्त करते हुए पिप्पलाद जी कहते हैं—

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पंचधा । अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञाया-मृतमश्नुते ॥इति॥ १२

प्राण की उत्पत्ति, शरीर में आना, ठहरना, पांच प्रकार से उस के विभुत्व तथा शरीर के भीतर प्राणों की चेष्टा को जान कर मोक्ष अथवा जीवन पाता है।

प्राण विद्या के ज्ञान से मनुष्य को जीवन रहस्य का बोध होता है, और उस के द्वारा प्राण को वश में करने का साधन प्राप्त होता है । इस से वह इस लोक में स्वस्थ होने के कारण सुखी एवं उत्तमाचार और प्राणसाधना के द्वारा मुक्ति भी प्राप्त कर लेता है।

इस अन्तिम वाक्य की बात अथर्व ११।४।६ में इस प्रकार कही गई है—

प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आदधत्= प्राण सत्यवादी को उत्तम लोक में धारण करता है।

अर्थात् प्राण का रहस्य जान कर तदनुसार अनुष्ठान करने वाले का परम कल्याण होता है।

ऋषि ने आत्मा का स्थान हृदय बतलाया है। इस का विवेचन किसी दूसरे प्रसंग में करेंगे।

चतुर्थ प्रश्न

अब तक के प्रश्न जागरित अवस्था के सम्बन्ध में थे, अब उस के आगे के विषयों में गर्ग गोत्री सौर्यायणी के प्रश्न हैं, उस ने पूछा—

भगवन् ? एतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति ? कान्यस्मिञ्जाग्रति ? कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति ? कस्यैतत्सुखं भवति ? कस्मिन्नु सर्वे प्रतिष्ठिता भवन्ति?

इति भगवन्! इस देह में कौन सोते हैं ? कौन इस में जागते रहते हैं। इन में से कौन देव स्वप्नों को देखता है ? किस को यह सुख होता है ? किस में सब टिके रहते हैं ? इस एक प्रश्न में पांच प्रश्न हैं। ऋषि ने इन का जो उत्तर दिया, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) हे गार्ग्य ! अस्त होते सूर्य्य की सब किरणें उस तेजोमण्डल में इकट्ठी हो जाती हैं और प्रातः उदय होने पर उस से प्रचरित होती हैं, ऐसे ही ये सब कुछ उस पर देव में एकीभूत हो जाता है, इस कारण तब पुरुष न सुनता है न देखता है न सूंघता है न रस लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न पकड़ता है, न आनन्द लेता है, न मलमूत्र का त्याग करता है न कहीं जाता है, उस दशा में उसे 'वह सो रहा है' ऐसा कहते हैं।

सोने तथा जागने वाले कौन हैं ? इस का समाधान देने से पूर्व ऋषि ने स्वप्न=सोने का व्याख्यान कर दिया है। जब बाह्य इन्द्रियां चाहे वे कर्म्मेन्द्रियां हों या ज्ञानेन्द्रियां, कर्म्म करना छोड़ देती हैं तब कहा जाता है कि यह सोता है। अर्थात् इन्द्रियां ही सोती हैं। यहां दूसरे प्रश्न का उत्तर भी आ गया।

(२) दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा— इस शरीर रूपी नगरी में प्राण रूपी अग्नि जागती हैं।

तात्पर्य्य यह कि प्राणाग्नि सदा जागरक रहती हैं। जब तक जीवन है, प्राणाग्नि कभी भी स्वप्न के चक्र में नहीं पड़ती है।

यज्ञों में तीन, अग्नियां मुख्य होती हैं—(१) गार्हपत्य (२) अन्वाहार्य्यपचनीय तथा (३)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आहवनीय। प्राणों को इन तीन अग्नियों का रूपक दिया है। अपान को गार्हपत्य कहा है, व्यान को अन्वाहार्यपचनीय कहा है और प्राण को आहवनीय कहा है, प्राण को आहवनीय कहने का हेतु भी कहा है—यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनात्प्राणः (३)=जो गार्हपत्य से ले जाया जता है प्रणयन के कारण आहवनीय को प्राण कहते हैं। अर्थात् आहवनीय अग्नि गार्हपत्य से बनाई जाती है।

ऋषि की इस उक्ति में एक गहरा भाव है। साधना में अपान स्थान से प्राण के उठाने का प्रयत्न किया जाता है साधारण प्राणायाम में मूलेन्द्रिय को ऊपर खींचने का विधान है। इसी को अपान से प्राण का प्रणयन कहते हैं। गार्हपत्य जिस प्रकार सब अग्नियों का मूल है ऐसे ही अपानजय साधना का मूल है।

जो उच्छ्वास (श्वास का भीतर ले जाना) तथा निःश्वास (श्वास का बाहर ले जाना) रूप आहुतियों को समान रूप से ले जाता है वह समान है। मन यजमान है इष्टफल ही उदान है। वह इस यजमान को प्रति दिन ब्रह्म तक पहुंचाता है।

स्वप्न अवस्था के साथ सुषुप्ति का संकेत कर दिया है। सुषुप्ति में परमात्मा का मेल सा होता है किन्तु अज्ञान के कारण उस से जीव लाभ नहीं उठा पाते। दार्शनिक शिरोमणि कपिल मुनि ने कहा है—समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता=समाधि, सुषुप्ति तथा मोक्ष में जीव की ब्रह्म के साथ समानता है॥ मोक्ष का अर्थ है सब प्रकार के बाह्य संसर्गों से छूट कर आत्मस्थ होना। उस अवस्था में ब्रह्म का साक्षात्कार होने से आनन्दप्राप्ति होती है। उ[...] दृष्टान्त सुषुप्ति है। सुषुप्ति दशा में न इ[...] कार्य्य करती हैं और न मन। इस से बाह्य [...]न्ध टूट कर आत्मस्थता प्राप्त होती है। [...]वल दशा में जो आनन्द आता है, वह ब्र[...]मेल के कारण होता है। सुषुप्ति बल[...] आती है। सुषुप्ति जैसी दशा को ज्ञानपूर्वक [...] का नाम समाधि है। अर्थात् यत्नपूर्वक मन [...] इन्द्रियों के व्यापार को रोकने का नाम स[...] है। प्राकृतिक नियम के वश हो कर इन के [...]पार रुकने को सुषुप्ति कहते हैं।

(२) स्वप्न दशा का वर्णन ऋषि ने इस प्र[...] किया है कि:—स्वप्न में मन महिमा को अ[...] करता है। उस अवस्था में बार बार के देखे, बार के सुने को देखता सुनता है। देश देश[...] की अनुभूतवस्तुओं को बार बार अनुभव क[...] है। देखे, बिना देखे, सुने अनसुने, अ[...] अननुभूत, विद्यमान अविद्यमान सब [...] देखता है।

स्वप्न का इस से स्पष्ट वर्णन और न[...] सकता। मन तो कार्य्य करता रहे किन्तु इ[...] का व्यापार रुक जाए, उस अवस्था को [...] कहते हैं। साधारण तथा अनुभूत वस्तु[...] स्वप्न आया करते हैं कभी कभी अननुभूत [...] असंभव वस्तुओं के स्वप्न भी आते हैं। उ[...] हेतु पूर्व जन्म के संस्कार तथा संस्कारों में [...] फेर है। (४) जब यह मन तेज से दब जा[...] तब यह मन स्वप्न नहीं देखता, उस सम[...] शरीर में सुख होता है ॥६॥ जैसे पक्षी [...] वासवृक्ष पर ठिकाना कर लेते हैं उस सम[...] तथा इन्द्रियां उस परदेव आत्मा में प्रवि[...] होते हैं ॥७॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थात् सुषुप्ति दशा में मन का कार्य्य भी स्थगित हो जाता है, इस लिये उस समय सुख की अनुभूति होती है। जब तक मन का व्यापार रहता है, तब तक थकावट, श्रान्ति का अनुभव हो जाता है, कोई कार्य्य कितना ही सरल क्यों न हो, मन के न लगने से वही कार्य्य कठिन एवं कठोर लगने लगता है। इस से सिद्ध हुआ कि मन से ही गड़बड़ होती है अतः मनुष्य को ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि वह जब चाहे मन के सारे व्यापार स्थगित कर के शान्ति, सुख प्राप्त कर सके।

सुषुप्ति के साक्षात्करने वाले आत्मा को मन की अपेक्षा परदेव कह कर उस संबन्ध में ऋषि ने प्रसंग से कहा:—

एष ह द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। स परे अक्षरे आत्मनि संप्रतिष्ठते ।।८।।

यही ज आत्मा वास्तव में देखने वाला, छूने वाला, सुनने वाला, सूंघने वाला, रस लेने वाला मनन करने वाला, ज्ञानवान्, करने वाला, विज्ञान स्वरूप पुरुष (देहरूप नगर का वासी) है वह परम अविनाशी आत्मा में उत्तम रीति से प्रतिष्ठित होता है।

तात्पर्य्य है कि आंख नाक कान आदि तथा मन ये कर्त्ता नहीं हैं ये करण=हथियार हैं। इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान वही जानता तथा मनन करता और समझता है। अर्थात् मन तथा इन्द्रियां चेतन नहीं, चेतन तो आत्मा है।

ऋषि के समझाने के प्रकार की जितनी भी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। स्थूल शरीर से किस प्रकार परमात्मा के द्वार पर ला खड़ा किया है।

अन्त में इस ज्ञान का माहात्म्य इस प्रकार ऋषि ने वर्णन किया है –

परमेवाक्षरं प्रतिपद्य ते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षर वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वो भवति। तदेष श्लोकः ॥१०॥ विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ते यत्र, तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य! स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेश, इति ॥११॥

जो मष्नुय उस छाया रहित, शरीर रहित, रक्त रहित, पवित्र अविनाशी परमात्मा को जानता तथा जो जनाता है, हे सोम्य! वह सर्वज्ञ तथा सर्व हो जाता है॥ [अपने वचन के समर्थन में ऋषि कहते हैं कि] इस विषय में यह श्लोक प्रमाण है—सब इन्द्रियों के साथ जीवात्मा, तथा समस्त भूत जिस में आश्रित रहते हैं, हे सोम्य! उस को जो जानता है तथा जनाता है वह सर्वज्ञ हो जाता है और सब में आविष्ट हो जाता है।

न्याय दर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन मुनि ने १-१-६ के भाष्य में लिखा है—

तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वानुभावी। =आत्मा सब [सुख दुःख तथा तत्साधनों] का द्रष्टा है, सब को भोक्ता तथा सब का अनुभव करने वाला है।

कठोर तार्किक तथा परम सौम्य औपनिषद ऋषियों के मत की एकता बतला रही है कि यदि अनुभव के यथार्थ मार्ग पर चला जाए तो समान अनुभव होता है।

ऋषि ने परमात्मा को यहां अच्छाय, अशरीर, अलोहित तथा शुभ्र कहा है। यह य० ४०।८ के इन शब्दों का अनुवाद है—शुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्=शोधक, शरीर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहित, अतएव क्षत रहित अतएव नस नाड़ी के बन्धन से रहित, पवित्र तथा पाप शून्य।

परमात्मा के उपदेश के साथ अनुभवी ऋषियों के अनुभव का मेल साधारण जनों के उत्साह को बढ़ाने वाला है।

ऋषि ने यद्यपि 'सर्वः' का अर्थ प्रमाण वचन के 'सर्वमाविवेश' शब्दों द्वारा स्पष्ट कर दिया है, तथापि उस को और अधिक स्पष्ट करते हैं। जब आत्मा देखता है, तब द्रष्टा है, जब सुनता है, तब श्रोता है; जब बोलता है, तब वक्ता है। अर्थात् जितनी क्रियाएं शरीर में होती हैं, उन सब का वह कर्त्ता है, इस कारण वह सर्व है, क्रिया करते हुए तन्मय होने को आवेश कहते हैं। आत्मा अपनी सभी दर्शन आदि क्रियाओं में आविष्ट है। अतएव वह सर्व है। इस बात को वात्स्यायन मुनि ने 'सर्वानुभावी' शब्द से प्रकट किया है। अर्थात् 'सर्वः, सर्वमाविवेश, तथा सर्वानुभावी' का एक भाव है। कई लोगों को यह भ्रम है कि यहां के 'सर्वः' पद का अर्थ 'जीव सब कुछ है' ऐसा है। प्रकरण के साथ सङ्गत न होने से उन का अर्थ ठीक नहीं है।

इस प्रश्न का मूल भी अथववेद का ...

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपद्यते। सुप्तमस्य सुप्तेष्वन् शुश्राव कश्चन॥ ११।४।२५

सब से मुख्य यह प्राण सोये हुए जागता रहता है, सचमुच इस की गति रहती है। सोये हुए इन्द्रियों में इस का कोई नहीं सुनता।

अर्थात् सोना इन्द्रियों तथा मन का है। प्राण आत्मा सदा जागते रहते हैं। यजु ३४।५५ में इस बात को इन शब्दों में किया गया है:—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्र... सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ ...

इस शरीर में सात ऋषि (इन्द्रियां) ... हैं, सात इस शरीर की प्रमाद रहित हो ... करते हैं, सात सोने वाले की अवस्था ... होते हैं, वहीं दो स्वप्न रहित दो देव ... यज्ञ में बैठे हुए सदा जागते रहते हैं।

जीवन यज्ञ के रक्षक सदा जागरूक ... का पिप्पलाद जी ने निरूपण कर ही दिया ...

पञ्चम प्रश्न

प्राण ज्ञान का लाभ है प्राण द्वारा ओङ्कारोपासना। अतः प्राण विज्ञान के अनन्तर शिबिगोत्रोत्पन्न सत्यकाम प्रश्न करते हैं—

स यो ह वैतद्भगवन् ! मनुष्येषुप्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमं वावस तेन लोकं जयति। इति॥ १

महाराज ! मनुष्यों में से जो कोई मरते समय तक ओङ्कार का ध्यान करे, वह उसके द्वारा किस लोक (फल) को प्राप्त करता है॥

यजु २।१३ में आदेश है—ओ३म् प्रतिष्ठ=ओ३म् में अपने को स्थापित कर इसी यजुः ४०।१७ में आदेश है—ओ३म् स्मर=... को स्मरण कर। सत्य काम पूछते हैं जो जीवन ओङ्कार का ध्यान करता रहे, उसे ... फल मिलेगा।

पिप्पलाद ऋषि ने बहुत संक्षिप्त ... मार्मिक उत्तर दिया है। उन्होंने कहा ए... काम ! परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारः तस्मा... नैवायत नैकतरमन्वेति॥ २॥ हे सत्यकाम जो ओङ्कार है, यह पर तथा अपर ब्रह्म है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ज्ञानी इस आयतन के द्वारा दोनों में से किसी एक का अनुगमन करता है।

ब्रह्म शब्द के अनेक अर्थ होते हैं--परमात्मा, जीव, प्रकृति, वेद, स्तुति, अन्न, महान् आदि आदि। परब्रह्म का अर्थ तो स्पष्ट परमात्मा ही है। परमात्मा की प्राप्ति का फल ब्रह्मानन्द है। अपर ब्रह्म की प्राप्ति का फल कोई सुख संपदा ही होना चाहिए, अतः अपर ब्रह्म का अर्थ लौकिक सुख होना चाहिये। पिप्पलाद ऋषि के कथन का भाव यह है कि ओङ्कार-उपासना से इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख ही सुख मिलता है। ऋषि की इस बात का समर्थन योगदर्शन से भी होता है। योग दर्शन में ओङ्कार-जप का फल बतलाते हुये कहा है—ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमो प्यन्तरायाभावश्च (१।२९)=ओङ्कार के जप से आत्माकी प्राप्ति तथा विघ्नों का नाश होता है। मनुष्य जीवन अनेक विघ्नों से भरा हुआ है। ओङ्कार द्वारा भगवान् का ध्यान करने से सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् लोक परलोक=अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति में कोई बाधा नहीं रहती। आत्मा की प्राप्ति से परमात्मा की प्राप्ति तो सुतरां सिद्ध है। बाह्य विषयों से उपरति होने पर ही आत्मा की प्राप्ति संभव है। मनुष्य जब आत्मस्थ होता है तो आत्मा के अन्तर्यामी अन्तरात्मा परमात्मा के दर्शन अनायास हो जाते हैं।

दोनों ऋषियों ने भिन्न २ प्रकार से एक ही बात का वर्णन किया है। इस के आगे ऋषि ओङ्कार की एक मात्रा द्वारा, दो मात्राओं द्वारा तथा तीन मात्राओं द्वारा उपासना का फल कहते हैं—

'यदि उपासक एक मात्रा का ध्यान करे तो उसी से संवेदित=सम्पन्न हो कर शीघ्र ही जगत् में प्रतिष्ठा पाता है। मात्राएं उसे मनुष्य लोक में पहुंचा देती हैं, वहां वह तप, ब्रह्मचर्य्य तथा श्रद्धा से सम्पन्न हो कर महिमा को अनुभव करता है। ३ ॥,

ओंकार की एक मात्रा आदि के ध्यान का व्याख्यान माण्डूक्योपनिषत्सार में किया जाएगा

ओंकार की पहली मात्रा 'अ' है। 'अ' का भाव सर्वत्र व्यापकता लिया जाता है। 'अ'=आकार के ध्यान का भाव है, परमात्मा को सर्वत्र व्यापक समझना। इस ध्यान से मनुष्य का अपने स्वरूप का भान हाता है। वह समझने लगता है मैं जड़ शरीर तथा इन्द्रियों से पृथक चेतन हूं। और परम चेतन से मिलाप प्राप्त करने की भव्य भावना उस में जागरित हो उठती है, उस के लिये वह तप, ब्रह्मचर्य्य तथा श्रद्धा को क्रियामय जीवन में धारण करता है, जिस से उस का गौरव और भी बढ़ता है।

यहां यह ध्यान देने की बात है कि केवल ओंकार की किसी मात्रा के शाब्दिक रटन से यह फल नहीं मिलता, वरन् उस के अर्थों का मनन कर के उस के अनुसार जीवन चलाने से यह फल मिलता है, जैसा कि योगदर्शन (१।२८) में कहा है—तज्जपस्तदर्थभावनम्=ओंकार का जप, ओंकार के अर्थों का मनन तथा भावना ही साधन है। 'वह यदि दो मात्राओं के द्वारा मन में ध्यान करे' तो यजुः उसे अन्तरिक्षरूप सोमलोक को प्राप्त कराते हैं। वह सोम लोक में विभूति का अनुभव कर के पुनः लौट आता है। (४)

सर्वव्यापकता के साथ परमात्मा की चेतनता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का ध्यान करे, तो बहिर्मुख वृत्ति न हो कर अन्तर्मुख होने लगती है । यतः अभी वासनाओं का नाश नहीं हो पाया अतः बाह्य जगत् से अभी सम्बन्ध बना है, अतः जनन मरण का कष्ट भोगते हुए भी, प्रायः वह ऐश्वर्य्य सम्पन्न अवस्था का भोग करता है और

जो तो इस त्रिमात्र (तीन मात्राओं वाले) ओम् इस अक्षर के द्वारा इस परम पुरुष का ध्यान करता है, वह तेजोमय जगत्प्रेरक चराचर के आत्मा परमात्मा में सम्पन्न होता है । जैसे सांप केंचली से छूट जाता है, ऐसे वह उपासक भी पाप से छूट जाता है, साम उसे ब्रह्म लोक (मोक्ष) में ले जाते हैं । वह इस जीवन धन से जो पर है, उस से भी पर संसारव्यापक पुरुष के दर्शन करता है' इस विषय में दो श्लोक प्रमाण हैं ।' (५)

कला या अंश ध्यान से ऊपर उठ कर जो संपूर्ण ओ३म् का ध्यान करता है, तो वह सचमुच मुक्ति प्राप्त कर लेता है । परमात्मा को गत्कर्त्ता, जगत्धर्त्ता तथा जगत्-हर्त्ता मानने और अनुभव करने वाले मनुष्य को परम शान्ति मिलती है ।

ऋचाएं ज्ञान की उपलक्षक हैं । मनुष्य को प्रथम ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । ज्ञान के पश्चात् ही कर्म्म हो सकता है । क्या करना और क्या न करना, जब तक इस बात का ज्ञान न हो तब तक 'कैसे करना' संभव नहीं होता, अतः प्रथम मात्रा के साथ ऋचा का सम्बन्ध बता कर दो मात्राओं के साथ यजुः का सम्बन्ध बताया । कर्म्म करते हुए भी ज्ञान की आवश्यकता होती है, अतः कर्म्म का सम्बन्ध दो

मात्राओं से किया । ज्ञान तथा कर्म्म से स... मनुष्य उपासना का अधिकारी होता है, ... त्रिमात्रा ओंकार की उपासना करने का उसे ... कार प्राप्त हो जाता है ।

उपासना पास बैठने को कहते हैं । जि... पास बैठा जाता है, बैठने वाले में उस के ... आया करते हैं, जैसे आग के पास बैठने वा... आग की गर्मी आ ही जाती है । परमात्मा ... उपासना करने वाले में परमात्मा के आनन्द ... का संक्रमण होने लगता है ।

त्रिमात्र ओंकार के ध्यान का निदर्शक ... सन्ध्या में आया है:—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् देवं ... सूर्य्यमगन्म ज्योति रुत्तमम्=हम अन्धकार ... अवस्था से ऊपर उठ कर उस के श्रेष्ठ ज्योति ... आत्मा का दर्शन करते हुए ज्योतियों की ज्योति ... श्रेष्ठ चराचर के आत्मपरमात्मा को प्राप्त हों ... सांसारिक वासनाओं की कामना अन्धकार ... अवस्था है, उस से ऊपर उठ कर चेतन आ... की चिन्तना प्रकाश का प्रारम्भ है, उस के ... प्रकाशकों के प्रकाशक भगवान् का भान ... यह अन्तिम अवस्था है, इस अवस्था में ... वासनाओं से शून्य हो जाने के कारण पा... छूट जाता है । अब उस में अन्धकार नहीं ... प्राकृतिक अवस्था अन्धकार है आत्मा में ... ज्ञाता होने के कारण वह अवस्था प्रकाश ... अन्धकार दोनों से सम्बन्ध होने के कारण ... त्रिक है । सर्वथा परमात्मनिष्ठ होने की अ... त्रिमात्र है, और उस में अन्धकार का ... अभाव होने से वह तेजोमय दशा है । ... वृद्धिक्षय, घटती बढ़ती न होने से मु...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निरन्तर एक रस आनन्द मिलता है। आनन्द अनुभूति तब होती है, जब मनुष्य में किसी प्रकार क्षोभ आदि न हो। वह अवस्था तब आती है, जब मनुष्य में पाप का लेश भी शेष न रहे। वह अवस्था शान्त होने के कारण साम से संबद्ध बतलाई गयी है साम का अर्थ सान्त्वना =तसल्ली=शान्ति है।

प्रमाण वाक्य ये हैं—

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ताः

अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः।

क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु

सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः॥

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं

सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते।

तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्

यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेती॥७॥

तीनों मात्राएं, यद्यपि एक दूसरे से संसक्त और अतएव एक दूसरे से पृथक नहीं हैं, तथापि मृत्युवाली है। हां बाह्य, अभ्यन्तर, मध्य की भली प्रकार क्रियाओं में ज्ञानी विचलित नहीं होता। ऋचाओं से इसी लोक को, यजु से अन्तरिक्ष को साम से उस को जिसे क्रान्तदर्शी जानते हैं। उसे जो शान्त, अजर, अमर और अभय है, विद्वान् ओंकार रूपी आयतन के द्वारा प्राप्त करता है।

'अ, उ, म्' ये तीन मात्राएं शब्द मात्र होने से उत्पन्न और विनष्ट होती है, अतः ये मृत्यु के गोचर रहती है। ये परमात्मा के सृष्टि रचने पालने तथा मारने की ओर संकेत करती है, ये अवस्थाएं भी नित्य नहीं है। जब परमात्मा को इन अवस्थाओं से अविशिष्ट अनुभव किया जाता है, तब मौन होना पड़ता है। इसी प्रकार आत्मा जब विचार पूर्वक यह समझ लेता है कि वह जागरित=बाह्य, स्वप्न=मध्यम तथा सुषुप्ति=अभ्यन्तर दशाओं से सर्वथा असंपृक्त है। तब वह निश्चल हो जाता है, तब वह स्थित प्रज्ञता की अवस्था प्राप्त कर लेता है।

परात्पर परमात्मा शान्त है, जन्म, जरा मृत्यु से रहित है, उसकी प्राप्ति इस ओङ्कार की आराधना से होती है। ओङ्कार की अराधना की पद्धिति का संक्षेप से संकेत किया जाचुका है, विस्तार से मुण्डकोपनिषत्सार में वर्णन किया जाएगा।

षष्ठ प्रश्न

ज्ञान, योगसाधन आदि सब का प्रयोजन आत्मदर्शन है। परमात्मा की उपासना का भी फल आत्मलाभ है, अतः अब उस आत्मा के संबन्ध में सुकेशा जी प्रश्न करते हैं—

भगवन्! हिरण्यानाभः कौशल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत्। षोडशकलं भारद्वाज! पुरुषं, वेत्थ? तमहं कुमारमब्रुवम्—नाहमिमं वेद, यद्यहमिममवेदिषं, कथं ते नावक्ष्यमिति, समूलो वा एष परि शुष्यति योऽनृतमभिवदति, तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुम्। स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज। तं त्वा पृच्छामि, क्वासौ पुरुषः? इति॥१

भगवन्! राजकुमार हिरण्नाभ कौशल्य ने मेरे पास आकर मुझ से पूछा— हे भारद्वाज! सोलह कला वाले पुरुष को तू जानता है?' मैं ने उस कुमार को कहा— 'मैं इसे नहीं जानता यदि मैं जानता तो तुझे कैसे न बतलाता। वह मनुष्य जड़समेत सूख जाता है जो मिथ्या बोलता है, अतः मुझे मिथ्या नहीं बोलना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहिए।' वह [मेरा यह उत्तर सुन कर] चुप चाप रथ पर चढ़ कर चला गया। मैं वही प्रश्न आप से पूछता हूं— 'वह पुरुष कहां है?'।

औपनिषद काल कैसा सुहावना रहा होगा, कि जब मनुष्यों में सत्य के लिए इतनी निष्ठा तथा श्रद्धा थी। संकोच के बिना सुकेशा ने अपना अज्ञान स्वीकार कर लिया। निस्सन्देह गुरुजनों के मुख से तथा शास्त्रों में सुकेशा ने अवश्य षोडष कलाओं वाले परुष के संबन्ध में पढ़ा था किन्तु पाठमात्र को जानना नहीं कहते, उसका साक्षात् अनुभव सुकेशा को नहीं था, अतः उस ने स्पष्ट स्पष्ट कह दिया, मैं उस पुरुष को नहीं जानता, धन्य हो सत्यवादि शिरोमणि। सुकेशा चाहते तो आजकल के अनुभव रहित पढ़ पशुओं की भांति कोरे तर्क से कुछ न कुछ कह डालते। किन्तु सुकेशा अनुभव रहित बात कहने को पाप मानते हैं अतएव कहते हैं 'वह मनुष्य जड़ समेत सूख जाता है जो मिथ्या बोलता है अतः मुझे मिथ्या नहीं बोलना चाहिये।' अर्थात् मैं आपको बातों बातों में बहकाना उचित नहीं समझता।

अहह ! वह कैसा समृद्ध और निश्चिन्तता का काल था, जब राजकुमार लोग भी अध्यात्म—अनुसन्धान में तत्पर रहते थे।

आर्य्य धर्म्म में मिथ्या को सब से बड़ा पातक माना जाता है जैसा कि मनु जी ने कहा है—नानृतात्पातकं परम्=झूठ से बढ़ कर कोई पाप नहीं है। सत्य पर वेद, उपनिषद्, सभी शास्त्र बल देते है।

प्रश्न सुन कर भगवान पिप्पलाद ने उत्तर दिया—

इहैवान्तः शरीरे, सोम्य ! स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभन्ति, इति॥ २

हे सोम्य ! जिस में ये सोलह कलाएं उत्पन्न होती है, वह इसी शरीर के भीतर है।

अर्थात् सोलह कलाओं वाले पुरुष को अन्यत्र खोजने की आवश्यकता नहीं है, वरन इसी देह में वह मिल जाता है।

षोडशकल पुरुष सोचने लगा किस के निकल जाने पर मैं निकल जाऊंगा, किस के टिके रहने पर मैं टिका रह सकूंगा।'

इस से प्रतीत होता है कि षोडशकल पुरुष से अभिप्राय यहां जीवात्मा से हैं। किन्तु सर्वव्यापक परमात्मा का निकलना टिकना बन नहीं सकता।

अब षोडशकलाओं का वर्णन लीजिये—

'१. प्राण २. श्रद्धा ३. आकाश ४. वायु ५. अग्नि ६. जल ७. पृथिवी ८. इन्द्रिय ९. मन १०. अन्न ११. वीर्य्य १२. तप १३. मन्त्र १४. कर्म १५. कर्म्म फल तथा १६. नाम=संज्ञा' (३)।

आकाश से पृथिवी तक शरीर—निर्माण के पदार्थ हैं, प्राण, श्रद्धा, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य्य जीव को शरीर से सम्बद्ध होने पर मिलते हैं। मन्त्र=वेदज्ञान जीव के कल्याणार्थ भगवान् देता है, उस से कर्म्म करने की स्फूर्ति होती है, कर्म्म का फल जब मिलता है तब नाम रूप से सम्बद्ध होता है। हां,मिलते ये सब परमात्मा से हैं। अतः षोडश कलाओं की गणना वाले वाक्य के आरम्भ में कहा है--स प्राणमसृजत=उस ने (भगवान् ने) प्राण की सृष्टि की। अर्थात् जीवनी शक्ति का कर्त्ता परमात्मा है। एक महान् अति महान् प्रश्न का समाधान भी मिल गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इन कलाओं का प्रकाश शरीर सम्बन्ध के रहते ही संभव है, शरीर समाप्ति पर अर्थात् मुक्ति की दशा में इन कलाओं का कोई उपयोग नहीं क्योंकि उस दशा में भौतिक का संग नहीं होता, अतः वे सब सृजनहार के पास ही मानो चली जाती हैं। इस भाव को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है:—

'बहती हुई समुद्र की ओर जाने वाली ये नदियां जैसे समुद्र को प्राप्त हो कर लुप्त हो जाती है। इन का नाम रूप मिट जाता है [तब इन को] सुमुद्र ही कहा जाता है इसी प्रकार परि-द्रष्टा की ये सोलह कलाएं पुरुषायण (पुरुष को जाने वाली) होने से पुरुष को प्राप्त हो कर अस्त हो जाती हैं, इन के नाम रूप मिट जाते हैं, (तब) पुरुष ही कहलाता है, उस अवस्था वाला पुरुष अकल=कलारहित, अमृत होता है। इस के लिए यह श्लोक प्रमाण है' ॥५॥

जीव जब तक संसारी दशा में रहते हैं तभी तक मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, देवदत्त यज्ञदत्त आदि रूपों और नामों के भेद उन में बने रहते हैं। अन्तिम लक्ष्य तो परमात्मा तक पहुँचना है वहां पहुँचने से, मुक्त होने से शरीरादि भेदक पदार्थों के न रहने से सब एक समान हो जाते हैं। नाम रूप शरीर सम्बन्ध से होते हैं, शरीर सम्बन्ध रहा नहीं, अतः नाम रूप भी नहीं रहे। अर्थात् मुक्ति दशा में भेद भावना का लोप हो जाता है।

पिप्पलाद जी के भावों का समर्थक श्लोक यह है:—

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठताः। तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथाः इति ॥ ६

जिस भांति रथ की नाभि में अरे ठहरे हैं ऐसे ही सब कलाएं जिस में प्रतिष्ठित है, उस जानने योग्य पुरुष को जानो ता कि तुम्हें मृत्यु दुःख न दे।

मृत्यु के पश्चात् जन्म, जन्म के पश्चात् मृत्यु यह चक्र बहुत दुःखदायी है, इस से बचने के लिए षोडशकल पुरुष तथा उस के आधार को पहचानना चाहिये क्योंकि नान्यः पन्था विधतेऽयनाय=परमगति के लिये और कोई मार्ग नहीं है।

यहां यह बता देना अप्रासंगिक में होगा कि षोडशलक पुरुष जहां जीव है, वहां इन कलाओं का रचयिता होने के कारण परमात्मा भी षोड-शकल पुरुष है, जैसा कि यजुर्वेद ३२।५ में कहा गया है:—

यस्माज्जातं न पुरा किंचनैव य आ बभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳ रराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥

जिस से पूर्व कुछ भी न था, जो सम्पूर्ण लोकों पर अधिकार रखता है, वह प्रजापति अपनी प्रजाओं के साथ रमण करता हुआ तीनों प्रकाशों को अपने में समवेत रखता है, वह षोडशी=सोलह कला वाला है।

स्पष्ट ही यहां भगवान् को षोडशी कहा है।

जीवों में योग्यता भेद के कारण कलाओं का भी भेद रहता है। परमात्मा एक है, अभिन्न है उस में कला भेद संभव ही नहीं, इस बात को सामने रखते हुए हम सरलता से समझ सकते है कि मूल पौराणिक भी राम तथा कृष्ण को जीव मानते थे, क्यों कि राम जी में वे चौदह कलाएं मानते हैं और श्री कृष्ण में सोलह कलाएं। कोई विरला ही जीव पूर्ण षोडशी बन पाता है।

पिप्पलाद ऋषि मनुष्य को षोडशी बनने का उपदेश दे रहे हैं।

इति श्री मद्दयानन्द तीर्थ [सरस्वती] पराभिधानेन दयानन्द तीर्थ स्वामिना समुद्धृतः प्रश्नोपनिषत्सारः सम्पूर्तिं गतः ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

["Regd. No. E. P. 425. रजि० सं० इ० पो० ४२५

दार्शनिक ऐतिहासिक साहित्य में क्रान्ति करने वाला ग्रन्थरत्न

सांख्यदर्शन का इतिहास

वैदिक दर्शनों में सांख्यदर्शन सबसे पुराना माना जाता है। आर्ष वाङ्मय में इसके रचयिता कपिल मुनि को आदि विद्वान् First philosopher कहा गया है। यूरोप के इतिहास खोजी विद्वानों ने इस दर्शन तथा इसके कर्त्ता के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की भ्रान्तियां फैलाई हैं। भारतीय दार्शनिक विद्वानों में भी इस दर्शन के सम्बन्ध में नाना भ्रम हैं। विरजानन्द वैदिक संस्थान के प्रधान अनुसन्धान विद्वान् श्रीमान् पं० उदयवीर शास्त्री जी विद्याभास्कर ने वर्षों परिश्रम करके इस शास्त्र के सम्बन्ध में खोज का कार्य्य कर इस विशाल इतिहास ग्रन्थ को लिखा है। जिसमें कपिल मुनि तथा अन्य पुरातन सांख्याचार्य्यों यथा आसुरि, पञ्चशिख, वार्षगण्य आदि के इतिहास के साथ अर्वाचीन सांख्याचार्य्यों का इतिहास भी दिया है। शास्त्रीय पद्धति से अनुसन्धान करके इतिहास-अनुक्रम से सिद्ध कर दिखाया गया है कि सांख्यदर्शन अत्यन्त पुराना है। योरुपीय विद्वानों तथा उनके शिष्यों प्रशिष्यों का यह मत है कि सांख्यदर्शन ईसा की चौदहवीं शती का बना हुआ है। इस मत का योरुपीय पद्धति से ही खण्डन करके इसकी प्राचीनता सिद्ध की गई है। इस दर्शन के सम्बन्ध में यह भी एक अमूलक धारणा फैली हुई है कि श्री शङ्कराचार्य्य जी ने इस शास्त्र का कोई उद्धरण नहीं दिया। योग्य लेखक ने शंकराचार्य्य के वेदान्तदर्शनभाष्य में सांख्यसूत्र के उद्धरण दिखलाकर इसको असारता सिद्ध की है। प्रसन्नता की बात यह है कि पाश्चात्य पद्धति के ऐतिहासिक विद्वानों ने भी इस ग्रन्थ को उपादेयता तथा इसमें वर्णित परिणामों की यथार्थता को स्वीकार किया है। ग्रन्थ निर्माण में संस्थान को इतना धन व्यय करना पड़ा है कि एक प्रति पर तीस रुपयों से भी अधिक लागत बैठती है, ग्रन्थ छप चुका है। इसको जिल्द बंध रही है। एक मास में पुस्तक तय्यार हो जाएगा। बहुत सुन्दर जिल्द बनाई जा रही है।

मूल्य ३०) डाक व्यय पृथक।

पुस्तक मिलने का पता—

स्वामी वेदानन्द, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

सावित्री प्रकाश

सभी वैदिकधर्म्मी, चाहे वे आर्य्यसमाजी हों या सनातनधर्म्मी, गायत्री मन्त्र की महिमा मानते हैं। इसके जप के उत्कर्ष को स्वीकार करते हैं। शास्त्रों में अर्थ ज्ञान के बिना जप करने को व्यर्थ बतलाया है। पुराणों तथा तन्त्रों तक में इस मन्त्र की महिमा गाई गई है। किन्तु अभी तक इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या कहीं से प्रकाशित नहीं हुई थी। विरजानन्द वैदिक संस्थान के संचालक स्वामी वेदानन्द तीर्थ ने वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों आदि के आधार से इसकी विस्तृत व्याख्या लिखकर इस न्यूनता को पूर्णता कर दी है। व्याख्या की उपयोगिता के लिए स्वामी जी का नाम ही पर्याप्त है। इसमें ओ३म् की व्याख्या के प्रसङ्ग में इसके परमेश्वर के निज नाम होने की सिद्धि मनोहर रीति से की गई है। एक एक पद की व्याख्या करके इसके जप की विधि बता दी गई है। इतनी उत्तम पुस्तक का मूल्य केवल १) है। डाक व्यय पृथक है।

मिलने का पता—

विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

मुद्रक:—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय पटोदी हौस दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

वेद-पथ

मासिक

वैदिक आचार-विचार-व्यवहार-प्रसारक

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

द्वितीय वर्ष — सह:=मार्ग शीर्ष २००७ वि० (१२६ द०)=नवम्बर १९५० ई० — चतुर्थ अंक

सम्पादक—
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
सार्वदेशिक दयानन्द
संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल
ज्वालापुर, जि० सहारनपुर

जगद्गुरु महर्षि दयानन्द

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा ५≡)
वी० पी० द्वारा ५।।)
एक प्रति ।।)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

१. श्रुतिसुधा ५८

२. क्या भक्ति मार्ग वैदिक है (श्रीमान् स्वामी ब्रह्ममुनि जी) ६०

३. धर्म्मजीवन (श्रीमान् शान्तस्वामी अनुभवानन्द जी) ६७

४. आत्मा का स्थान (३) (श्रीमान् स्वामी आत्मानन्द जी) १००

५. ऋषि दयानन्द के मिशन का सार्वभौम रूप (श्रीमान् प्रो० विश्वनाथ त्यागी जी) १०२

६. आधुनिक भौतिकवादी विचारधारा तथा ऋषिदयानन्द (श्रीमान् आचार्य रामानन्द शास्त्री) १०५

७. वर्त्तमान युग में मानवता का सर्व प्रथम प्रचारक (स्वामी वेदानन्द तीर्थ) १०७

८. हम बुराइयों से सर्वदा दूर रहें (श्रीमान् आचार्य्य वैद्यनाथ जी शास्त्री) ११०

९. धर्म्म प्रचार में हमारी अपेक्षा १११

१०. प्रकृति, मनुष्य और मांसाहार (श्रीमान् सत्यानन्द जी) ११४

११. सम्पादकीय ११६

स्वाध्याय सन्दोह

'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म्म है' इस आर्ष आदेश के पालन करने की सुविधा के विचार से ही इस ग्रन्थरत्न की रचना की गई है। इसका पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया था। मांग बराबर थी। उसे पूरा करने के लिए दूसरा संस्करण छपाया है। इसमें कुछ बढ़ाया भी गया है। परिवर्धन होने पर भी मूल्य केवल ६) रखा है। कागज आदि की महंगाई के कारण थोड़ी प्रतियां छपवाई जा रही हैं। अतः शीघ्र अपनी प्रति के लिए निश्चिन्त हो जाइए। प्रतिदिन के स्वाध्याय के लिए इससे बढ़िया पुस्तक आप को इस समय और नहीं मिल सकती। विद्वान् तथा सामान्य सभी प्रकार के लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। मूल्य ६) डाक व्यय पृथक।

मांस मदिरा निषेध—मूल्य , १००प्रति इकट्ठी लेने वाले को =)प्रति के हिसाब से; डाक व्यय पृथक।

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः—'विश्वानि देव—आदि आठ मन्त्रों को ललित, मनोहारिणी, और मग्न कर देने वाली व्याख्या। मूल्य =)॥, १०० प्रति का १२॥) साढ़े बारह रुपये। मूल्य पेशगी भेजने वाले से डाक महसूल भी नहीं लिया जाता।

नैमित्तिक वैदिक पाठ—प्रातःकाल से लेकर रात्रि को सोने के समय तक के विविध अवसरों पर के लिये पठनीय वेद-मन्त्रों का संग्रह। मन्त्रों के साथ सुन्दर भावार्थ तथा शब्दार्थ मूल्य ।) चार आने। डाक व्यय पृथक्। एक प्रति मंगाने वाले ।-) का टिकट भेजें।

मिलने का पता—अध्यक्ष—सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासिवानप्रस्थ मण्डल,
ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ०१।४१।४)

वेद पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल(हरद्वार) का मुखपत्र

द्वितीय वर्ष — देहली — सहः=मार्ग शीर्ष २००७ वि० (१२६ द०)=नवम्बर १९५० ई० — चतुर्थाङ्क

❀ श्रुति सुधा ❀

मृत्यु से तरने का एकमात्र पथ

ओ३म् । वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ य० ३१ । १८

(अहम्) मैं (एतम्) पूर्वोक्त (महान्तम्) महान् (आदित्यवर्णम्) आदित्योपमित (तमसः + परस्तात्) प्रकृति से सर्वथा परतर, अन्धकार शून्य (पुरुषम्) व्यापक परमात्मा को (वेद) जानता हूँ। (तम + एव) उसी को ही (विदित्वा) प्राप्त करके जान करके, मनन करके (मृत्युम्) मृत्यु को (अति + एति) लांघ जाता है, क्योंकि (अयनाय) गति के लिए, मुक्ति प्राप्त के लिए (अन्यः) दूसरा (पन्था) मार्ग, उपाय (न) नहीं (विद्यते) है, प्राप्त होता है, ज्ञात होता है।

सभी गति सद्गति चाहते हैं, किन्तु उसका मार्ग नहीं जानते तभी भटक रहे हैं । वेद में साधक के मुख्य से कहलाया है कि मैं उसको जानता हूँ मार्ग सदा एक होता है और वह है लक्ष्य के अभिमुख होना । बन्धन से छूटने के लिए बन्धन-साधनों से दूर रह कर बन्धन छेदन करने वालों का संग करना होता है। अन्धकार से बन्धन बढ़ते है। प्रकाश से बन्धन कटते हैं । हमारे प्रतिदिन के व्यवहार में आने वाले पदार्थों में सूर्य्य सब से अधिक प्रकाशवान् है । उसके प्रकाश में प्रायः भ्रम का नाश होजाता है, अतः वैदिक साधक कहता है वह सूर्य्य के समान है, उस में किसी प्रकार का अन्धकार नहीं है, उसे वेद में दूसरे स्थान में ' ज्योतिरुत्तमम् '=सर्वश्रेष्ठ प्रकाश कहा गया है, वह सर्वतो महान् एवं सर्वत्र परिपूर्ण है। इस मन्त्रों में उसको 'एतम्'='इस, पूर्वोक्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शब्द से निर्देश किया गया है। अर्थात् साधक उसे अपने अत्यन्त समीप अनुभव कर रहा है। वैदिक साधक कहता है—तमेव विदित्वाऽति-मृत्युमेति अर्थव वेद में भी ऐसा ही कहा गया है— तमेव विद्वान न बिभाय मृत्योर्धीरमजरं युवानम्= उस धीर=अचंचल, अजर, सदा जवान भगवान् को समझ कर ज्ञानी मृत्यु से नहीं डरता। अजर भगवान् को प्राप्त कर जरा मृत्यु भाग जाते हैं। मनुष्य आत्मा तथा देह के संयोग से बनाता है। आत्मा अमर है। आत्मा को वेद में अनिपद्यमान=अविनाशी कहा गया है। देह का मूल प्रकृति भी अविनाशी है। पृथक होने से न देह का नाश होता है न आत्मा का, पुनः भय किस का। परन्तु यह निर्भयता तभी प्राप्त होती है जब निर्भय का संग हो। जरा मृत्यु से रहित प्रभु को भय किसे का? अतः निर्भय होने के लिये उस का ज्ञान, मनन एवं प्राप्ति करना अनिवार्य्य रूप से आवश्यक है, क्योंकि और कोई उपाय नहीं है।

स्वामी वेदानन्द

क्या भक्तिमार्ग वैदिक है?

लेखक श्रीमान् स्वामी ब्रह्ममुनि जी

[लेखक वेदपथ के पाठकों से सुपरिचित है। वेदपथ के प्रथम वर्ष में 'वैदिक अध्यात्म' नामक लेखमाला प्रकाशित होती रही है। स्वामी जी बहुत बड़े स्वाध्यायी, विचार शील अनुसन्धान कर्त्ता विद्वान हैं। पाठक विशेष मनन-पूर्वक उनके इस लेख का पाठ करें, ऐसा हमारा अनुरोध है। (सम्पादक)

अध्यात्म क्षेत्र में चलने के लिये आजकल दो मार्ग प्रचलित हैं एक भक्ति मार्ग और दूसरा उपासना मार्ग। जब यह कहा जाता है कि 'परमात्मा की भक्ति करो' तो यहां भक्ति की जाने वाली वस्तु होने से भक्ति मार्ग को दर्शाती है और जब यह कहा जाता है कि 'परमात्मा की उपासना करो' तो उपासना माग लक्षित होता है। भक्तिमार्ग के अङ्ग हैं 'भक्ति, भक्त, भजनीय (जिस की भक्ति की जावे)' और उपासना मार्ग के अङ्ग हैं 'उपासना, उपासक, उपास्य (जिसकी उपासना की जावे)'। बैठने अर्थ वाले 'आस्' धातु से "आस उपवेशने" (अदादि) उप पूर्वक 'उपासना' शब्द बना है। माता के पास बैठा जाता है पिता के पास बैठा जाता है और दोनों की गोद तक में बैठा जाता है तथा सम्पत्ति का उत्तराधिकारी भी बनता है, गुरु के पास बैठा जाता है एक दिन गुरु के आसन पर भी अध्यापनार्थ बैठा जाता है, मित्र के पास बैठा जाता है उसके समान सुख को भी प्राप्त करता है। परमात्मा हमारी माता है हमारा पिता है[1] है[2] और मित्र[3] है। माता पिता पास बिठ

[1] त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ (ऋ० ८।९८।११)
अर्थात् हे परमात्मा! तू ही हमारा पिता है तू ही माता है।

[2] प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रंवदत्युकथ्यम (ऋ० १।४०।५)
विद्या का स्वामी परमात्मा प्रशंसनीय मन्त्र अर्थात् वेद का उपदेश देता है।

[3] सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते (ऋ० १।११।२)
हे बलवान तथा बल के स्वामी परमात्मा! हम तेरी मित्रता में कभी न डरें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं अपनाते हैं जब कि उनके अनुरूप (स्वभावानुसार) हो गुरु पास बिठाता है अपनाता है जब कि उस के अनुगुण हो मित्र पास बिठाता है जबकि उसके अनुशील हो। उस मातृरूप पितृरूप मित्ररूप परमात्मा के स्वभाव गुण शील पवित्र हैं तब अपने अन्दर पवित्र स्वभाव गुण शील को धारण करना अपने को उसके पास बैठने का अधिकारी बनाना है अतएव इसकी पूर्ति के लिये पतञ्जलि ऋषि ने अपने योगदर्शन में 'अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य अपरिग्रह' रूप व्रताभ्यास को प्रथम बतलाया। यह उपासनामार्ग की एक दिशा हुई, दूसरी दिशा है कि जिसके पास बैठा जाता है उसके समान गुणों को धारण कर अधिकारी बन जाने पर अपने स्थान को छोड़ा जाता है, सो जीवात्मा का संसार में स्थान है "शरीर प्राण-इन्द्रियां-मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार"। इन को छोड़ने के लिये पतञ्जलि ऋषि ने बतलाया है क्रमशः आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-सम्प्रज्ञात समाधि-असम्प्रज्ञात समाधि' रूप क्रियाभ्यास। इस प्रकार परमात्मा के पास बैठने के लिये पतञ्जलि ऋषि का बतलाया उक्त व्रताभ्यास और क्रियाभ्यास है उपासना मार्ग। यह उपासनामार्ग प्राचीन है, ऋषि-मुनियों का है और वैदिक है, वेदों उपनिषदों और प्राचीन ग्रन्थों में पदे पदे उपासना का वर्णन आता है। अब देखें भक्तिमार्ग के सम्बन्ध में।

भक्ति मार्ग—

भक्ति मार्ग — भक्ति का मार्ग, भक्ति शब्द सेवा अर्थ वाले 'भज' धातु से बना है "भज सेवायाम्" (भ्वादि) भक्ति का अर्थ हुआ सेवा, या सेवा का मार्ग है "किसी की आवश्यक वस्तुएं पण्यवीथी (बाजार) से ला देना, उस के यहां झाड़ू लगा देना उस के पात्र मांजन करना, भोजन बना देना, वस्त्र धो देना, उसे स्नान कराना, उस के अङ्ग दबाना, रोगी हो जाने पर औषध-उपचर्या करना, विशेष रोगी हो जाने पर मल मूत्र तक उठाना" यह सेवा का मार्ग-भक्ति का मार्ग हुआ, एवं बाहिरी साधनों से भजनाय (स्वामी) को प्रसन्न करना भक्ति या भक्ति मार्ग का उद्देश्य है। सेवक कभी स्वामी का आसन नहीं ले सकता उस के समान आसन पर नहीं बैठ सकता जैसा कि उपासना में समान आसन पर पास बैठना होता है। उपासना में अपने को योग्य गुणवान् उपास्य के (जिस के पास बैठना है उस के) गुणों को धारण कर उस जैसे बनना होता है किन्तु सेवा भक्ति में भजनीन, स्वामी का अपने को प्रियकारी प्रदर्शित करना होता है। यह भतिमार्ग अध्यात्म क्षेत्र में तब से आया जब से कि लोगों ने ईश्वर का अवतार मानना आरम्भ कर दिया उन के जीवनकाल में तो उन की प्रत्येक प्रकार सेवा करना भक्ति हुई मर जाने पर उन की मूर्ति बना कर मूर्ति को नहलाना, वस्त्र पहनाना, चन्दन तिलक फूल माला आदि से सजाना, पालने में झुलाना, चामरी करना, उस को रिझाना भोग लगाना अदि भक्ति चल पड़ी। इस प्रकार सेवा के जितने प्रकार हैं, उन सब का नाम भक्ति मार्ग है। 'ईश्वर की भक्ति करो' जब ऐसा कहा जावे तो की जाने वाली भक्ति उक्त भक्तिमार्ग से भिन्न और कोई नहीं समझी जा सकती। ऐसी भक्ति की ईश्वर को आवश्यकता नहीं। वह दूसरों के द्वारा सेवा कार्य के अधीन नहीं। बाहिरी साधनों अडम्बरों उपायों से वह प्रसन्न होने वाला नहीं है। उक्त भक्तिमार्ग नवीन है,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आधुनिक है, साम्प्रदायिक है, अवैदिक है, वेद में इस भक्तिमार्ग का विधान नहीं है । भक्ति शब्द चारों वेदों में दो स्थलों पर आया है—

देव संस्फान रामस्योषस्येशिषे ।
तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ॥

(अथर्व० ~~६।७९।२~~ ६।७९।२)

अर्थ—(संस्फान देव) हे संवर्धक देव ! (रामस्योषस्य·ईशिषे) तू पुष्टिकारक समृद्धि-कारक धन का स्वामी है (तस्य नः-रास्व) उस धन को हमें दे (तस्य नः-धेहि) उस धन को हमें धारण करा (ते तस्य भक्तिवांसः स्याम) तेरे उस धन के हम भागी हों ।

यहां 'भक्तिवांसः' मतुप प्रत्ययान्त प्रयोग है अतः यहां 'भक्ति' वस्तुरूप पदार्थ है, अतएव भक्ति का अर्थ भाग है जैसा कि लोक में क्षेत्-भक्ति=खेत की क्यारी, खेत का एक भाग अर्थ होता है । 'रायस्योषस्य' पुष्टिकारक धन की याचना का प्रसङ्ग, मन्त्र में है, उस पुष्टिकारक धन के हम भागी—भाग वाले हों यह मन्त्र में स्पष्ट है । सायण ने भी यही अर्थ किया है "भक्ति वांसः भागवन्तः" (सायणः) अतः यहां वेद में 'भक्ति वांसः' पद में 'भक्ति' शब्द की जानने वाली भक्ति—सेवा भक्ति मार्ग सम्बन्धी नहीं है ।

दूसरा स्थल 'भक्ति' शब्द का वेद में:—

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युरां असृक्षयन्मामिव ॥

(ऋ० ८।२७।११)

अर्थ—(विश्ववेदसः) हे सब कुछ धन वाले देवो विद्वानो ! (नमस्युः) मैं अन्तधन का इच्छुक (इदावः वामस्य भक्तये) सम्प्रति तुम्हारे वननीय धन के भाग लाभ के लिये (वः) तुम्हारी (इदा अन्याय उपस्तुतिम्-उपासृक्षि) अब अपूर्व गुण कीर्ति करता हूँ ।

यहां सायण ने भी "विश्ववेदसः सर्वधनाः, नमस्युः अन्नमिच्छन्, वामस्य वननीयस्य भक्तये संभजनाय, भक्तये लाभाय" (सायणः) किया है । भक्ति का अर्थ लाभ सायण द्वारा भी होने से, मन्त्र में आया भक्ति शब्द भक्ति मार्ग सम्बन्धी नहीं है ।

उपनिषदों में 'भक्ति' शब्द—

ईशोपनिषद् से ले कर वृहदारण्यकोपनिषद् पर्यन्त प्रसिद्ध प्राचीन प्रमाणिक दशों उपनिषदों में 'भक्ति' शब्द नहीं है, किन्तु उपासन शब्द शतशः स्थानों पर या पदे पदे आया है । श्वेताश्वतरोपनिषद्' में केवल एक स्थान पर 'भक्ति' शब्द आया है, वह स्थल—

यस्य देवे परा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ ।

(श्वेताश्वतरो ० ६।२३)

अर्थ—जिस की देव में अति भक्ति है, जिस की देव में जैसी भक्ति है वैसी गुरु में भक्ति या हो सकती है ।

यहां भक्ति का अर्थ प्रचलित भक्ति सम्बन्धी नहीं है किन्तु श्रद्धा एवं अनुराग लिये भक्ति शब्द आया है । भक्ति की श्रद्धा अनुराग अर्थ दार्शनिक है । शङ्कराचार्य ने यहां भक्ति का अर्थ श्रद्धा एवं अनुराग किया है+ ।

पूर्वोक्ति कथन से स्पष्ट हुआ कि उक्त प्रचलित भक्तिमार्ग वेदों का नहीं, उपनिषदों का भी प्राचीन नहीं, किन्तु अवैदिक है नवीन साम्प्रदायिक है । जैसा कि हम पूर्व कथन आए हैं कि यह भक्तिमार्ग तब से चला आ

+अन्य नवीन साम्प्रदायिक और तान्त्रिक उपनिषदों के सम्बन्ध में हम आगे कहेंगे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोगों ने ईश्वर का अवतार मानना आरम्भ कर दिया अब इस बात पर प्रकाश डालते हैं।

यद्यपि भक्तिमार्ग का सिद्धान्त पुराणों, सम्प्रदायिक पूजापाठ के ग्रन्थों और तन्त्र प्रकरणों का है। परन्तु इस का भगवद्गीता में भी समावेश हो गया भगवद्गीता में अवतार वाद की चर्चा होने से भक्तिमार्ग का प्रतिपादन होना ही था जैसा कि हम ने पूर्व कथन किया कि जब से लोगों ने ईश्वर का अवतार मानना आरम्भ कर दिया तब से उक्त भक्तिमार्ग चला अब भगवद्गीता के वचनों को देखें:—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतमान : ॥
(भगवद्गीता अ० ६।२६) ९।२६

कृष्ण जी कहते हैं कि "पत्ता, फूल, जल जो मेरे लिये भक्ति से देता है उस भक्ति से भेंट किए हुए को मैं यत्न से खाता हूँ।"

उक्त वचन में भेंट किये फल का खाना तो किसी के लिए सङ्गत है, परन्तु पत्ते और फूल का खाना सङ्गत नहीं यह तो भक्तिमार्ग की वस्तु हुई और फिर ईश्वर को तो फल की भी आवश्यकता नहीं। किंतु कृष्ण आदि को ईश्वर का अवतार मान कर जल फल फूल पत्ते की भेंट करना हुआ। पुनः उन के देहान्त के पश्चात् उन की मूर्ति पर उक्त फल फूल पत्ते चढ़ाने आदि का भक्तिमार्ग चला।

तथा—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुखे स मन्तव्यः सासम्यग्व्यवसितो हि सः ।
(भगवद्गीता । अ० ६।३०)

कृष्ण जी कहते हैं "चाहे बहुत दुराचारी भी हो परन्तु यदि वह अन्य को छोड़ कर मुझे भजता हो तो उसे साधु सज्जन ही मानना चाहिए।

यहां भक्तिमार्ग की अयुक्त एवं अति स्तुति की है और दर्शाया गया है कि भक्तिमार्ग में अनाचार या दुराचार भी अगण्य होता है वह भी चलता है भगवद्गीता का उक्त कथन निम्न साम्प्रदायिक नवीन उपनिषद के कथन के समान है:—

दुराचाररतो वाऽपि मन्नाभजनात् कपे ।
सालोक्य मुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम् ॥
काश्यां ब्रह्मनालेऽस्मिन् मृतो मत्तारमाप्नुयात् ।
मुक्तिकोपनिषद् ।१)

उक्त साम्प्रदायिक कथन में दर्शाया गया है कि हनुमान से राम कहते हैं कि "हे हनुमान दुराचार में रत हुआ मनुष्य भी मेरा नाम भजने से सालोक्य मुक्ति को प्राप्त होता है अन्य लोक लोकान्तर में नहीं जन्मता और काशी में ब्रह्मनाल स्थान में मरा हुआ +मेरी शरण पाता है"।

राम ने बाल्मीकि रामायण में अपने नाम भजने को कही भी नहीं कहा। परन्तु उक्त कथन में राम के मुख से कितना अनर्गल वाद दर्शाया गया है। इसी प्रकार अन्य कृष्णोपनिषद, वासुदेवोपनिषद्, गोपीचन्दनोपषिद् नाम से नवीन सम्प्रदायिक उपनिषदे घड़ के भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया गया है जिस में दुराचार को भी क्षम्य समझा जाता है। परन्तु वैदिक विधि उपासनामार्ग में दुराचार वर्जित है त्यज्य है जैसे कि कठोपनिषत में कहा गया है—

ना विरतो दुश्चारितात्........ प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्
(१।२।२३)

+ब्रह्म नाल स्थान वह है जहां काशी करोन्त या काशी करवट अर्थात् जीवित मनुष्य आरे से काट बलि किया जाता था वह कूंआं आज भी वहां है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दुराचार से जो हटा नहीं..........वह प्रज्ञा-
द्वारा भी इसे नहीं पा सकता।

और भी—

मांहि पार्थ व्यपाश्रित्य मेऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
(भगवद्गीता। अ० ४।३१)

कृष्ण जी कहते हैं कि "हे अर्जुन मुझे आश्रित करके—मेरी भक्ति करके जो पापयोनियां स्त्रियां वैश्य और शूद्र जन हैं वे भी उत्तम गति को प्राप्त हो जाते हैं।

इस वचन में भक्ति से पापयोनियां भी उत्तम गति को प्राप्त हो जाती हैं" यह पूर्व जैसा कथन तो है ही पर साथ में भक्ति का अत्युक्ति से महत्व बतलाते हुए स्त्रियों वैश्यों शूद्रों को पापयोनियां कह डाला। स्त्री शूद्रो ना धीयाताम्" की भांति यह अवैदिक कथन हुआ।

कृष्ण जी का अपनी भक्ति कराने का उद्देश्य और अन्य अत्युक्ति पूर्ण वचन—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वान भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥
तस्मदुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा
शत्रून भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम्॥
मयैव ते निहिताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं
भव सव्य साचिन्॥
(भगवद्गीता अ० ११।३२,३३)

कृष्ण जी कहते हैं कि "मैं लोकों का क्षय करने वाला काल हूँ, लोकों का संहार करने को मैं यहां प्रवृत्त हुआ हूँ. अर्जुन तेरे बिना अन्य कोई न रहेंगे ये जो प्रतिपक्ष सेनाओं में योद्धा उपस्थित हैं। इस लिए तू उठ, यश प्राप्त कर, शत्रुओं को जीत कर समृद्ध राज्य को भोग, मैंने ही ये सब

प्रथम ही मार दिए हैं, तू निमित्तमात्र हो।"

उक्त वचन में अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार हो जाने को अपनी भक्ति का अत्युक्ति से बतला रहे हैं।

अन्यच्च—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्योऽहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥
(भगवद्गीता। अ० ११।५३,५४)

कृष्ण जी अर्जुन को कहते हैं कि "हे अर्जुन मैं वेदों के पढ़ने जानने से, तप से, दान और यज्ञ से देखा या जाना जाता नहीं हूं, जैसे कि मुझे तूने देखा है किन्तु केवल मेरी अनन्य भक्ति से ही इस प्रकार यथार्थ जानने देखने और प्रवेश करने योग्य हूँ।"

यहां भक्ति या भक्ति मार्ग की अति प्रशंसा करते हुए वेद, तप, दान, यज्ञ को भक्ति या भक्ति मार्ग से निकृष्ट बतला दिया।

तथा—

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः
(भगवद्गीता। अ० १२।१७)

"पुण्य-अपुण्य या धर्म-अधर्म को छोड़ कर जो भक्ति करने वाला है वह मेरा प्यारा है।"

अधर्म को तो छोड़ना चाहिये पर धर्म को भी छोड़ कर भक्ति की ओर प्रेरित करना भक्ति को धर्म से ऊंचा और धर्म को भक्ति से निकृष्ट दर्शाना है।

और भी—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यासि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।
(भगवद्गीता । अ० १८, ६५, ६६, ६८)

कृष्ण जी अर्जुन को कहते हैं कि "मेरे में मन रख, मेरा भक्त हो, भक्ति का यज्ञ कर, मेरी ओर झुक, मुझे ही प्राप्त होगा, तेरे लिये सत्य प्रतिज्ञा करता हूं तू मेरा प्रिय है। सब धर्मों को छोड़ कर एक मेरी ही शरण ले मैं तुझे सब पापों से छुड़ा दूंगा, शोच न कर, मेरे में ऊंची भक्ति कर के निःसंशय मुझे ही प्राप्त होगा"।

इस वचन में कृष्ण जी ने अपने को ईश्वर (ईश्वर का अवतार) प्रकट करते हुए अर्जुन को सब धर्मों से छुड़ा कर अपनी ओर झुकने, अपनी बात को स्वीकार करवाने पर बाधित किया है।

उपर्युक्त समस्त वचनों में कृष्ण जी का अपने को ईश्वर (ईश्वर का अवतार) बता कर अर्जुन को अपनी भक्ति या भक्तिमार्ग में डालने का उद्देश्य उसे युद्ध में लड़ने की बात मनवाना था, सो इन सब विचारों को सुन कर अर्जुन अन्त में कहते हैं:—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥
(भगवद्गीता अ० १८.७३)

"हे कृष्ण ! तेरी दया से मेरा मोह नष्ट हो गया स्मृति बुद्धि समझ आ गई सन्देह रहित स्थित हूँ। तेरे वचन का पालन करूंगा युद्ध में अवश्य लड़ूंगा।"

यही तो कृष्ण जी चाहते थे कि अर्जुन उन की बात माने युद्ध में लड़ने को तैयार हो जावे इसी के लिये कृष्ण जी ने यह सब कुछ अपने को ईश्वर बता अपनी भक्ति करने का प्रपञ्च रचा। अर्जुन हठी था नहीं मान रहा था अतः एव कृष्ण जी को ऐसा करना पड़ा।

भगवद्गीता के उक्त वचनों से कृष्ण जी द्वारा अवतार वाद और भक्तिमार्ग का विचार किया गया। अवतार वाद अवैदिक है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में प्रश्नोत्तर द्वारा लिखा है कि:—

(प्रश्न) ईश्वर अवतार लेता है या नहीं ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि "अज एकपात्" "सपर्यगाच्छुक्रमकायम्" यह यजुर्वेद के वचन हैं इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

(प्रश्न) यदा २ हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
(भगवद्गीता अ० ४।७)

श्री कृष्ण जी कहते हैं जब धर्म का लोप होता है तब तब में शरीर धारण करता हूं।

(उत्तर) यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं इस से भी कृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

(सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास)

जबकि अवतारवाद अवैदिक है तब अवतारवाद पर निर्भर प्रचलित भक्तिमार्ग भी अवैदिक हुआ जैसा कि हम प्रथम कथन कर आए हैं कि जब से लोगों ने ईश्वर को अवतार मानना आरम्भ किया तब से भक्ति मार्ग चल पड़ा और जैसा कि भगवद्गीता के वचनों से भी स्पष्ट हुआ कि ईश्वर अवतार वाद पर भक्ति मार्ग निर्भर है।

(प्रश्न) इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं ये अवतारवाद और भक्तिमार्ग दोनों अवैदिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं और साम्प्रदायिक हैं परन्तु कृष्ण जी के द्वारा इनका प्रतिपादन क्यों हुआ यह प्रश्न है ?

(उत्तर) इस विषय में दो बातें हो सकती हैं, एक तो यह कि भगवद्गीता महाभारत का अंग है और महाभारत में बहुत कुछ पश्चात् बढ़ाया गया है, सो भगवद्गीता के अन्दर भी प्रक्षेप किया जाना सम्भव है, कृष्ण जी ने अर्जुन को युद्ध में लड़ने को तैयार करने के लिये कुछ वचन कहे हों, किसी अन्य ढंग से पश्चात् साम्प्रदायक भावनाओं के विचार अवतारवाद और भक्तिमार्ग के डाल दिए हों साम्प्रदायिक लोगों ने । क्योंकि अन्य नवीन साम्प्रदायिक ग्रन्थों में उक्त अवतारवाद और भक्तिमार्ग को स्वीकार किया हुआ है । दूसरी बात यह हो सकती है कि यदि कृष्ण जी के ही उक्त वचन हों अपने को ईश्वर का अवतार बतला कर अपनी भक्ति कराने को भक्ति मार्ग का आदेश अर्जुन को युद्ध में लड़ने के लिये तैयार होजाने को दिया हो तो ये दोनों बातें अवतारवाद और भक्तिमार्ग उसी समय के लिये राजनैतिक क्षेत्र सम्बन्धी हैं धार्मिक क्षेत्र के नहीं जैसे महात्मा गांधी के अहिंसा और सत्य के वाद ब्रिटिश सत्ता से सघर्ष लेने के लिये भारती जनता द्वारा आचरण करने को उसी समय के लिये राजनैतिक क्षेत्र सम्बन्धी हैं धार्मिक क्षेत्र के नहीं । अतः कृष्ण जी के द्वारा अवतारवाद और भक्तिमार्ग का प्रतिपादन अर्जुन को युद्ध में लड़ने को तैयार करने के लिये राजनैतिक वस्तु है ! कृष्ण जी ने द्रोणाचार्य के वधार्थ भी तो धर्म का उल्लंघन तक करने का आदेश दिया ही था—

आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः ।
(महाभा० द्रोणप९ द्रोणवधः अ० १९०।१२)

द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा मर गया कृष्ण जी ने झूठ बुलवाया क्योंकि अपने अश्वत्थामा को मरा हुआ समझ द्रोणा शस्त्र हाथ से डाल देगा पुनः उसे मार दे यह सब कुछ अधमाचरण का आदेश कृष्ण द्वारा दिया जाना राजनैतिक क्षेत्र का है धा अपने को ईश्वर बताना और भक्तिमार्ग आदेश देना भी निःसन्देह राजनैतिक क्षे हुआ धार्मिक क्षेत्र का नहीं ।

(प्रश्न) जब कि भक्तिमार्ग अ और साम्प्रदायिक है तब आर्यसमाज में महानुभावों द्वारा "ईश्वर की भक्ति करो" क्यों कहा जाता है ? क्योंकि ईश्वर की करने का अर्थ तो ईश्वर की सेवा करना भक्ति का अर्थ है सेवा तब ईश्वर की सेवा करना ? क्या उसे अपनी सेवा कराने की श्यकता है ? क्या उसे कुछ खाने पीने को चाहिये ? हां भक्ति का दार्शनिक अर्थ श्रद्धा अनुराग लिया जावे तो "ईश्वर में भक्ति अर्थात् "ईश्वर में श्रद्धा अनुराग रखो" चाहिये किन्तु "ईश्वर की भक्ति करो" उसी साम्प्रदायिक भक्तिमार्ग की ओर ले ज

(उत्तर) उक्त कथन से हम सह आर्यसमाज में एक यही साम्प्रदायिक नहीं आई किन्तु अन्य अनेक बातों में सं दायिकता आ गई है जैसा कि आर्ती नाम सत्सङ्ग के पश्चात् गाना और कहीं कहीं समाजों में उसे खड़े हो कर गाना। उक्त आर्ती भजन मूर्तियों के मन्दिरों में पूजा के पश्चात् गाया जाता है और खड़े हो दीप से मूर्ति की अर्चना करते हुए गा है। आर्ती भी एक गीत है भजन है,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अन्य गीत भजन की भांति जब चाहे गाना चाहिये, सत्सङ्ग के पश्चात् ही क्यों और खड़े हो कर ही क्यों? बैठे २ गाना चाहिये। इत्यादि अनेक साम्प्रदायिक बातें आर्यसमाज में साम्प्रदायिक मनोवृति वालों ने चला दी और आर्यसमाज में चल पड़ी। अस्तु। फलतः ईश्वर की भक्ति करो" ऐसी चर्चा करना ईश्वर के लिए भक्तिमार्ग का उपदेश देना एवं उस का अवलम्बन करना नितान्त अवैदिक है साम्प्रदायिक है। इति।

[आर्य्याभिविनय में ऋषि दयानन्द ने अनेक स्थलों पर भक्ति शब्द का प्रयोग किया है, उस का अर्थ उपासना है। ऋषि प्रायः स्तुति प्रार्थना उपासना इस त्रिक का व्यवहार अधिक करते हैं, भक्ति शब्द का प्रयोग उस की अपेक्षा बहुत कम करते हैं। जहां जहां उन्हों ने भक्ति का प्रयोग किया है, प्रकरणादि का विचार करने से उस का अर्थ उपासना अथवा स्तुति प्रार्थना उपासना है यह बात पाठकों को सदा मन में रखनी चाहिये। (सम्पादक]

धर्म्म जीवन

श्रीमान् शान्त स्वामी अनुभवानन्द जी महाराज

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि
धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

निरुक्तकार यास्क जी ने इस मन्त्र का अर्थ आधि दैविक (द्यौलोक—सूर्यमण्डल) परक किया है; इसी लिये निघण्टु १/५ में 'साध्या' पद सूर्य किरणों के लिये पढ़ा है। यास्क जी से पूर्वकालिक और समकालिक ऐतिहासिक विद्वान् इस का अर्थ भौतिक जगत् के विषय में किया करते थे। यही अथर्व० ७।५।१ में आत्म तत्त्व को ले कर 'इन्द्रिय धर्मा नियमों' के भाव में पढ़ा गया है। आत्म भाव में इस का अर्थ इस प्रकार होता है:—

"जीवन यज्ञ को इन्द्रिय देव जीवन की आहुतियां दे दे कर पूर्ण किया करते हैं';—ये ही उन के मुख्य एवं स्वाभाविक धर्म्म हैं। इसी से पवित्र और महिमावान हो कर ये इन्द्रिय देव अपने अनादिनित्य कारण रूप में समा जाते हैं, जहां कि उन से पूर्व के साधना सम्पन्न देव (दिव्य तत्त्व) पहले से ही विद्यमान होते हैं।"

मूल मन्त्र का अर्थ देवता परक हो या भौतिक और चाहे आत्मिक हो;—यह बात स्पष्ट है कि, इस मन्त्र में 'धर्म' पद मौलिक प्रकृति, सत्य, स्वभाव और नित्य नियमों के अर्थों में ही प्रयुक्त हुआ है।=ऋग्वेद ६।६३।२२ में भी 'धर्म' पद इसी भाव को प्रकट करता है। वैदिक वाङ्मय में सबसे पहले=ऋग्वेद में ही इस 'धर्म' पद का प्रयोग पाया जाता है। वेद में इस पद का अर्थ बहुत ऊंचे धरातल पर अवस्थित है। इस के अतिरिक्त एक और पद भी ऐसे ही सृष्टि के अखण्ड देश एवं काल व्यापी नियमों के लिए पढ़ा गया है; और यह पद ऋत है। धर्म एवं ऋत के अन्दर जिन नित्य नियमों का संकेत पाया जाता है, वे नियम सब से ऊपर हैं। सच तो यह है कि ब्रह्माण्ड भर में जो कुछ-जितना कुछ भी है, वह सब ऋत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म के ही आधीन है। ब्रह्माण्ड की यह अखण्डता-एकता-आज भौतिक विज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होती जा रही है। इस विशाल ब्रह्माण्ड को बांध कर चलाने वाले जो नियम हैं वे ही धर्म एवं ऋत के नामों से व्यक्त किये गये हैं।

'धर्म' शब्द वैदिक और संस्कृत भाषा में 'धृ' धातु से बनता है, इस धातु का अर्थ होता धारण करना, सम्हालना और नियमानुसार व्यवस्थित रखना। जो जो पदार्थ मात्र के गुण कर्म एवं स्वभाव का आश्रय हो 'जो पिण्ड ब्रह्मण्ड को', नियम पूर्वक धारण करे, जिसे नियम पूर्वक धारण किया जाये; और जीवन जगत की टेक अथवा सहारा हो—वह धर्म्म है। धर्म शब्द का यह अर्थ इतना सरल स्पष्ट विशाल एवं सीधा है कि, प्रत्येक मनुष्य आसानी से उसे और उस के भाव को जाज-समझ सकता है। ऋत, सत्य और नित्य नियम आदि धर्म शब्द के ही भिन्न २ भावों को द्योतन करने वाले शब्द हैं। धर्म्म पद के अन्दर एक और ऊंचा भाव समाया हुआ है जिस के अनुसार यह व्यक्ति गत जीवन के लिये, सामाजिक जीवन को धारण करने वाले नियमों और समस्त संसार के विधाने को धारण करने वाले नियमों के लिये भी वरता जाता है। कुछ और गम्भीरता के साथ विचार किया जाये तो, स्पष्ट मालूम होता है कि, मनुष्य, समाज राष्ट्र और समूचा संसार—इन चारों के मूल में एक ही सत्य नियम एवं=ऋत व्याप रहा है, जिसे वेद में 'धर्म्म' कहा गया है। मानव जीवन के लिए जो नैतिक नियम हैं, वे भी इसी धर्म पद के अन्तर्गत माने और समझते जाते हैं। भृगु सम्पादित मनुस्मृति में संभवतः इन्हीं भावों का

संकलन इस श्लोक में किया गया है:—

धृतिक्षमा दमोऽस्तेयं-शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधा—दशकं धर्म्म लक्षणम्॥
मनु

[धृति क्षमा, दम=मन को वश में रख चोरी न करना, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि विद्या, सत्य तथा अक्रोध ये धर्म्म के द लक्षण हैं।]

अपने युग के महा क्रान्तिकारी महात्मा बु ने इसी धारणात्मक धर्म्म को जीवन समाज भवन की मौलिक नींव घोषित कि था। बुद्ध की इसी घोषणा का परिणाम था इस पवित्र घोषणा ने कई सदियां संसार शान्ति की छत्र छाया में आश्रय दिया। इसी भावना को संसार में प्रसारित करने के राज कुमारों और राज कुमारियों से लेकर सा रण गृहस्थों तक वैराग्य पूर्ण जीवन करते हुए भारत के एक कोण से दूसरे कोण ही नहीं, वरन् लंका, ब्रह्मा, हिन्देशिया, जापान, रूस और अमरीका तक जा पहुँचे।

आज प्रत्येक साम्प्रदायिक विचार धा लिये 'धर्म्म' जैसे व्यापक और निर्दोष शब्द प्रयोग करके उसे इतना दूषित किया गया किया जा रहा है कि, भारत के राष्ट्रिय वि तक को धर्म से पृथक् रखने की अनिव आवश्यकता प्रतीत होने लगी। वास्तव भारतीय जीवन—समाज—के मूल भूत में नित्य सत्य, ऋत् अथवा धारणात्मक ध भाव ही उसे अनुप्राणित करता आ रहा हम भारतीयों की हीन भावनाओं का ही द्योतक होगा, यदि हम साम्प्रदायिक दल फंस कर इसी निर्मल, उज्जवल और देदी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म तत्व के अमृतसर के वास्तविक मूल्य को समझना छोड़ दें।

महात्मा गान्धी जी कहा करते थे कि, मनुष्य एवं मनुष्य के बीच इतनी समानता हैं कि, उनमें धर्म के नाम पर लड़ाई झगड़ा होते देख आश्चर्य सा होता है। कारण यह है कि, वास्तविक धर्म भाव अर्थात् सत्य का किसी दलबन्दी से कभी कोई सम्पर्क नहीं रहा और रह भी नहीं सकता। धर्म अथवा सत्य किसी भी देश, जाति, समाज या व्यक्ति गत जीवन में ही क्यों न हो, उसके नाम और रूप में भले ही परिवर्त्तन कर दिया गया हो; पर वास्तविक धर्म–सत्य–में कभी कोई परिवर्त्तन संभव नहीं। आग भारत में भी आग है, और अमरीका, अफ़रीका, अरब, फ़ारिस तथा रूस जापान में भी आग ही है। अपनी २ भाषा में उसे अग्नि, फ़ाहर, जलका, नार, आतिश और होनी आदि नाम से पुकारा जा सकता है; पर वह रहेगी आग ही। उसका अग्निपन किसी भी नाम से कहीं भी नष्ट नहीं किया जा सकता।

वास्तविक सत्य की तुलना में असत्य किसी भी देश, जाति और समाज में ठहर नहीं सकता सत्य अपने गुण भाव में स्वाभाविक है और असत्य अस्वाभाविक, अस्वाभाविक प्रकृति के सामने अन्त में हार माननी ही पड़ती है। कारण यह कि, दूषित वस्तु देखने सुनने में चाहे जितनी सुन्दर प्रतीत होती हो, पर अन्तर आत्मा के साथ कहीं भी किसी भी अवस्था में मेल नहीं कर सकती। मानव आत्मा की वास्तविक सत्य-धर्म-के साथ सम स्वर मिलाते हुए जब एकात्मता एकता-होती है, उस समय मानव आत्मा में जो स्वर्गीय संगीत की पवित्र ध्वनि उठती है, वही धर्मपरायण महात्माओं के शब्दों में सर्वोत्तम, सर्वोदार, सर्वापेक्षा गम्भीर और अनिर्वचनीय मनोहर ध्वनि होती है। सत्यं, शिवं सुन्दरं की त्रिमूर्त्ति का भव्य दर्शन पाकर ही मानव जीवन सफल होता और हो सकता है।

सारे संसार को छोड़िये, हमारे भारत में ही आज जितना अधर्म, असत्य, छल, कपट, मिथ्यापन, अनाचार, और अत्याचार तथा इनसे पैदा हो रही विपत्तियों को हम देख सुन रहे हैं, उन्हें हम कलयुग का प्रभाव, मानव की निर्बलता वातावर्ण और पालिसी आदि का नाम देकर उड़ा तो सकते हैं और उड़ा भी रहे हैं। इसी लिये हम किसी सीमा तक निश्चिन्त होकर खा पी रहे और सुख की नींद सो भी लेते हैं। यदि हम इसे थोड़ी देर के लिये भी वास्तविक एवं सत्य मान कर भीतरी आंखों देख और निश्चल मन से विचार-समझ-सकते तो, सच मानिये! मुंह में अन्न का कौर और आंखों में नींद का नाम न रहता।

इस में सन्देह नहीं कि, व्यक्तिगत जीवन का निर्माण करने में देश, जाति और समाज का भी हाथ होता है किन्तु इस सत्य को भी खुले हृदय से मानना पड़ेगा कि, समाज, जाति और देश का निर्माण करने में भी सर्वोपरि मनुष्य ही होता है। देशों जातियों और समाज का इतिहास उनमें सम्मलित मानव के आचरण से ही संकलित हुआ करता है। इसी लिये इस सत्य को सर्वमान्य समझा जाता है कि, मानव चरित्र ही समाज और जाति का निर्माण करने वाला है। इसी लिये समाज और राजनीति में धर्म का वही स्थान है जो व्यक्तिगत जीवन में है जो लोग राजनीति में धर्म-सत्य-को बेकार समझ एक ओर फैंक कर केवल देश को ही देव मानना चाहते हैं वे रविन्द्र नाथ ठाकुर के शब्दों में "देश को भी नहीं मान पाते"।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा का स्थान

श्रीमान् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज

चरक सुश्रुत आदि आयुर्वेद के सिद्धान्त ग्रन्थों में आत्मा का तथा उस के निवास स्थान का वर्णन नहीं किया गया। उन्हें उस के वर्णन की आवश्यकता भी न थी, क्योंकि आत्मा की चिकित्सा उन के शास्त्रों का विषय नहीं। आत्मा की चिकित्सा तो अध्यात्म शास्त्रों का विषय है। इन शास्त्रकारों ने चेतना का वर्णन अवश्य किया है। क्योंकि चेतना की वृद्धि तथा रक्षा के उपाय बतलाना और उस के विकृत हो जाने पर उस से उत्पन्न हुए प्रमाद आदि रोगों की चिकित्सा करना उन के शास्त्रों का विषय है।

अपनी अभ्युगत इस चेतना की सत्ता वे सारे ही शरीर में मानते हैं। क्योंकि शरीर में जितने आभ्यन्तर अथवा बाह्य कार्य हो रहे हैं वे सब चेतना के प्रताप से ही हो रहे हैं ऐसा वे मानते हैं।

परन्तु हृदय का वर्णन करते समय इन आचार्यों ने भी लिखा है "चेतना स्थान मुत्तमम्" (यह चेतना का उत्तम स्थान है)। यद्यपि ये आचार्य सारे शरीर को ही चेतना का स्थान मानते हैं परन्तु फिर भी इन का हृदय को चेतना का मुख्य स्थान मानना एक विशेष लक्ष्य की ओर ध्यान को आकर्षित करता है। इस से यह ध्वनित होता है कि चेतना का प्रधान आधार आत्मा है, और मुख्य रूप से चेतना का स्थान वह ही होना चाहिये जहां आत्मा रहता हो। इस प्रकार इन ग्रन्थकारों ने हृदय को चेतना का मुख्य स्थान कह कर प्रकारान्तर से हृदय को आत्मा का स्थान मान लिया है।

आयुर्वेद के एक सहिताकार आचा[र्य] भेल ने चेतना का मुख्य स्थान मस्तिष्क [को] माना है। उन का मन्तव्य है कि, प्रमाद रो[ग] मस्तिष्क का रोग है। इस रोग में चेतना [ ] दूषित होती है। यदि चेतना मुख्य रूप [ ] मस्तिष्क में न रहती हो तो मस्तिष्क के तन्तु[ओं] में होने वाला प्रमाद चेतना को दूषित कर मनु[ष्य] को पागल नहीं बना सकता।

उन के इस मन्तव्य की और आचार्यों [के] साथ इस प्रकार सङ्गति लग सकती है [ ] चेतना के एक साधन बुद्धि का निवास[स्थान] हमारा मस्तिष्क है। बुद्धि के विकार का [ ] ही प्रमाद रोग है। क्योंकि मनुष्य के सब [ ] निर्णयों में बुद्धि का प्रधान भाग रहता है। [ ] पागल हो जाने पर उस का कोई निर्णय [ ] व्यवस्थित नहीं रहता। अतः सम्भव है [ ] ने चेतना के मुख्य साधन बुद्धि के मस्ति[ष्क] में निवास को ही वहां चेतना का मुख्य नि[वास] कहा है और साधारणतया वे भी हृदय [ ] चेतना का मुख्य स्थान मानते हों।

हम पहिले लिख आये हैं कि उपनिष[द्] ऋषियों ने आत्मा का स्थान हृदय कहा है। "हृदय हमारे शरीर में कहां है" इस विषय [ ] स्पष्टीकरण हम इस आगे के प्रसङ्ग में उपनि[षदों] के आधार पर ही करेंगे उपनिषदों में हृदय [ ] बहुधा शरीर के किसी विशेष स्थान के अ[र्थ] ही आता है। परन्तु उपनिषदों में ही कि[न्हीं] स्थानों में यह शब्द, मन और चित्त के अ[र्थ] भी प्रयुक्त हुआ है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपनिषदों के उन प्रसङ्गों का हम पहिले उल्लेख करेंगे जहां यह शब्द मन के अर्थों में आया है।

"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रितः। अथमर्त्योऽमृतो भवत्यत्रब्रह्मसमश्नुते "(पृ. १।२।३)+कठ ६।१४ (जब ये कामनाएं छूट जाती है जो इस के हृदय में वर्तमान हैं, उस समय मनुष्य अमर हो जाता है, और यहां ही ब्रह्मानन्द का उपयोग करने लग जाता है, जीवन्मुक्त हो जाता है।

यहां हृदय शब्द मन का वाचक है, आत्मा अथवा मन के आश्रय किसी स्थान विशेष का वाचक नहीं क्योंकि कामनाओं का आश्रय मन है न कि कोई स्थान विशेष। इसी प्रकार "यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्यह ग्रन्थयः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् " कठ ६।१५ (जब वे सब गांठे खुल जाती हैं जो इस के हृदय में हैं, फिर मनुष्य अमर हो जाता है, यह इतना ही उपदेश है।

यहां संस्कारों तथा अविद्या की गांठे मन के ही एक भाग चित्त में है, शरीर के किसी स्थान विशेष में नहीं अतः यहां हृदय शब्द चित्त का वाचक है। बृहदारण्यक के निम्न प्रसङ्ग से यह विषय और भी स्पष्ट हो जाता है।

"काम सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धाधृति रधृति र्ह्रीर्धी भीरित्ये तत्सर्वं मन एव"।

(कामनाएं, सङ्कल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्ध, धैर्य. अधीरता, लज्जा, बुद्धि, भय यह सब मन ही है)

यहां कामनाएं और संशय आदि अविद्या की ग्रन्थियें सब मन के ही धर्म कहे हैं। किसी हृदय नामक स्थान विशेष को इन का आधार नहीं माना।

इसी प्रकार कोषकार अमरसिंह ने भी हृदय को मन का वाचक स्वीकार किया है।

"चित्तन्तु चेतो हृदय स्वान्त हृन्मा नसं मनः"

(चित्त, चेतस् हृदय, स्वान्त,हृत् मानस और मन ये सब एकार्थक हैं)

इन प्रसङ्गों से स्पष्ट है कि हृदय शब्द मन के अर्थों में भी आता है इस के अतिरिक्त उपनिषदों में हृदय शब्द शरीर के एक प्रदेश अर्थ में भी आता है। और वह प्रदेश ही आत्मा का निवास स्थान माना जाता है। हमारे शरीर में वे प्रदेश दो हैं। उन में से एक हमारी छाती के बाएं भागों में स्तन के नीचे है। और दूसरा शिर में ब्रह्मरन्ध्र में। इन दोनों हृदयों का परिचय हम पाठकों को उपनिषत्कार महर्षियों की सम्मतियों के आधार पर ही देंगे। पहिले हम छाती के वाम भाग वाले हृदय का साधक प्रमाण उपस्थित करते हैं।

"अग्नि र्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षु भूत्वोऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदय प्राविशन्मृत्युपानो भूत्वा नाभि प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्" ऐतरेय २।४। (अग्नि वाणी बन कर मुख में प्रविष्ट होगया। वायु प्राण बन नासिका में प्रविष्ट हो गया। आदित्य चक्षु बन बन कर नेत्रों में प्रविष्ट हो गया। दिशाएं श्रोत्र बन कर कानों में प्रविष्ट हो गईं। औषधि बनस्पतियें रोम बन कर त्वचा में प्रविष्ट हो गईं। चन्द्रमा मन बन कर हृदय में प्रविष्ट हो गया। मृत्यु अपान बन कर नाभि में प्रविष्ट हो गया। जल वीर्य बन कर जननइन्द्रिय में प्रविष्ट हो गया)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यहां इस प्रसङ्ग में शरीर-रचना की प्रक्रिया चल रही है। शरीर में इन्द्रियों के प्रवेश तथा उन के उपादान कारणों का उल्लेख किया जा रहा। आरम्भ में वाणी का मुख में, प्राण का नासिका में, चक्षु का नेत्रों में श्रोत्र का कानों में रोम अथवा त्वच इन्द्रिय का त्वचा में प्रवेश दिखला कर फिर मन का हृदय में प्रवेश दिखलाया गया है। और इस के अनन्तर फिर अपान का नाभि में और वीर्य का जनन इन्द्रिय में प्रवेश कहा गया है। इस प्रकार यहां ऊपर मुख से ले कर नीचे के क्रमिक स्थानों में इन्द्रियों के प्रवेश का वर्णन है। इस प्रसङ्ग में अपान के नाभि में प्रवेश से प्रथम मन के हृदय में प्रवेश ... उल्लेख हैं। हमारी नाभि से ऊपर के भाग ... वह ही स्थान है। जो हमारे स्तन के नीचे ... भाग में है। इस लिये मन के प्रवेश के लिए ... इसी शरीर के भाग को हृदय नाम से कहा ... है। अतः यह सिद्ध है कि मन का निवास ... हृदय में है। कभी इन्द्रियों का अधिष्ठाता ... मन इस हृदय में रहता है इस का विस्तार ... वर्णन "मनो विज्ञान तथा शिव सङ्कल्प" पढ़िये।

हमारा हृदय हमारे शिर में है उस के ... भी हम उपनिषद् से ही प्रमाण उद्धृत करते हैं ...

ऋषि दयानन्द के मिशन का सार्वभौम रूप

श्रीमान् प्रो० विश्वनाथ त्यागी बी० ए० एल० एल० बी०, मुरादाबाद

जिस समय हम ऋषि के प्रारंभिय जीवन पर दृष्टिपात करते हैं और साथ ही आर्यसमाज के दस नियमों का अध्ययन करते हैं तब एक समस्या उनके जीवनोद्देश्य के सम्बन्ध में हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाती है। चौदह वर्ष की अवस्था में बालक दयाल जी के हृदय में मूर्त्ति पूजा करते समय एक आकस्मिक घटना ने मानसिक विद्रोह की भावना को उत्पन्न किया उसी समय से उन्हों ने सच्चे शिव की प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। परन्तु जिन परिस्थियों में इस नवयुवक ने लगभग आठ वर्षों तक अपनी इन उग्र भावनाओं को छिपा सा रखा उन का ज्ञान आज हमें नहीं है और न ही उन को जानने का साधन है। इसी बीच में उनकी भगिनी तथा चचा की हृदयद्रावक मृत्यु की घटनाओं ने उन की उच्चतम भावुक्ता पर गहरी चोट की इन दो घटनाओं ने दयाल जी को ऋषि दयानन्द के रूप में संसार में ... स्थित किया। इस प्रकार ईश्वर की प्राप्ति ... मृत्यु की समस्या को योग द्वारा सुलझाने ... वल दो उद्देश्य ही दयानन्द के जीवन के ... होते हैं।

ये दोनों उद्देश्य जीवन के वैयक्तिक ... ही हो सकते हैं। इनमें सामाजिन तथा सार्व... भावना की गन्ध भी नहीं है। ऋषि का ... जीवन, जब तक कि हरिद्वार में आकर उन्हों... सर्व मेध यज्ञ न किया, जीवन की प्रयोग ... में निरन्तर एक अन्वेषक का जीवन रहा। ... जब आर्य्य समाज के नियमों को हम पढ़ते ... तब उनको जीवन का उद्देश्य वैयक्तिक रह ... सामाजिक बन गया दीखता है और इसी ... उन्हों ने अपने द्वारा संस्थापित आर्य्यसमाज ... मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना ठहरा... है। प्रश्न यह है कि इस छुठे नियम को ...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रथम न रख कर आर्य्य समाज के नियमों में छटा स्थान क्यों दिया। पहला और दूसरा नियम उन के सर्व प्रथम मानसिक विद्रोह का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करता है। यहां पर वैयक्तिक उद्देश्य की प्रधानता प्रमाणित होती है। हमारे विचारानुसार ऋषि प्रणीत इन नियमों का ऐसा समन्वय नितान्त तर्कानुमोदित और सत्य पर अवलम्बित है। वास्तव में प्राचीन और अर्वाचीन जीवनोद्देश्यों का यहां क्रियात्मक रूप से समाधान तथा समन्वय किया गया है। वेद के अनुसार व्यक्ति के जीवन को सर्वाङ्ग रूपेण उन्नत एवं उत्कृष्ट बनाना मानवता का चरम लक्ष्य है और सामाजिक जीवन उस उत्कर्ष एवं उन्नति को प्राप्त करने का एक साधन मात्र है। इस के विपरीत आधुनिक कही जाने वाली सभ्यता ने सामाजिक जीवन को मानवता का प्रधान ध्येय बना कर व्यक्ति को गौणता दे दी है इस आसुरी सिद्धान्त का फल संसार को विकट युद्धों एवं संघर्षों के रूप में भोगना पड़ रहा है।

आर्य्यसमाज के प्रथम पांच नियम व्यक्ति के व्यक्तित्व को सुसंस्कृत, परिष्कृत, एवं समुन्नत करने के उद्देश्य से रचे गए हैं, क्योंकि व्यक्ति की उत्कृष्टता के बिना समाज का उत्कर्ष नितान्त असंभव है। अगले समस्त नियम समाज की आदर्श रचना, स्थापना एवं परिष्करण के लिए बनाए गए हैं। हमें स्मरण आता है कि आर्य्यसमाज के एक नेता ने एक बार आर्य्यकुमार-परिषद् के प्रधानपद से यह घोषणा की थी कि आर्यसमाज के प्रथम पांच नियम गौण हैं और अन्तिम पांच नियम मुख्य हैं। और ऐसी ही धारणा बनाने के लिए नवयुवकों को उन्हों ने प्रेरणा भी की थी। उस समय थोड़ी सी चर्चा आर्य सामाजिक समाचार पत्रों में इस विषय पर चली थी। भारतवर्ष का भ्रमण करते हुए हमें कई ऐसे आर्य तथा अन्य विद्वान् महानुभाव मिले हैं जो इस विचार धारा के अनुगामी हैं हम ने गम्भीरता से जब इस प्रश्न पर विचार किया तब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऋषि दयानन्द वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नितान्त पवित्र साधनों का प्रयोग करना ही अत्युत्तम समझते थे। इसी End and means साध्य तथा साधन की अनुरूपता पर भारतीय मनीषियों ने अधिक बल दिया है। इसी कारण ऋषि ने आर्यसमाज के दशम नियम का शब्द विन्यास इस भांति किया है। 'प्रत्येक को सामाजिक सर्वहितकारी कार्यों में परतन्त्र तथा प्रत्येक हितकारी कार्य्य में स्वतन्त्र रहना चाहिये।' इस नियम पर विचार करने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि ऋषि को व्यक्ति के व्यक्तित्व का लोप किसी भी अवस्था में अभीष्ट नहीं था, परन्तु साथ ही व्यक्तियों के स्वार्थों का संघर्ष न होने देने के लिए एक सुव्यवस्थित मर्यादा के लिए इस नियम का प्रथम भाग रचा।

अब सीधा प्रश्न हमारे सामने यह है कि क्या ऋषि का मिशन सार्वभौम था अथवा संकीर्ण एकदेशीय। सर राधाकृष्णन् ने अपनी विख्यात पुस्तक Hindi View of Life में कुछ पंक्तियां आर्यसमाज के सम्बन्ध में लिखी हैं। उन का सारांश यह है कि आर्य्यसमाज इस्लाम और ईसाईयत की एक घोर प्रतिक्रिया है, इस का अर्थ केवल यह है कि यदि हमारे देश में इन दो मतों की सत्ता न होती तो आर्य समाज का जन्म ही न होता। परन्तु ऋषि का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समस्त जीवन, साहित्य, आर्यसमाज का इतिहास तथा आर्यसमाज के नियमोपनियम एवं ऋषि का स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश इस निराधार असत्य विचार धारा का घोर विरोध करते हैं। सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवां बारहवां समुल्लास भारतवर्ष में उत्पन्न हुए समस्त मत मतान्तरों की प्रबल आलोचना करते हैं। और प्रथम दस समुल्लास तो मण्डनात्मक रचना का विधान ही करते हैं। अन्य मतों का निराकरण ऋषि ने अन्त के चार [११ से १४] समुल्लासों में किया है। उन में भी पहले दो में भारतीय मतों की आलोचना है, उन के जीवन में भी कोई ऐसी घटना नहीं है जिस से उद्विग्न होकर उन के द्वारा सर राधाकृष्णन् की बताई प्रतिक्रिया का पता चलता हो। इस के विपरीत यह तो पता चलता है कि ऋषि दयानन्द के कार्य्यों की प्रेरिका भावना सत्यनिष्ठा एवं मनुष्यो उन्नति थी, जैसा कि वे अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखते हैं—

"मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।......................इसी लिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि आदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपने हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग कर के सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जागने वाला है।......................जिस से मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।"

ऋषि की अनेक घोषणायें और जीवन की घटनाएं इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये प्रस्तुत की जा सकती है कि उन के सम्मुख मनुष्य मात्र का कल्याण करना ही मुख्य उद्देश्य था। परन्तु लेख के विस्तार भय से उन सब की उल्लेख न करके इतिहास का केवल एक समुज्ज्वल उदाहरण ऋषि के सार्वभौम मिशन के संबन्ध में प्रस्तुत करना चाहते हैं और वह यह है कि ऋषि ने अपने प्रिय शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्म्मा को विदेश प्रचार के लिये इंग्लैंड भेजा। वह समय वह था जब ब्रिटिश राज्य भारत में अपने अभ्युदय के सर्वोन्नत शिखर पर आरूढ़ था और जबकि प्रत्येक राज्य कर्म्मचारी प्रत्येक भारतीय देशभक्त की गति विधि पर कड़ी दृष्टि रखता था। उस समय श्याम जी कृष्ण वर्म्मा का लण्डन में India House इंडिया हाऊस का स्थापित करना तथा क्रान्तिकारी राजनैतिक आन्दोलन का सूत्रपात करना सिद्ध करता था कि उस के गुरु ऋषि दयानन्द का उद्देश्य संकीर्ण, संकुचित साम्प्रदायिक न होकर कुछ अन्य ही था। उस समय और उस के पश्चात् ही भारतीय राजनीति उन की चिन्ता एवं साधना का मधुर स्वप्न बन रहा था।

ऋषि दयानन्द संसार में सर्वप्रथम महापुरुष एवं विचारक हैं जिन्होंने मनुष्यों में से मत मतान्तर की दीवारों को गिराने तथा उन को एक करने का सर्वप्रथम प्रयत्न किया। संवत् १९ (१८७६ ई.) में उन्होंने देहली में जहां

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और वहां आए राजाओं के आगे भारत को स्वतन्त्र करने की अपनी योजना रखी, वहां सभी मतों के प्रमुख नेताओं को बुला कर सर्व धर्म्म सम्मेलन किया और ऋषि ने उन सब को प्रेरणा की कि सब मतों के प्रमुख सर्व समान्य सिद्धान्तों के आधार पर सर्वसम्मत धर्म्म का प्रचार कर संसार का उपकार और उद्धार करना चाहिये।

इन घटनाओं के होते हुए कौन ऋषि दयानन्द तथा उन के स्थापित आर्यसमाज को इस्लाम तथा ईसाई मत की प्रति क्रिया कहने का साहस कर सकता है। ये घटनायें तो बोल २ कर कह रही हैं, कि ऋषि दयानन्द सार्वभौम मिशन ले कर कार्य्य क्षेत्र में उतरे थे। उन की भक्त मण्डली में सर सैय्यद अहमद खां जैसे कट्टर मुसल्मान तथा बरेली के पादरी स्काट का होना और ऋषि की मृत्यु पर सभी मतस्थों का शोक प्रकाशित करना ऋषि की सार्वभौम भावना का प्रबल प्रमाण हैं।

शिवनाथ स्वागी

आधुनिक भौतिकवादी विचारधारा तथा ऋषि दयानन्द

आचार्य श्रीमान् पं० रामानन्द जी शास्त्री

भौतिकवाद का आदिम प्रवर्तक चारवाक कहा जाता है। इस का समय कब हैं? इस का पता मुझे नहीं, किन्तु इतना कह सकता हूं कि चारवाक का समय अति प्राचीन है। महाभारत में चारवाक के होने तथा उस को युधिष्ठिर के प्रति उपदेश देने का प्रमाण मिलता है। चारवाक का समय महाभारत कालीन मान लेने पर भी उस का सिद्धान्त अति प्राचीन प्रतीत होता है। रामचन्द्र को जाबाल ने इसी सिद्धान्त का उपदेश किया था। (अयोध्या काण्ड रावण ने सीता को यही कहा था:—

भुङ्क्ष्व भोगान् यथा कामं पिव भीरू रमस्वच॥
यथेष्टञ्च प्रयच्छत्वं पृथिवीं वा धनानिच॥

यह eat drink and be marry अर्थात् खावो, पीवो, मौज करो का शाब्दिक अनुवाद है। यूनानी दार्शनिक एमीथ्यूरस (ईसा से २००—३०० पूर्व) का सिद्धान्त चारवाक का ही अनुसरण मात्र है। इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व का सारा क्रिया-कलाप स्वार्थ मूलक है। अतः सर्वदा निजलाभ के लिये चेष्टा करनी चाहिये। स्वार्थ वादियों का कहना है कि संसार में स्वार्थ ही स्वार्थ है। स्वार्थ सम्पूर्ण धर्म, कर्म अथवा आचार शास्त्र स्वार्थ पर ही अवलम्बित है यदि मनुष्य परार्थ भी करता है तो उस की जड़ में भी स्वार्थ ही काम कर रहा होता हैं। कि हम दूसरे पर दया करते हैं अतः हमारे ऊपर विपत्ति आयेगी तो दूसरा भी इसी प्रकार हमारे ऊपर दया करेगा। अतः परार्थ कोई चीज़ नहीं, अपितु स्वार्थ का ही रूपान्तर है। जीवो जीवस्य भोजनम्।

यह सिद्धान्त भारत में अध्यात्मवाद के समक्ष पुष्पित और पल्लवित न हो पाया। इङ्गलैण्ड में हावस तथा फ्रांस हेल्वेशियस ने इसी मत का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार संसार में मात्स्य न्याय+ प्रचलित होने

+बड़ी मच्छली छोटी मच्छली को खा जाती है, इसी प्रकार प्रबल दुर्बल का नाश करे, तो मत्स्यों मच्छलयों का अनुकरण होने से वह मात्स्य न्याय कहलाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की संभावना है। तब पश्चिमी भौतिकवादी विज्ञानों ने कहा कि हम स्वार्थ और परार्थ में यह निर्णय करेंगें कि किस से अधिक लाभ है? दूर स्वार्थ का विचार कर हम कुछ निर्णय करेगें। इसे उच्चतर स्वार्थ (Enlightened self intrest) कहते हैं। इस का प्रतिपादन सिज्विक ने (Method of Ethies by sidgwik) किया है।

किंतु संसार इस से संतुष्ट नहीं हुआ विश्व में देखा जाता है कि लाखों प्राणी परार्थ के लिये अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देते हैं। इस का सब से प्रबल प्रमाण 'माता' है। क्या माता अपने प्यारे बच्चे के लिए अपना प्राण तक न्योछावर नहीं कर देती है। विश्व इन उदाहरण से शून्य नहीं है।

लाखों ने दूसरों के लिये अपना सर्वस्व नष्ट कर दिया है। अतः भौतिकवादियों ने अपना पैंतरा बदला और कहना प्रारम्भ किया कि विश्व में परस्पर सहायक भावना (Mutual aid) काम कर रही है। सबों में दया सदाचार (Common sense morality) आदि गुण उपस्थित हैं। अतः जिस से अधिकांश जन को लाभ हो उसी नीति का प्रचार होना चाहिये। इसे (Greatest good of greatest number) कहते हैं। आगे चल कर विवेचन किया जावेगा कि भौतिक वाद कहां तक धर्म के निकट पहुंच गया है। अभी जरा पहले भारत के भौतिक वादियों की सुन लें।

भारत के भौतिक बादी जैन अथवा गौतमबुद्ध एवं अनेक अनुयायो नागार्जुन, धर्म कीर्ति और दिङ्नाग आदि कों ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी की व्याख्या में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को अङ्गीकृत कर फलाफल को मान कर बहुत बड़े आ... अपना पीछा छुड़वाया।

ऋषि दयानन्द उस समय हुए थे जब कि... में कार्लमार्क्स (Karl Mark) और A... (एंगिल्स) आदि दार्शनिक भौतिकवादी ... हेमेल की खिल्ली उड़ा कर द्वन्द्वात्मक ... परम्परा की स्थापना कर रहे थे तथा ... श्रमजीवी वर्ग के लिये अफीम बहा रहे ... भारत में ब्रह्मवाद (Absolute Mon... के प्रचार से अकर्मण्यता आ गयी थी ... की जनता इस मायावादी सिद्धांत से ... थी। रामानुज का विशिष्टाद्वैत, मा... द्वैत तथा वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत, ... अंकुरित होकर मायावाद की मृग ... के समक्ष झुलस रहा था। उस समय ऐसे ... पुरुष की आवश्यकक्ता थी कि वह ... पश्चिम के सैद्धान्तिक महार्णव में ... तथा भारतीय दार्शनिक-तुमुल युद्ध ... पैदा करे। ऋषि दयानन्द ने यही किया ... ने कहा कि "देख, जिस मत में—ये स... मत हों वह वेदमत ग्राह्य है और ... परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, ... अग्राह्य है।" (सत्यार्थ प्र...

यहां यह तात्पर्य्य नहीं कि एक हजारों की ... की बात मानी जाय और एक विद्वान् की ... मानी जाय, अपितु जिस से अ... कल्याण हो वही धर्म है। क्या वेन्थेम ... आदि भौतिकवादी पण्डितों के अधि... लाभ (Greatest good of greatest ... ber) वाले सिद्धान्त से कुछ भी विरो... है। कट्टर से कट्टर कम्यूनिष्ट और ब्रह्मवा... इस लक्षण के आगे नतमस्तक है। ...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का यह लक्षण नवीन होते हुये भी सनातन है। महाभारत कार ने ही कहा है कि :— यद्भूत हितमत्यतन्तं तन्मे सत्यतम् मतम् योगी अर-बिन्दु के शब्दों में ऋषि दयानन्द वैदिक विशुद्ध अर्थधाराप्रवर्त्तक थे। उन्होंने भगवान् कृष्ण की गीता के समान सांख्य, योग और मीमांसा आदि का समन्वय किया। किसी ने किसी से पूछा हलुवा कैसे बना है। एक ने कहा कि— आटा से, दूसरे ने कहा घी से, तीसरे ने कहा चीनी से अब लगे तीनों परस्पर लड़ने। तब एक विज्ञ ने बताया की तीनों की बात सत्य है। इसी प्रकार दार्शनिक तमुल युद्ध में कोई निरा भौतिकवादी, तो कोई प्रकृति जीववादी, तो कोई निरा ब्रह्मवादी था। ऋषि दयानन्द ने तीनों को साथ कहा, और त्रैतवाद की धारा प्रवर्तित की। दृश्यमान जगत् परमाणु रूप में नित्य है। संसार को वितथ नहीं कहा जा सकता। इसका नियम कौन करेगा यदि मैं ही नहीं। किन्तु इन दोनों के रहते हुये विशाल जगत् निर्माण असंभव है। अतः उसका निर्माता ब्रह्म है। उस से सबों को संतोष है। सब उसे हृदय से चाहते हैं। उस में भौतकवादी, जीववादी और ब्रह्मवादी का समन्वय है। यही तो ऋषि की विशेषता है।

सब सत्य का प्रचार करें सब को ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ प्रीति युक्त करा के सब से सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वभूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जाय।

यही मेरा मुख्य प्रयोजन है। (सत्यार्थप्रकाश)

वर्तमान युग में मानवता का सर्वप्रथम प्रचारक

[स्वामी वेदानन्द तीर्थ)

इस समय संसार की स्थिति अत्यन्त षम हो रही है। विगत महा युद्ध के कारण न्न हुई अन्न, वस्त्र तथा वासस्थान की की पूर्त्ति अभी तक नहीं हो पाई। किन्तु ष्य कहे जाने वाले प्राणी के भीतर कार्य्य रही दानव प्रवृत्ति, दस्युभावना उग्र हो उठी प्राय: सर्वत्र संसार में मार काट, खूनखच्चर साम्राज्य सा हो रहा है। चीन का गृह युद्ध तक पूर्णतया समाप्त नहीं हो पाया। चीनी विट-नाम तथा विट-मिन्ह भागों रस्परिक विद्वेष के कारण विकराल युद्ध-सा बन रहा है। बर्मा का विद्रोह भी रहा है। मलाया में अंग्रेज अपनी कूटनीति के साथ दमन चक्र चला रहा हैं। पाकिस्थान का एक ओर पखतूनस्थानियों से बिगाड़ चल रहा है और उस के कारण अफगानिस्थान से तनाव हो रहा है, दूसरी ओर पूर्वी बंगाल उस से बुरी तरह रूठ रहा है। योगेन्द्रनाथ मण्डल भी पाकिस्थान के मन्त्रिमण्डल से त्याग पत्र देकर भारत में अपने लिए स्थान बनाने की चिन्ता में है। ईरान, तुर्की, अरब में भी शान्ति नहीं हैं। कोरिया में भी संग्राम की गरमी बढ़ रही है। अफ्रीका में काले गोरे का विवाद भीषण रूप धारण कर चुका है। रूसी रीछ सब को निगलने के उपायों में रत है। योरुप में अशान्ति का शमन नहीं हो पाया। दक्षिण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की संभावना है। तब पश्चिमी भौतिकवादी विज्ञानों ने कहा कि हम स्वार्थ और परार्थ में यह निर्णय करेंगें कि किस से अधिक लाभ है? दूर स्वार्थ का विचार कर हम कुछ निर्णय करेंगें। इसे उच्चतर स्वार्थ (Enlightened self intrest) कहते हैं। इस का प्रतिपादन सिज्विक ने (Method of Ethies by sidgwik) किया है।

किंतु संसार इस से संतुष्ट नहीं हुआ विश्व में देखा जाता है कि लाखों प्राणी परार्थ के लिये अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देते हैं। इस का सब से प्रबल प्रमाण 'माता' है। क्या माता अपने प्यारे बच्चे के लिए अपना प्राण तक न्योछावर नहीं कर देती है। विश्व इन उदाहरण से शून्य नहीं है।

लाखों ने दूसरों के लिये अपना सर्वस्व नष्ट कर दिया है। अतः भौतिकवादियों ने अपना पैंतरा बदला और कहना प्रारम्भ किया कि विश्व में परस्पर सहायक भावना (Mutual aid) काम कर रही है। सबों में दया सदाचार (Common sense morality) आदि गुण उपस्थित हैं। अतः जिस से अधिकांश जन को लाभ हो उसी नीति का प्रचार होना चाहिये। इसे (Greatest good of greatest number) कहते हैं। आगे चल कर विवेचन किया जावेगा कि भौतिक वाद कहां तक धर्म के निकट पहुंच गया है। अभी जरा पहले भारत के भौतिक वादियों की सुन लें।

भारत के भौतिक वादी जैन अथवा गौतमबुद्ध एवं अनेक अनुयायी नागार्जुन, धर्म कीर्ति और दिङ्नाग आदि कों ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी की व्याख्या में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को अङ्गीकृत कर फलाफल को मान कर बहुत बड़े आक्षेप अपना पीछा छुड़वाया।

ऋषि दयानन्द उस समय हुए थे जबकि यूरो में कार्लमार्क्स (Karl Mark) और Angl (एंगिल्स) आदि दार्शनिक भौतिकवादी दार्शनि हेमेल की खिल्ली उड़ा कर द्वन्द्वात्मक विच परम्परा की स्थापना कर रहे थे तथा धर्म श्रमजीवी वर्ग के लिये अफीम बहा रहे थे भारत में ब्रह्मवाद (Absolute Monism के प्रचार से अकर्मण्यता आ गयी थी। की जनता इस मायावादी सिद्धांत से ऊब थी। रामानुज का विशिष्टाद्वैत, माध्व द्वैत तथा वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत, थोड़ा अंकुरित होकर मायावाद की मृग मरीचि के समक्ष झुलस रहा था। उस समय ऐसे म पुरुष की आवश्यकता थी कि वह पूर्व पश्चिम के सैद्धान्तिक महार्णव में सेतु तथा भारतीय दार्शनिक-तुमुल युद्ध में पैदा करे। ऋषि दयानन्द ने यही किया। ने कहा कि "देख, जिस मत में—ये सहस्र मत हों वह वेदमत ग्राह्य है और जिस परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अग्राह्य है।" (सत्यार्थ प्रकाश

यहां यह तात्पर्य्य नहीं कि एक हजार की बात मानी जाय और एक विद्वान् की बात मानी जाय, अपितु जिस से असंख्यों कल्याण हो वही धर्म है। क्या वेन्थेम, आदि भौतिकवादी पण्डितों के अधिकांश लाभ (Greatest good of greatest number) वाले सिद्धान्त से कुछ भी विरोध है। कट्टर से कट्टर कम्यूनिष्ट और ब्रह्मवादी, इस लक्षण के आगे नतमस्तक है। ऋषिदया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का यह लक्षण नवीन होते हुये भी सनातन है। महाभारत कार ने ही कहा है कि :— यद्भूत हितमत्यतन्तं तन्मे सत्यतम् मतम् योगी अरबिन्दु के शब्दों में ऋषि दयानन्द वैदिक विशुद्ध अर्थधाराप्रवर्त्तक थे। उन्होंने भगवान् कृष्ण की गीता के समान सांख्य, योग और मीमांसा आदि का समन्वय किया। किसी ने किसी से पूछा हलुवा कैसे बना है। एक ने कहा कि— आटा से, दूसरे ने कहा घी से, तीसरे ने कहा चीनी से अब लगे तीनों परस्पर लड़ने। तब एक विज्ञ ने बताया की तीनों की बात सत्य है। उसी प्रकार दार्शनिक तमुल युद्ध में कोई निरा भौतिकवादी, तो कोई प्रकृति जीववादी, तो कोई कोरा ब्रह्मवादी था। ऋषि दयानन्द ने तीनों को साथ कहा, और त्रैतवाद की धारा प्रवर्तित की। दृश्यमान जगत् परमाणु रूप में नित्य है। संसार को वितथ नहीं कहा जा सकता। इसका नियम कौन करेगा यदि मैं ही नहीं। किन्तु इन दोनों के रहते हुये विशाल जगत् निर्माण असंभव है। अतः उसका निर्माता ब्रह्म है। उस से सबों को संतोष है। सब उसे हृदय से चाहते हैं। उस में भौतकवादी, जीववादी और ब्रह्मवादी का समन्वय है। यही तो ऋषि की विशेषता है।

सब सत्य का प्रचार करें सब को ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ प्रीति युद्ध करा के सब से सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वभूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जाय।

यही मेरा मुख्य प्रयोजन है। (सत्यार्थप्रकाश)

वर्तमान युग में मानवता का सर्वप्रथम प्रचारक

[स्वामी वेदानन्द तीर्थ)

इस समय संसार की स्थिति अत्यन्त विषम हो रही है। विगत महा युद्ध के कारण उत्पन्न हुई अन्न, वस्त्र तथा वासस्थान की कमी की पूर्त्ति अभी तक नहीं हो पाई। किन्तु मनुष्य कहे जाने वाले प्राणी के भीतर कार्य्य कर रही दानव प्रवृत्ति, दस्युभावना उग्र हो उठी है। प्राय: सर्वत्र संसार में मार काट, खूनखच्चर का साम्राज्य सा हो रहा है। चीन का गृह युद्ध अभी तक पूर्णतया समाप्त नहीं हो पाया। हिन्दचीनी विट-नाम तथा विट-मिन्ह भागों में पारस्परिक विद्वेष के कारण विकराल युद्ध-स्थली सा बन रहा है। बर्मा का विद्रोह भी चल रहा है। मलाया में अंग्रेज अपनी कूटनीति के साथ दमन चक्र चला रहा हैं। पाकिस्थान का एक ओर पखतूनस्थानियों से विगाड़ चल रहा है और उस के कारण अफगानिस्थान से तनाव हो रहा है, दूसरी ओर पूर्वी बंगाल उस से बुरी तरह रूठ रहा है। योगेन्द्रनाथ मण्डल भी पापिस्थान के मन्त्रिमण्डल से त्याग पत्र देकर भारत में अपने लिए स्थान बनाने की चिन्ता में है। ईरान, तुर्की, अरब में भी शान्ति नहीं हैं। कोरिया में भी संग्राम की गरमी बढ़ रही है। अफ्रीका में काले गोरे का विवाद भीषण रूप धारण कर चुका है। रूसी रीछ सब को निगलने के उपायों में रत है। योरुप में अशान्ति का शमन नहीं हो पाया। दक्षिण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अमरीका के कई प्रदेशों में राज्यचक्र का उलट फेर चल रहा है। तात्पर्य यह कि मनुष्य मनुष्य का वैरी हो रहा है।

इस का कारण है, वर्त्तमान संसार कूटनीति विशारदों के चंगुल में फंसा है, जो मुख से मधुर शब्द बोलते हैं किन्तु हृदय में हालाहल विष घोलते हैं। वे शान्ति के नाम पर अशान्ति फैलाने का प्रयत्न लगातार करते रहते हैं। भारत को छोड़ कर प्रत्येक देश के राजनीति कर्णधार यही विचारते हैं कि किस प्रकार दूसरे देशों को दास बनाया जाये। यदि राजनैतिक रीति से दास बनाने में सफलता नहीं मिलती, तो आर्थिक फांस में फंसाने की चेष्टा की जाती है।

ऐसे समय में जब कि समस्त संसार में घोर अशान्ति फैल रही है, मानव मानव नहीं रहा, दानव होकर अपने ही भाईयों के घात-पात में ऐसा रत है, मानो मनुष्य गाजर मूली से भी हीन है। डारविन का चलाया सिद्धान्त 'योग्यतम का अवशेष' पूरी शक्ति से कार्य करता दीख रहा है, दुर्बलों को प्रबल लीलने को तत्पर हैं, तब एक महा मनुष्य की स्मृति नवीन हो उठती है जिस का समस्त जीवन मानवता के निर्माण में व्यतीत हुआ। उस के आने से पूर्व स्त्रियों तथा तथाकथित शूद्रों को मानो मनुष्य ही नहीं माना जाता था, और वह भी धर्म्म के नाम पर। उस महामानव ने ऐसे धर्म्मध्वजियों को ललकार कर कहा कि ओ भ्रान्त लोगो! क्यों धर्म्म के धवल नाम पर धूली डालते हो, धर्म्म की दृष्टि में तो सभी मानव समान हैं, कर्म्मों के कारण विषमता हो तो हो, जन्म के कारण किसी मनुष्य को मनुष्यता के अधिकार से कैसे वञ्चित किया जा सकता है। धर्म्म के आदि स्रोत वेद में तो समानी प्रपा सह वो अन्नभागः (ऋ०) [तुम्हारे पीने का स्थान एक हो, तुम्हें समान अन्न मिले और एक साथ तुम खाओ] का उपदेश है। तुम छुआछूत के भूत कहां से ले आए। स्त्रियों ने कई वेदमन्त्रों के अर्थों का दर्शन किया। गार्गी, सुलभा आदि बहनों का तिरस्कार करने का साहस तुम कैसे करते हो। स्त्री यदि गंवार है तो सन्तान वर्ण संकर होगी।

इस प्रकार उस मानव शिरोमणि ने वेद के अवहितं देवा उन्नयथा पुनः (ऋ० १०।१३७।१) [विद्वानो! गिरे हुए को फिर से उठाओ] आदेश पर आचरण कर के पतितोद्धार और मानवों को मानवता के अधिकार दिलाने में सारा जीवन लगाया। उसे अन्याय से अत्याचार से कितनी घृणा थी, यह उस के निम्न लिखित वाक्यों से जाना जा सकता है—

"यद्यपि मैं आर्य्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और वसता हूँ तथापि जैसे इस देश की मूर्खता बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ वर्तता हूँ, जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी। तथा सज्जनों को भी [वैसा ही] वर्त्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी किसी एक का पक्षपाती होता तो आज कल के स्वमत की स्तुति, मण्डन प्रचार करते और दूसरे की निन्दा हानि बन्द करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं। जैसे पशु बलवान् हो कर निर्बलों को दुःख और मार भी डालते हैं; जब मनुष्य शरीर

India Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैसा ही कर्म्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव-युक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् हो कर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश हो कर परहानि मात्र करता रहता है, वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है।" (सत्यार्थप्रकाश-भूमिका)

इस सन्दर्भ में कई अमूल्य तत्त्वों का संकसन हुआ है। १. सभी मनुष्य समान हैं, देश मत की परिधि या संकोच उन की समानता में बाधक नहीं होना चाहिएं यह कार्य्य किसी एक का नहीं, सभी सज्जनों का है (२) मतं मतान्तर की भावना से ऊपर उठाकर मनुष्य मात्र की उन्नति के लिये यत्न करना चाहिए (३) विचार स्वतन्त्रता होनी चाहिये, बलात्कार से किसी के विचारों को दबाना नहीं चाहिए। (४) शक्ति शालियों का कर्त्तव्य है कि वे अशक्तों, निर्बलों की रक्षा, सहायता करें न कि उन पर अत्याचार करें। दुर्बलों पर अत्याचार मनुष्यता नहीं, पशुता है।

यू.एन. ओ वाले आज मनुष्यता के अधिकारों का पट्टा बनाते हैं। किन्तु महर्षि आज से पचहत्तर वर्ष पूर्व यह घोषणा कर गया। दुःख की बात है कि इस घोषणा का यथायोग्य प्रचार तथा व्यावहार नहीं हो पाया। आवश्यकता है कि इस का बार २ प्रचार किया जाए। इस के बिना मानव जाति में शान्ति आ सकना असंभव है। सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में स्वमन्तामन्तव्य प्रकाश प्रकरणमें पुनः इस प्रकार लिखा है—

"मनुष्य उसी को कहना कि जो मनन शील हो कर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्म्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्म्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उन की रक्षा उन्नति प्रियाचरण [करता रहे] और अधर्म्मी चाहें चक्रवर्त्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान भी हो तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति किया करे। इस काम से चाहे उस को कितना ही दारूण दुःखप्राप्त हो चाहे प्राण भी चले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म्म से पृथक् कभी न होवें।"

मनुष्यता का कितना उदात्त वर्णन है। आवश्कता इस समय इस की है कि इस मनुष्यपन धर्म्म का अधिकाधिक प्रचार किया जाए। उस के लिये संसार के समस्त मनुष्यता प्रेमियों को संघटित पुरुषार्थ करने की अपेक्षा है। महर्षि समझते थे कि विद्वान् लोग ही इस कार्य्य को कर सकते हैं। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में इस विषय का प्रतिपादन इस प्रकार उन्होंने किया—

"यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्तों अर्थात् जो २ बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं उन का ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उन का त्याग कर परस्पर प्रीति वर्तें वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेक विध दुःख की वृद्धि और सुख की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हानि होती है। इस हानि से, जो स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःख सागर में डूबा दिया है। इन में से जो कोई सार्वजनिक हित को लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है उस से स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर हो कर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन नहीं होते।"

कितने स्पष्ट शब्दों में विद्वानों का कर्त्तव्य बता कर उनको किस भांति उत्साहित एवं उत्तेजित किया है। वे स्वयं इस उपदेश के मूर्तिमान् उदाहरण थे। चौदह बार उन को विष दिया गया, विष से उन के अमूल्य जीवन की समाप्ति हुई, अन्य अनेक प्रकार से उन्हें तंग किया गया, किन्तु उन के मन में एक बार भी इस मनुष्यपन रूप धर्म्म से विचलित होने की भावना उत्पन्न न हुई। अपने आचरण के द्वारा अपने वचन को यथार्थता दिखाते रहे।

संकीर्ण भावनाओं के हटने से उदार मानव धर्म्म के प्रचार से मनुष्यों में एकता हो सकती है। इस के संबन्ध में वे इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में लिखते हैं:—

"जो जो सब के सामने माननीय है उन को मानता हूं, अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है। ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूं और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उन को मैं पसन्द नहीं करता क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर, सब को ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त करा के सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्व शक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिससे सब लोग सहज से धर्म्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।"

अर्थात् ऋषि मनुष्यों को सब प्रकार की दासता से छुड़ा कर स्वतन्त्र कराना चाहते थे क्यों कि स्वतन्त्रता से मनुष्यता चमकती है।

इस सर्व विध दासता का विनाश कर के मनुष्यता का प्रकाश करने वाले महात्मा का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती था।

हम बुराइयों से सर्वदा दूर रहें

श्रीमान् आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री पंचवटी नासिक

वैदिक आदर्श मानवसमाज को बुराइयों से दूर रहने की शिक्षा देता है। इसी में धर्म का रहस्य और मानवता का सार दिया हुआ है। बुराई मनुष्य को दानव और अच्छाई मानव बनाती है। यदि वर्तमान मानवसमाज इस रहस्य को समझ कर चले तो सर्वथा शान्ति का वातावरण हो सकता है। वेदों में हमें पदे पदे इस विषय का उपदेश मिलता है। "यद्भद्रन्तन्न आसुव" दुरितानि परासुव, भद्रंभवातिवः पुरः मुञ्चत्वंहसः न मे दुरितानि शंसतु" इत्यादि वेद वाक्य इसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महान् उद्देश्य की तरफ़ निर्देश कर रहे हैं। इस के आगे यह भी कहा गया है कि "वयंस्याम वरूणो अनागाः परमात्मा के दरबार में हम निष्कलङ्क सिद्ध हों। वह प्रभु हमारे सभी कर्मों को देखा करता है अतः हम सदा दुर्गुणों से दूर रहे। क्या दुर्गुण, दुरित या दुष्कर्म क्या हैं? सुगुण भद्र और सुकर्म क्यों हैं इन का विवेचन हमें शास्त्रों में भली प्रकार देखने को मिलता है। कर्म और अकर्म क्या है? इस का विवेचन करने वाले कर्त्तव्य की मीमांसाशास्त्र का जब अन्य देशों में उदय भी नहीं हुआ या उस के बहुत पहले भारत में इस सम्बन्ध के शास्त्रों का प्रणयन हो चुका था। यह बात इन वेदों की देन है जिन से कि ज्ञान का प्रकाश धरा पर इस सर्ग के प्रारम्भ में हुआ। ज्ञान की निधि ये वेद हमें कर्मों के विषय में बहुत उच्च ज्ञान प्रदान करते हैं। वैदिक धर्म में कर्म के स्वार्थ और परिणाम पर जितना विवेचन है अन्य जगह उस का अंश भी उपलब्ध नहीं होता है। यजुर्वेद का यह मन्त्र हमें इस दिशा में ले जाता है। इस प्रकार के इस में और अन्य वेदों में शतशः मन्त्र हैं।

यद्देवा देवहेडनं देवासः चकृमा वयं अग्निर्मा तस्माद्देवसो विश्वान्मुञ्चत्वंहंसः—यजुः २०।१४—

अर्थात् हे दिव्यगुण वाले विद्वान्! हम ने जो कुछ भी देव कर्म में अवहेलना की हो अग्नि परमेश्वर उन सभी बुराइयों से हमें दूर रखे। इसी प्रकार 'एनस्_अहंस्_दुरित आदि शब्दों द्वारा बुराइयों का अभिधान मान कर उन से दूर रहने के अनेकों उपदेश वेदों में मिलते हैं परन्तु जब हम मन्त्रों की रचना और अन्तः स्थिति की परीक्षा करते हैं तो हमारे सामने जटिल

समस्यायें भी खड़ी हो जाती हैं। यदि हम इन पदों से बुराई या दुर्गुणों का ही तात्पर्य सामान्य रूप से ग्रहण करें तो हम इस पर पहुँचते हैं, कि इन में बुराइयों से दूर रहने की शिक्षा दी गयी है। परन्तु जब हम उन्हें विस्तृत व्यापक अर्थ में पाप, अथवा अपुण्य कर्म का अभिधायिक मान कर भजते हैं तब यह प्रश्न समक्ष उपस्थित होता है कि क्या परमेश्वर या विद्वान् जन दुख से हमें मुक्त कर सकते हैं? स्पष्टतया यह कहना पड़ता है कि क्या परमेश्वर या विद्वज्जन हमारे पाप को क्षमा कर सकते हैं। उत्तर मिलेगा विद्वान तो क्षमा कर सकेगा जहां तक उसकी सामर्थ्य का उस कर्म से सम्बन्ध है परन्तु परमेश्वर तो किसी भी कर्म के लिए किसी को क्षमा नहीं कर सकता। पुनः पाप कर्म भी दो अवस्थाओं में होगा—एक किया जा चुका हुआ और दूसरा करने की धारणा बनाया हुआ। जहां तक किये हुए का सम्बन्ध है कोई उस से मुक्त नहीं करा सकता, उस का फल भोगना ही पड़ेगा। परमात्मा यदि ऐसा करे तो फिर कृतहान दोष आता है और किये पाप के विपरीत भी मोचन रूप फल मिलने से अकृताभ्यागम भी। इस प्रकार परमेश्वर की व्याख्या ही अनुचित रूप धारण कर लेगी, रही बात करने की धारणा बनाये हुए पात्र की, उस को उपदेश आदि से अच्छी भावनाओं का उदय कर छुड़ाया जा सकता है। पाप कर्मों के करने की आदत भी छुड़ाई जा सकती है परन्तु किए गये कर्म से छूट साधारण अवस्था में सम्भव नहीं यजुर्वेद में जब ८।१६ मन्त्र के 'यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि॥ वाक्य को देखते हैं तो विचारणीय विषय की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गम्भीरता और भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार यजुः२०+१५,१६ मन्त्र के क्रिया पद 'चकृमा' को देख कर भी असमंजस में साधारण जन पड़ जाते हैं। ऋग्वेद (१०.६२।१४) कृतांदकृतादेनसः पद आये हैं:—जो विचार को और भी आगे ले जाता है। साधारण जनों में यह बात खटकने लगती है कि क्या अन्य धर्मों की भांति वैदिक धर्म में भी किया पाप क्षमा हो सकता है। जब धारणा वैदिक है कि पाप का फल अवश्य भोगना पड़ेगा तो फिर यह क्षमा का विचार वेद का अपना कैसे हो सकता है।

इस विषय में ही दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। एक तो यह कि इन मन्त्रों में साधारणतया की गयी बुराइयों की आदत से तात्पर्य है और दूसरी यह कि भविष्य में होने वाले बुरे कर्मों से हैं। पहली दृष्टि से यह भाव निकलेगा कि जब कि जो बुराइयां हम करते हैं इन की आदत से हमें परमेश्वर या विद्वान् लोग छुड़ावें। दूसरी दृष्टि का भाव यह होगा भविष्य के पाप कर्मों से हमें छुड़ावें कि हम उन्हें न करें इस प्रकार भाव लेने पर किये कर्मों के फल भोगने की अनिवार्यता बनी रहेगी और यह सिद्धान्त भी अक्षत बना रहेगा कि किया हुआ पाप क्षमा नहीं हो सकता है। ऋषि दयानन्द यजुः ८।१३ के "चकार" क्रिया पद का अर्थ करिष्यामि, कुर्मोवा॥ किया है। अर्थात् जो पाप कर्म भविष्य में करूं या जिन के करने की इच्छा बन चुकी है अथवा जो करने जा रहा हूं उन से हमें हे प्रभो बचाओ। कुछ लोग कहेंगे कि जिस पाप कर्म का अभी अस्तित्व ही नहीं जो भविष्य का विषय है उस से कैसे छुड़ाया जा सकता है? समाधान सरल है कि भविष्य में जन भी उस की धारणा बने या वह अस्तित्व में आने लगें उस से बचने की प्रार्थना की गई है। एक और कठिनाई इस मार्ग में आती है वह कि फिर "प्रायश्चित्त" का फल क्या होगा। परन्तु सुलझाव इस का भी विचार से निकलता है। प्रायश्चित से किये हुए पाप नष्ट नहीं हो जाते। केवल उन के भविष्य में न करने की भावना बनती है। प्रायश्चित्त करने वाले को यह विचार बनता है कि यह पाप कर्म है अब इसे नहीं करूंगा। प्रायः नाम तप का है और चित्त उस के विशोधन को कहते हैं।

किसी भी किये कर्म को तीन श्रेणियों में लिया जा सकता है:-इस जन्म में भोग्य, पश्चाद्भावीजन्म में भोग्य और इस तथा उस दोनों जन्मों में भोग्य इन्हें ही दृष्टजन्म वेदनी, अदृष्टजन्मवेदनीय और दृष्टादृष्टवेदनीय शब्दों से कहा जा सकता है। भोजन पकाना कृषि आदि कर्म इस जन्म में ही भोगे जाते हैं। जन्म परिवर्तन = योनि का बदलना अर्थात् जाति रूप तथा और भी बहुत इस तरह के फल दूसरे जन्म में भोग्य हैं। कई कर्म ऐसे हैं जिन का फल दोनों में भोगना पड़ता है। एक आदमी कत्ल करता है, या चोरी करता है, उस का उसे दण्ड मिलता है परन्तु इस दण्ड से अगले जन्म में उसे पुनः इन कर्मों का फल न मिले ऐसा नहीं कर्म की वासना जो बनी हुई है उस का निवारण इहलौकिक फलों से नहीं होता। उस के निवारणार्थ परमात्मा फल भोग रूप दण्ड देता है। फलों की तीन किस्में हैं जो जाति, आयु, और भोग कहे गए हैं। अच्छे कर्मों के फल अच्छे होते हैं बुरे कर्मों के बुरे फल। सात्विक कर्म सुखदायी तामस दुःखदायी, परन्तु किस कर्म का क्या फल होगा:—इस प्रकार का विवरण नहीं दिया जा सकता है। दार्शनिक ऋषियो ने इस विषय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को आयुर्विज्ञान वह कर छोड़ा है।

अस्तु ! यह सुतराम् गृाह्य है कि किये पाप का फल भोगना अवश्य पड़ेगा। परन्तु एक असाधारण अवस्था भी है जिस में पहुँचने पर कर्म का लेप नहीं रह जाता है। उस अवस्था में कर्मों का फल अंत:करण के समाप्त हो जाने से स्वयं समाप्त हो जाता है वह अवस्था ब्रह्म प्राप्ति की अवस्था है। ब्रह्मसाक्षात्कार से हृदय की गांठे खुल जाती हैं सारे संशय क्षीण हो जाते हैं और सारे कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था में कर्म फल के लिए शेष नहीं रह जाते हैं। परन्तु यह अवस्था सर्वसाधारण नहीं। यह असाधारण अवस्था है।

इस प्रकार अधिक विवेचन न कर के प्रस्तुत विषय को यहीं पर समाप्त किया जाता है और यही कहना श्रेष्ट कर है वैदिक शिक्षा में मनुष्य को बुराइयों से दूर रहने का उपदेश किया गया है। मानव का कल्याण इसी में है कि वह इन शिक्षाओं पर चले।

धर्म प्रचार में हमारी उपेक्षा

(१)

कहने को आर्य प्राय: प्रतिदिन ऊंचे स्वर से कहते हैं—कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। किन्तु यदि आर्य्य समाजिक नेता तथा जनता क्षमा करे तो हम यह कहने का साहस करते हैं कि यह वेद वाक्य उनके हृदय की ध्वनि से मेल नहीं खा रहा होता। हमारा विश्वास है कि सामान्य आर्य्य सामाजिक जनता की बात ही क्या, निन्यानवे गणमान्य आर्य्यसमाजिक प्रचारकों को कदाचित 'विश्व' का अभिप्राय भी ज्ञात नहीं। उन लोगों का विश्व वैसा ही है जैसा कि अपने ग्राम से कभी बाहिर न निकली बुढिया का विश्व होता है, जब वह किसी अनदेखी या अनसुनी बात के संबन्ध में कह उठे ऐसा तो संसार में कभी भी नहीं हुआ। उस बुढिया का का संसार तो अपना ग्राम ही है, ऐसा ही इन प्रचारकों का विश्व होता है। प्रचारकों का भी क्या अपराध ? आर्य्यसमाज के बड़े २ कर्ण-धारों के भी विचार इतने विशाल नहीं होते। इस विषय में हम केवल एक ही प्रमाण उपस्थित करना चाहते हैं।

भारतवर्ष में पारसी भी रहते हैं। इन की संख्या एक लाख से कुछ ऊपर है। भारत में आने से पूर्व यह ईरान में रहते थे। ईरान के लोगों का भारत से व्यापार के अतिरिक्त रोटी बेटी का संबन्ध भी था। प्रसिद्ध न्यायी राजा नौशीरवां (ईरान के पारसी सम्राट् की पोती का विवाह उदयपुर के एक राणा से हुआ था। पारसी लोग अग्निहोत्री हैं। इन के धर्म्म के मूल तत्त्व वैदिक धर्म्म से अधिक मिलते हैं।

अन्तिम पारसी सम्राट् यज़्दजर्द मुस्लिम आक्रमणकारियों से पराजित हुआ। उस की पराजय पर पारसियों को बलात्कार से मुस्लिम बनाया गया। जिनको अपने धर्म्म पर गहरी आस्था थी, वे अनेक स्थानों पर छिपते छिपाते अन्त को सन् ७६६ ई० में भारत में दीव नामक स्थान में पहुँचे। यहां वे २० वर्ष तक रहे। इस के पश्चात् अपने अपने महापुरोहित के आदेश गुजरातकाठियावाड़ (सौराष्ट्र) के सांजन नाम स्थान पर आए। सांजन के राजा ने इन का स्वागत किया और कहा—मेरे राज्य को अपना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

घर समझो। सांजन में बसने के पांच वर्ष पश्चात् अर्थात् ७६० ई० में पारिसियों ने वहां अपना प्रथम मन्दिर आगियारी (अग्निगृह) स्थापित किया। पारसी भारत भूमि में आ गए सन् ११०० ई० तो वे सांजन में ही रहे। तत्पश्चात वे बम्बई तथा गुजरात में धीरे धीरे फैल गए।

पारसी अतीव परिश्रमी होते हैं। भारत का वह समृद्धतम वर्ग है। धन में, ज्ञान में, विज्ञान में, शिल्प में, व्यापार में, संक्षेप में, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भारत में एक प्रकार से अग्रगण्य रहे हैं और अब भी हैं। इनकी सब से प्रशंसनीय बात यह है कि ये अपने को पूर्णतया भारतीय समझते हैं और मानते हैं, इन्होंने कभी अपने लिये पृथक् राजनैतिक अधिकार नहीं मांगे। इन की भारतीयता के संबन्ध में एक महत्वपूर्ण घटना का यहां उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। महा० मुन्शी राम जी (पश्चात् स्वर्गीय श्रद्धानन्द जी) के साला शाज़ादा श्री भक्तराम जी के साथ बम्बई में एक पारसी परिवार में ठहरे थे। महात्मा जी ने उस परिवार के मुखिया से कहा—'अपनी मातृ भाषा में कोई गीत सुनवाइए। मुखिया का संकेत पाकर एक बालिका ने गुजराती भाषा में गीत गाना आरंभ किया। महात्मा जी ने कहा यह तो गुजराती भाषा है। उस मुखिया ने कहा—'विपद् के समय, जब हमें कहीं सिर छिपाने को स्थान नहीं मिलता था, जिस भूमि ने अपनी गोद में सप्रेम स्थान दिया, वही हमारी मातृभूमि तथा उस की भाषा हमारी मातृ भाषा है।' इस से बढ़ कर उन की भारतीयता का क्या प्रमाण हो सकता है।

भारत में आकर कई पारसी मुसल्मान बन गए, कई ईसाई बने। जिस मत की रक्षा के लिये इन लोगों के पूर्वजों ने मातृ भूमि का त्याग किया। समय आने पर उन की बुद्धि ने उस का भी त्याग करा दिया। यह कैसे संभव हुआ। सम्पर्क ही से तो।

हमारा सीधा प्रश्न है कि क्या संसार भर को आर्य्य बनाने का जय घोष करने वालों ने कभी इन के साथ सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा की।

स्मरण रखना चाहिए कि पारसी यज्ञोपवीतधारी है। नित्य पांच समय अग्नि होत्र करते हैं। इन के धर्म्म का मूलग्रन्थ जन्द-अवेस्ता (छन्द-उपस्था) हमारे मतानुसार अथर्व की एक शाखा है। इन की अनेक बातें हमारे धर्म्म से मिलती हैं। इनको सरलता से आकृष्ट करने के लिए योग्य। अपने धर्म्म पर आस्थावान तथा दोनों कर्म्मों का भली भांति जानकार मनुष्य हो, तभी सफलता मिल सकती है।

प्रकृति, मनुष्य और मांसाहार

[लेखक—श्री प० सत्यानन्द शास्त्री एम० ए० एम० ओ० एल० दिल्ली]

मांसभक्षण मनुष्य स्वभाव के प्रतिकूल है, क्योंकि इस से इसकी अपनी सत्ता ही खतरे में पड़ जाती है। "मनुष्य फलाहारी जीव है यह तथ्य मनुष्य का मांसाहारी प्राणियों से मुकाबिला किया जाने पर तुरन्त ही भासने लगता है। मनुष्य की बाह्य आकृति दांत तथा आभ्यन्तरिक रचना मांसाहारी प्राणियों के से नहीं। इस के विपरीत यदि मनुष्य का Anth-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ropiod Ape (जो कि एक प्रकार का बन्दर है और सुमात्रा और बोर्न्यू में पाया जाता है) से मुकाबिला किया जाए तो उपरिलिखित सारी बातों में दोनों ही आपस में बहुत अधिक मिलते हैं। याद रहे कि Anthropiod Ape मांस के समीप तक भी नहीं जाता। उस की खुराक फल, अनाज और अखरोट ही हैं। "इस से स्पष्ट ही पता लगता है कि प्रकृति ने मनुष्य को मांस भोजी नहीं बनाया।"

जितने भी मांसभोजी प्राणी हैं वे जब पानी पीने लगते हैं तो गाए और भैंस जो कि मांस सर्वथा नहीं खातीं, की भान्ति जीभ लगा कर नहीं पी सकते। उन्हें पानी पीने में भी अपनी जिह्वा को प्रयोग में लाना पड़ता है। वे सारे ही जिह्वा को मोड़ कर पानी उस में भरते हैं और फिर उसे मुंह के अन्दर ले जाते हैं। यह क्रिया वे इतनी शीघ्रता से करते हैं कि उन के पानी पीने के समय जिह्वा की तीव्र गति से "लप लप" की आवाज आने लगती है। परन्तु मनुष्य का पानी पीने का ढंग निराभिषभोजी प्राणियों का सा है। मनुष्य डीक लगा कर पानी पीता है और शब्द तनिक भी नहीं करता। इस से स्पष्ट है कि मनुष्य मांसाहारी नहीं बनाया गया।

मांसाहारी जानवरों के हाथों के नाखून बहुत तेज और लम्बे होते हैं। प्रकृति ने ये इस लिए बनाए हैं ताकि मांस काटने इत्यादि में काम आ सकें। परन्तु मनुष्य के हाथ सर्वथा ही भिन्न हैं। इन की बनावट बन्दर के हाथों की सी है जो कि मांस के समीप तक नहीं जाता। अतः मानवीय हाथों की बनावट भी मनुष्य को निराभिषभोजी ही सिद्ध करती है।

मांस जब पेट में जाता है तो शीघ्र ही विश्लिष्ट हो कर सड़ांद मारने लगता है। यही तो कारण है कि मांसाहारी प्राणियों की बड़ी आन्त प्रकृति ने लम्बी नहीं बनाई, ताकि मल को उन के पेट में अधिक देर तक रुकना न पड़े। परन्तु मनुष्य के पेट की बनावट तो इस के सर्वथा विपरीत है। यहां लम्बी आन्त प्रायः मनुष्य की अपनी लम्बाई से बारह गुणी बड़ी होती है। फिर इस के पश्चात् बड़ी आन्त आरम्भ होती है। इन आन्तों की इतनी लम्बाई ही पुकार पुकार कर कह रही है कि मनुष्य मांसाहारी नहीं बनाया गया। फल, अनाज और कन्द मूल जिनके विश्लिष्ट होने में देर लगती है, वास्तव में इन की खुराक हैं।

मांसाहारी प्राणियों के दांत बड़े तेज और नोकीले होते हैं। यदि ये ऐसे न हों तो मांस काटा ही न जा सके परन्तु मनुष्य के दांत तो इतने तेज नहीं होते। यह बात भी सिद्ध करती है कि मनुष्य मांसाहारी नहीं बनाया गया।

मांस पेट में जाकर अधिक तेजाबी मादा पैदा करता है। यही कारण है कि मांसाहारी जानवरों का थूक तेजाबी प्रकृति का होता। परन्तु इस के विपरीत मनुष्य का थूक एलकली मायल (Alkaline) है। यह बात भी सिद्ध करती है कि मनुष्य को प्रकृति ने मांसाहारी नहीं बनाया। अन्यथा उस के थूक में तेजाबी तत्त्व का बाहुल्य क्यों नहीं पैदा किया है।

इत्यादि कारण स्पष्ट बता रहे हैं कि प्रकृति ने मनुष्य को मांस खाने के लिए नहीं बनाया, फिर भी जो लोग मांसा हार को अपने कलचर्ड (Cultured) संस्कृत होने में सबूत के स्थान पर पेश करें उन की अकल को क्या कहा जाए ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादकीय

पापिस्थान के कानून मन्त्री श्रीमण्डल का त्याग पत्र

हम आरम्भ से मानते और जानते रहे हैं कि भारत का विभाजन धर्म्म के आधार पर करके पापिस्थान में हिन्दुओं को वहां रहने की प्रेरणा करना उन को मुसलमान बनने अथवा मृत्यु के मुख में जाने की प्रेरणा करना है। किन्तु भारत के नवस्थापित राज्यशासन में किसी प्रकार का विघ्न न हो तथा यह देख कर कि पापिस्थान से खदेड़े जा रहे हिन्दुओं को भारत सरकार लाने का प्रबन्ध तथा बसाने का आश्वासन दे रही है, हम मौन से रहे। समय २ पर विस्थपितों की विषम दशा हमें विह्वल कर कर देती रही, हम ने समाचार पत्रों पर निर्भर न रह कर पूना, बम्बई जोधपुर, जबलपुर, कलकत्ता तक भारत भ्रमण कर अपनी आंखों से विस्थापितों की दुर्दशा को देखा है। भारत सरकार ने विस्थापितों के लिये सर्वथा कुछ नहीं किया यह कहना तो सर्वथा मिथ्या है किन्तु जो कुछ किया है, उस को समझाने के लिये हम एक घटना का आश्रय लेते हैं। कई वर्ष पहले की बात जब अभी भारत विभाजन की कल्पना भी उत्पन्न नहीं हुई थी, तब हम किसी कार्य्यवश जेहलम ज़िला के पिंडदादनखां नामक उपनगर में गए। वहां से जब वापस आने लगे तब हमरा साथ एक मुससमान नौजवान से हो गया जो पंजाब ग्राम सुधार विभाग में कार्य्य करता था। वह बहुत सहृदय एवं विनीत स्पष्ट वक्ता था। हमने उस से पूछा, क्यों भाई सरकार के द्वारा हो रहे ग्राम सुधार संबन्धी व्यय होने वाले धन में से ग्रामीणों पर कितना व्यय होता है? उस ने कहा—स्वामी जी! रुपये में से एक पाई से कुछ थोड़ा सा कम। हम ने पुनः पूछा—शेष कहां जाता है। उस ने हंसते हुए अपने पेट पर हाथ फेरते कहा—इस पर।

ठीक यही हमारे पुनः स्थापित विभाग की है।

वह युवक तो ग्रामीणों से कुछ सहानुभूति भी रखता था, किन्तु नेहरू सरकार द्वारा पुनः स्थापन विभाग के कर्म्मचारी तो विस्थापितों से किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं रखते, प्रत्युत अनेक ऐसे हैं जिन्हें उन से घृणा है ऐसी दशा में विस्थापितों की स्थापना क्या हो सकती है। इस पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। नेहरू सरकार पूर्व बंगाल के पीड़तों को लेने और बसाने को तो तैय्यार नहीं किन्तु पापिस्थान से वापस आने के अभिलाषी मुसलमानों को वापस बुलाने तथा बसाने का प्रबन्ध बहुत तत्परता से कर रही है। और यह सब कुछ किया जा रहा है असांप्रदायिकता seculresm के नाम पर। हम ने असांप्रदायिकता का अर्थ समझा है किसी मत विशेष का पक्षपात न करना। किन्तु हमारी सरकार के कोष में इस का अर्थ कुछ और है।

हम जब विस्थापितों के संबन्ध में कहते हैं तो साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित हो कर नहीं वरन् विशुद्ध मानवता की भावना से उद्वेलित हो कर नेहरू जी बार २ भारतीयों की देश की संकुचित सीमाओं से बाहर निकल कर मानव मात्र की समस्याओं को समझने तथा सुलझाने की प्रेरणा करते हैं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता कि उन की दृष्टि में ये मान्य नहीं हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नेहरू जी अत्यन्त सहृदय एवं सुजन हैं, अतः वे दूसरों को अपना जैसा समझते हैं। श्री मण्डल के त्याग पत्र से नेहरू जी को समझना चाहिए कि वायु का प्रवाह किस ओर है। अब भी समय है कि स्थिति को सम्भाल लिया जाए आप की पश्चिम बंगाल सरकार नेहरू लियाकत संधि की पूर्व बंगाल सरकार द्वारा अवहेलनाओं की सूचना छाप रही है। उसे ही मानने की कृपा कीजिये।

फ्रांसीसियों की दृष्टि में भारत—११ अक्तूबर १९५० को लखनऊ विश्व विद्यालय की फ्रेंच सभा में भाषण देते हुए, Pacific Retations Conference प्रशान्त सम्पर्क सम्मेलन में भाग लेने वाले फ्रांसीसी प्रतिनिधि मण्डल के नेता श्री लेवी ने कहा कि फ्रांस में हम लोग इस भारत देश को 'भारत माता' नाम से पुकारते हैं। यह आप की तो माता है ही किन्तु कई एक दृष्टियों से यह समस्त संसार की माता है।

उन्होंने अपने व्याख्यान में यह भी कहा—फ्रांस में ऐसे कई पुस्तकालय हैं जो पूर्वीय देशों के अध्ययन के लक्ष्य से ही स्थापित किये गए हैं। इन में से एक पुस्तकालय में तीन लाख पुस्तकें हैं।

उन्होंने यह भी कहा कि फ्रांस के लोग भारत के प्राचीन ग्रन्थों तथा प्राचीन धर्म्म में विशेष रुचि रखते हैं।

आर्य समाज, सनातन धर्म्म सभा एवं जैन मत के लिए एक आवश्यक कार्य्य—भारत सरकार ने बन्दरों एवं नील गायों को मरवाने की योजना प्रस्तुत की है। आर्य्य संस्कृति का आधार, गांधी भक्तों के अनुसार अहिंसा है, किन्तु गांधी भक्त सरकार गांधी जी के सिद्धान्तों की अवहेलना कर के इन निरीह पशुओं की हत्या करने पर तैय्यार है। कांग्रेसी तो चुप हैं ही क्योंकि वे नियन्त्रण के मिथ्या मोह से मुग्ध हैं किन्तु हमें आश्चर्य्य है कि 'अहिंसा परमो धर्म्मः' का घोष करने वाले जैन तथा पौराणिक भी चुप हैं। आर्य्य समाजी जो सब से अधिक पशु हत्या के विरोधी हैं, क्यों मौन हैं ? हमारे विचार में सभी अहिंसा वादियों को मिल कर प्रबल आन्दोलन करना चाहिए जिस से सरकार इस हिंसक योजना को समाप्त कर दें।

निस्सन्देह इन पशुओं से कुछ हानियां भी होती हैं, किन्तु इन से कोई लाभ नहीं, ऐसा मानना मूर्खता पूर्ण अहंकार का परिचय देना है।

कई वर्षों की बात है अमरीका के संयुक्त राज्य U. S. A. की एक रियासत से सांपों का बीज नाश कर दिया गया। उस के पश्चात् जो अन्न वहां के खेतों में उपजा, वह इतना विषाक्त था कि उसे खा कर अनेक कराल काल की गाल में अकाल में ही बिला गए, कई अतिसार का शिकार हो गए। कोई भी ऐसा मनुष्य न रहा जिस ने उस अन्न का सेवन किया और उसे कोई कष्ट न हुआ। सरकार द्वारा जांच करने वाले (आयोगे) कमीशन ने कहा—सर्पों को यहां बसाया जाए। तदनुसार सर्प लाए। उस के पश्चात् जो अन्न हुआ, उस से खाने वालों को कोई विकार न हुआ। इस के पश्चात् वहां से पुनः सर्पों का निर्वासन किया गया, परिणाम पुनः विषैले अन्न के रूप में हुआ। इस पर पुनः सर्प वहां बसाए गए और पुनः अन्न निर्दोष निर्विष उत्पन्न हुआ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस से सिद्ध हुआ कि सर्प ऐसा विषैला प्राणी भी मनुष्य के लिए उपयोगी है। यजुर्वेद के २४ वें अध्याय में विविध प्राणियों के उपयोग एवं लाभ बताए गए हैं। उसी के आधार पर अथवा पाश्चात्य वैज्ञानिक पद्धति से यह जांच करना चाहिए कि इन पशुओं-बन्दर तथा नील गाय-का कोई उपयोग हैं या नहीं।

इस समय का मनुष्य भूखा बाघ हो रहा हैं वह समझता है कि जो जन्तु इस की उदरदरी की पूर्त्ति नहीं कर सकता, उस का कोई उपयोग नहीं। उपयोगी होने पर वह पेट रूपी कब्र में जाए, अपने प्राण गंवाए; अनुपयोगी होने की दशा में भी उसे जीने का कोई अधिकार नहीं, यह विचित्र तर्क है।

सर्पों को दूध पिलाने वाले सनातनी, खटमलों तक की, रक्षा में धन व्यय करने वाले जैन तथा प्राणिवध के महा विरोधी आर्य्य समाजियों को संमिलित प्रयत्न द्वारा ऐसा उद्योग करना चाहिये कि जिस से इन निरीह प्राणियों के प्राणों की रक्षा हो सके।

हमारे विचार में सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा को यह कार्य्य अपने हाथ में लेना चाहिए। इस में सभी अहिंसा वादियों का यह योग प्राप्त करना चाहिए।

भोजन सम्बन्धी विकट समस्या और उसका बेहूदा समाधान—

समस्त जगत् की भांति भारतमें भी भोजन की समस्या बहुत विकट हो रही है। अन्न की उपज की न्यूनता जहां इसका एक कारण है, वहां अनुचित लाभ का लोभी वणिक भी एक कारण है। इस का एक उपाय इन लाभ लोभी प्राणियों को कठोर दण्ड देना है। हमें प्रसन्नता है कि भारत में इसका उपक्रम हो चुका है। उस में देखना यह है कि वास्तविक अपराधियों को दण्ड मिलता है अथवा इस में भी निरपराध दण्डित होते हैं। दूसरा उपाय अधिक अन्न उपजाने का प्रयत्न है। सरकार पुनः पुनः इस के लिए विज्ञप्तियां निकाल कर देश के कृषकों को प्रेरणा दे रही है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि किसानों ने उस ओर उचित ध्यान नहीं दिया। इस वर्ष तो कहा नहीं जा सकता क्योंकि प्रायः समस्त भारत में जल विप्लव ने अन्न क्षेत्रों को बहुत अधिक हानि पहुँचाई है।

कुछ लोगों ने इस त्रुटी को दूर करने का एक अन्य उपाय सुझाया है। वह यह है कि समस्त संसार में अन्न का व्यवहार कम होता है उस की पूर्त्ति वे मांस, मछली, अंडा, दूध, मक्खन, फल आदि से करते हैं। भारतवासी अन्न का अधिक आहार व्यवहार करते हैं, इस कारण इस अन्न की कमी के समय भारतीय बहुत संकट में हैं।

यह उपाय कितना बेहूदा है, इस के कहने की विशेष आवश्यकता नहीं है किन्तु यह अव्यवहारिक भी है। धर्म्म दृष्टि को छोड़ कर केवल विशुद्ध अर्थ दृष्टि से देखा जाए तो भी यह निस्सार है। सोचिए यदि भारतीय अपने भोजन में मांस को सम्मिलित कर लें अथवा मांसाहारी भारतीय मांस को व्यंजन के स्थान में प्रधान भोजन बना लें तो दूध देने वाले पशुओं की न्यूनता के साथ घृत, मक्खन की कमी से मांसाहारी मांस को रुचि से न खा सकेंगे। पशुओं की न्यूनता से दूध आदि की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और भी न्यूनता हो जाएगी । फिर इस समय भी अन्न की अपेक्षा ये पदार्थ अधिक महंगे हैं। दरिद्र भारतीय इन को खरीदने का सामर्थ्य नहीं रखता और मांसाहार के बढ़ने से पशुओं की न्यूनता और बढ़ जाने से इन पदार्थों की महंगाई और बढ़ जाएगी । अतः अन्न अधिक उपजाने का प्रयत्न होना चाहिये।

अधिक अन्न उपजाओ—भारत के छोटे बड़े कर्णधार सभी एक स्वर में पुकार रहे हैं कि—अधिक अन्न उपजाओ।' किन्तु सफलता इस में नहीं मिल रही है । हमारा विचार है मिलेगी भी नहीं। किसी ने सरकार के कान में डाल दिया कि बहुत से बन बेकार पड़े हैं, उन को सफा कराके खेती करानी चाहिये । उस कर्णे जय को इतना ज्ञान भी नहीं है कि जंगलों के कट जाने से वृष्टि में कमी हो जाएगी, और उस का परिणाम अन्न की न्यूनता के रूप में सामने आएगा । आवश्यकता इस बात की है कि भूमि की उपज शक्ति को वैज्ञानिक पद्धति से बढ़ाया जाए । इस समय देश में ईख बहुत अधिक बोया जाता है। उस में कमी करनी चाहिये । चीनी, खांड, बूरा आदि आवश्यक होते हुए भी अनिवार्य्य नहीं हैं । देहातियों में इन पदार्थों के सेवन का इतना चलन नहीं है जितना विलासी नागरिक इस का व्यवहार करते हैं। नागरिकों के विलास के लिए भारत के ग्रामीणों की हत्या का कोई लाभ नहीं है।

वृक्ष सप्ताह—पिछले दिनों में वृक्षसप्ताह मनाया गया था और बहुत धूमधाम से । अब सर्वत्र उस विषय में शान्ति है। हमें इस विषय में एक बहुत बड़े अधिकारी से बातचीत करने का अवसर मिला । वह हमारे साथ इस बात में सहमत हो गया कि यह प्रयत्न निष्फल जाएगा, यतः यह कार्य उचित काल से एक मास पूर्व आरम्भ किया गया है, तथा उसकी देखरेख एवं सिंचाई के लिए कोई व्यवस्थित प्रबन्ध करने का प्रयत्न नहीं किया गया है । और न हो सकता है । केवल योजना बना कर उस के सम्बन्ध में उत्तेजनात्मक व्याख्यानादि के द्वारा जनता की भावुकता को आन्दोलित करने से कोई हित सिद्ध नहीं हो सकता । एक ओर जंगल के जंगल काट कर वृक्षों का नाश कराया जा रहा है दूसरी ओर वृक्ष लगाए जा रहे हैं। इस विरोध का अर्थ ?

टण्डन जी की बहक

हम अब तक यही सुनते आए हैं कि धर्म्मानुयायी ही मतान्ध होते हैं परन्तु राष्ट्रियमहासभा के सभापति श्री टण्डनजी के वर्त्तमान में दिए गए कई भाषणों से यह प्रतीत होने लगा है कि राष्ट्रियता के उन्माद से भी मनुष्य मतान्ध हो सकता है । लगभग तीसवर्षों से भारतवर्ष की पुण्यभूमि में धर्म्म के स्थान पर राष्ट्रियता का प्रचार होना प्रारम्भ हुआ, इस लिए जो सज्जन भी अपने आप को संसार की दृष्टि में सच्चे राष्ट्रिय प्रमाणित करना चाहते हैं वे सभी अपने अपने ढंग से धर्म्म तथा परमात्मा को धत्ता बताकर साम्प्रदायिकता के कलंक से बचने का प्रयत्न करते हैं।

कई वर्षों से श्री टण्डन जी भारत की राष्ट्रियता को यहां की संस्कृति पर अवलम्बित करना चाहते हैं और इस वाद का नाद उन्होंने बहुत प्रबल रूप से गुंजाया है । देश में रहने वाले सभी हिन्दू उनके भाषणों को सुन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर प्रसन्न होते रहे हैं और इस वर्ष उनका कांग्रेस के अध्यक्षपद पर आसीन होना इस अकेली संस्कृति के प्रश्न पर अधिक निर्भर हो रहा है, तभी तो हिन्दुओं की समस्त संस्थाओं (आर्य्य समाज को छोड़ कर) ने उनका अभिनन्दन किया है और बहुत प्रसन्नता प्रकट की है। परन्तु श्री टण्डन जी ने सभापति बन जाने के तुरन्त पश्चात् ही एक नया पैंतरा बदला है और यह कहना प्रारम्भ किया है कि हम किसी राजनैतिक प्रश्न का भी तर्क के अति- रिक्त किसी धार्मिक या ईश्वरोक्त कही जाने वाले पुस्तक के आधार पर निश्चय नहीं करेंगे। जहां तक कि देश की सामान्य तथा सामूहिक राजनीति का सम्बन्ध है वहां तक हम टण्डन जी का समर्थन करते हैं, विशेष कर ऐसी अव- स्था में जब कि हमारे देश में नाना धर्म्म और उनकी धार्मिक पुस्तकें विद्यमान हैं। हमारे वैदिक साहित्य में तर्क को ऋषि [तेभ्यस्तर्कमृषिं प्रायच्छन्—' नि०] की पदवी दी गई है, अतः हम वैदिकों के लिए यह कोई नवीन वा अचंभे की बात नहीं है, परन्तु जब श्री टण्डन जी सभी धार्मिक पुस्तकों को भ्रान्ति पूर्ण समझते हैं और उस विचारधारा का प्रचार वे कांग्रेस मंच से एक दायित्वपूर्ण स्थिति में होकर करते हैं तो हमें बड़ा दुःख होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री टण्डन जी ने राष्ट्रियता के वेष में अपने राधा स्वामी मत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया है। किसी मत में विश्वास रखो तथा उस का प्रचार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं आपत्ति हमें केवल यह है कि श्री टंडन जी ने अपने उच्चतम पद का दुरुपयोग किया है भारतवर्ष के समस्त सनातन धर्मी तथा आर्य्यसमाजी जिन का आजिक विश्वास वेदों की अपौरुषेयता पर है, कभी भी ऐसी अलजलूल तथा तर्क शून्य घोषणाओं को सहन नहीं कर सकते। यदि टंडन जी का विश्वास ईश्वर पर है तो कोई आगामी कांग्रेस का नास्तिक अनी- श्वर वादी अध्यक्ष ईश्वर का भी इस प्रकार हम से वहिष्कार करने की चेष्टा कर सकता है जिस प्रकार की टंडन जी धार्मिक पुस्तकों का वहिष्कार हम में कराना चाहते हैं। यदि टंडन जी में कोई साहस है तो हम उन को इस बात का निमन्त्रण देते हैं कि वे वेद की अपौरुषेयता एवं तर्कसंगत होने के सबन्ध में हम से शास्त्रार्थ एवं शास्त्रार्थ कर लें।

राज नीति तथा राष्ट्रियता तो इतने निम्नसार की वस्तुएं हैं जो हमारे वैदिक आहार विहार से संबन्ध रखती हैं। इन छोटी से वस्तुओं की रक्षा के लिये इतनी बड़ी दार्शनिक पहेली का प्रयोग करना कोई समझदारी की बात नहीं है। जिस प्रकार टंडन जी को अपने धार्मिक तथा राजनैतिक विचार प्रिय हैं उतने ही प्रिय अन्य लोगों को उन के विचार हो सकते हैं, अतः ऐसी बहक की बातें टंडन की जैसे गंभीर और सुलझे हुए व्यक्ति को शोभा नहीं देती। वे यह न सथझें कि इस पत्थर से उन्होंने केवल मुसलमान भाइयों के दिल को दुःखाया है परन्तु सभी उन आस्तिकों के हृदयों पर आघात किया है जो किसी पुस्तक को धार्मिक अथवा ईश्वर कृत समझते हैं। वास्तव में श्री टंडन जी राधास्वामी मत में विश्वास रखते हैं, इस मत में ईश्वर का जो स्वरूप वर्णन किया जाता है, वह इतना कौतुहलपूर्ण है जो किसी तार्किक की बुद्धि में नहीं समा सकता और वहां पर श्री टंडन जी का एक मात्र हथियार तर्क बेचारा कुण्ठित हो कर धराामी होस्वास्जाता है। क्या श्री में टंडन जी अपने सहधर्मियों को भी केवल तर्क के अनुसार धार्मिक समस्याओं का सभाधान करने का उपदेश करने की कृपा करें गे।

अन्त में हमारा श्री टंडन जी से अनुरोध है कि वे राजनैतिक क्षेत्र में अपने आप को सीमित रखें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासिवानप्रस्थमण्डल (हरद्वार) ज्वालापुर

का

शारदीय यज्ञ महोत्सव

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थमण्डल की ओर से वानप्रस्थाश्रम में प्रति वर्ष दो बार यज्ञ तथा कथा हुआ करती हैं। १२.१०.५० से २०.१०.५० तक वानप्रस्थाश्रम में होने वाला यज्ञ मण्डल के अध्यक्ष जी के अस्वस्थ होने के कारण स्थगित करना पड़ा था। यज्ञप्रेमी सत्संगियों को सहर्ष सूचित किया जाता है कि उक्त यज्ञ १०.१२.५० (२५ मार्ग.. पं सं. २००७ वि.) रविवार से आरम्भ हो कर १७.१२.५० (३ पौष सं. २००७ वि.) रविवार तक होगा। यज्ञ प्रतिदिन प्रातःकाल हुआ करेगा। यज्ञ के पश्चात् कथा भी हुआ करेगी। सायंकाल को व्याख्यान हुआ करेगा। इस यज्ञ में भाग लेने के लिये श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी, अध्यक्ष दयानन्दमठ, दीनानगर। स्वामी अभेदानन्द जी बिहार, श्रीस्वामी आत्मानन्द जी, अध्यक्ष, वैदिक साधन आश्रम रायपुर (जगाधरी) आदि संन्यासी महानुभाव तथा अनेक वानप्रस्थी पधारने का वचन दे चुके हैं। सत्संगियों के लिये यह विशेष उपयोगी अवसर है। इतने तपस्वी महानुभाव कदाचित् ही एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। अध्यात्मजिज्ञासुओं, वेदप्रेमियों, यज्ञभक्तों के लिए यह स्वर्ण अवसर है।

आइए, इस ज्ञानगङ्गा में नहाइए। चूंकि हरद्वार में उतने दिनों शीत कुछ अधिक होता है। अतः शीत काल का उपयोगी बिस्तर तथा गर्म कपड़े अवश्य साथ लाइए।

यज्ञ प्रेमियों से अनुरोध है कि वे इस यज्ञ में अपने सामर्थ्य के अनुसार अपनी अपनी आहुति अवश्य डालें। यज्ञ के दिनों में एक विशेष लंगर भी चलता है।

जो सज्जन यज्ञ में यजमान बनना चाहें, वे मण्डल के अध्यक्ष श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी से पत्र व्यावहार करके निश्चय करलें।

ज्ञानचन्द्र आर्य्य सेवक

मन्त्री

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थमण्डल

ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद-पथ मासिक-पत्र दीवानहाल, देहली

["Regd. No. E. P. 425. रजि० सं० इ० पी०

दार्शनिक ऐतिहासिक साहित्य में क्रान्ति करने वाला ग्रन्थरत्न

सांख्यदर्शन का इतिहास

वैदिक दर्शनों में सांख्यदर्शन सबसे पुराना माना जाता है। आर्ष वाङ्मय में इसके रचयिता कपिल मुनि को आदि विद्वान् First philosopher कहा गया है। यूरोप के इतिहास खोजी विद्वानों ने इस दर्शन तथा इसके कर्त्ता के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की भ्रान्तियां फैलाई हैं। भारतीय दार्शनिक विद्वानों में भी इस दर्शन के सम्बन्ध में नाना भ्रम हैं। विरजानन्द वैदिक संस्थान के प्रधान अनुसन्धान विद्वान् श्रीमान् पं० उदयवीर शास्त्री जी विद्याभास्कर ने वर्षों परिश्रम करके इस शास्त्र के सम्बन्ध में खोज का कार्य्य कर इस विशाल इतिहास ग्रन्थ को लिखा है। जिसमें कपिल मुनि तथा अन्य पुरातन सांख्याचार्यों यथा आसुरि, पञ्चशिख, वाचस्पति आदि के इतिहास के साथ अर्वाचीन सांख्याचार्यों का इतिहास भी दिया है। शास्त्रीय पद्धति से अनुसन्धान करके इतिहास क्रम से सिद्ध कर दिखाया गया है कि सांख्यदर्शन अत्यन्त पुराना है। योरुपीय विद्वानों तथा उनके शिष्यों प्रशिष्यों का यह मत है कि सांख्यदर्शन ईसा की चौदहवीं शती का बना हुआ है। इस मत का योरुपीय पद्धति से ही खण्डन करके इसकी प्राचीनता सिद्ध की गई है। इस दर्शन के सम्बन्ध में यह भी एक अमूलक धारणा फैली हुई है कि श्री शङ्कराचार्य्य जी ने इस शास्त्र का कोई उद्धरण नहीं दिया। योग्य लेखक ने शंकराचार्य्य के वेदान्तदर्शनभाष्य में सांख्यसूत्र के उद्धरण दिखलाकर इसकी असारता सिद्ध की है। प्रसन्नता की बात यह है कि पाश्चात्य पद्धति के ऐतिहासिक विद्वानों ने भी इस ग्रन्थ की उपादेयता, उपयोगिता तथा इसमें वर्णित परिणामों की यथार्थता को स्वीकार किया है। ग्रन्थ निर्माण में संस्थान को इतना धन व्यय करना पड़ा है कि एक प्रति पर तीस रुपयों से भी अधिक लागत बैठती है, ग्रन्थ छप चुका है। अब उसकी जिल्द बंध रही है। एक मास में पुस्तक तय्यार हो जाएगा। बहुत सुन्दर जिल्द बनाई जा रही है।

मूल्य ३०) डाक व्यय पृथक।

पुस्तक मिलने का पता—

स्वामी वेदानन्द, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

सावित्री प्रकाश

सभी वैदिकधर्म्मी, चाहे वे आर्य्यसमाजी हों या सनातनधर्म्मी, गायत्री मन्त्र की महिमा मानते हैं। इसके जप के उत्कर्ष को स्वीकार करते हैं। शास्त्रों में अर्थ ज्ञान के बिना जप करने को व्यर्थ बतलाया है। पुराणों तथा तन्त्रों तक में इस मन्त्र की महिमा गाई गई है। किन्तु अभी तक इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या कहीं से प्रकाशित नहीं हुई थी। विरजानन्द वैदिक संस्थान के संचालक स्वामी वेदानन्द तीर्थ ने वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों आदि के आधार से इसकी विस्तृत व्याख्या लिखकर इस न्यूनता की पूर्णता कर दी है। व्याख्या की उपयोगिता के लिए स्वामी जी का नाम ही पर्याप्त है। इसमें ओ३म् की व्याख्या के प्रसङ्ग में इसके परमेश्वर के निज नाम होने की सिद्धि मनोहर रीति से की गई है। एक एक पद की व्याख्या करके इसके जप की विधि बता दी गई है। इतनी उत्तम पुस्तक का मूल्य केवल १) है। डाक व्यय पृथक है।

मिलने का पता—

विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

मुद्रक:—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय पटोदी हौस दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

वेद-पथ

मासिक

❀ वैदिक आचार--विचार--व्यवहार--प्रसारक ❀

द्वितीय वर्ष } सहस्य=पौष २००७ वि० (१२६ द०)=दिसम्बर १९५० ई० } पञ्चमांक

सम्पादक—
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
सार्वदेशिक दयानन्द
संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल
ज्वालापुर, जि० सहारनपुर

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा ५≡)
वी० पी० द्वारा ५।।)
एक प्रति ।।)

जगत्गुरु महर्षि दयानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

१. श्रुतिसुधा (भगवान् की अर्चा करें)		१२१
२. योगप्रकाश (६)	स्वामी वेदानन्द	१२२
३. जीवात्मा परमात्मा का भेद	विद्या भास्कर प० उदयवीर शास्त्री जी	१२३
४. भारत फ्रांस की दृष्टि में	श्रीमान् एम० राजर लेवी	१२६
५. मानस तरंग	ब्र० भूषण चैतन्य जी	१२८
६. संगठन शक्ति	श्रीमती प्रेम सुलभावती जी	१३१
७. गांधी जी के सिद्धान्त क्या थे ?	(एक जिज्ञासु)	१३२
८. सम्पादकीय		१३५
९. मुण्डकोपनिषत्सार	स्वामी वेदानन्द	१

❀ ओ३म् ❀

वैदिक साहित्य सम्मेलन

का

द्वितीय अधिवेशन

विद्वद्वर ! सप्रश्रय नमस्ते।

आपको यह जानकर हर्ष होगा कि वैदिक सहित्य सम्मेलन का द्वितीय अधिवेशन आगामी अप्रैल मास में बिहार प्रान्त की राजधानी पटना में करने का निश्चय हुआ है। इस सम्मेलन की आवश्यकता, उपयोगिता एवं उपादेयता के सम्बन्ध में कहने की कुछ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। वैदिक सिद्धान्तों, वैदिक तत्वों का आविष्करण, स्पष्टीकरण, विवादास्पद वैदिक विषयों का निर्णय करना इसका प्रधान उद्देश्य है।

वेद के सम्बन्ध में वैयक्तिक प्रयत्न अनेक हुए हैं और वे प्रशंसाई भी हैं, किन्तु संघटित सुव्यवस्थित यत्न का सूत्रपात इस सम्मेलन द्वारा ही हुआ है।

इसका प्रथम अधिवेशन सं० २००६ में ज्वालापुर के वानप्रस्थाश्रम में हुआ था।

निम्नलिखित में किसी भी विषय पर निबन्ध लिखने की कृपा कीजिए:—

१. वेद में इतिहास। २. वेदमन्त्रसंख्याविवेचन। ३. पुनरुक्तमन्त्रविचार।

निबन्ध या उसका सार ३१ मार्च १९५१ ई० तक निम्नलिखित पते पर पहुँच जाएं तो महान् अनुग्रह होगा।

अपने अन्य परिचित वेदाभ्यासी विद्वानों तक इसकी सूचना पहुँचाने की कृपा कीजिए तथा उनके नाम तथा धाम की सूचना मुझे भी देने की कृपा कीजियेगा।

१-८-२००७ वि०

विदुषामनुचरः

स्वामी वेदानन्दतीर्थ,

अध्यक्ष,

विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर (ज़ि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

ओ३म्

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ०१।४१।४)

वेद पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

द्वितीय वर्ष — देहली — सहस्य =पौष २००७ वि० (१२६ द०)= दिसम्बर १६५० ई० — पञ्चमाङ्क

ओ३म्

श्रुति सुधा

भगवान् की अर्चा कर

ओ३म् । प्र सुश्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ अ० २० ११। ३

(सुश्रुतम्) सुप्रसिद्ध (सुराधसम्) अत्यन्त पूजनीय, उत्तम रीति से सिद्धिदाता (शक्रम्) शक्तिशाली परमात्मा को (अभिष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिए (अर्च) पूज। (यः) जो परमात्मा (सुन्वते) परिश्रमी (स्तुवते) भक्त के लिए (काम्यम्) कमनीय, इष्ट, अभिलषित (वसु) धन (सहस्रेण+इव) मानो सहस्रों गुण (मंहते) बढ़ा देता है, पूजित कर देता है, देता है।

मनुष्यों को जीवन निर्वाह के लिए, बसने के लिए धन-धान्य की आवश्यकता पड़ती है, वैदिक परिभाषा में उसे वसु कहते हैं । मनुष्य उस की प्राप्ति के लिए इधर-उधर भटकता है । वेद का आदेश है। धन प्राप्ति अथवा अन्य अभीष्टों की प्राप्ति के लिए भगवान् का पूजन करना चाहिए । उस से बढ़ कर कार्य्य साधक अन्य कोई नहीं है । वह इतना बड़ा दाता है कि एक मांगने पर सहस्रों देता है । उसके देने के सहस्रों साधन हैं। अ० २०।११। में भगवान् को मघवा तथा पुरुवसुः=पूजित धन वाला तथा अनन्त वाला कहा है और वहां यह भी कहा है कि वह सहस्रेणेव शिक्षति=सहस्र उपायों से सिखाता है । तात्पर्य्य यह कि जिस किसी वस्तु की आवश्यकता हो। भगवान् से मांगो, वह देगा, तथा प्राप्ति के साधन भी बनाएगा ।

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

योग प्रकाश

[स्वामी वेदानन्द तीर्थ, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान]

(६)

यम

जैसा कि गत प्रकरण में बताया जा चुका है अष्टांग योग का प्रथम अङ्ग यम है। यम का अर्थ है रोकना। नियम, संयम, उपयम आदि शब्द इस यम शब्द के भाईबन्द हैं। इन सब में रोकने का, नियमण का भाव पाया जाता है। पतञ्जलि जी तथा योगिसम्प्रदाय में यह विशेष परिभाषा है जैसा कि योगिराज पतञ्जलि जी ने लिखा है—तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्या—परिग्रहा यमाः (२।)=उन आठ अंग में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य तथा अपरिग्रह यम हैं। इन पांच यमों में बहुमत निषेध का ही प्रतीत होता है। अहिंसा=न हिंसा, अस्तेय=न स्तेय तथा अपरिग्रह=न परिग्रह। ये तीन तो स्पष्ट निषेधपरक ही प्रतीत होते हैं। सत्य का अर्थ यदि मिथ्या न बोलना मान लिया जाए और ब्रह्मचर्य्य का अमैथुन अर्थ माना जाए तो यम निषेधपरक हो जाएंगे।

बात सीधी सी है कि जब किसी को कोई उपदेश किया जाता है तो उस को निषेध्य बताए बिना सफलता नहीं हो सकती। अतः आचार्य ने यम को इस रूप में हमारे सामने रखा है जिस से वे आपाततः निषेधात्मक प्रतीत हों। इस का विशेष प्रयोजन है। जीवन में क्रिया स्वाभाविक है। हिताहित का ज्ञान न रखने वाला बालक भी क्रिया करता है। जब वह सर्वथा स्वच्छन्द छोड़ दिया जाता है तब अनेक बार वह बड़ी हानि उठाता है। उस से केवल वह स्वयं ही दुःखित नहीं होता, वरन् अपने मा[ता] आदि बन्धुओं के दुःख का निमित्त भी [बनता] है। इसी लिए उस के माता पिता आदि [इतना] नियन्त्रण रखते हैं कि कहीं यह बाल[क] ऐसी गति न कर बैठे, जिससे इसे दुःख [हो और] परिणामस्वरूप उसके साथ संबन्ध जनों [को] दुःख का भागी बनना पड़े।

यहां हम एक आवश्यक बात की ओर [पाठकों] का ध्यान खींचना चाहते हैं कि इस भूल में [...] कि भूल का परिणाम भूल करने वा[ले तक] सीमित रहता है, वरन् उसका क्षेत्र विस्तृ[त] है। कदाचित् इसी लिए हमारे पूर्वज कह[ते हैं] एकः कुरुते पापानि फलं भुंक्ते महाजनः=[एक] करता है। किन्तु फल बहुतों को भोगना [पड़ता] है। जैसे देश विभाजन की भूल तो एकाध [ने की] किन्तु फल लाखों करोड़ों को भोगना [पड़] रहा है।

योगमार्ग पर चलने का अभिला[षी] बालक ही है। जो जिस विषय को नहीं [जानता] वह उस विषय में बालक है, ऐसा सभी [शास्त्र]कार मानते हैं। माता पिता आदि बन्धु[ओं के] समान सुहृद् होकर योगाचार्य्य सर्वप्रथम [उसे] योग्य व्यवहारों का निर्देश करते हैं।

यमों पर तनिक सी दृष्टि डालने से [उनकी] सामाजिकता स्पष्ट दीखती है। जिन [के] फल वैयक्तिक सीमा को लांघ जाए, वे स[...]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहे जाते हैं। हिंसा आदि कर्त्ता के भिन्न दूसरे व्यक्ति के अभाव में किये ही नहीं जा सकते, अतः ये सामाजिक कर्म हैं।

इन कामों की सामाजिकता तथा जीवन के लिए परम उपादेयता का विचार करके मनु जी आदेश किया कि:—

यमान् सेवेत सततं न केवलान् नियमान् बुधः ज्ञानी केवल नियमों का ही सेवन न करे वरन यमों का निरन्तर सेवन करे क्योंकि यमों का सेवन न करने वाला पतित हो जाता है।

ऊपर के विवरण से यह न समझा जाए कि यम केवल निषेधात्मक ही हैं, वरन् यह विधि-स्वरूप भी हैं। देखिए, दूसरे से वैर न रखना, द्वेषादि न करना ही पर्य्याप्त नहीं है। इससे उदासीनता तो हो सकती है किन्तु समासीनता (एक साथ रहने की भावना, समता से रहने की भावना) नहीं हो सकती। उसके अभाव से मनुष्य में मनुष्यता का पूर्णतया स्फुटन नहीं हो पाता। अहिंसा का दूसरा पार्श्व प्रीति एवं मधुरता है। इसी प्रकार सत्य का स्वरूप केवल मिथ्या न बोलना ही नहीं है, वरन् वस्तुस्थिति का यथार्थ रूप में प्रकट करना भी आवश्यक है। इसी प्रकार शेष यमों के विषय में भी समझ लेना चाहिए यथा स्थान उनका विशद वर्णन किया जाएगा।

यमों के इस स्वरूप को हृदयङ्गम किये विना योगमार्ग पर चलना असंभव है।

अब क्रमशः उनके स्वरूप का विशद विवेचन करते हैं।

जीवात्मा–परमात्मा का भेद
(गीता के अनुसार)

[विद्या भास्कर श्री पं० उदय वीर जी शास्त्री]

यह एक विचार है, कि आत्मा [जीव-पुरुष] का अस्तित्व परमात्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं। साक्षात् परमात्मा ही स्वयं आत्म रूप में उपलब्ध होता है। कहा जाता है, कि गीता में भी इसी अर्थ का प्रतिपादन किया गया है। परन्तु इस विषय पर गीता क्या प्रकाश डालती है, यह इस लेख में प्रकट करने का यत्न किया जायेगा, गीता का विचार करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये, कि कृष्ण ने अपने आप को परमात्मा का प्रतिनिधि मानकर अनेक बचन गीता में कहे हैं वहां कुछ उक्तियों में इतना एकभाव या मिश्रण हो गया है, कि उनमें कृष्ण के वास्तविक जीवभाव और प्रातिनिधिक परमात्मभाव वा विवेचन कठिन प्रतीत होता है, फिर भी विवेचक अपने ध्यान को वास्तविकता की ओर से न हटाये, तो इसके समझने में अधिक कष्ट नहीं होता। ऐसी भावना के साथ गीता का विचार करने पर आत्मा-परमात्मा के आपाततः प्रतीयमान अभेद सम्बन्धी प्रसंग अधिक स्पष्ट हो जाते हैं।

गीता की ऐसी उक्तियों से जहां यह प्रकट किया गया है, कि आत्मा कर्म-बन्धन में आता, तथा देहादि धारण कर सांसारिक भोगों को भोगता है, और परमात्मा इन सब स्थितियों से परे है—यह ध्वनित हो जाता है, कि इन दोनों का परस्पर भेद आवश्यक है, तथापि गीता इस विषय का स्पष्ट शब्दों में भी प्रतिपादन करती है,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक भावना आदि से अन्त तक गीता में समान रूप से उपलब्ध होती है, कि अविवेकी आत्मा विभिन्न उपायों द्वारा, ज्ञानस्वरूप त्रिगुणातीत ब्रह्म [परमात्मा] की स्थिति को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न शील रहता है। इसमें पहले का प्रतीक अर्जुन और दूसरे का कृष्ण निर्दिष्ट किया गया है। इस आधार पर जितने भी गीता में वर्णन है। सब आत्मा और परमात्मा के स्पष्ट भेद का निर्देश करते हैं।

गीता के द्वितीय अध्याय का वर्णन, जीवात्मा की विवेक और अविवेक रूप दोनों अवस्थाओं को स्पष्ट करता है। अध्याय के अन्त में लिखा है, कि संसारी जीवों की साधारण अवस्था से बाहर निकल कर विवेक के द्वारा जो पुरुष अध्यात्म जगत् में जागरण शील होता है, स्पृहा रहित हो सब कामनाओं को एवं अहंकार-ममता को छोड़ देता है, वही स्थिति प्रज्ञ होकर शान्ति को प्राप्त करता है। यह शान्त अवस्था ऐसी है जिसकी ब्रह्म सम्बन्धी स्थिति से तुलना की जा सकती है। इस अवस्था को प्राप्त होकर जीव पुरुष अविवेकी नहीं रहता, प्रकृति-बन्धन से छूट जाता है, और ब्रह्म के समान निश्चल शान्त स्थिति को प्राप्त हो जाता है।

तीसरे अध्याय में जीव के लिये पुनः फलाशा-रहित हो कर कर्त्तव्य बुद्धि से कर्म करते रहने का उपदेश दिया गया है। यह सब जीव के ही लिये है, जो इसका परमात्मा से भिन्न होना स्पष्ट करता है, उसकी स्थिति को प्राप्त करना जीव का परम लक्ष्य बताया गया है। फिर यह स्पष्ट लिखा है, जो पुरुष जिस प्रकार के कर्म करता हुआ मेरे सन्मुख उपस्थित होता है, मैं उस के अनुसार ही उसके साथ वर्त्ताव करता हूं। कर्मानुष्ठान के द्वारा ही पुरुष सं[illegible] में सिद्धि को प्राप्त कर सकता है, इस [illegible] चातुर्वर्ण्य की रचना की गई है। प्रत्येक [illegible] देह को प्राप्त होकर अपने कर्त्तव्य कर्मों [illegible] अनुष्ठान करता है, और उसके अनुसार [illegible] को भोगता है। यद्यपि परमात्मा सर्वान्त[illegible] होकर उन सब देहों में व्याप्त रहता है, प[illegible] कर्मों का उस पर कोई प्रभाव नहीं होता, न [illegible] फलों में उसे आकर्षण; यह परमात्मा का वा[illegible] विक स्वरूप है। जो इस को जान कर [illegible] आचरण करता है, वह भी इसी प्रकार की [illegible] बन्धन रहित अवस्था को प्राप्त हो जाता है। ये वर्णन जीवात्मा परमात्मा के भेद को [illegible] करते हैं। आगे फिर [३१] यज्ञानुष्ठान [illegible] द्वारा नित्य ब्रह्म की प्राप्ति का निर्देश किया [illegible] है। पुनः [३४-३६] आत्मज्ञान के द्वारा पु[illegible] को परम शान्ति के लाभ का उल्लेख है।

पञ्चम अध्याय [१७-२०] में उल्लेख [illegible] 'जिन की बुद्धि ब्रह्म में है, जो उसी प्रकार [illegible] शान्त स्वरूप को प्राप्त करने के लिये प्र[illegible] शील हैं, जिन की परमात्मा में पूर्ण आस्था [illegible] और जो उसी के ध्यान में लगे रहते हैं, [illegible] पुरुष आत्म-साक्षात् हो जाने पर सांसा[illegible] दोषों से दूर होकर मोक्ष को प्राप्त होते [illegible] जिन का मन साम्य में स्थित हो चुका है, उन्हें [illegible] इसी जन्म में संसार को जीत लिया, क्यों [illegible] सब दोषों से रहित ब्रह्म ही 'सम' है, इस [illegible] यही समझना चाहिये, कि जो पुरुष साम्य [illegible] स्थित है, वह ब्रह्म में ही स्थित है। जो [illegible] अप्रिय आदि द्वन्द्वों के प्रभाव से ऊपर [illegible] चुका है, स्थिर बुद्धि और विवेकी है, [illegible] ब्रह्म को जान लिया है, उसे ब्रह्म में ही [illegible]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समझना चाहिये।' अध्याय की समाप्ति तक इसी प्रकार के और भी वर्णन हैं। 'जितेन्द्रिय आत्मज्ञानी ऋषि दोषों से रहित होकर, सब प्राणियों के कल्याण में लगे हुए अन्त समय ब्रह्म पद को प्राप्त करते हैं [२५]। इन वर्णनों से जीवपुरुष और परमात्मा की भिन्न भिन्न स्थिति का स्पष्ट निर्देश हो जाता है।

सप्तम अध्याय में फिर इन्हीं भावनाओं को स्पष्ट किया गया है, श्रीकृष्ण अर्जुन से कहता है—'अब मैं तुम्हें विज्ञान सहित ज्ञान का सम्पूर्ण कथन करूंगा, जिस को जान कर यहां तुम्हें और कुछ ज्ञातव्य शेष न रह जायगा। सहस्रों मनुष्यों में कोई विरला ही सिद्धि के लिये यत्न करता है, यत्न करने वाले सिद्धों में भी कोई कोई यथार्थ रूप से परमात्मा को जान पाता है।' इस के अनन्तर [४-७] गीता में प्रकृति, पुरुष [जीव पुरुष] और परमात्मा का स्पष्ट रूप से पृथक् पृथक् उल्लेख किया गया है। वहां लिखा है—'प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, पांच सूक्ष्म भूत [पञ्च तन्मात्र] ये आठ प्रकार की प्रकृति हैं।' सांख्यविचारों के अनुसार इन में एक मूल प्रकृति और शेष सात प्रकृति-विकृति हैं। इन सब का यहां केवल प्रकृति पद से ही निर्देश कर दिया है, क्योंकि मूल प्रकृति के इन विकारों में भी तत्त्वोत्पादकता रूप विशेषता बनी रहती है। अभिप्राय यह है, कि मूल रूप से तत्त्वों का उत्पादन प्रकृति से होता है, परन्तु प्रकृति के कुछ विकार आगे भी तत्त्वान्तर के उत्पादन का सामर्थ्य रखते हैं, और यह स्थिति इन सातों में समाप्त हो जाती है, इस लिये विकार होते हुए इन को प्रकृति पद से भी कहा जाता है। इस प्रकार आठ प्रकार की प्रकृति का कथन करने के अनन्तर गीता में जीवपुरुष के पृथक् अस्तित्व का निर्देश किया गया है, जो अपने व्यवहार और क्रिया से इस जगत् का आधार कहा जाना चाहिये। इस जगत् की रचना में मूल, ये प्रकृति और जीव ही हैं, क्योंकि प्रकृति का यह साक्षात् परिणाम है, तथा जीव के भोग एवं मोक्षादि प्राप्ति के लिये ही यह सर्ग है, इस लिए गीता में इन दोनों को जगद्रचना का मूल कहा गया है। पर यह निश्चय समझे रहना चाहिए, कि प्रकृति ही जगत् का वास्तविक मूल है, फिर भी जीव के बिना यह सब अव्यवहार्य होने के कारण, उस का इस रूप में वर्णन औपचारिक ही हुआ है। इन दोनों से अतिरिक्त परमात्मा है, जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कर्त्ता है, उस से पर अर्थात् उत्कृष्ट और कोई तत्त्व नहीं है। वह सब में अन्तर्यामी हो कर व्याप्त हो रहा है।

अष्टम अध्याय में क्षर अक्षर का विचार किया गया है। इन में सम्पूर्ण जड़ जगत् क्षर है, और चेतन तत्त्व को अक्षर बताया है, यह अक्षर चेतन भी दो प्रकार का कहा गया है, एक उपास्य और दूसरा उपासक। उपासक जीव पुरुष है और उपास्य परमात्मा। गीता के इस प्रसंग में पुरुष को अधिदैवत और परमात्मा को अधियज्ञ कहा गया है। यह सम्पूर्ण जगत् पुरुष के ही भोग एवं अपवर्ग के लिये होता है, इस लिये पुरुष यहां देवता के समान अवस्थित है। इस का परम लक्ष्य परमात्मा रहता है, इस लिए उस को अधियज्ञ कहा गया है, क्योंकि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुरुष इसी की उपासना या पूजा करता है, और अन्त में विवेक होने पर उस से जा कर मिल जाता है। इस अध्याय में विस्तार पूर्वक आगे इन उपासनाओं का प्रकार बतलाया है, जिन के सतत अभ्यास के द्वारा पुरुष अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करता है। यही वर्णन नवम-दशम अध्यायों में भी बराबर किया गया है। इस से जीवात्मा और परमात्मा का पृथक् अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है।

पन्द्रहवें अध्याय में इन के भेद का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। वहां [१६-१८ श्लोक में] लिखा है—'इस संसार में क्षर और अक्षर अर्थात् नाशवान—परिणामी तथा अविनाशी—अविकारी दो प्रकार के पुरुष हैं। सम्पूर्ण भूत अर्थात् अखिल प्राकृतिक जगत् क्षर, और अविकारी जीवात्मा अक्षर कहाता है। उत्तम पुरुष अन्य है, जिस को परमात्मा कहते हैं। वह तीनों लोकों में प्रविष्ट हो कर सब का पालन पोषण करता है, वह अविनाशी ईश्वर है। वह क्षर [प्रकृति एवं प्राकृतिक जगत्] और अक्षर [जीवात्मा] दोनों से उत्तम है, इस लिये लोक तथा वेद में सर्वत्र उस को पुरुषोत्तम कहा जाता है।' इस प्रकार स्पष्ट हो गीता में जीवात्मा और परमात्मा के अस्तित्व को पृथक् २ माना गया है।

गीता का उपसंहार करते हुए अठारहवें अध्याय [श्लोक ६१-६२] में पुनः इस अर्थ को स्पष्ट किया है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहता है—

'हे अर्जुन ! सब प्राणियों के हृदय देश में ईश्वर निवास करता है। वही अपनी प्रेरणा-शक्ति से इस अखिल चराचर जगत् का संचालन करता है। सर्वात्मना उसी की शरण में जाओ, उसी की कृपा से तुम परम शांति का निरन्तर लाभ करोगे।' यहां कृष्ण स्वयं अपने से भिन्न एक सर्वान्तर्यामी ईश्वर के अस्तित्व का स्पष्ट निर्देश कर रहा है।

भारत फ्रांस की दृष्टि में

[श्रीमान् एम० राजर लेनी]

एक फ्रांसीसी के लिये यह गौरव की बात है कि अत्यन्त सुदूर नगर-पैरिस से एक मनुष्य आ कर आप के सामने बोलने में समर्थ हो सका है और वह भी पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ। सन् १९३१ ई० से मैं Institute of Pacific Relations (प्रशान्त सागर सम्बन्ध संस्था) के अन्तर्जातीय सम्मेलनों के अधिवेशनों में निरन्तर सम्मिलित होता रहा हूँ। मैं आप को बताना चाहता हूँ कि १९३१ ई० के पश्चात् यह पहला अवसर है कि इस का अधिवेशन एशिया में हो रहा है। इस का कारण यह है कि इन १६ वर्षों में घोर कठिनाइयों, दीर्घ युद्धों ने हमें इन अधिवेशनों को अमरीका में तथा अन्तिम बार योरुप में करने को विवश रखा। और अब इस कारण मैं बूढ़ा पैरिस वासी पहली बार एशिया में भारत की पुण्य भूमि में आ सका हूँ। क्या इस का यह अभिप्राय है कि मैं भारत से अपरिचित हूं ? सर्वथा तो ऐसी बात नहीं है किन्तु मुझे कुछ झूठी लज्जा के बिना स्वीकार करना पड़ता है कि बहुत अंशों में भारत मेरे लिये अज्ञात सा है। यह अत्यन्त विशाल, अत्यन्त विचित्र एक अतीव गम्भीर है। इस विशाल भारत के प्रदेश

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के क्षेत्र के विस्तार की समता दस फ्रांस कर सकते हैं।

प्रिय भारतीय मित्रो ! इतना होने पर भी पैरिस में भारत के प्रति सहानुभूति की एक बहुत बड़ी प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति का सम्वर्धन एक सौ वर्ष से अधिक फ्रांसीसी विद्वानों एवं अनुसन्धानकर्त्ताओं ने अपने प्रयत्नों से किया है जिन्हों ने शिक्षित संसार तथा संसार के पुष्प समान संभ्रान्त वर्ग के आगे भारतीय सभ्यता के आवश्यक अंगों को प्रस्तुत किया है। निस्सन्देह अन्य सब बातों के अतिरिक्त भारत सभ्यता की जननी है। उन फ्रांसीसी विद्वानों की सम्मतियों का संकलन एक सुदीर्घ एक, श्रान्तिदायक कार्य्य होगा । आप को यह अवश्य जानना चाहिये कि पैरिस में नगर के पुरातन नाम वाले सोरवोर्नविश्व विद्यालय में भारत सभ्यता सम्बन्धी एक संस्था है जहां भाषाविज्ञान के आचार्य भारत के पुरातन ग्रन्थों, धर्म्म एवं काव्य की व्याख्या करने में संलग्न हैं।

पैरिस में अनेक पुस्तकालय सर्वथा भारत संबंधी अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करते हैं, वहां के नैशनल लाईब्रेरी की तो क्या कहना ! The School of Oriental Languages प्राच्य भाषा विद्या भवन में पूर्व तथा सुदूर-पूर्व के संबन्ध में तीन लाख ग्रन्थ हैं। भारत का उस में विशेष स्थान है। दूसरे पुस्तकालय, उदाहरणार्थ गिन्मेत अद्भुतालय, में भारतीय सभ्यता के लिए एक विशेष स्थान सुरक्षित रखते हैं। पुस्तकालयों के साथ साथ, कम से कम दो अद्भुतालय—गिन्मेत तथा सरनूशी के—दर्शकों के सामने भारतीय निधियों, प्रशंसनीय मूर्तियों तथा रंगीन चित्रों को प्रस्तुत करते हैं। वे इतनी सुन्दर वस्तुएं हैं कि अगले दिन पं० हृदयनाथ कुंजरू ने शोकातुर हो कर कहा था कि हमारे अतीत के ये अद्वितीय पदार्थ देहली में होने चाहिये।

पैरिस में हमारे विश्वविद्यालय के द्वार सभी देशों, महाद्वीपों के विद्यार्थियों के लिए खुले हैं। तीस वर्षों में इन्डोचीन, जापान, स्कन्धनी विदेशों, स्पेन आदि के बंगले, भवन बन चुके हैं किन्तु भारत का एक भी भवन नहीं है। वहां भारत का एक भवन होना चाहिए। जिस में दोनों देशों की सरकारें सहयोग देंगी। उस भवन में २०,३०, ५० अथवा अधिक भी छात्र रह सका करेंगे। वे हमारे विविध विषयों के व्याख्याताओं उपाध्यायों का अनुसरण करते हुए हमारे कार्य्य प्रकार का अध्ययन कर सकेंगे। इसी भांति फ्रांसीसी छात्र भारत में जाएंगे। अप सम्बन्धों के हित की दृष्टि से इस प्रकार का आदान-प्रदान दोनों देशों के लिये नियमित और स्थायी रहना चाहिये।

......मैं आप को यह बताना चाहता हूं कि फ्रांसीसी भारत विशेषज्ञों का महान् सम्प्रदाय, जिस की परम्परा बरनफ से बरगेन तथा सिल्व लेवी से फोशर तक चलती है। रेक्सों, फिल्कोजा तथा मोल--इन तीन फ्रांसीसियों ने विश्वकोष का जो संपूर्ण ही भारतपरक है, प्रथम भाग प्रकाशित किया है। इस का नाम क्लासिकल इडिय Classical India है। यह विशाल ग्रन्थ जिस के तीन सहस्र पृष्ठ होंगे, हमारे लिये एक प्रवेशिका है जिस के द्वार हम भारत के भूगोल, धर्म, भाषाओं, सब प्रकार के ग्रन्थों तथा भारत संबन्धी निर्दोशों का ज्ञान कर सकेंगे। किन्तु मैं यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभिमान नहीं करता कि यह ग्रन्थ सर्वाङ्गपूर्ण है। मनुष्य इस लोकोत्तर, अलौकिक विषय भारत का पूर्ण अनुशीलन कर भी नहीं सकता। मुझे इस बात का सन्तोष है कि मैं आप के समक्ष क्लासिकल इंडिया के विषय में सूचना देने से आप को भारत के प्रति फ्रांसीसियों की सदिच्छा एवं तद्विषयक परिश्रम का परिचय दे सका हूँ। मेरा उद्देश्य भारतीयों के सामने भारत के प्रति प्रशंसा एवं प्रीति की भेंट प्रस्तुत करने का है, जिस भारत का सौन्दर्य, आकर्षण एवं सौजन्य बाहर से आए यात्रियों के लिये अत्यन्त प्रभावशाली है।

सचमुच वह मनुष्य सुखी, भाग्यवान् है जिस से कम से कम एक बार जीवन में भारत भूमि पर पग धरने का अवसर मिला है।

[पिछले दिनों लखनऊ में Pacific Conference प्रशान्त सम्बन्ध सम्मेलन हुआ था। उस में फ्रांस देश के प्रतिनिधियों का मण्डल भी सम्मिलित हुआ था। उस के मन्त्री श्री लेवी ने १६.१०.५० को लखनऊ के आल इंडिया रेडियो से एक भाषण दिया था। उस का यह भावानुवाद है। इस प्रसंग में हम आर्य्यसमाज से जो सम्पूर्ण विश्व को आर्य्य बनाने की घोषणा करता रहता है, पूछना चाहते हैं कि उस ने फ्रांस में अपने धर्म्म के सन्देश को पहुँचाने का क्या उपाय किया है? जहां तक हमें ज्ञात है सत्यार्थप्रकाश के फ्रांसीसी अनुवाद के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया गया। दुःख से कहना पड़ता है कि वह अनुवाद भी द्वितीय महायुद्ध की अग्नि ज्वालाओं से कवलित हो चुका है। सं०]

ओ३म्

मानस तरङ्ग

[ब्र० श्री भूषण चैतन्य शास्त्री साहित्याचार्य, लुधियाना]

तृतीय उछ्वास

"देवान् यज्ञेन बोधय" ॥

जब मैं आगे बढ़ने को तैयार हो जाता हूं, देखता हूं, विचार मग्न हो जाता हूँ। मार्ग पर चलता हुआ परिश्रान्त हो कर, आत्माचारी संसा के न सहने योग्य कठोर व्याहार से दुखी हो कर सर्वत्र, सर्वथा, सर्वभावेन अपने को निराश्रित पा कर, अपनी उचित सफलता का उपाय जानने के लिए व्यग्र हो उठता हूँ; तो सत्य शिव सुन्दर अग्नि को अधिक समय विवश हो कर पुकारता हूं। इसी प्रकार पुकारता हुआ जब वास्तविक रूप से पुकारता हूं, तो महान् आनन्द से Relation पुलोकित हो उठता हूं। उस छल कपट हीन यथार्थ पुकार के प्रथम मुहूर्त्त में ही स्मृति-आकाश में अहंभाव निस्तेज होने लगता है। अहंभाव ही मुझ को पुनः पुनः सामर्थ-हीन बना देता था। जब जब अहंभाव का तिरोभाव देखता हूँ, और अग्नि को पूर्ण परम सहायक समझने लग जाता हूँ। तब पता नहीं चलता पल-पल में, नहीं नहीं उस से भी अत्यल्प समय के भीतर हृदय-आकाश में नव-नव शक्ति आविर्भूत होने लग जाती है, अपने को महान् शक्तिशाली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जाता हूं, अग्नि मुझको बार बार प्रेरणा करता है "देवान् यज्ञेन बोधय"। ओ मानव! यदि तू संसार समर में विजयी बनना चाहता है, यदि तू ओ अनन्त पथ के पथिक! तू अपने पथ के नाना बाधा-विघ्नों को अतिक्रम कर के गन्तव्य स्थान को पाना चाहता है, ओ महान् यात्री, यदि तू अति दुर्लङ्घ्य भवसागर को हेलया पार कर जाना चाहता है तो निरन्तर "देवान् यज्ञेन बोधय" दिव्य भाव आज मेरे हृदय आकाश में यज्ञमय जीवन प्राप्त करने के लिये विमल पूर्णिमा के चन्द्रमा के सदृश आविर्भूत होने लगे संसार में मनुष्य जब जगत्स्रष्टा से जो कुछ मांगता है यथोचित समयान्तर उस को वह सब कुछ मिल जाता है। यदि नहीं मिलता है तो यह संसार में अवस्थित प्रपञ्चमय मानवसमाज की अपनी त्रुटि है, क्योंकि अधिकांश मानव आज उपासना मन्दिर को भी एक धनोपार्जन के साधन में उपयोग करते हैं, वहां धर्म के नाम पर प्रच्छन्न रूप से पाखण्डपन का विस्तार हो रहा है, धन एकत्रित किया जा रहा है। उपासना मन्दिर धर्मप्रचार में "सफल नहीं हो रहा है" यह वाक्य विडम्बनामय है, वहां तो मानवों की आन्तरिक इच्छा अक्षरशः पूर्ण हो रही है। आज तक किसी की इच्छा अपूर्ण नहीं रही। यह बात सर्ववादी सम्मत है कि जहां धर्म की उन्नति की इच्छा नहीं, वहां धर्मोन्नति कैसे हो? मानव दिव्य भावों को यज्ञ द्वारा प्राप्त करना नहीं चाहते अतः दिव्य भावों का आसुरी भावों के ऊपर विजय कैसा? दिव्य भावों के बिना मानव मानव ही नहीं। दिव्य भावों को शक्तिशाली बनाने के लिये उचित स्थान तथा उचित समय की आवश्यकता है, यह क्या? यहां भी मेरे दिव्य भावों का पराजय। उषा काल की निर्मलवेला में कुछ मार्ग अतिक्रम कर के भी अपना मार्ग ढूंढ न सका. ठीक तो है इस में आश्चर्य की बात क्या? यहां भी आसुरी भावाच्छन्न भावों का साम्राज्य है, जठराग्नि की ज्वाला असहनीय है। इसी लिये मानव दिन रात उदर पूर्त्ति में व्यस्त है। मानो उन के पास आत्मचिन्तन का अवसर ही नहीं। प्रायः असमर्थ हो कर मानव अति मूल्यवान ब्रह्ममूहर्त्त को भी व्यर्थ ही नष्ट कर देता है, मैं ने सोचा था नगरोपकण्ठे नदी की सुरम्य तट भूमि के किसी निर्जन स्थान में आज दो मिनिट बैठ कर शान्त भाव से प्रभु से कुछ पूछूंगा, दयालु पिता! तू बता मैं किस प्रकार जीवन के दिव्य भावों को यज्ञमय बना सकूं, ताकि पशु न रह कर मानव बन सकूं। किन्तु यह भी तो मायामोहाच्छन्न संसारी मानवों के निरन्तर जमघट का एक निर्दिष्ट स्थान है, उस पार जाने वाले मानवों की विश्राम भूमि है, अभी रश्मिगामी मनोमोहक मृदु सुगन्ध कोमल पुष्पों के पुष्परेणु के सदृश शान्तिदायक किरणमाला का प्रसार दिग् दिगन्तों में करने के लिये उदयाचल में उदय नहीं हो रहा। केवल मात्र सूर्योदय का आभास मिल रहा है। फिर एक नौका छप२ शब्दों से उषा की निस्तब्धता को मिटाती हुई इस किनारे की ओर द्रुत गति से आ रही है। मुझे भी पार जाना है अतः विलम्ब न करते हुए आगे बढ़ना चाहिए। जहां प्रकृति का तृणगुल्मलतादि से श्यामल स्वच्छन्द विशाल आंगन है, जहां आज्ञा-वाही श्रेणीबद्ध शैलवत्त से चुर २ ध्वनि से झरते हुए झरनों की अनवच्छिन्न धारा विश-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मान है, जहां पर नदी तट भूमिस्थित विटपी की नम्र शाखाओं पर एकत्रित पक्षियों की अव्यक्त सुललित कलकल ध्वनि कर्णगोचर होती है, जहां पर उषा की स्वर्णिम अलक्त आभा बार-बार मानवों के दिव्य भावों को जागरित कर देती है, जहां पर तरंगों के परस्पर घात-प्रतिघात के द्वारा उत्पन्न वारिकणों से शीतल मलय वायु सुगन्धित पुष्पों और मञ्जरियों को स्पर्श करती हुई मन्द मन्द गति से प्रवाहित हो रही है। जहां पर शिशिरसिक्त प्रकृति का हरा भरा आंगन उषाकालीन प्रकाश की चमक से दमक रहा है।

जहां की भूमि कुछ क्षणों के पश्चात् उदयाचल में आविर्भूत बाल-रवि की अनुपम स्वर्णिम किरणों से परिप्लुत होकर प्रकृति जननी के नाना-रत्नजटित मुकट के समान विभूषित हो उठेगी, जहां मानवों से न विकृत की हुई प्रकृति के स्वच्छन्द आंगन में कहीं मेरे पार जाने का किनारा प्रच्छन्न है, मुझे वहां जाना है।

यदि जीवन संसार में एक महामूल्यवान् विश्व कोष है, तो एक एक क्षण जीवन का एक एक पृष्ठ है। एकत्रित एक एक क्षण रूपी पृष्ठ के बिना विश्वकोष का विश्व में कोई अस्तित्व नहीं। यदि जीवन एक अथाह समुद्र है तो एक २ छोटी छोटी शुभकामनाएं उसका एक एक जल बिन्दु हैं। छोटी छोटी शुभकामनायों के बिना अथाह जीवन समुद्र की विशालता कभी अक्षुण्ण नहीं रह सकती। यदि जीवन एक सजल शैलमाला है तो प्रतिक्षण सत्य में दृढ़ता तथा तपश्चर्या उसकी अवर्णनीय उपत्यकाएं तथा अधित्यकाएं हैं। तपश्चर्या तथा सत्य में दृढ़ता के बिना आंधी तूफान के सदृश नाना सामाजिक बा[illegible] विघ्नों को सहन करने वाली मानवीय मर्या[illegible] की माधुर्यमय समता नहीं रह सकती। [illegible] यह निर्विवाद सिद्ध है कि ब्रह्माण्ड में अनन्[illegible] यभ अनन्त पथ पर विद्यमान प्रत्येक मूल्यव[illegible] वस्तु नियमित मर्यादा में व्यवस्थित है। मर्या[illegible] का उल्लङ्घन कर मानव देवत्व की ओर अग्रस[illegible] नहीं हो सकता।

पार जाने की जिन के हृदय में वासना [illegible] उस को इस किनार का मोह छोड़ना ही पड़े[illegible] इस किनारे पर रहते हुए ही उस पार को [illegible] की सम्पूर्ण तैयारी कर लेनी होगी। इस [illegible] उस कनारे के व्यवधान म प्रवाहमय नदी [illegible] और नदी के वक्ष के ऊपर असामयिक [illegible] सामायिक दुर्योग एवं भीमकाय तरगमाला [illegible] सदृश मानव को जीवन नदी के अनेक वि[illegible] आपद से संग्राम करने का सामर्थ्य अर्जुन क[illegible] ही पड़ता है। नहीं तो नदी की अथाह जलरा[illegible] में विलीन हो कर नष्ट हो जाने वाले यात्री सम[illegible] मानव अपनी जीवन नदी के मध्य में ही न [illegible] किनारे और न उस किनारे रह कर विनाशपद [illegible] प्राप्त कर लेता है। इस लिये मानव तू [illegible] अस्तित्व को संसार में स्थिर रखने के लिये क[illegible] हो जो "देवान् यज्ञेन बोधय" दिव्य भावों [illegible] द्वारा जागरित रख) उषा तथा सायं काल के [illegible] मुहूर्तों में भी मोहाच्छन्न सांसारिक वस्तु[illegible] लिप्त न रह। "गतस्य शोचना नास्ति" ([illegible] बात को सोच मत) आज से ही प्रकृति [illegible] के दिव्य अंचल में कहीं बैठ कर अपने [illegible] भावों को यज्ञमय बनाये रखने का संकल्प [illegible] समय निरन्तर बीत रहा है। जीवन के [illegible]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समय को, हे मानव ! तू बार बार नष्ट न कर। अग्नि तुझ को सुख, शान्ति पूर्वक पार ले जाने के लिये बार बार बुला रहा है। आसुरी भावनाओं के मोह अब छोड़ कर दिव्य भावों को यज्ञ द्वारा जागरित रखता चला जा।

ओ पार जाने वाले पार जाने के लिये सदा तैयार रहा नहीं तो जीवन नौका जब उस किनारे की ओर चल पड़ेगी तब तुम एकाएक व्याकुल हो उठोगे। इस पार की वस्तुए तुम्हें पकड़ रखेंगी। पार नहीं जा सकोगे। मानव भूल नहीं जाना "देवान् यज्ञेन बोधम" ! "देवान् यज्ञेन बोधम" !! "देवान् यज्ञेन बोधम,, !!!

संगठन शक्ति

[श्री मती प्रेमसुलभामती जी]

किसी देश और जाति के उत्थान के लिये उसकी श्रेष्ठ शक्तियों का विशेष प्रकार से संगठन होना आवश्यक होता है। ब्राह्म बल और क्षात्र बल इन दोनों श्रेष्ठ बलो के उत्थान से ही देश की उन्नति होती है। दूरदर्शी ब्राह्म बल क्षात्र बल को बढ़ाने वाला और नियंत्रण में रखने वाला होकर सदा कर्तव्य को निश्चय कर संसार में शान्ति का वातावरण प्रसारित करने में समर्थ होता है।

क्षात्र बल ब्राह्म बल का सत्कार करता हुआ उसकी रक्षा करने में समर्थ होता है। विघ्न बाधाओं को अपने पराक्रम से दूर कर संसार को निर्भय बना कर सुख और शान्ति का राज्य स्थापित करता है। इस लिये दोनों एक दूसरे के आश्रित माने जाते हैं। ब्राह्म बल के बिना क्षात्र बल उच्छृङ्खल हो कर्तव्यपथ से भ्रष्ट होकर अपनी सत्ता को खो बैठता है। इसी प्रकार क्षात्र बल के बिना ब्राह्म बल निर्बल होकर अपनी ब्रह्म सत्ता को भूल जाता है, ये दोनों महती-शक्तियां एक दूसरे के आश्रित हैं। और शेष शक्तियां इन्हीं दोनों के सहारे परिवर्धित होती हैं।

किन्तु जब ब्राह्म बल और क्षात्र बल निर्बल हो जाते हैं तो संसार में वैश्य बल का विशेष प्रभाव बढ़ जाता है, तब सम्पूर्ण विश्व के मनुष्य लोभ रुपी नाव पर बैठ कर अज्ञान की डांड से खेते हुए संसार में अशान्ति की धार को पार करने का यत्न कर शान्ति की स्थापना का जाल बिछा कर संसार के मनुष्यों को धोखे में फंसाते हैं। स्वयं डूबते और अन्यो को डुबाने का यथा शक्ति यत्न करते हैं। जिस से जगत् में दुःख का समुद्र भीषण रूप धारण कर लेता है।

वैश्यवृति व्यापार द्वारा ही धन उपार्जन में कुशल होती है धर्म भाव से शून्य धन का लोभी कदापि न्यायोचित शासन नहीं कर सकता। आज संसार की प्रचण्ड अशान्ति का कारण व्यापार है। जो बल और क्षात्र बल की उपेक्षा कर रहा है।

यथार्थ में जब ब्राह्म बल के नियन्त्रण में क्षात्र बल और क्षात्र बल के शासन में वैश्य बल और शूद्र बल अपने २ कर्तव्य का पालन करते हैं, तभी संसार में सुख और शान्ति का राज्य होता है। क्योंकि देश का प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य के पालन में तत्पर रहता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संगठन शक्ति पर यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में कितना सुन्दर कहा गया है:—

ब्राह्मणोऽस्यमुख मासी द्बाहू राजन्य: कृत: ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य:पद्भ्याँशूद्रोऽअजायत ॥ ३१।१०

ज्ञान को प्राप्त करने वाली संपूर्ण इन्द्रियां मुख में ही हैं और प्राप्त ज्ञान प्रकाशन की शक्ति मुख को ही है वाणी ही अर्थ को प्रकट करती है। इच्छित और अनिच्छित शक्तियों की गति में लाने की शक्ति मस्तिष्क को ही है। इस लिये मुख को ही ब्राह्मण कहा है।

हाथ ही सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करता है। ब्राह्मण आज्ञा देता है और बाहू रूपी क्षत्रिय उस का यथा विधि पालन करता है इसी लिये बाहू को क्षात्र बल कहा है। सम्पूर्ण शरीर में किसी स्थान पर भी आवश्यकता होती है। वहां तुरंत बाहू पहुँचता है उस की रक्षा पर तत्पर रहता है।

वैश्य ऊरू रूप है। वह नियम के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय के दिये हुए पदार्थ को यथा योग्य पचा कर उस के रस को सम्पूर्ण शरीर में भजता है अपने पोषण के सिवा और कुछ नहीं ले सकता। यदि कहीं लेगे लने तो रोगी हो कर सब को रोगी बना देगा।

पैर का काम चलना फिरना ही है। ब्राह्मण की आज्ञा से ही चलते हैं।

ब्राह्म बल और क्षात्र बल को आठोयाम सावधान रहने की शक्ति भगवान् से मिलती है, ब्राह्म बल ही क्षात्र बल को सावधान रख सकता है।

किन्तु ब्राह्मण को कोई नहीं सावधान रख सकता। यदि ब्राह्मण लोभ के कीचड़ में फंसा हो तो उसे कौन रोक सकता है ? सब को नियम में चलाने वाला तो ब्राह्मण है उसे कौन नियम में चला सकता है।

इसी लिये ब्राह्म बल के महान् ज्ञाता ऋषियों ने यह नियम बना दिया कि ब्राह्मण के बच्चे को ६ था ८ आठ वर्ष की आयु में ही गायत्री मंत्र के जप का उपदेश, यज्ञोपवीत देना, जिस से उन की बुद्धि में विकार न आने पावे और विचार पूर्वक गायत्री मंत्र का जप करने से कदापि बुद्धि में विकार नहीं आ सकता। ब्राह्मण अपने कर्तव्य पालन में सदा सावधान रहता है। ब्राह्मण के कर्तव्य निष्ठ होने पर क्षत्रिय वैश्य और शूद्र तीनों सावधान रहते हैं। ब्राह्मण के साथ क्षत्रिय का विशेष सम्बन्ध है इस लिये ब्राह्म बल से क्षात्र बल को आठोयाम सावधान रखने की आवश्यकता होती है।

गांधी जी के सिद्धांत क्या थे

[एक जिज्ञासु]

महात्मा गान्धी जी का नाम आज समस्त जगत में विख्यात है। प्राय: समस्त सभ्य कहे जाने वाले देशों में उनकी जयन्ती मनाई जाती है। भारत के लिए यह अतीव गौरव की बात है। गान्धी जी को सत्य और अहिंसा का अवतार कहा जाता है। देश के उत्थान के लिये उन्हों ने अनेक प्रकार के यत्न किये। उन की साधना का यह फल है कि समूचा देश उन के नाम की गूजं से भर रहा है किन्तु उन के नाम के प्रचार के विस्तार के साथ उनके सिद्धान्त सन्दिग्ध कोटि में जा रहे हैं, क्योंकि

(१) भारत सरकार के कर्णधार राष्ट्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रधान मन्त्री एवं उप प्रधान मन्त्री अपने पक्ष का प्रतिपादन तथा समर्थन करने के लिये गान्धी जी के उपदेशों आदर्शों पर चलने का परामर्श देते हैं।

(२) कांग्रेस के दक्षिण पक्षीय एवं वामपक्षी विचार एवं कार्य्य पद्धति में पारस्परिक घोर मत भेद रखते हुए भी अपने अपने पक्षके समर्थन के लिए गांधी जी की दोहाई देते हैं। यथा जहां श्री टंडन जी लोगों को कह रहे हैं कि गांधी जी के आदेशों पर चलने से ही देश और संसार का कल्याण होगा, वहां उनसे चुनाव में पराजित कृपालानी जी भी देशोद्धार के लिए जनता को गांधीवाद का आश्रय लेने की प्रेरणा करते हैं, हां, एक बात वे अधिक भी कहते हैं। वे कहते हैं कि विशुद्ध गांधीवाद का अनुसरण करो, अर्थात् वे यह मानते हैं कि प्रचलित गांधी वाद में कुछ ऐसा मिश्रण हो गया है जो गांधी जी के सिद्धान्तों के विरुद्ध है, यद्यपि इस का विवरण उन्होंने अभी तक नहीं दिया।

(३) सोशियलिस्ट (समाजवादी) लोग भी कांग्रेस का घोर विरोध करते हुए गांधीवाद का नाद गूंजाते हैं।

(४) यू० पी० के नवोत्पन्न जनता कांग्रेस दल के संचालक भी अपने पक्ष की पुष्टि के लिये गांधी जी के नाम का आश्रय लेते हैं।

(५) कभी कभी कोई कोई भारतीय वर्गवादी (कम्यूनिष्ट) भी गांधी जी के नाम का प्रयोग करने की उदारता दिखा देता है।

इस में तो कोई सन्देह नहीं कि कांग्रेस दल नवजात जनता कांग्रेस दल, सोशियलिस्ट पार्टी आदि का सैद्धान्तिक महान भेद है। और ये सभी अपने पक्षपोषण अथवा स्वसिद्धान्त प्रचार में बार बार गांधी जी के नाम का व्यवहार करते हैं। जनसाधारण में अभी तक गांधी जी के प्रति भक्ति है। प्रश्न होता है कि क्या ये लोग जनता की प्रवंचना के लिए गांधी जी के नाम का व्यवहार करते हैं? अथवा सचमुच ये गांधी जी के तथा उनके सिद्धान्तों के निष्ठावान भक्त होने के कारण उनके सिद्धांतों के विरुद्ध आचरण देख कर खिन्न होकर जनता को सावधान करने के लिए यत्न शील हैं? ऐसी स्थिति में यह मानना पड़ेगा कि या तो गांधी जी के कोई विशेष सिद्धान्त नहीं थे, अथवा वे सिद्धान्त इतने परस्पर विरुद्ध थे कि प्रत्येक दल को अपने पक्ष की पुष्कल सामग्री उन से मिल जाती है किन्तु इस अवस्था में साधारण जनता के सामने एक विकट समस्या उपस्थित हो जाती है।

वैसे तो ऊपर वर्णित प्रत्येक पक्ष का गांधी जी से स्पष्ट विरोध दिखाया जा सकता है। तथा भारत सरकार का सेना रखना अहिंसा वादी गांधी के सिद्धान्त के विरुद्ध है। कांग्रेस को हटा कर स्वयं शासन करने के अभिलाषी समाजवादी एवं वर्गवादी गांधी जी द्वारा चर्खा कातने की विराट् आयोजना एवं मशीन विरोध के कट्टर विरोधी हैं।

क्या कहीं इसी कारण तो नेहरू जी ने नासिक में एक भाषण के प्रसंग में नहीं कहा था कि वक्ताओं को प्रत्यक समय गांधी जी का नाम नहीं लेना चाहिए?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साहित्य समीक्षा

[समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी चाहियें । (सं)]

सामवेद संहिता सरल हिन्दी अनुवाद सहित ।

अनुवादक—आचार्य वीरेन्द्र जी शास्त्री एम. ए. प्रकाशक-वेद वाणी कार्य्यालय, बनारस।

चारों वेदों में साम वेद सब से छोटा किन्तु हमारे विचार में सब से कठिन है । आर्य्य समाज को यह उचित गर्व प्राप्त है कि इस काल में सब से पहले आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक तथा आर्य्य समाजियों ने लोक भाषा में वेद-भाष्य, वेदानुवाद, वेदमन्त्रों के अर्थ सहित अनेक संग्रह प्रकाशित किए । स्वामी दयानन्द सरस्वती सब से प्रथम महामनुष्य हैं जिन्होंने युगों के पश्चात् वेद को सर्व साधारण की सम्पत्ति बताया और इस के विहित द्वार को खोल कर इस के अन्दर प्रविष्ट करने का मार्ग प्रशस्त किया । उन के अनुयायियों में प० तुलसीराम जी मेरठी ने संस्कृत तथा आर्य्य भाषा में साम वेद का भाष्य किया। श्री दया राम ने उर्दू अनुवाद प्रकाशित किया। इस के पश्चात् बंगाली पं० सत्या चरण ने संस्कृत तथा बंगला में अनुवाद किया। अनन्तर भी संख्यतीर्थ पं० जयदेवशर्मा ने अनुवाद प्रकाशित कराया । अब ये हमारे सामने आचार्य्य वीरेन्द्र जी का अनुवाद है। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि मूल मन्त्र के नीचे कोष्ठक में मूल शब्द दियेब विना सीधा सादा अनुवाद है । हमारे पास समालोचनार्थ जो प्रति आई है । उस के अक्षर अनेक स्थानों पर कटे पटे से हैं, पढ़ने में पर्य्याप्त असुविधा होती है । वेद वाणी, मासिक पत्रिका के ये विशेष अंक हैं। अनुवादक को उन के पुरुषार्थ पर बधाई ।

स्वामी वेदानन्द तीर्थ

यज्ञ पद्धति—मीमांसा

आकार—$\frac{20\times30}{16}$, पृष्ठ संख्या ४+१६+२२४। सजिल्द, मूल्य ३) रुपया ।

लेखक—महामहोपदेशक श्री आचार्य विश्वश्रवाः वैदिक रिसर्च स्कालर; मन्त्री सार्वदेशिक उपदेशक विद्यालय समिति तथा सिद्धान्त समिति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

प्रकाशक— वेदमन्दिर, ६६ बाज़ार मोती लाल, बरेली (उत्तर प्रदेश)।

..युत आचार्य विश्वश्रवाः आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् व महोपदेशक हैं। इधर आप की कुछ रचनाऐं भी प्रकाशित होचुकी हैं। सब को देखने का तो मुझे अभी तक अवसर नहीं मिला, परन्तु प्रस्तुत 'यज्ञपद्धति-मीमांसा' नामक रचना में आपकी अनोखी सूझ और गम्भीर अनुसन्धान का पूर्ण परिचय प्राप्त हुआ है। आर्य जनता द्वारा समय २ पर दैनिक अग्नि होत्र के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की आशंकाओं का उद्भावन किया जाता रहा है। बहुत सी आशंकाओं ने तो आर्यसमाज के बड़े २ विद्वानों के मस्तिष्कों को भी हिला दिया। पर वे आशंका, आशंका ही बनी रहीं, और अन्त में उन को असमाधेय माना जाने लगा । आर्यजनता की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही तर्क प्रधान रहती रही हैं । किन्तु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी बात को वह इसलिये मानने को तय्यार नहीं कि यह 'बाबा वाक्य' है। उस के लिये प्रत्येक बात का आधार तर्क-मूल होना चहिये । अग्नि-होत्र के प्रसंग में इस प्रकार की अनेक अशंकाऐं उठाई जाती रही हैं। जैसे समिधाहुति के मन्त्र तीन हैं, या चार, एक ही मन्त्र से अनेक आहुति क्यों, जलप्रक्षेप या कुछ आहुतियों का दान, विशेष दिशाओं में क्यों, अग्नि-होत्र की ऋषि निर्दिष्ट न्यून से न्यून १६ आहुति कौन सी हैं, इत्यादि।

इन सब बातों पर इतना गम्भीर एवं ग्राह्य विवेचन, किसी भी अन्य आर्य विद्वान् के द्वारा प्रकाशित साहित्य में हमारे दृष्टि गोचर नहीं हुआ, जितना कि प्रस्तुत पुस्तक में श्री आचार्य जी ने किया है। इस के लिये प्रत्येक आर्यजन उन का चिर ऋणी रहेगा। हम आर्य जनता से अनुरोध करते हैं, कि अग्नि-होत्र के सम्बन्ध में प्रत्येक प्रकार की आशंकाओं का, प्रस्तुत पुस्तक द्वारा समाधान प्राप्त करे।

हमारे विचार से पुस्तक में कुछ अंश ऐसे अवश्य रह गये हैं, जिन का निर्देश और अधिक स्पष्टता के साथ होना चाहिये था। जैसे—पृष्ठ ४६ पर 'विश्वानि देव' की व्याख्या में ऋषि ने 'भद्र' पद के साथ भी 'सब' शब्द जोड़ा है; परन्तु आचार्य जी ने ऐसा नहीं माना। पृष्ठ ५० पर 'पुत्रासो यत्र पित्रो भवन्ति' का विनि-योग ठीक नहीं हुआ प्रतीत होता। तृतीय प्रकरण के समिधाहुति प्रसंग में आहुतियों का अन्तरिक्ष अथवा द्युलोक में पहुँचने का उल्लेख अर्थवाद मात्र ही समझना चाहिये, परन्तु इस का संकेत उक्त प्रसंग में नहीं किया गया। पृष्ठ १६५ पर लिखा है—'इन सब [याज्ञिक पद्धति-यों] का संकलन द्वापर के अन्त में व्यास द्वारा हुआ।' क्या उस से पूर्व काल में पद्धितियों का संकलन नहीं था? और क्या पूर्व काल की पद्धितियां कुछ और थीं? यदि हां, तो वे कौन सी थीं, इन सब बातों का भी संकेत होना चाहिए था पृष्ठ २०२ पर न्यून से न्यून १६ आहुतियों का निर्णय स्पष्ट नहीं है। कुछ साधारण मुद्रण अशुद्धियां भी रह गई हैं। आशा है, अगले संस्करणों के समय श्री आचार्य जो इन प्रसंगों पर अवश्य ध्यान देंगे।

पुस्तक प्रत्येक आर्य सज्जन के लिये संग्रा-ह्य है, ऐसी पुस्तक का तीन रुपया मूल्य कुछ नहीं।

उदयवीर शास्त्री

सम्पादकीय

राष्ट्रपति का चलचित्रों (फिल्मों) में स्त्री पुरुष सम्पर्क का विरोधः—

आचारिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रदर्शनी का १६-१०-५० को उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने कहा—'यदि मेरे वश में होता तो मैं स्त्री पुरुष सम्पर्क को उत्तेजित करने वाले समस्त चल चित्रों पर प्रतिबन्ध लगा देता।' उन्होंने स्त्री पुरुषों के सामाजिक मिलनों पर भी प्रतिबन्ध लगाने के पक्ष में अपने भाव प्रकाशित किये।

भारतीय संस्कृति में ब्रह्मचर्य का स्थान बहुत उच्च है। अतः यहां संयम का बहुत आदर है। पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा में ब्रह्मचर्य्य का कोई स्थान नहीं है। डेढ़ सौ वर्ष तक अंग्रेजों का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साहित्य समीक्षा

[समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी चाहियें । (सं)]

सामवेद संहिता सरल हिन्दी अनुवाद सहित ।

अनुवादक—आचार्य वीरेन्द्र जी शास्त्री एम. ए. प्रकाशक-वेद वाणी कार्य्यालय, बनारस ।

चारों वेदों में साम वेद सब से छोटा किन्तु हमारे विचार में सब से कठिन है । आर्य्य समाज को यह उचित गर्व प्राप्त है कि इस काल में सब से पहले आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक तथा आर्य्य समाजियों ने लोक भाषा में वेद-भाष्य, वेदानुवाद, वेदमन्त्रों के अर्थ सहित अनेक संग्रह प्रकाशित किए । स्वामी दयानन्द सरस्वती सब से प्रथम महामनुष्य हैं जिन्होंने युगों के पश्चात् वेद को सर्व साधारण की सम्पत्ति बताया और इस के विहित द्वार को खोल कर इस के अन्दर प्रविष्ट करने का मार्ग प्रशस्त किया । उन के अनुयायियों में प० तुलसीराम जी मेरठी ने संस्कृत तथा आर्य्य भाषा में साम वेद का भाष्य किया। श्री दया राम ने उर्दू अनुवाद प्रकाशित किया। इस के पश्चात् बंगाली पं० सत्या चरण ने संस्कृत तथा बंगला में अनुवाद किया। अनन्तर श्री संख्यतीर्थ पं० जयदेवशर्मा ने अनुवाद प्रकाशित कराया । अब ये हमारे सामने आचार्य्य वीरेन्द्र जी का अनुवाद है। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि मूल मन्त्र के नीचे कोष्ठक में मूल शब्द दियेब बिना सीधा सादा अनुवाद है । हमारे पास समालोचनार्थ जो प्रति आई है । उस के अक्षर अनेक स्थानों पर कटे पटे से हैं, पढ़ने में पर्य्याप्त असुविधा होती है । वेद वाणी, मासिक पत्रिका के ये विशेष अंक हैं। अनुवादक को उन के पुरुषार्थ पर बधाई । स्वामी वेदानन्द तीर्थ

यज्ञ पद्धति—मीमांसा

आकार—$\frac{२०\times३०}{१६}$, पृष्ठ संख्या ४+१६+२२४ । सजिल्द, मूल्य ३) रुपया ।

लेखक—महामहोपदेशक श्री आचार्य विश्वश्रवाः वैदिक रिसर्च स्कालर; मन्त्री सार्वदेशिक उपदेशक विद्यालय समिति तथा सिद्धान्त समिति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ।

प्रकाशक— वेदमन्दिर, ९९ बाज़ार मोती लाल, बरेली (उत्तर प्रदेश) ।

..युत आचार्य विश्वश्रवाः आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् व महोपदेशक हैं। इधर आप की कुछ रचनाऐं भी प्रकाशित होचुकी हैं। सब को देखने का तो मुझे अभी तक अवसर नहीं मिला, परन्तु प्रस्तुत 'यज्ञपद्धति-मीमांसा' नामक रचना में आपकी अनोखी सूझ और गम्भीर अनुसन्धान का पूर्ण परिचय प्राप्त हुआ है। आर्य जनता द्वारा समय २ पर दैनिक अग्नि होत्र के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की आशंकाओं का उद्भावन किया जाता रहा है। बहुत सी आशंकाओं ने तो आर्यसमाज के बड़े २ विद्वानों के मस्तिष्कों को भी हिला दिया। पर वे आशंका, आशंका ही बनी रहीं, और अन्त में उन को असमाधेय माना जाने लगा । आर्यजनता की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही तर्क प्रधान रहती रही हैं । किन्तु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी बात को वह इसलिये मानने को तय्यार नहीं कि यह 'बाबा वाक्य' है। उस के लिये प्रत्येक बात का आधार तर्क-मूल होना चहिये। अग्नि-होत्र के प्रसंग में इस प्रकार की अनेक आशंकाएं उठाई जाती रही हैं। जैसे समिधाहुति के मन्त्र तीन हैं, या चार, एक ही मन्त्र से अनेक आहुति क्यों, जलप्रक्षेप या कुछ आहुतियों का दान, विशेष दिशाओं में क्यों, अग्नि-होत्र की ऋषि निर्दिष्ट न्यून से न्यून १६ आहुति कौन सी हैं, इत्यादि।

इन सब बातों पर इतना गम्भीर एवं ग्राह्य विवेचन, किसी भी अन्य आर्य विद्वान् के द्वारा प्रकाशित साहित्य में हमारे दृष्टि गोचर नहीं हुआ, जितना कि प्रस्तुत पुस्तक में श्री आचार्य जी ने किया है। इस के लिये प्रत्येक आर्यजन उन का चिर ऋणी रहेगा। हम आर्य जनता से अनुरोध करते हैं, कि अग्नि-होत्र के सम्बन्ध में प्रत्येक प्रकार की आशंकाओं का, प्रस्तुत पुस्तक द्वारा समाधान प्राप्त करे।

हमारे विचार से पुस्तक में कुछ अंश ऐसे अवश्य रह गये हैं, जिन का निर्देश और अधिक स्पष्टता के साथ होना चाहिये था। जैसे—पृष्ठ ४६ पर 'विश्वानि देव' की व्याख्या में ऋषि ने 'भद्र' पद के साथ भी 'सव' शब्द जोड़ा है; परन्तु आचार्य जी ने ऐसा नहीं माना। पृष्ठ ५० पर 'पुत्रासो यत्र पित्रो भवन्ति' का विनियोग ठीक नहीं हुआ प्रतीत होता। तृतीय प्रकरण के समिधाहुति प्रसंग में आहुतियों का अन्तरिक्ष अथवा द्युलोक में पहुँचने का उल्लेख अर्थवाद मात्र ही समझना चाहिये, परन्तु इस का संकेत उक्त प्रसंग में नहीं किया गया। पृष्ठ १६५ पर लिखा है—'इन सब [याज्ञिक पद्धतियों] का संकलन द्वापर के अन्त में व्यास द्वारा हुआ।' क्या उस से पूर्व काल में पद्धितियों का संकलन नहीं था? और क्या पूर्व काल की पद्धितियां कुछ और थीं? यदि हां, तो वे कौन सी थीं, इन सब बातों का भी संकेत होना चाहिए था पृष्ठ २०२ पर न्यून से न्यून १६ आहुतियों का निर्णय स्पष्ट नहीं है। कुछ साधारण मुद्रण अशुद्धियां भी रह गई हैं। आशा है, अगले संस्करणों के समय श्री आचार्य जो इन प्रसंगों पर अवश्य ध्यान देंगे।

पुस्तक प्रत्येक आर्य सज्जन के लिये संग्राह्य है, ऐसी पुस्तक का तीन रुपया मूल्य कुछ नहीं।

उदयवीर शास्त्री

सम्पादकीय

राष्ट्रपति का चलचित्रों (फिल्मों) में स्त्री पुरुष सम्पर्क का विरोधः—

आचारिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रदर्शनी का १९-१०-५० को उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने कहा—'यदि मेरे वश में होता तो मैं स्त्री पुरुष सम्पर्क को उत्तेजित करने वाले समस्त चल चित्रों पर प्रतिबन्ध लगा देता।' उन्होंने स्त्री पुरुषों के सामाजिक मिलनों पर भी प्रतिबन्ध लगाने के पक्ष में अपने भाव प्रकाशित किये।

भारतीय संस्कृति में ब्रह्मचर्य का स्थान बहुत उच्च है। अतः यहां संयम का बहुत आदर है। पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा में ब्रह्मचर्य्य का कोई स्थान नहीं है। डेढ़ सौ वर्ष तक अंग्रेजों का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यहां राज्य रहा, उन्हों ने अपने राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिये अन्य साधनों के साथ अपनी शिक्षा पद्धति का प्रचार भी पूरे वेग से किया। गत पच्चास वर्षों के सहशिक्षा के चलन के साथ हमारे देश के नैतिक पतन के साधनों में एक और की वृद्धि हो गई। उसमें यदि कोई त्रुटि रह गई थी तो सिनेमा में दिखाए जाने वाले स्त्री पुरुषों के शृङ्गारसय चित्रों ने पूरा कर दिया। आर्यसमाज आरम्भ से इस का विरोध करता आया है। सहशिक्षा तथा वर्त्तमान समय का सिनेमा ब्रह्मचर्य का प्रबल विरोधी है। तभी तक राष्ट्रपति जी भी उस से व्यग्र हो उठे हैं। प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रपति जी की इस व्यग्रता को दूर करने का प्रयत्न करे। समाज सुधारकों को इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

दयापूर्वक प्राणहरण-योरुप तथा अमरीका में यह प्रचलत है कि वे असाध्य तथा अतिकष्ट-प्रद रोग से पीड़ित रोगी को उसे पीड़ा से मुक्त करने के लिये उस पर औषध विशेष अथवा किसी अन्य ऐसे उपाय का प्रयोग करते हैं जिस से अनायास उस की मृत्यु हो जाए। इस दया-पूर्वक प्राणहरण को वे दया समझते हैं। स्वर्ग्य महात्मा गांधी जी ने भी एक बार अपने सांवर मती आश्रम में कराह रहे बछड़े को गोली लगवा कर दुःख से छुड़ाया था। भारतीय संस्कृति में पले अनेक भारतीयों ने महात्मा जी के इस कृत्य पर घोर आपत्ति की थी।

वाशिंगटन में समवेत विश्व-चिकित्सक सम्मेलन ने १८ अक्तूबर को इस दयामयी हत्य के विरुद्ध अपना मत प्रकाशित किया है। मत प्रकाशित करने से पूर्व उन चिकित्सकों ने इस पर पर्य्याप्तवादविवाद किया।

फ्रांस के चिकित्सक डा० पाऊ मैल्लौ ने बताया कि 'मेरी माता सप्ताहों भयानक कैन्सर से पीड़ित रही और अन्त में इसी से उस का प्राणान्त हुआ किन्तु मेरे किसी साथी चिकित्सक ने उस के दुःख को घटाने के लिए उस की दया पूर्वक हत्या का सुझाव न दिया।' उस ने बताया इस दयापूर्वक प्राणहरण का चिकित्सकों द्वारा अनुमोदन अपराध के अनेक नए मार्ग खोल देगा।

स्वीकृत प्रस्ताव में कहा गया है कि 'दया पूर्वक प्राणहरण जनहित एवं चिकित्सा सिद्धान्तों के प्रतिकूल है और जातीय तथा नागरिक अधिकारों के भी विरुद्ध है।' प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया गया कि प्रत्येक देश की चिकित्सक मण्डल इस का प्रत्येक दशा में घोर विरोध करे।

वैदिक साहित्य सम्मेलन—विरजानन्द वैदिक संस्थान तथा सार्वदेशिक दयानन्द सन्यासिवान प्रस्थ मण्डल के अध्यक्ष स्वामी वेदानन्द तीर्थ तथा दयानन्द मठ के अध्यक्ष श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के उद्योग से गतवर्ष वैदिक साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन गतवर्ष विजयादशमी के पर्व से दो दिन पश्चात् वानप्रस्थाश्रम में सम्पन्न हुआ। यद्यपि उस में भाग लेने वाले विद्वानों की संख्या थोड़ी थी, तथापि निबन्ध आदि की दृष्टि से वह सम्मेलन सफल कहा जा सकता है। सम्मेलन में पधारे विद्वानों के परामर्श इस को स्थायी रूप देने का निश्चय किया और उस निश्चय को कार्य रूप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में परिणित करने बिहार प्रान्त के विद्वान् नेता श्री स्वामी अभेदानन्द सरस्वती जी ने अगला अधिवेशन पटना में करना निश्चित हुआ। श्री स्वामी जी ने सूचना दी है कि आगामी अधिवेशन आगामी अप्रेल मास में किया जाएगा। उस के लिए समुचित प्रबन्ध करने में अभी से वे संलग्न हैं। निम्नांकित विषयों पर निबन्ध पढ़ने के लिए विद्वानों से प्रार्थना की गई थी। वैदिक विद्वानों को निमन्त्रण भेजे जा रहे हैं। किसी कारण यदि किसी विद्वान् को निमन्त्रण-पत्र न मिले तो वह इस भूल की उपेक्षा करते हुए सम्मेलन को सफल बनाने के लिए अपना सहयोग प्रदान करें। आशा है श्री स्वामी अभेदानन्द सरस्वती जी के पुरुषार्थ एवं विद्वज्जनों के सहयोग से सम्मेलन पूर्णतया सफल होगा।

श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी का शुभ प्रत्यागमन—श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी आर्य्यसमाज की एक विभूति हैं। वे उच्च कोटि के विरक्त सन्यासी हैं। वैदिक धर्म तथा आर्य-समाज से उन्हें अगाध अनुराग है, उन्हों ने देहली में हुए स्वागत सम्मान का उत्तर देते हुए कहा—'माधव एह जीवन अब तेरे लेखे।' लगभग डेढ़ वर्ष की बात है, इन पंक्तियों के लेखक से स्वामी जी ने पूछा 'मारिशस वाले बार बार बुला रहे हैं, तुम्हारी क्या सम्मति है।' लेखक के मुख से अनायास निकला कि—'हां,हो आइए, स्वामी जी ने जा ने की इतनी त्वरा की कि गत-वर्ष २६-१०-५० को देहली से विदेश के लिए चल ही दिए। निस्सपृह इतने कि चुपचाप से चल दिए। लगभग दो मास अफ्रीका में रहकर वे मारिशस द्वीप में चले गए। चार मास यहां रहकर आर्यसमाजों की फूट मिटा कर उनको एकता सूत्र में पुनः आबद्ध कर दिया। वहां से वे पुनः अफ्रीका गए। ६-१०-५० को मुम्बासा से जलपोत द्वारा चलकर १६-१०-५० को बम्बई पधारे। लगभग एक सप्ताह वहां रहकर २४-१०-५० को देहली पधारे। अपने आने की तिथि की सूचना देने का उन्हों ने निषेध कर दिया। किन्तु भावुक आर्यसमाजिक अपनी श्रद्धा भक्ति की व्यक्ति की युक्ति निकाल हो ली और स्वामी जी को झुकना पड़ा। २६-१०-५० को आर्यसमाज मन्दिर दीवानहाल में म० कृष्ण के सभा पतित्व में एक विराट सभा हुई जिस में देहली विविध समाजों एवं अन्य संस्थाओं द्वारा श्रद्धाञ्जलि भेंट की गई तथा अभिनन्दन पत्र दिया गया। स्वामी जी ने अपने भाषण में विदेश प्रचार पर विशेष बल दिया।

श्री स्वामी जी मण्डल के संस्थापकों में एक तथा आरम्भ से उप प्रधान हैं। वेदपथ पर उन की आरम्भ से कृपादृष्टि रही है। हम हृदय से उन का स्वागत करते हैं।

तिब्बत पर चीन का आक्रमण एवं अधिकार:—तिब्बत अत्यन्त पुरातन काल में भारत का ही एक अंग था। मानव सृष्टि का आरंभ तिब्बत में ही हुआ और अनन्य वेद ज्ञान का प्रदान भी भगवान् ने वहीं किया। समय पा कर आर्य्यों का जहां अनेक प्रदेशों से सम्बन्ध छूटा, वहां तिब्बत से भी टूटा। बौद्ध-मत के यौवन काल में भारत का तिब्बत से पुनः संबन्ध बना, तब से वह सम्बन्ध किसी न किसी रूप में निरन्तर बना रहा। संसार के राजनैतिक उलट फेर से एक समय वह चीनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साम्राज्य का अंग बन गया । पश्चात् नाम मात्र चीन के अधीन होता हुआ सर्वथा स्वतन्त्र हो गया। तिब्बत के साथ चीन रूस तथा भारत की सीमाएं मिलती हैं। अंग्रेजी शासन के समय भारत को भी कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हो गए थे। कोरिया का युद्ध आरंभ होने पर तिब्बत पर चीन द्वारा आक्रमण होने की चर्चा सुनाई देने लगी । जब चीनी सेनाओं ने तिब्बत की ओर अभियान किया तब भारत सरकार ने चीन को ऐसा करने से रोका। भारत के इस मैत्री पूर्ण परामर्श को चीन सरकार ने तिरस्कार पूर्वक ठुकरा दिया और चढ़ाई कर दी । अब तो चीन सरकार ने वहां अपना अधिकार कर लिया है। निरीह शान्त प्रकृति तिब्बत पर अब लाल चीन का झंडा लहराने लगा है। यू० एन० चुप है।

नैपाल में राज्य क्रान्तिः—लगभग एक सौ वर्षों से नैपाल के महाराजाधिराज सपरिवार बन्दियों का सा जीवन बिता रहे हैं। वास्तविक सत्ता वहां के प्रधान मन्त्री के हाथ रहती है, प्रधान मन्त्री का पद योग्य मनुष्य को नहीं दिया जाता, प्रत्युत वंश विशेष—राणावंश—के मनुष्यों ने हथिया रखा है। उस के कुशासन के विरुद्ध जनता में घोर असन्तोष रहा है। वहां के महाराजाधिराज त्रिभुवन विक्रम सिंह की सहानुभूति जनता के साथ थी। एक समय आया कि अपने इन क्रान्तिकारी विचारों के कारण उसे भारत के राजदूतावास में शरणागत होना पड़ा और अब भारत सरकार के अतिथि हो कर देहली आ चुके हैं। नैपाल में जनता की सेना ने राणाओं की रानाशाही से युद्ध ठान रखा।

जार्ज बर्नार्डशा का शरीरान्तः—महाकवि शा संसार के श्रेष्ठतम नाटककार थे। अंग्रेजी भाषा में शेक्सपियर के पश्चात् शा के सम प्रतिभाशाली नाटककार कोई नहीं हुआ। की व्यङ्गोक्ति बहुत ही हृदय हारिनी थी। शा प्रतिभा सर्वतो मुखी थी। संसार के लोग प्रत्ये विषय पर उन की सम्मति जानने को उत्सु रहा करते थे। शा वर्त्तमान युग का एक ब बड़ा विचारक था । वह अपने आप कम्यूनिस्ट (वर्गवादी) मानता था। उस अपने स्वाध्याय सदन में स्टालिन तथा महा बुद्ध के चित्र लटका रखा था। इतना होने पर यह ईश्वर की सत्ता में श्विास रखता था। की अन्त्येष्टिक्रिया ईसाईपद्धति से कराने पादरी ने उस के ईश्वर विश्वासी होने में की 'सेंटजान नामक पोथी का प्रमाण रू प्रस्तुत किया।

शा की शव उस की इच्छा के अनु जलाया गया, दबाया नहीं गया। शा निरामिषभोजी था। मद्यपानादि व्यसनों से मुक्त था।

यद्यपि वह आयरलेंड में उत्पन्न हुआ तथापि उस ने इंग्लेंड को घर बना लिया कम्यूनिस्ट होते हुए भी वह देश द्रोही नहीं उस ने कई बार लिखा कि समाजवादी सिद्धा के क्रियात्मक व्यवहार में इंगलेंड रूस से आगे बढ़ा हुआ है । इंगलेंड इतना प्रोप नहीं करना जितना रूस करता है। गत २ को महामनुष्य का देहान्त हो गया।

श्री लाला नारायणदत्त जी का देहा

६ ११.५० को प्रातः काल आठ बजे के आर्य्यसमाज के स्तंभ ला० नारायणद का देहावसान हो गया । लाला जी लगभ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वर्ष से रुग्न चले आ रहे थे। गत एक मास को छोड़ कर शेष समय में उन्हों ने रोग के आगे हार मानने से सदा इनकार किया। देहली आने से पूर्व लाला जी पटियाला राज्य में बन्दोबस्त अफ़सर थे। अपने सरकारी कार्य्य से निपट कर वे प्रतिदिन बाज़ारों में वैदिक धर्म का प्रचार किया करते थे। देहली में उन का घर आर्य्य समाजिकों तथा अन्य देश भक्तों के लिए मुक्त धर्म्मशाला था। लाला जी एक चलती फिरती संस्था थे। वे सार्वदेशिकार्य्य प्रतिनिधि सभा के आ जीवन सदस्य थे। तथा उक्त सभा के कोषाध्यक्ष भी थे। पंजाब की आर्य्य-प्रतिनिधि सभा के भी उपप्रधान आदि कई पदों को संभालते रहे। दीवानहाल, पाटौदीहाऊस का आर्य्य अनाथालय, आदि आदि अनेक संस्थाएं, एक प्रकार से लाला जी के स्मारक हैं। सदाचार अतिथि सेवा, लोकसेवा की लाला जी मूर्त्ति थे। वे कर्म्म को जीवन में प्रधान मानते थे। आर्य्यसमाज के लिए उन के हृदय में सब से अधिक एवं उच्च स्थान था। वे प्रत्येक उस कार्य्य में सहयोग देने को तत्पर रहते थे, जिस से आर्य्यसमाज को लाभ होने की सम्भावना हो। उन के निधन से देहली के सार्वजनिक जीवन में एक ऐसा अभाव उत्पन्न हो गया है, जिस की पूर्त्ति की न्यून आशा है। उन के निधन से उन के परिवार तथा उन के प्रेमी जनों का दुखित होना स्वाभाविक है। उनके साथ ही समाज भी उनके अभाव को लज्जिता से अनुभव कर रहा है। शरीरन्त के समय लाला जी की आयु ८१ वर्ष २ मास ७ दिन थी।

श्री ला० लाजपतराय के चित्र का उद्घाटन—१ मार्ग शीष २००७ वि० को देहली के दीवान हाल आर्य्य समाज के समीपवर्त्ती लाजपतराय मार्केट में श्री मती सुचिता कृपालानी ने पंजाब के अद्वितीय राजनैतिक नेता ला० लाजपतराय के तैल चित्र का उद्घाटन किया। उद्घाटन समारोह मार्केट के मध्यवर्ती पारक में सायं काल को सम्पन्न हुआ। जनता को श्री मती कृपालानी ने बतलाया कि देश के वास्तविक राजा तुम ही हो, अतः तुम सावधान रहो ताकि राजतन्त्र में तुम्हारे द्वारा नियुक्त जन प्रमादी न हो जाए। लाला जी के गुणों का वर्णन करते हुए श्री मती ने बतलाया कि लाला जी केवल राजनैतिक क्रान्ति की इच्छुक थे, वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में क्रान्ति चाहते थे।

श्री मती के पश्चात् वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर के अध्यक्ष श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ ने अपने ओजस्वी भाषण में लाला जी के देश के निमित्त कार्य्यों का विस्तृत वर्णन सुनाते हुए पंजाबियों को संघठित होकर कार्य्य करने की प्रेरणा की।

इसके पश्चात् श्री चम्पतराम एम० ए० ने एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से अनुरोध किया कि शिमला से लाला जी की मूर्त्ति देहली में लाकर स्थापित की जाए। श्री मा० शिवचरणदास जी, श्री गणेशा सिंह जी के भाषणों के पश्चात् प्रस्ताव के सर्व सम्मति से स्वीकृत हो जाने पर एक सज्जन ने यह सुझाव रखा कि वह मूर्त्ति तो शिमला में रहने दी जाए और यहां नई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मूर्त्ति स्थापित की जाए।

लाला जी आर्य्य समाजी थे। उन्हें देश भक्ति आर्य्य समाज से मिली थी, वे अपने व्याख्यानों में ऋषि दयानन्द को अपना पिता एव आर्य्यसमाज को माता कहा करते थे। उन्हों ने राजनैतिक क्षेत्र में उस समय पदार्पन किया जब वर्त्तमान नेताओं में से अनेकों का तो जन्म भी नहीं हुआ था और अनेक विलासिता का जीवन बिता रहे थे। लाला जी की मृत्यु काहेतु अंग्रेजी सरकार की पोलिस की लाठी का प्रहार था। वर्तमान सरकार के कर्णधार उनको प्रायः भुला ही चुके हैं, क्योंकि उन में से कोई इस समारोह में न था। जिन के बलिदान से देश को स्वतन्त्रा मिली है। उनको भुलाना कृतघ्नता है।

स्वाध्याय सन्दोह

'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म्म है' इस आर्ष आदेश के पालन करने की सुविधा के विचार से ही इस ग्रन्थरत्न की रचना की गई है। इसका पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया था। मांग बराबर थी। उसे पूरा करने के लिए दूसरा संस्करण छपाया है। इसमें कुछ बढ़ाया भी गया है। परिवर्धन होने पर भी मूल्य केवल ६) रखा है। कागज आदि की महंगाई के कारण थोड़ी प्रतियां छपवाई जा रही हैं। अतः शीघ्र अपनी प्रति के लिए निश्चिन्त हो जाइए। प्रतिदिन के स्वाध्याय के लिए इससे बढ़िया पुस्तक आप को इस समय और नहीं मिल सकती। विद्वान् तथा सामान्य सभी प्रकार के लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। मूल्य ६) डाक व्यय पृथक।

मांस मदिरा निषेध—मूल्य , १००प्रति इकट्ठी लेने वाले को =)प्रति के हिसाब से; डाक व्यय पृथक

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः—'विश्वानि देव—आदि आठ मन्त्रों की ललित, मनोहारिणी, मग्न कर देने वाली व्याख्या। मूल्य =)॥, १०० प्रति का १२॥) साढ़े बारह रुपये। मूल्य पेशगी भेजने वाले से डाक महसूल भी नहीं लिया जाता।

नैमित्तिक वैदिक पाठ—प्रातःकाल से लेकर रात्रि को सोने के समय तक के विविध अवसरों पर के लिये पठनीय वेद-मन्त्रों का संग्रह। मन्त्रों के साथ सुन्दर भावार्थ तथा शब्दार्थ मूल्य ।) चार आने। डाक व्यय पृथक्। एक प्रति मंगाने वाले ।-) का टिकट भेजें।

मिलने का पता—अध्यक्ष—सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासिवानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म ॥

उपनिषत्सार (५)

मुण्डकोपनिषत्सारः

समुद्धर्त्ता

वे. शा. स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

प्रकाशक

विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालपुर

संवत् २००७

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

अथ मुण्डकोपनिषत्सारः

आमुख

प्राचीन परम्परा के अनुसार प्रामाणिक उपनिषदों का क्रम यह है—ईश, केन, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक। इन में से ईश, कठ तथा प्रश्न उपनिषदों के सार लिखे जा चुके हैं। क्रम प्राप्त मुण्डकोपनिषत् का सार ... कराने लगे हैं। प्रत्येक उपनिषत की अपनी विशेषता है। यथा ईशोपनिषत् मूल वे... चालीसवां-अन्तिम-अध्याय है। उस में ब्रह्म विद्या का मूल है। केन की विशेषता ... महत्ता निरूपण में है। कठ में प्रधान विषय आत्मा की अजन्मता एवं अमरता है, ... सारोप वर्णन किया गया है, प्रश्न में छः प्रश्नों द्वारा अध्यात्म विद्या के मुख्य अंगों का... पादन है। माण्डूक्य में ओङ्कारोपासना का चामत्कारिक निरूपण है। तैत्तिरीय ... कोशों के वर्णन के साथ अध्यात्मतत्व का सुन्दर वर्णन है। ऐतरेय में आत्मवि... में मानव शरीर की उत्कृष्टता का पालन किया गया है। छान्दोग्य में नाना आख्यानों ... अध्यात्म विद्या के सभी अङ्गों का निरूपण हुआ है। बृहदारण्यकोपनिषत् को सर्व... से ईशोपनिषत् की एक विश्रिङ्खल व्याख्या Running commentary माना जाता... प्रकृत मण्डकोपनिषत् में उस तत्व का वर्णन है 'जिस के जान लेने पर सब ... जाना जाता है।" इस कारण इस में ब्रह्मविद्या के प्रायः सारे विषय आगये हैं।

इस में तीन मुण्डक हैं, प्रत्येक मुण्डक में दो दो खण्ड हैं। इस का सम्बन्ध ... वेद से बताया जाता है।

शङ्कराचार्य्य आदि व्याख्याकारों के अनुसार प्रत्येक उपनिषत् के आरंभ तथा ... में शान्ति पाठ का पढ़ना अनिवार्य्य है ऋग्वेदीय उपनिषदों का शान्ति पाठ इस प्रकार है—

> वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमावीरावीर्म एधि।
> वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीर नेना धीतेना होरात्रे सन्दधामि,
> ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु,
> मा भवतु वक्तारभवतु वक्तारम् ॥

इस से एतेरेयोपनिषत् के आरम्भ तथा अवसान में इस का पाठ होना चाहिए ... का अर्थ ऐतरेयोपनिषत् के सार में लिखा जाएगा।

याजुषोपनिषदों—ईश, कठ, तैत्तिरीय तथा बृहदारण्यक—का शान्ति पाठ यह है—

> सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
> ते जस्वि नानधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥ ओ३म् शान्तिः शान्ति शा...

इस का अर्थ तैत्तरीयोपनिषत्सार में लिखेंगे।

सामवेदीय उपनिषदों—केन तथा छान्दोग्य—का शान्ति पाठ निम्नलिखित वाक्य ...

> आप्यायन्तु म माङ्गानि वाक् प्राणश्चचः श्रोत्र मथो बलमिन्द्रियाणि च ...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्य्यां मा मा ब्रह्म निराकरोद् ।
अनिराकरणम स्वनिराकरणमस्तु ।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्म्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

इस का आशय छान्दोग्योपनिषत्सार में लिखा जाएगा।

आथर्वण उपनिषदों—प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य,—का शान्ति पाठ इस प्रकार है—

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरै रङ्गैस्तुष्टुवा थं सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ये दोनों मूल वेद के मन्त्र हैं। इन का संक्षिप्त अर्थ यह है—

हम कानों से भला सुनें, भजनशील होते हुए हम आंखों से भला देखें। स्थिर, दृढ़, अक्षत अङ्गों एवं शरीरावयवों के द्वारा भगवान् की स्तुति करते हुए जो भगवान् का दिया आयु—जीवनावधि, सुख दुःखभोग—है उसे भोगें॥

वर्धमान यश वाला ऐश्वर्य्यसम्पन्न भगवान हमारे लिये कल्याणकारी होवे, सर्वज्ञ अतः सब को यथायोग्य पोषण—जीवन साधन का दाता भगवान् हमारा मंगल करे, अक्षत व्यवस्था वाला सर्वरक्षक प्रभु हमारा कल्याण करे। सब से महान् भगवान्, बड़ों का भी पालक जग—चालक परमात्मा हमारे कल्याण को पुष्ट करे॥

पहले मन्त्र में इन्द्रियों के उचित व्यवहार करने की कामना के साथ, शरीर को दृढ़, पुष्ट एवं अक्षत रखते हुए भगवान् की स्तुति [स्तुति से तात्पर्य्य स्तुति प्रार्थनोपासना तीनों हैं] करते रहने की कामना की है और साथ ही भगवान् की दी आयु तथा भोग्यसामग्री भोगने की कामना की है।

इस से स्पष्ट ध्वनित होता है कि जीवन तथा जीवनोपयोगी भोग सामग्री का दाता विधाता परमात्मा है। इस को ईशोप० के 'तेने त्यक्तेन भुंजीथाः' वाक्य से मिलाइए। उस के दिए का भोग कर। ईशोपनिषत् में भगवान ने जो बात आदेश के रूप में उपदेश की है, इस शान्ति मन्त्र में साधक के मुख से प्रार्थना के रूप में वह कहलाई गई है। भाव दोनों का एक है।

दूसरे मन्त्र में परमात्मा को क्रमशः सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न, सर्वज्ञ, पोषण कर्त्ता अक्षत व्यवस्था वाला अतएव महान् भगवान् के रूप में प्रकट किया गया है। अर्थात् ऐश्वर्य्य की कामना है तो भगवान् की शरण में जा आ। ऐश्वर्य्याधि पति होने तथा सर्वज्ञ=सब के कार्यों तथा तदनुसार उन की आवश्यकताओं को जानने के कारण वही सब का पालक पोषक है। उस की व्यवस्था

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अक्षत है। कोई उसे तोड़ नहीं सकता। कोई उस का उल्लंघन नहीं कर सकता। अर्थात् भगवान् सर्व शक्तिमान् है। अतएव वह बृहस्पति=सर्वतो महान् है, महान् से महान् का पालक है।

तनिक सा मनन किया जाए तो ये शान्ति मन्त्र उपनिषत में वर्णित विषयों की ... हैं। यह बात सार के पाठ से स्पष्ट हो जाएगी।

भूल त्रुटि का रह जाना अल्पज्ञों के कार्य्य में असंभव नहीं है। अतः विज्ञ जनों से ... पूर्वक प्रार्थना है कि अपनी स्वाभाविक कृपा से उसे जताने की कृपा करें जिस से अगले संस्करण में सुधार हो सके।

[स्वामी वेदानन्द]

उत्थानिका

इस उपनिषत् की उत्थानिका इस प्रकार है:—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्म विद्यां सर्वविद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह ॥१।१।१
अथर्वणेयां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवा चाङ्गिरे ब्रह्म विद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्य वाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परवाराम् ॥१।१।२
शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ ।१।१।३

विश्व का कर्त्ता (व्यवस्थापक) संसार का रक्षक ब्रह्मा देवों में प्रथम हुआ। उस ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व=अथर्वा को सर्व विद्याओं की प्रतिष्ठा ब्रह्म विद्या का उपदेश किया। ब्रह्मा ने अथर्वा को जिस ब्रह्म विद्या का उपदेश किया, अथर्वा ने उस का अङ्गिर को किया, उस ने भरद्वाज गोत्री सत्यवाह को उपदेश किया और उस ने आगे उसे परावर विद्या अङ्गिरस=अङ्गिरा को उपदेश किया। महाशाल शौनक ने विधि पूर्वक अङ्गिरस की सेवा में उपस्थित हो कर प्रश्न किया।

ब्रह्मा के सम्बन्ध में कई लोगों का विचार है कि वह पौराणिक त्रिदेव में एक है। क्योंकि उस का यहां एक विशेषण विश्वस्य कर्त्ता 'संसार का कर्त्ता' दे रखा है। यह पौराणिक देवमाला के सभी विज्ञों को ज्ञात है कि उस त्रिदेव में ब्रह्मा को सृष्टि कर्त्ता माना जाता है। इस उपनिषत् में से ब्रह्मा को विश्वस्य कर्त्ता कह कर स्पष्ट ही उस की ओर निर्देश हुआ है और वह देवों में प्रथम भी है। हम इसे अत्यन्त प्रसन्नता से स्वीकार कर लेते यदि 'ब्रह्मा' के साथ भुवनस्य गोप्ता विशेषण यहां पठित न होता। यह अबालवृद्ध, मूर्ख, विद्वान् सभी जानते हैं कि पौराणिक त्रिदेव में ब्रह्मा का कार्य्य जहां सृष्टिरचना है, वहां सृष्टि पालन कार्य्य विष्णु का है, अतः यह पौराणिक ब्रह्मा नहीं हो सकता और न ही इन वाक्य खण्डों के ये अर्थ ही हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर्त्ता का अर्थ सदा 'बनाने वाला' ही नहीं होता। धर्म शास्त्रों में एक शब्द आता है— 'परिवार का कर्त्ता' सभी को विदित है कि इस पद का अर्थ होता है—'परिवार का व्यवस्थापक' इस रीति से विश्वस्य कर्त्ता का अर्थ होता है संसार का व्यवस्थापक। मनुस्मृति में लिखा है —अग्निवायुरविभ्यस्तु भयं ब्रह्म सनातनम् दुदोह यज्ञसिध्यर्थ ऋग्यजुसामलक्षणम् ॥(१।२३)

ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, रवि तथा अङ्गिराः से (अङ्गिरा का मनु के एक दूसरे श्लोक में उल्लेख है) गद्य, पद्य, गानात्मक वेदमय को यज्ञ सिद्धि =संसार व्यवस्था की सिद्धि के लिए प्राप्त किया। इस से सिद्ध होता है कि ब्रह्मा वह आदि विद्वान् है जिसने वेद प्रापक ऋषियों से चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर व्यवस्था स्थापित करने का यत्न किया। व्यवस्था की स्थापना के कारण उसे भुवनस्य गोप्ता=जगद्रक्षक कहना अत्यन्त समुचित है। सृष्टि के आरम्भ में वह चारों वेदों का विद्वान् होने के कारण देवों=विद्वानों में प्रमुख था। देव का अर्थ विद्वान् होता है।

एक और हेतु से भी यहां ब्रह्मा का अर्थ त्रिदेवों में अन्यतम नहीं माना जा सकता, उस के पुत्रों में अथर्वा का नाम कहीं नहीं गिनाया गया। अतः ब्रह्मा का तात्पर्य्य वही है जो हम ने यहां निरूपण किया है।

ब्रह्मा से यह विद्या उस के ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को मिली, अथर्वा से अङ्गिर को, अङ्गिर से सत्यवाह को, सत्यवाह से अङ्गिरस को प्राप्त हुई। और उस से शिक्षा प्राप्त करने शौनक उपस्थित होते हैं। यह परम्परा उस की प्रामाणिकता जताने के लिये लिखी गई है।

यहां ब्रह्मविद्या को 'सर्वविद्या प्रतिष्ठा' एवं 'परावरा' कहा गया है। जो सर्वथा यथार्थ है। यह बात सार में स्पष्ट हो जाएगी।

शौनक को महाशाल कहा गया है। महा- शाल का अर्थ है बड़ी शाला या शालाओं वाला। अर्थात् शौनक दरिद्र नहीं था, सम्पन्न धनी था। ब्रह्मविद्या का अधिकार वास्तव में उस मनुष्य को है जिस की सांसारिक भोगों को भोगने की वासनाए शान्त हो चुकी हैं जो सांसारिक विषयों से केवल तृप्त ही नहीं वरन् उब चुका है। इस तत्व को बताने के लिए शौनक को महाशाल कहा गया है।

आर्य्यधर्म्म में कुछ मर्यादाएं हैं। उन का पालना अनिवार्य्य है। जिज्ञासु शिष्य के लिए भी मर्यादा है कि वह गुरु के पास रिक्त हस्त न जाए, समित्पाणि हो कर जाए। जैसा कि इसी उपनिषत १।२।१२ में शिष्य को **समित्पाणिः** कहा है। इस शब्द का आपाततः अर्थ होता है— **समिधा हाथ में लेकर**। उपनिषत् रहस्य को न समझने वाले कई महानुभावों ने इस का भाव यों व्यक्त किया है कि ऋषि लोग जंगलों में रहते थे, यज्ञ याग करते थे, अतः जो उन से कुछ पूछने जाता था, वह समिधा=यज्ञ कुण्ड में डालने योग्य लकड़ी अवश्य ले जाता था। हमारे विचार में यह कथन निस्सार है। समित्=समिधा का अर्थ है—भली प्रकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यक्त प्रकाशित करने का उपाय। अर्थात् शिष्य जब किसी गुरु के पास जाए तो उस के व्यवहार से ही प्रकट हो जाए कि वह श्रद्धासंपन्न है। इसी उपनिषत् के अन्त में कहा भी है:—

क्रियावन्ताः श्रोत्रिया: ब्रह्मनिष्ठा स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः।
तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ३।२।१०

क्रिया कुशल, वेदाध्यायी, ब्रह्म में दृढ़ अवस्था रखने वाले श्रद्धासंपन्न महात्मा स्वयं एकर्षि=परमात्मदेव का दान करते हैं। यह ब्रह्मविद्या उन्हीं को उपदेश करनी चाहिये जिन्हों ने विधि पूर्वक शिरोव्रत पालन किया है, अर्थात् जिन्हों ने इस के लिये दीक्षा ली है। गुरु के लिये भी मर्यादा है, वह स्वयं अध्यात्मयोग की क्रिया में कुशल हो, वेदज्ञ हो, परमात्मभक्त हो, श्रद्धालु हो।

इस बात को १।२।१२ में इस प्रकार व्यक्त किया गया है:—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

इस विद्या की प्राप्ति के लिए वह समित्पाणि हो कर श्रोत्रिय=वेदज्ञ तथा ब्रह्मनिष्ठ आस्तिक गुरु की सेवा में जाए।

गुरु शिष्य के सम्बन्ध में १।२।१३ में इतना और कहा है:—

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्त चित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षर पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविधाम्॥

ज्ञानी गुरु उस श्रद्धा पूर्वक आए हुए, भली प्रकार शान्त चित्त अर्थात् दान्त तथा शमयुक्त शान्त शिष्य को इस प्रकार यथार्थ रूप में ब्रह्मविद्या का उपदेश करे कि जिस से वह अक्षर=अविनाशी पुरुष को ठीक ठीक जान जाए।

इस बात को मनुस्मृति में इस प्रकार कहा गया है—

विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्।
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा॥ (२।११४)
यमेव तु शुचिं विद्यान्नि यतब्रह्म चारिणम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमा-दिने॥ (२।११५)

विद्या ब्राह्मण के पास आकर बोली—'मैं तेरी कल्याण निधि हूँ, मेरी रक्षा कर। असूयक (गुरुद्रोही) को मेरी दान मत करना, यतः अत्यन्त शक्ति शालिनी हो सकूँ। जिस को तू पवित्र एवं नियमेन ब्रह्मचर्य्य सम्पन्न जाने, उस निधि रक्षक, प्रमाद रहित विप्र को मेरा उपदेश करना।

निरुक्त में भी ऐसी ही बात कही है—

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्य्यवती तथा स्याम॥ २।४।१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्य्योपपन्नम् ॥
यस्ते न द्रुह्येत कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्निति ॥ २।४।४

विद्या ब्राह्मण के पास आई [और बोली] मेरी रक्षा कर, मैं तेरी कल्याण निधि हूँ, असूयक, कुटिल, असंयमी को मेरा उपदेश न करना ताकि मै शक्ति शालिनी हो सकूं। जिसे तू पवित्र, प्रमादरहित, मेधावी, ब्रह्मचर्य्य संपन्न समझे और जो तुझ से कभी भी द्रोही न करे, हे ब्रह्मन्! उस निधि रक्षक विप्र के प्रति मेरा उपदेश करना।

इस उद्धरण के अन्त में आया 'इति' शब्द बतलाता है कि यह किसी पुरातन ग्रन्थ का उद्धरण है।

शिष्य को मेधावी कहने का विशेष प्रयोजन है। यह देखा गया है कि अनेक सज्जन ब्रह्मवेत्ता गुरु की शरण में पहुँचे हैं। गुरु ने उन्हें योग्य उपदेश भी कर दिया। किन्तु वे गुरु के पास से उठते ही उसे भूल गए। ऐसे सज्जन गुरु भक्त, श्रद्धालु होते हुए भी यथायोग्य लाभ नहीं उठा सकते। इस वास्ते उपदेश गुरु शिष्य की मेधा=धारणावती बुद्धि को भी अवश्य देखता है।

अङ्गिराः (अङ्गिरस) ने शौनक को शिष्य के सब लक्षणों से सम्पन्न पाया, अतः उसे ब्रह्मविद्या का यथार्थज्ञान प्रदान किया, जैसा कि इस उपनिषत् के अन्तिम वाक्य में उल्लिखित है—

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच, नैतदचीर्णव्रतोऽधीते, नमः परमऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः ॥

पुराने समय में अङ्गिरा ऋषि ने इस विद्या का ठीक ठीक उपदेश किया था। इस विद्या को अचीर्यव्रत (जिस ने व्रत का विधिवत पालन नहीं किया) पढ़ने का अधिकारी नहीं है परमऋषियों को नमस्कार, परम ऋषियों को नमस्कार "

जिस महापुरुष ने ऋषि अङ्गिरा तथा महाशाल शौनक के इस अत्यन्त उपकारी, आत्म-तृप्तिकारी उपदेश का संग्रह किया, उस अथर्ववेदाभ्यासी अज्ञातकुल गोत्र मुण्डक ऋषि को हम कैसे धन्यवाद दें। आचन्द्र दिवाकर संसार उन का उन के इस निष्काम परोपकार के लिये कृतज्ञ हेगा।

अथ मुण्डकोपनिषत्सारः

महाशाल शौनक ने परावरज्ञ अङ्गिरस् ऋषि से प्रश्न किया—

कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' इति ॥ १।१।३=महाराज ! किसके जान लेने पर यह सब कुछ जान लिया जाता है।

कितना गम्भीर प्रश्न है। उपनिषदों का यह मार्मिक प्रश्न है। इस प्रश्न से ज्ञात हो रहा है कि ब्रह्मविद्या खिलवाड़ नहीं है। ब्रह्मविद्या के ज्ञाता को सर्वविद्या विधान होना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषिप्रवर इस का उत्तर देते हैं—

द्वे विद्ये ह वेदितव्ये परा चैवापरा च=दो विद्याएं जाननी चाहिएं एक परा तथा दूसरी अपरा।

लोक में भी दो विद्याएं जानने की बात प्रचलित है, (१) शास्त्र विद्या तथा (२) शस्त्र विद्या। किन्तु यह पर तथा अपर कुछ अन्य ही है। ऋषि स्वयं बतलाते हैं—

तत्रापरा ऋग्वेदः यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति ॥ १।१।५=उनमें अपरा विद्या यह है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः तथा ज्योतिष ॥

अर्थात् अङ्गोपाङ्ग सहित चारों वेद अपरा विद्या=Theoretical Science है, Applied या Practical व्यवहारिक नहीं हैं। तभी तो सनत्कुमार महर्षि के पूछने पर जब नारद ने कहा कि महाराज! मैंने ऋग्वेद आदि· पढ़े हैं' तब श्री सनत्कुमार जी ने कहा नारद!—यद्वै किंचैतदध्यगीष्ठा—नामैवैतत् ॥३॥ नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः.........सर्वदेवजन विद्या नामैवैतत् ॥४॥ (छां० ७।१)=यह जो कुछ तू ने पढ़ा है, यह सब नाम=शब्द=वाचक है (नामी=अभिधेय=वाच्य तो इस से पृथक् है) ऋग्वेद यजुर्वेद..............सर्व देवजन विद्या यह सभी नाम हैं। अर्थात् तू ने केवल शब्द पढ़े हैं। तू ने श्रवण मात्र किया है, मनन, निदिध्यासन तथा साक्षात्कार नहीं किया है।

स्वयं वेद में वेदों के सम्बन्ध में कुछ ऐसी ही बात कही है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इम समासते ॥ (ऋ०)

समस्त वेद उस अविनाशी सर्वव्यापक प्रकृति तथा जीव के आधार परम भगवान् का ज्ञान कराने के लिये हैं जिस परमात्मा में सब देव (दिव्यगुण कर्म तथा सृष्ट असृष्ट पदार्थ) रहते हैं। जो उस परम तत्व को नहीं जानता, वह वेद से क्या करेगा? जो उसे जानते हैं वे समता से रहते हैं।

वेद पढ़ कर भी जिन्हें भगवान् का ज्ञान=साक्षात्कार नहीं हुआ, उन का वेद पढ़ना व्यर्थ सा है। इस दृष्टि से उपनिषद् भी अपरा विद्या है। क्योंकि अथ परा यथा तदक्षर मधिगम्यते ॥५॥ यत्तदद्रेश्यमग्राह्यम गोत्रम वर्णमचक्षुः—श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्। तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥६॥ अब परा विद्या [वह है] जिस के द्वारा उस अक्षर (अवनाशी सर्वव्यापक) का बोध होता है। जो अक्षर आहिंसनीय, इन्द्रियों से अग्रह्य, अतएव नामादि से रहित, आंख कान से रहित, हाथ पांव से रहित नित्य, विभूति संपन्न, सर्वत्र विराजमान अत्यन्त सूक्ष्म, और विकार रहित है, उन जगदाधार को ध्यानि लोग ही देख पाते हैं।

यजु ३१।१६ में भी कहा है— तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा स्तस्मिन् ह तस्थु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भुर्वनानि विश्वा ॥ उस प्रजा पति परमात्मा के स्थान को ध्यानी लोग देख पाते हैं उस में सब लोक-लोकान्तर स्थित हैं ।

कहने के प्रकार का भेद है । वर्ण्य पदार्थ तो एक ही है । इस के आगे ब्रह्म को जगत् का निमित्त कारण बतलाने के लिये तीन दृष्टान्त अंगिरा ऋषि ने दिए हैं ।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥ ७

जैसे मकड़ी [तन्तुओं को] सिरजती और फिर संहार कर लेती हैं, जैसे पृथिवी में ओषधि-वनस्पति उत्पन्न होती तथा विलीन होती है और जैसे जीवत मनुष देह से केशलोम उत्पन्न होते हैं, ऐसे ही अक्षर से विश्व=संहार उत्पन्न होता है ।

अक्षर शब्द प्रकृति जीव ब्रह्म तीनों का वाचक है । यहां केवल ब्रह्म का वाचक है । नवीन वेदान्ती समझते हैं इन उदाहरणों से अभिन्ननिमितोपादान कारणवाद की सिद्धि होती है । उस वाद को समझाने के लिये कारण के संबन्ध में थोड़ा सा विचार करना आवश्यक है ।

जो भी बनी हुई वस्तु होती है उस के सामान्यतया तीन कारण हुआ करते हैं । एक वह कारण जिस से वह वस्तु बनती है यथा घड़ा के लिये मिट्टी, आभूषणों के लिये स्वर्ण आदि । नैयायिकों की भाषा में इसे समवायि कारण कहते हैं । सांख्य तथा वेदान्ती इस को उपादान कारण कहते हैं । मिट्टी के अवयवों का यदि मेल (संयोग) न हो तो घड़ा नहीं बन सकता, अतः यह भी एक कारण है । इसे दार्शनिक असमवयि कारण कहते हैं । इस के अतिरिक्त जो भी कारण है उसे निमित्त कारण कहते हैं, इस में बनाने वाला कर्त्ता तथा अन्य सभी उपयोगी साधन आ जाते हैं ।

यह स्मरण रखना चाहिये कि द्रव्य ही समवायि=उपादान कारण हो सकता है । असमवायि कारणता गुण या कर्म में रहती है । कर्त्ता अवश्य चेतन होता है ।

घट, पट, स्वास्तिक, कुण्डल आदि पदार्थों की रचना को विचार पूर्वक देखने से एक बात स्पष्ट सामने आती है कि सर्वत्र उपादान कारण तथा कर्त्ता में भेद रहता है । अर्थात् किसी एक कार्य्य का कर्त्ता=निमित्त तथा उपादान एक नहीं हो सकता । जैसे घड़ा का कर्त्ता कुम्हार है और उपादान मिट्टी है । सभी कार्य्य पदार्थों की वही दशा है ।

परन्तु नवीन वेदान्ती कहते हैं कि ब्रह्म इस जगत् का कर्त्ता निमित्त तथा उपादान दोनों ही कारण है । अर्थात् ब्रह्म जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है । और इस के लिये वे उपर्युक्त उपनिषद्वचन का आश्रय लेते हैं, किन्तु ऊपर के तीनों उदाहरण उन के विरुद्ध जाते हैं । देखिए— जीवित मकड़ी के शरीर से हो जाला निकलता है, मृतक से नहीं, अतः सिद्ध हुआ कि कर्त्ता चेतन होता है और वह जड़ से भिन्न है । पृथ्वी में बीजयिकिरण के बिना ओषधिवनस्पति उत्पन्न नहीं हो सकते, अतः यहां भी करण भेद स्पष्ट है । पुरुष के साथ सतः=जीवित विशेषण देकर निमित्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तथा उपादान की अभिन्नता का खण्डन कर के दोनों के भेद का निरूपण किया है। इस प्र
निमित्त तथा उपादान कारणों का भेद वर्णन कर के अगले दो वाक्यों में परमात्मा से इस सृ
की उत्पत्ति कथन करके प्रथम खण्ड की समाप्ति हुई है।

प्रथम मुण्ड के द्वितीय खण्ड में कर्मों का निरूपण किया गया है। कर्म्म वेदमूलक
इस लिये कहा—

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्म्माणि कवयो मान्यपश्यँस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि
तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य सलोके ॥ १।२।१

यह सत्य है कि ऋषियों ने मन्त्रों में जिन कर्म्मों को देखा, वे अनेक प्रकार से त्रेता
अग्नि में अनुष्ठान किये जाते हैं। हे सत्याभिलाषियो ! उन का नियम पूर्वक आचरण करो, क्यों
यह मार्ग सुकृत फल दाता है।

वेद निरन्तर कर्म्म करने का उपदेश करता है—कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत
समाः (य० ४०।२) मनुष्य निरन्तर इस जन्म में पूर्ण आयु कर्म्म करता हुआ ही जीने
इच्छा करे। वेद को मूल स्रोत मानने वाली उपनिषदें अकर्म्मवाद की उपदेशिका नहीं हो सक
इसी मुण्डकोपनिषत् में ही कहा गया है कि क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ३।१।४=ब्रह्मवे
में सर्व श्रेष्ठ यह क्रियावान होता है। इसी प्रकार क्रियावन्तः श्रोत्रियाः ब्रह्मनिष्ठाः (३।२।
बचन भी कर्म्मवाद का समर्थक है । १।२।२ से १।२।६ तक अग्निहोत्र की विधि आदि का नि
करके, इसी कार्यमात्र को सब कुछ समझने वाले को लक्ष्य करके कहा—

प्लवाह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म्म ।
एतच्छ्रेयो येऽभितन्दन्ति मूढा जरा मृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥ १।२।७
अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथांधाः ॥—८
अविद्यायां बहुधा वर्त्तमानाः वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥—९॥
इष्टापूर्तं मन्यमान्या वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठेते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं चाविशन्ति ॥—१०

जिन में अठारह जनों के द्वारा कथित अवर कर्म्म किया जाता है वे यज्ञ रूप
नौकाएं अदृढ़ हैं । जो मूर्ख इन्हीं कर्म्मों को ही श्रेय मानते हैं, वे बार बार जन्म मृत्यु को
होते रहते हैं । अविद्या में रहते हुए किन्तु अपने आप को पण्डित = ज्ञानी मान कर सन्तुष्ट
वाले मनुष्य पुनः पुनः मृत्यु दण्ड से ताड़ित होते हैं और उन की वह दशा होती है जो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की अन्धों के पीछे चलने से होती है॥ प्रायः बालक=अज्ञानी जन अविद्या में रहते हुए भी अपने आप को कृतार्थ=सफल मानते हैं। चूंकि कर्मपरायण लोग राग=संसार के अनुराग के कारण [श्रेय को] नहीं पहचान पाते अतः इस से पीड़ित होकर पुण्य कर्म्म का फल भोग कर अधः-पतित होते हैं॥ मूढ लोग ही इष्ट और पूर्त्त को सर्वश्रेष्ठ मान कर अन्य किसी श्रेय को नहीं पहचानते। वे पुण्य कर्म्म के फल सुख को भोग कर पुनः इसी मानुष जन्म अथवा इस से हीनतर योनि में प्रवेश करते हैं।

केवल कर्म्म की निन्दा है। वेद ज्ञान तथा कर्म्म दोनों का पक्षपाती है। जैसा कि ईशोपनिषत् में स्पष्ट उपदेश है।

बालक का अर्थ शास्त्र ज्ञान रहित मनुष्य है। कठोपनिषत् में भी संसार के विनाश-व्यवहार को न समझने वालों को बालक कहा गया है। और सब कुछ जानता हो किन्तु ज्ञान तथा कर्म्म के सहानुष्ठान को न जानता हो उसे यहां बालक कहा गया है।

जो लोग कर्म्म तथा ज्ञान का सहानुष्ठान करते है, उन की दशा इन शब्दों में वर्णित की गई है—

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्य्यांचरन्तः।

सूर्य्य द्वारेण ते विरजाः प्रायन्ति यत्रामृतः पुरुषोह्यव्ययात्मा। २।११

जो ज्ञानी शान्त हो कर, संन्यास धारण कर तप तथा श्रद्धा का उपवास पूर्वक वन में अनुष्ठान करते हैं वे विरज=निर्धूलो हो कर सूर्य्य द्वार से वहां पहुँचते हैं जहां वह अविनाशी अविकारी पुरुष रहता है।

सूर्य्य द्वार का अर्थ यहां योगसाधन की एक विशेष क्रिया है।

परीक्ष्य लोकान् कर्म्म चितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।—१२

कर्म्म से संगृहीत फलों का परीक्षण करके ब्रह्मज्ञानी को निर्वेद उत्पन्न होता है कि वह अकृत=अविनाशी इस विनाशी से प्राप्य नहीं है। कठोपनिषत् १।२।१० में यही तत्त्व निरूपित हुआ है—

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।

मैं निधि को अनित्य समझता हूँ और जानता हूँ कि इन अनित्य चंचल पदार्थों के द्वारा वह नित्य अचंचल नहीं मिल सकता।

यजुर्वेद ३२ अध्याय में परीक्षा करने की बात इस प्रकार वर्णित हुई है

परीत्य लोकान् परीत्य भूतानि परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।

उपस्थाय प्रथम जामृतस्यात्मनात्मानम भिसं विवेश॥

सब लोकों को जांच कर, सब भूतों को जांच कर। सब दिशाओं तथा अन्तर्दिशाओं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

को जांच कर अन्त=यथार्थ ज्ञान के प्रथमोत्पादक को उपस्थित करके=धारण करके मैं आ
आत्मा के द्वारा परमात्मा में आविष्ट हुआ हूँ।

इन्द्रिया गोचर परमात्मा को यहां आत्मैक संवेध बतलाया है। यह तत्त्व सदा ध्या
में रखना चाहिए।

इस के पश्चात् ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु के पास जाने का उपदेश है, उस का वर्
पूर्व हो चुका है। अधिकारी शिष्य को ही ब्रह्म विद्या देनी चाहिए, इस के साथ प्रथम मुण्ड
के द्वितीय खण्ड तथा प्रथम मुण्डक की समाप्ति है।

प्रथम मुण्डक में ब्रह्म विद्या की परमपरा बतला कर सामान्य रूप से अपरा विद्या
वर्णन करके पराविद्या का महत्त्व बतलाया गया है। और प्रसङ्ग से कर्म्म करने की प्रेरणा क
केवल कर्म्म की अनुपयोगिता का प्रतिपादन करके ज्ञान कर्म्म समुच्चय का महत्त्व क
किया गया है।

प्रथम मुण्डक में यथोर्णनाभिः १—१—७ में वर्णित् तत्व द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड
विस्तार से वर्णित हुआ है। देखिए—

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावका द्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभन्वते सरूपा।
तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥१॥

यह सर्वथा सत्य है कि जैसे अत्यन्त प्रदीप्त अग्नि से सहस्रों अग्नि समान चिनगारियां उत्
होती हैं। वैसे ही इस अक्षर से, हे सोम्य! नाना भाव पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसी में ल
हो जाते हैं।

कहीं किसी को यह भ्रान्ति न हो जाए कि यदि उस अक्षर से यह पदार्थ उत्पन्न होते हैं, त
वह अक्षर भी उन की भांति साकार होगा और अक्षर एक है। इस का निराकरण करने के लि
अंगिरा ऋषि कहते हैं—

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥२॥

वह पूर्ण पुरुष दिव्य और सचमुच मूर्त्ति रहित=निराकार है। वह अजन्मा प्रत्येक पदार्थ
भीतर बाहर है। प्राण रहित, मनो रहित वह शुभ्र अक्षर से पर से भी पर है।

इस में अक्षर ब्रह्म को निराकार, अज, सर्वव्यापक कहा गया है। अप्राण और अमना क
से तात्पर्य्य यह है कि वह जीवात्मा से भी भिन्न है। जीवात्मा को अपना कार्य्य चलाने के लि
मन तथा प्राणों की आवश्यकता है। परब्रह्म को नहीं। प्रकृति तथा जीवों में भेद दिखाने के लि
अक्षरात्परतः परः कहा गया है। अक्षर=प्रकृति से पर जीव, उस से भी वह पर है। अर्था
प्रकृति, जीव तथा ब्रह्म ये तीन पदार्थ हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस से अगले वाक्य में प्राणादि अभ्यन्तर तथा पृथिवी आदि बाह्य भूतचतुष्टय को उत्पत्ति उसी से बताई है।

रूपकालङ्कार से भगवान् का वर्णन इस प्रकार किया है:—

> अग्नि मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः।
> वायुः प्राणा हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥४॥

अग्नि इस का सिर है। सूर्य्य, चन्द्र दो नेत्रे हैं, दिशाएं कान है, विस्तृत वेद उस की वाणी है। वायु प्राण है, संपूर्ण विश्व उस का हृदय है। पृथिवी चरण स्थानो है, सचमुच यह सब भूतों का अन्तरात्मा है।

पुरुष विधता के द्वारा निरूपण करते हुए भी उस को इन सब से भिन्न जताने के लिए सर्व भूतान्तरात्मा कहा।

उपनिषद् का उक्त वचन अथर्व वेद (१०-७-३२—३४) के मन्त्रों का संक्षिप्त भाव प्रतीत होता है। मैं मन्त्र ये हैं:—

> यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षम थोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३२
> यस्य सूर्य्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निर्यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३३
> यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुराङ्गिरसोऽभवम्।
> दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४

भूमि जिस का चरण, अन्तरिक्ष उदर, द्यौ को जिस ने सिर बनाया है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार ॥ सूर्य्य तथा बार बार नया होने वाला चन्द्रमा जिस का नेत्र है। अग्नि को जिस ने मुख बनाया है, उस सर्वतो महान् भगवान को नमस्कार ॥ वायु जिस के प्राण तथा अपान हैं, अङ्गिरस=टिमटिमाते तारे जिस के नेत्र हैं, दिशाओं को जिस ने प्रज्ञानी बनाया उस सर्वश्रेष्ठ परमात्मा को नमस्कार।

उपनिषत् की अपेक्षा इस में कई बातें अधिक हैं। और एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात और भी है। मूढ़ लोग यह न समझ लें कि सचमुच परमात्मा का कोई शरीर है जिस के ये अवयव हैं। इस लिये जहां सूर्य्य चन्द्र को नेत्र कहा, वहां अङ्गिरसों को भी नेत्र कह दिया। इस अनियत-वाद का प्रयोजन परमात्मा का अमूर्त रूप प्रतिपादन करना है।

अन्य वेदों में भी परमात्मा के इस प्रकार के रूपक-मय वर्णन हैं। यथा यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय में।

प्रकृति से पुरुष परमात्मा सर्वथा भिन्न है, इस का स्पष्ट निरूपण निम्नलिखित वाक्य में किया गया है—

> तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्य्यः सोमात्पर्जन्यः ओषधयः पृथिव्याम्।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुमान् रेतः सिंचति योषितायां बह्वोः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः ॥ ५

उस अक्षर पुरुष से अग्नि उत्पन्न होता है । सूर्य्य जिस का समिधास्थानी है । उस सोम से बादल तथा पृथिवी पर औषधियां उत्पन्न होती हैं । वह पुरुष प्रकृति रूपी स्त्री में वीर्य्य सेचंन करता है, इस प्रकार पुरुष से अनेक प्रकार की सृष्टियां उत्पन्न होती हैं ।

पुरुष तथा स्त्री भिन्न भिन्न होती हैं। अकेली स्त्री से सन्तान नहीं हो सकती और न ही अकेले पुरुष से सन्तान होती है । दोनों के संयोग से सन्तान होती है । इसी भांति अकेला ब्रह्म सृष्टि रचना में असमर्थ है और अकेली प्रकृति भी अशक्त है। दोनों के सहयोग से सृष्टि होती है।

स्त्री पुरुष के संयोग से सन्तान होने पर लोक में पुरुष के नाम से सन्तान प्रसिद्ध होती है। कोई भी यह नहीं समझता कि यह सन्तान माता के बिना अकेले पुरुष से हुई है। इसी भांति कोई भी बुद्धिमान् यह नहीं मान सकता कि अकेले पुरुष से सृष्टि होती है हां, लोक व्यवहार की भांति उपचार से वह पुरुष की सृष्टि कहाती है।

इस के आगे सातवें में सब प्राणियों, आठवें में प्राणों, इन्द्रियों, उन के गोलकों की उत्पत्ति का वर्णन कर के नवम में स्थूल पदार्थों की उत्पत्ति कहते हुए कहा है—येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा=जिस प्रकार यह अन्तरात्मा इन भूतों के साथ स्थित रहता है। अर्थात् भूतों का निर्माण कर के भगवान् उन से पृथक् नहीं रहता, साथ रहता है । पहले कह आए हैं, कि वह बाह्याभ्यन्तर है। अतएव वह इन सब का अन्तरात्मा है ।

इस खण्ड का उपसंहार इस प्रकार किया है—

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म्म तपो ब्रह्म परामृतम् ।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकरतीह सोम्य ॥१०॥

यह समस्त जगत्, कर्म्म, तप, ज्ञान तथा मोक्ष अन्तरात्मा पुरुष के निमित्त से हैं। हे सोम्य ! जो मनुष्य इस अक्षर को हृदय में निहित जानता है, वह अविद्या की गांठ को यहीं खोल देता है।

अगले खण्ड में भी इसी प्रकार की बात कही है—

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥२।२।८

हृदय की गांठ खुल जाती है। सब सन्देह मिट जाते हैं। इस के कर्म्म निर्बल हो जाते हैं जब उस परावर (जिस में उत्तम अधम सभी का निवास है) के दर्शन होते हैं।

उस के दर्शन के लिए सब को समान मानना अनिवार्य्य है। यजुर्वेद ४०।६, ७ में कहा है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवा भूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

जो ज्ञानी सर्वभूतों को परमात्मा में देखता है और सब भूतों में परमात्मा को देखता है, तब उसे कोई संशय नहीं रह जाता। जिस दशा में ज्ञानी के लिए सभी भूत आत्मसमान हो जाते हैं, उस दशा में उस एकत्व दर्शी को कैसा मोह और कैसा शोक ?

परमात्मा को सर्वाधार तथा सब में व्यापक मानने से सब के साथ समानता की भावना जागरित होती है। समता-ममता के साथ भेदभाव के भूत का नाश हो कर संशय का कारण ही नहीं रहता।

जिस प्रकार शरीर के भिन्न २ अंग एक दूसरे से पृथक होते हुए आत्मा के कारण एक कहलाते हैं और उन में परस्पर किसी प्रकार विरोध नहीं होता, इसी प्रकार जब यह भान हो गया, कि परमात्मा हम सब में व्यापक है, मानो वह हमारा (हम आत्माओं का) आत्मा हो गया, हम उसके शरीर स्थानी हो गए, तब हमारा किसी से वैरविरोध न रहने से शोक मोह का विनाश हो जाता है। परमात्म दर्शन का यह मनोहर फल हैं, इसी के लिए महाविद्वान् नारद भगवान् सनत्कुमार के पास गये थे।

दूसरे मुण्डक के दूसरे खण्ड में परमात्मा की प्राप्ति के साधन का विशद वर्णन है। उस खण्ड का आरम्भ इस प्रकार है—

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम् ।
एजत्प्राणन्ति मिषच्च यदेत ज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानान् ॥

सर्वत्र प्रकट होता हुआ भी जो गुहा=हृदय गुहा में निहित=छिपा सा है, वह सब का गति दाता प्रसिद्ध है। गतिशील, प्राण वाले, निमेषोन्मेष वाले तथा गति—आदि रहित यह महान् संसार रूपी पद उस में समर्पित=स्थित हैं। यह जो भाव, अभाव, व्यक्त—अव्यक्त से वरेण्य=वरण करने योग्य है जो वरिष्ठ सर्वश्रेष्ठ प्रजाओं के विज्ञान से परे है उस को तुम जानो। स्पष्ट शब्दों में परमात्मा को जानने का आदेश है।

उपनिषद् का यह वचन अथर्ववेद १०।८।६ का भाष्य सा है। वह मन्त्र यह है—

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत्पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत्प्राणत् प्रतिष्टतम् ॥

प्रकट होता हुआ भी वह हृदय गुफा में सन्निहित है, वह महान् प्रापनीय सब को जीर्ण करने वाला प्रसिद्ध है अथवा स्तोतव्य नाम वाला है। उसी में यह समस्त गति शील तथा प्राणि-समुदाय पूर्ण रूप से अर्पित हो कर प्रतिष्ठित हैं।

प्राणि समुदाय की गति शीलता तो सब को अंगीकृत है, अप्राणी भी निरन्तर गति करते रहते हैं, ऐसा वेद तथा विज्ञान बताता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्म को जीवन लक्ष्य बनाने का आदेश करते हुए कहा है—

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणुयस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च ।
तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः वदेतत्सयं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ॥२

जो दीप्ति वाला है जो अणुओं (सूक्ष्मों) से भी सूक्ष्म है, जिस में लोक तथा लोक वाले (जीव) रहते हैं, वह यह अविनाशी ब्रह्म है, वही प्राण, वही वाणी, वही मन, वही सत्य, वही अमृत है। हे सोम्य ! उसी को वीधने योग्य=वेध करने योग्य=लक्ष्य जान।

प्रकृति अन्धकार मयी है, ब्रह्म सुदीप्त है, वह सूक्ष्म अणुओं एवं जीवों से भी सूक्ष्म है—अणोरणीयन् है। वह इतना महान् है कि जिसमें यह लोक-लोकान्तर समाए हुए है—महतो महीयान् है। वही ब्रह्म प्राण=जीवनाधार है, वही वास्तव में इन्द्रिय शक्ति का मूल है। केनोपनिषत् में कहा ही तो है—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो हवाच सउ ॐ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः (१।२)

जो श्रोत्र का श्रोत्र मन का मन तथा वाणी की वणी है, वही प्राण का प्राण तथा आंख की आंख है। अर्थात् जीवन का मूल स्रोत परमात्मा ही है। अतएव अपने जीवन का लक्ष्य उसी को बनाना चाहिए।

उस ब्रह्म को वीधने के प्रकार का वर्णन करते हैं—

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशतं सन्धीयत ।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यम् तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥ ३
प्रणवोधनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ४

औपनिषद=उपनिषत्प्रोक्त, [गुरु के पास जा कर रहस्य विद्या सीख कर] दूर तक अस्त्र फेंकने वाले धनुष् में उपासना से तीक्ष्ण किए हुये शर को=तीर को सन्धान करो=जोड़ो। झुक कर तन्मय भावयुक्त चित्त के द्वारा, हे सोम्य ! उसी अविनाशी को लक्ष्य=वेद्धव्य जानो॥ प्रणव (ओ३म्) धनुः है, आत्मा तीर है, ब्रह्म उस का लक्ष्य कहा जाता है। प्रमाद रहित होकर उस को वीधना चाहिए। साधक तीर को भांन्ति तन्मय हो जाए।

इस में दो प्रकार के साधन बताए गए हैं। पहला साधन औपनिषद श्रुतियों का निरन्तर अभ्यास तथा उपासना है, उपासना में तन्मय होना चाहिए दूसरा साधन ओंकार साधना का है। प्रणव रूप धनुष् पर अपने आत्मा रूप तीर को चढ़ा कर ब्रह्म का वेधन करना चाहिए। इस में भी तन्मयता की आवश्यकता है।

ये दोनों साधन गुरुगम्य हैं। अतः गुरु से समझने चाहिएं। ब्रह्म को जीवन लक्ष्य बनाने का हेतु बताते हैं—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अस्मिन द्यौः पृथिवी शान्तरिक्षमोतं सह प्रणश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जनाथ आत्मानमान्या वाचो विमुञ्चथ, अमृतस्यैष सेतुः ॥५

इसी ब्रह्म में द्यौ, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी सभी प्राणों के साथ ओत प्रोत है उसी एक सर्वव्यापक परमात्मा को जानो, अन्य बातों को छोड़ दो। क्योंकि वही अमर जीवन का सेतु हैं।

अमृत प्राप्ति के अभिलाषी को अङ्गिरा ऋषि कह रहे हैं कि यदि तुम अमर पद प्राप्त करना चाहते हो तो मृत्यु ग्रस्त पदार्थों की चर्चा छोड़ो, एक मात्र अनन्य चित्त से परमात्मा का ध्यान करो।

पुनः ओम् के ध्यान का विधान करते हैं—

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्तिः वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ ६ ॥

जिस भांति रथ की नाभि में अरे जुड़े रहते हैं, ऐसे ही जिस में नाड़ियां (सकल रचनाएं) जुड़ी रहती हैं, वह अनेक प्रकार से प्रकट होता हुआ भीतर विचरण कर रहा है उस परमात्मा का 'ओम्' इस शब्द के द्वारा ध्यान करो। अन्धकार का पर पार पाने के लिए तुम्हारे लिए यह स्वस्ति =सु+अस्ति=उत्तमस्थिति है।

ओ३म् का जप एवं अर्थ चिन्तन ध्यान की विधि है, जैसे योगदर्शन में कहा है—तज्जयस्तदर्थभावनम् (१।२८) ओङ्कार का जाप तथा उस के अर्थ का मनन, भावन, जीवन में धारण करना चाहिए। योग दर्शन में इस का फल बतलाया है—ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च (१।) ओम् के जप तथा अर्थ विचार के द्वारा प्रत्येक्चेतन=जीवात्मा की प्राप्ति तथा विघ्नों का नाश होता है। विघ्न ही अन्धकार हैं। उन से पार पाने के लिए ओम् का ध्यान महासाधन है। भगवान् का महत्त्व वर्णन करते हैं—

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि—'दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठतः
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठतोऽन्ने हृदयं सन्निधाया—
तद्विज्ञानेनपरिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥ ७

जो भगवान सर्वज्ञ तथा सर्व व्यापक है, संसार में उस की यह महिमा है कि 'दिव्य ब्रह्मपुर=शरीर के भीतर व्योम=हृदयाकाश में वह प्रतिष्ठित है तथा मनोऽनुगामी, प्राणों एवं शरीर का नेता संचालक आत्मा भी भोग के निमित्त हृदय के सन्निहित हो कर स्थित है' उसी के विज्ञान से ध्यानी लोग उस के दर्शन कर सकते हैं जो अविनाशी आनन्द रूप हो कर चमक रहा है।

अथर्व वेद (१०।२।२८—३०) में शरीर को ब्रह्म पुर कहा गया है। तात्पर्य्य यह है कि आत्मा तथा परमात्मा के दर्शन करने के लिए कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। इसी शरीर में इस के दर्शन करने का यत्न करो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस वाक्य में आए 'सर्ववित्' पद की व्याख्या में प्रायः सभी व्याख्या कारों ने ठोकर खायी है। सभी ने इस का अर्थ सर्वज्ञाता किया है। जब सर्वज्ञ कह दिया तो उसी अर्थ वाले दूसरे पद की क्या आवश्यकता है? यह आपत्ति सभी के सामने आई है किन्तु निराकरण किसी से नहीं हो पाया। सर्ववित् का अर्थ सर्वज्ञ न हो कर सर्वव्यापक है—सर्वेषु विधतेऽसौ सर्ववित्=जो सब में रहता है वह सर्ववित्। इस से जहां पुनरुक्ति का वारण हो जाता है, वहां अर्थ में भी चमत्कार आ जाता है। सर्वज्ञता तथा सर्वव्यापकता परमात्मा की बड़ी महिमा है।

आत्मा तथा परमात्मा के एक साथ रहने के ज्ञान का फल—भिद्यते हृदय ग्रंथिः वाक्य द्वारा बताया गया है। जिस की खोज के लिए वन, पर्वत, देश, प्रदेश में मारे मारे भटकते रहे। गुरु ने कृपा करके उस का ठिकाना केवल बताया ही नहीं दिखा भी दिया, फिर संशय काहे को रहे।

जिस परावर के दर्शन से संशयशूल मिटा, उस का पुनः प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्म विदो विदुः ॥९॥
न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१०॥
ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥११॥

हिरण्यमय=आनन्दमय सर्वोत्तम कोश में विरज=निर्दोष, निष्फल=अखण्ड, ब्र[ह्म] [मिलता है] जिसे आत्मवेत्ता लोग जानते हैं, वह शुभ्र=पवित्र तथा ज्योतियों की ज्योति है। वहां न सूर्य चमकता है, न चन्द्र तारे, न यह बिजुलियां चमकती हैं, इस आग की तो बात ही क्या? उस प्रकाशमय की अनुकूलता से यह सब चमकता है, उस की चमक से यह सब चमकता है। यह अविनाशी ब्रह्म सामने=पूर्व में है, पीछे=पश्चिम में है, दक्षिण तथा उत्तर में है। ब्रह्म ऊपर नीचे व्याप्त है। यही विश्व=विशेष रूप से गति दाता अतएव वरिष्ठ=सर्वश्रेष्ठ है।

इन में से प्रथम वाक्य अथर्व १०।२।३२ का अनुवाद है। मूल मन्त्र यह है—

तस्मिन हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठते। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥

उस (३१वें मन्त्र में वर्णित) तीन अरों वाले तथा तीन में प्रतिष्ठित हिरण्यय=हिरण्मय=आनन्दमय कोश में आत्मा से युक्त जो पूज्य यक्ष है, उसे ब्रह्मवेत्ता ही जानते हैं।

शरीर=अन्नमय कोश जो सर्वजन प्रत्यक्ष है उस की गणना न करें तो प्राणमय, मनोमय तथा विज्ञानमय इन तीन कोशों में आनन्दमय कोश स्थित है। प्राण, मन तथा बुद्धि उस के तीन अरे हैं। उस में आत्मा के साथ परमात्मा रहता है। इस आनन्दमय=हिरण्य कोश को ३[...]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मन्त्र में 'तस्यां हिरण्यय: कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः=उस शरीर में हिरण्यय=आनन्दमय =स्वर्—गः=मुक्ति तक पहुंचाने वाला तथा प्रकाश (परमात्मा की ज्योति) से आच्छादित है न तत्र सूर्य्यो भाति—वाक्य कठोपनिषत् (२।२।१५) में आया है। अन्यत्र भी आया है। तीसरा ब्रह्मवेदममृतं—अथर्ववेद १४।१।६४ का विस्तार है—

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके विराज ॥

पीछे से ब्रह्म से मिलिए, आगे से, अन्त में तथा मध्य में भी ब्रह्म से मिलिए। सर्व ओर से ब्रह्म से मिलिए। निर्विघ्न देवपुर=शरीर में पहुंच कर पति के प्रकाश में सुखकारिणी तथा मङ्गलमयी हो कर विराज ॥

यह बुद्धि देवी का आत्म देव के साथ विवाह सम्पन्न होने पर आशीर्वाद सा है। बुद्धि यदि सर्वथा ब्रह्ममयी हो जाए तो उस के मङ्गलमयी एवं सुख कारिणी होने एवं आत्म-प्रकाश में रह कर विराजने में कोई बाधा ही नहीं रहती। छांदोग्योपनिषत् में भी कुछ ऐसी ही बात कही है यथा—

अथात आत्मादेशः एव । आत्मै वाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳ सर्वमिति ॥७।२५।१

अब आत्मादेश कहते हैं। आत्मा ही नीचे, आत्मा ही ऊपर, आत्मा ही पीछे, आत्मा ही सामने, आत्मा ही दक्षिण में, आत्मा ही उत्तर में, आत्मा ही सब पर अधिष्ठित है।

यहां आत्मा शब्द स्पष्ट ही ब्रह्म परक है। यह सर्वात्मवाद का प्रति पादन नहीं अपितु सर्वत्रात्मवाद का प्रतिपादन है, अर्थात् आत्मा=परमात्मा सर्वत्र है। यदि सभी कुछ परमात्मा हो, उस के अतिरिक्त अन्य कुछ न हो तो 'सर्व' शब्द का प्रयोग ही व्यर्थ है।

इस प्रकार विचारने से सभी वेदों और उपनिषदों का एक मत प्रकट होता है। सब उपनिषदों का लक्ष्य विवेक ज्ञान द्वारा आत्मा, परमात्मा का ज्ञान करा के आत्मा को मोक्ष धाम में पहुँचाना है, अतः वे सभी एक ही बात कहती हैं। हां, उन की प्रति पादन शैली में भेद आवश्य है। और यह होना स्वभाविक भी है, कथन करने वाले को श्रोता की योग्यता एवं क्षमता का विचार करके ही उपदेश करना होता है। किन्तु अन्तिम तत्त्व का वर्णन करते हुए सब की शैली में भी समता आ जाती है, जैसा कि ऊपर उद्धृत मुण्डकय वचन, वेदमन्त्र तथा छान्दोग्य क वाक्य से प्रकट हो रहा है।

सर्वत्र ब्रह्म की विद्यमानता समझने एवं उस से मुक्त होने की प्रेरणा पर द्वितीय मुण्डक की समाप्ति हुई है।

तृतीय मण्डक में भैत वाद का निरूपण करने के लिए वेद मन्त्र से ही आरम्भ करते हैं—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नयोऽभिचाकशीति ॥१॥

एक साथ रहने वाले, सखा=एक पते वाले दो मित्र (ब्रह्म तथा जीव) एक अथवा अपने समान अनादि वृक्ष पर एक दूसरे को तथा उस वृक्ष को भी आलिंग किये हुए हैं । उन दोनों में से एक फल को मीठा मान कर खा रहा है । दूसरा न खाता हुआ सर्वत्र देखता है ।

यह अथर्ववेद (९।९।२०) का मन्त्र है । इस में आलङ्कारिक रीति से तीन पदार्थों की सत्ता का वर्णन किया गया है । वेद में परमात्मा तथा आत्मा की सखिता=मैत्री का अनेक स्थानों पर उल्लेख है । परमात्मा को अपने से भिन्न मान कर जब साधक उस के दर्शन करता है, तब उस का मोह नष्ट हो जाता है, इस बात को अङ्गिरा जी ने इस भांति कहा है—

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीत शोकः ॥२॥

समाने [प्रकृति रूपी] वृक्ष में निमग्न हुआ भोक्ता पुरुष असमर्थता, अनैश्वर्य्य के कारण मुग्ध हुआ शोक ग्रस्त हो रहा है, जब वह अपने से प्रीति करने वाले किन्तु भिन्न ईश को तथा उस की महिमा को देखता है, तब वह शोक रहित हो जाता है ।

शोक मोह का कारण प्रकृति के प्रस्तुत विषयों में आसक्ति है । प्राकृतिक विषयों में आसक्त अपने को भी विस्मरण कर बैठता है, परमात्मा की तो बात ही क्या ? जब ज्ञानी गुरु के संसर्ग से उसे ज्ञात होता है कि अंगसंग रहता हुआ भी परमात्मा भिन्न है, तथा उस की महिमा से ही भोग सामग्री प्राप्त हो रही है तो उस की विषयक्ति छूटती है, और उस से उस का शोक मोह भी नष्ट होता है ।

इस बात को ऋषि प्रकारान्तर से कहते हैं—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥३॥

जब तत्त्वदर्शी साधक आकर्षक=रुचिकारक प्रकाश वाले, जगदाधार । जगत्कर्त्ता ईश्वर के दर्शन करता है । तब वह ज्ञानी पुण्य पाप को झाड़ कर निश्चेष्ट हो कर परम समता को प्राप्त कर लेता है ।

भगवान् को रुक्मवर्ण कहा है, वह कान्तिमय, रोचक रूप वाला है । अर्थात् भगवान् का दर्शन होने पर और किसी पदार्थ की रुचि ही नहीं रहती । वह कर्त्ता है । इसे विशेष रूप से मनन करना चाहिये । कर्त्ता को कार्य निर्माण के लिए उपादान चाहिए । तथा अपनी बनाई वस्तु के प्रयोग करने वाले भोक्ता भी चाहिएं । इन दोनों के अभाव में रचना ही असंभव है । अपनी चमत्कारिणी रीति से एक ही पद के द्वारा ऋषि ने त्रैतवाद की सिद्धि कर दी है ।

परमात्मा में न पाप हैं न पुण्य हैं, अतः वह सुख दुःख से हर्ष विषाद को प्राप्त होकर विचलित नहीं होता । जो साधक पुण्य पाप की वासना से मुक्त हो जाता है, उसे भी संसार के विषय विचलित नहीं करते, वह निरंजन हो कर भगवान् के समान हो जाता है ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समानता तभी संभव है, जब भेद हो। समता भी सीमित होती है। समता प्राप्ति से पूर्व असम था। अतः पुनः कोई समय आ सकता है, जब पुनः समता न रहे। अर्थात् परमात्मा सदा सर्वदा निरंजन है, जीव कालावच्छदेन निरंजन है, अतः उसमें परमात्मा के सृष्टि कर्तृत्व आदि गुणों का संक्रमण नहीं हो पाता। इसी लिये वेदान्त दर्शन में कहा—भोगमात्रसाम्यलिङ्गात्= मुक्ति दशा में आनन्द भोग की समता जीव की परमात्मा के साथ होती है।

इस समता की दशा में साधक की अवस्था का वर्णन करते हैं:—

प्राणो ह्येषयः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥ ४

सचमुच यह प्राण=जगज्जीवनाधार ही है जो सब भूतों के द्वारा प्रकाशित हो रहा है, इस बात को जान कर ज्ञानी बढ़ २ कर बातें नहीं बनाता। वह आत्मा=परमात्मा में ही क्रीड़ा करना, आत्मा =परमात्मा से ही रति=प्रीति करता है, आत्मसाधनों का अनुष्ठान करता हुआ वह ब्रह्मवेत्ताओं में वरिष्ठ=सर्व श्रेष्ठ बन जाता है।

साधना के परिपाक से उसे अनुभव होता है कि भगवान् ही इस जगत् का प्राण है। इस अनुभव के होते ही उस का अभिमान गलित हो जाता है। सब विषयों से उस की रुची हट जाती है, अब वह भगवान में ही रमण करता है। छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार योगी ने नारद जी को कुछ ऐसी ही बात कही है:—

सवा एष एवं पश्यन्नेवं मनन्वान एवं विजानन्नात्मरनिरात्म क्रीड आत्ममिथुन
आत्मानन्द स स्वराड् भवति, तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति॥७।२५।२

जिस को इस प्रकार का दर्शन हो जाता है, वह ऐसा ही मनन एवं विज्ञान करता है, आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्मसंयोगी एवं आत्मानन्द हो जाता है वह स्वराड=स्वप्रकाश हो जाता है। उस की गति सर्वत्र अबाध हो जाती है।

जब परमात्मा को अपना बना लिया तो उस का प्रकाश अपना ही हुआ। उस के प्रकाश से प्रकाशित होने पर भी साधक स्वराड् होता है।

ब्रह्मदर्शन होने पर मौन की दशा जो आती है उसका हेतु असत्य का भय है। ब्रह्म विद्या के जिज्ञासु के लिये सत्य परमतत्व है, वह परमात्मलब्धि का कारण है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्य्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति मतयः क्षीणदोषाः॥५॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥६॥

मल विक्षेप आवरण आदि दोषों से रहित यति जिसके दर्शन करते हैं, वह परमात्मा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्य, तप, यथार्थ ज्ञान तथा नित्य ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वह शुभ्र ज्योतिर्मय शरीर के भीतर रहता है। सत्य ही का विजय होता है, झूठ का नहीं क्योंकि विद्वानों ज्ञानियों का मार्ग सत्य से विस्तार पाता है, जिस सत्य मार्ग से आप्तकाम (जिनकी सब कामनाएं पूर्ण हो चुकी हैं) ऋषि चलते हैं और जिस मार्ग में सत्य का वह परम निधान है।

केनोपनिषत् में इसको इस भांति कथन किया गया है--

तस्यै तपो दमः कर्म्मेति प्रतिष्ठा, वेदाः सर्वाङ्गाणि सत्यमायतनम् ॥३३॥

तप, दम, (इन्द्रियदमन=ब्रह्मचर्य्य) कर्म्म ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा=आधार हैं, साङ्गोपांग वेद (सत्यज्ञान) तथा सत्य उसका आयतन=ठिकाना हैं।

सत्यादि की यह महत्ता वेद में भी वर्णित है। यथा--

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् विपश्यति ।

प्राणेन तिर्यङ् प्राणिति यस्मिन् ज्येष्ठमधिश्रितम् ॥ अ० १०।८।१६॥

जिसमें ज्येष्ठ ब्रह्म का निवास है वह सत्य से सब से ऊपर होकर चमकता है। ज्ञान से सभी को विशेष रूप से देखता है, प्राण से गुप्त जीवन धारण करता है। अर्थात् ब्रह्मदर्शी का जीवन विलक्षण हो जाता है।

वह महान् भगवान् अचिंत्य-स्वरूप है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, अज्ञानियों के लिए दूर है किन्तु ज्ञानियों को तो अपने हृदय में दीख पड़ता है। उसके दर्शन का उपाय अन्य नहीं है क्योंकि--

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्म्मणा वा।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥८॥

यह न आंख से दिखाई देता है, न वाणी से वर्णित हो सके, न ही अन्य इन्द्रियों के द्वारा जाना जा सके, न तप से अथवा न कर्म्म से। ज्ञान की विमलता के द्वारा जिसने बुद्धि की शुद्धि कर ली, वह ध्यान योग के द्वारा उस निष्कल ब्रह्म के दर्शन कर सकता है।

ऊपर तो तप को परमात्मा की प्राप्ति का साधन बताया है, यहां उससे परमात्मप्राप्ति का निषेध कर दिया। इस प्रतीयमान विरोध का परिहार यह है कि अकेले तप अथवा कर्म से परमात्मा दर्शन नहीं हो सकते। तप तथा निष्काम कर्म के द्वारा अन्तःकरण का शोधन होकर ज्ञान की स्वच्छता होती है, तब निर्मल आत्मा विमल परमात्मा के दर्शन पा सकता है, उसके बिना नहीं। तप की उपयोगिता का अपलाप यहां नहीं दिया गया, वरन् केवल ज्ञानरहित तप की अनुपयोगिता कही गई है।

अब परमात्मा के सखा आत्मा का स्वरूप सुनाते हैं—

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा विवेश ।

प्राणैश्चित्तं सर्व मोतं प्रजानां यस्मिन् विशुध्दे विभवत्येष आत्मा ॥६॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिस आत्मा में प्राण पांच प्रकार का होकर स्थित है यह जीवात्मा सूक्ष्म है, यह चित्त अथवा चिन्तन से जाना जा सकता है। सभी प्राणियों का चित्त प्राणों से (वृत्तियों से) ओत प्रोत है, उस चित्त के विशुद्ध होने पर यह आत्मा विभूति संपन्न हो जाता है।

थोड़े से शब्दों में आत्मा का स्वरूप बतला कर उस की विभूति का साधन भी बतला दिया है। आत्मा की अणुता का वेद में (अ० १०।८।२५ तथा १६।६८।१) में वर्णन है। यथा—

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते। ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥
अन्यसश्च व्यचसश्चबिलं मायया। ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथो कर्म्माणि कृण्महे॥

एक बाल से भी सूक्ष्म है और एक दिखाई ही नहीं देता। उसकी अपेक्षा अधिक आलिंगन करने वाली जो है, वह मेरी प्यारी है। अध्यापक जीव तथा व्यापक परमात्मा के बिल=हृदय रूप निवास स्थान में बुद्धि से प्रविष्ट होता हूँ। उन दोनों से वेदज्ञान प्राप्त कर हम कर्म्म करते हैं।

बालादेकमणीयस्क—की व्याख्या श्वेताश्वतर ऋषि ने इस प्रकार की है—

बालाग्रशत भागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥६।१२

बाल के अगले भाग के सौ टुकड़े किये जाएं, पुनः एक के सौभाग किये जाएं, उस भाग के समान जीव को समझना चाहिए और वह जीव मुक्ति के लिए समर्थ होता है।

सभी वेद शास्त्र जीव को अणु मानते हैं।

इस प्रकार का विशुद्धसत्त्व आत्मा जिन लोकों की कामना करता है, वे उसे अनायास प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् आत्म ज्ञानी की शक्ति बहुत बढ़ जाती है अतः आत्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः (१०)=ऐश्वर्याभिलाषी मनुष्य आत्म ज्ञानी की पूजा करे। आत्मज्ञानी उसे सब विभूतियों के निधान भगवान् से मिला कर उसे कृतकृत्य कर देता है।

पांच प्राणों का आत्मा से संबन्ध प्रश्नोपनिषत्सार में देखिए। इस प्रकार तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड में भैत वाद का प्रतिपादन करके द्वितीय खण्ड में परमात्मोपासना का फल बताते हैं—

उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदति वर्तन्ति धीराः॥१

जो निष्काम हो कर इस प्रकार परमात्मा की उपासना करते हैं, वे धीर शुक्र को लांघ जाते हैं।

जन्म लेने के लिए जीव को पुरुष के शुक्र=वीर्य्य में आना पड़ता है। परमात्मा तथा आत्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके कामना रहित होकर जो परमात्मा की उपासना करते हैं, वे जन्म मृत्यु के चक्र से पार हो जाते हैं। वे न पुरुष के वीर्य्य में आएं और न स्त्री के गर्भ में।

किन्तु सकाम पुरुष की कुछ अन्य ही गति होती है—

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिजयित तत्र तत्र।
पर्य्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः॥२॥

किन्तु जो कामनाओं को ही सब कुछ मानता हुआ कामना करता रहता है वह उन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कामनाओं के अनुसार उस उस योनि में उत्पन्न होता है। पूर्ण काम कृतार्थ की तो सभी कामनाएं यहीं विलीन हो जाती हैं।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूꣳ स्वाम् ॥३॥
नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात् ।
एतैरुपायैर्यस्तुतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्म धाम ॥४॥

यह आत्मा प्रवचन=उपदेश देने से नहीं मिल सकता, न मेधा बुद्धि से और न बहुत पढ़ने सुनने से मिल सकता है किन्तु जिसको यह परमात्मा चुन लेता है उसको यह आत्मा अपना विस्तार खोल देता है। बलहीन को यह आत्मा नहीं मिलता, न ही प्रमाद से और न ही लिङ्गरहित तप से आत्मा मिलता है। किन्तु जो इन समुचित उपायों से यत्न करता है उसके हृदय में इस आत्मा का प्रवेश हो जाता है।

पढ़ने सुनने मात्र से शब्दों का अभ्यास हो सकता है, आत्मदर्शन नहीं। जिसे परमात्मा चुन ले उसे आत्मलाभ होता है। चुनाव तो योग्यता पर निर्भर है। अर्थात ज्ञान, वैराग्य, शम, दम आदि साधन सम्पन्न हो परमात्मप्रीति का भाजन बनने पर आत्मदर्शन होते हैं। आत्मदर्शन संसार के कार्य्यों में सब से अधिक कठिन है। उसके लिए तो अतिशय बल की अपेक्षा होती है। प्रमादी को आत्मदर्शन की कल्पना भी नहीं करनी चाहिए। तपसो नाप्यलिङ्गात् का अर्थ प्रायः विद्वानों ने लिङ्ग सन्यासी चिह्न से रहित तप से, ऐसा कियाहै। तर्क विरुद्ध, बुद्धि विरुद्ध, शास्त्र विरुद्ध होने से यह अर्थ अशुद्ध अतएव अप्रमाणिक है। तर्क विरुद्धता तथा बुद्धि विरुद्धता सर्वं प्रत्यक्ष है। शास्त्र विरोध दिखाते हैं। मनु जी कहते हैं- न लिङ्गं धर्म्म कारणम् =बाह्य चिह्न धर्म्म साधक नहीं होते। अतः इस वाक्यांश का और ही अर्थ है। लिङ्ग शब्द का अर्थ ज्ञान है। गत्यर्थक लिगि धातु से यह शब्द बनता है। अर्थात् ज्ञान रहित तप से भी आत्मा नहीं मिलता। दूसरी उपनिषदों से इस अर्थ की संगति भी हो जाती है। ईषोपनिषत् में कहा ही है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदो भयऽसह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययथामृतमश्नुते ॥

ज्ञान तथा कर्म का जो ज्ञान पूर्वक एक साथ अनुष्ठान करता है, वह कर्म्म के द्वारा मृत्यु को पार कर के ज्ञान के द्वारा अमृत प्राप्त करता है। मनु जी ने (१२।१०४ कहा है—

तपो विद्या च विप्रस्य निः श्रेयस्करं परम् तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते

तप तथा ज्ञान विप्र के लिए सर्वोत्कृष्ट मोक्ष साधन है। तप से किल्विष=अविद्या का नाश करता है और ज्ञान द्वारा मोक्ष लाभ करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनु जी के इस श्लोक से यह भी ज्ञात हो गया कि यहां अविद्या का अर्थ तप है, तथा मृत्यु का अर्थ किल्विष=विघ्न है,

आत्मलाभ का फल बहुत मनोरम है—

सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीराः युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥५॥

इस आत्मा को प्राप्त कर के ऋषि लोग ज्ञान से तृप्त कृतकृत्य रागद्वेष से रहित और अतएव सर्वथा शान्त हो जाते हैं। वे सर्वव्यापक परमात्मा को सब ओर प्राप्त कर के ध्यान परायण तथा अपने आत्मा को परमात्मा से युक्त कर के सर्व=परमात्मा में ही आनिष्ट हो जाते हैं।

आत्मदर्शन होने पर मनुष्य में यह भाव होता है कि 'प्राप्त मया प्रापणीयं, न मया किंचित्प्राप्तव्यमव शिष्यते'=जो कुछ मुझे प्राप्त करना था, कर लिया है वह मैं ने प्राप्त अब और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं है। इसी को ज्ञान तृप्त शब्द से व्यक्त किया है। आत्मदर्शन होने पर आत्मा के भीतर बाहर विराजमान भगवान के दर्शन साधक को अनायास हो जाते हैं। इस अवस्था के आने पर वे ब्रह्मस्थ हो जाते हैं।

मुक्ति से पुनरावृत्ति भी होती है—

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः सन्यास योगाधतयः शुद्ध सत्वाः
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ६

वेदसिद्धान्त के विशिष्ट ज्ञान द्वारा जिन्हें तत्वार्थ का निश्चय हो चुका है और सन्यास योग (ईश्वर प्रणिधान=आत्मसमर्पण) द्वारा जिन के दोषों का नाश हो चुका हैं ऐसे शुद्ध सत्व यति सभी मुक्ति दशा में आनन्द भोग कर परान्तकाल में मुक्ति दशा में छूट जाते हैं।

अनेक पुस्तकों में पाठ परामृतात् है, 'उत्कृष्ट मुक्ति से' इस का अर्थ हुआ मुक्ति दशा का वर्णन करते हैं—

गताः कलाःपञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्चात्मा परेऽव्यये सर्वएकी भवन्ति ॥७॥
यथा नद्यः स्यन्दामनाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपं विहाय ।
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम ॥८॥

प्राण आदि पन्दरह कलाएं अपने कारण में लीन हो गईं, सब इन्द्रियां अपने २ मूलभूत पृथिवी आदि प्रतिदेवों में विलीन हो गईं। कर्म्मेन्द्रिय और विज्ञानमय=बुद्धि तथा आत्मा उस अविकारी परमात्मा में एकीभूत हो जाते हैं॥ जैसे बहती हुई नदियां नाम रूप छोड़ कर समुद्र में अस्त हो जाती हैं, ऐसे ही ज्ञानी नामरूप से विमुक्त हो कर परात्पर=जीव से पर दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाता है।

कलाओं का वर्णन प्रश्नोपनिषत्सार में देखिए। मुक्त जीव के स्थूल सूक्ष्मशरीर साथ नहीं रहते, अपने अपने कारणों में लीन हो जाते हैं। समुद्र में मिलने पर गङ्गा यमुना आदि नाम रूप नष्ट हो जाता है। नाम रूप आकर प्रकार का ही नाम है। समुद्र में पहुँचने पर गङ्गादि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का जल (वास्तव में जल ही का नाम नदी है) विनष्ट नहीं होता। ऐसे मुक्त जीव का नाम का (देवदत्तादि नाम तथा रूप=देह संस्थान) का अभाव होता है, आत्मा का नहीं। भ्रान्ति ना के लिए उपनिषत्कार ने परमात्मा को परात्पर कहा है, प्रकृति से उत्कृष्ट होने के कारण जीव पर कहते हैं और परमात्मा उस से भी उत्कृष्ट होने के कारण परात्पर कहाता है। और क है कि जीव मुक्ति दशा में परात्पर पुरुष को प्रप्त होता है, न कि अस्त होता है। इस स्पष्ट प्रति पादित भेद को न समझ कर कई टीका कारों ने मुक्ति दशा में जीव का परमात्मा में लय हो माना है, जो सर्वथा असंगत है।

अन्त में ब्रह्म ज्ञान का विशदफल कहते हैं—

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले जायते
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रान्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥९॥

तदेतदृचाऽभ्युक्तम्—

क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वते एकर्षिं श्रद्धयन्तः।
तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं येस्तु चीर्णम् ॥१०॥

सचमुच जो उस परम ब्रह्म को जानता है, ब्रह्म ही हो जाता है, उसके कुल में अब्रह्मवि उत्पन्न नहीं होता। वह शोक को तर जाता है, क्योंकि वह पाप से तर चुकता है, और हृ की ग्रन्थियों से छूट कर मुक्त हो जाता है। इसको एक स्तावक वचन द्वारा कहा गया है— 'क्रियावन्तः —' का अर्थ पहले लिख दिया गया है।

ब्रह्मज्ञान का फल बतलाया है कि (१) वह ब्रह्म ही हो जाता है। इसका प्रतीयमान अर्थ इस कारण संगत नहीं लगता कि ब्रह्म सदा से ब्रह्म है और ये ब्रह्म ब्रह्म दर्शन से ब्रह्म बना है। अत इसका अर्थ ब्रह्म समान हो जाता है। करना योग्य है। आनन्द भोग ही इसकी ब्रह्म के सा समता है। (२) इसके वंश में अब्रह्मवित्=ब्रह्म को न जानने वाले उत्पन्न नहीं होता। ब्रह्मवेत्ता विषयवासना, लोककामना, पुत्रैषणा से ऊपर उठ चुका है, उसके तो अब सन्तान का तन्तु ही टूट गया है। अतः ब्रह्मविमुख सन्तान की सम्भावना ही नहीं है। (३) परमात्मा को प्राप्त कर उसे शोक मोह नहीं सताते। इसका हेतु पीछे कह चुके हैं। (४) शोक से तरने का एक हेतु पाप से तर जाना है। वासनाओं के कारण पाप होता है। ब्रह्म दर्शन से वासनाओं का क्षय हो जाता है अतः पाप ही नहीं होता। (५) वासना क्षयका कारण यह है कि उसके हृदय की गांठें खुल चुकी हैं

अपनी इस बात के लिए अंगिरा जी ने एक प्रमाण भी दे दिया है कि क्रियावान वेदाध्यायी ब्रह्मनिष्ठ श्रद्धासम्पन्न होकर एकर्षि की उपासना करते हैं— ' इस प्रमाणवाक्य के अनुसार अर्थ करने से जीव का ब्रह्म बनना किसी भान्ति सिद्ध नहीं हो सकता। उपासकों को ब्रह्मनिष्ठ कहा गया है जिसमें स्थिति हो, वह और स्थिति करने वाला भिन्न होते हैं। ब्रह्म में निष्ठा वालों का ब्रह्म से भिन्न होना अनिवार्य्य है। उनके द्वारा ब्रह्मोपासना करने का वर्णन है उपास्य तथा उपासक का अभेद प्रयत्न सहस्र से भी सम्भव नहीं है। अतः इस वाक्य का वही भाव ठीक है जो हम ने दिखलाया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थमण्डल (हरद्वार) ज्वालापुर

का

शारदीय यज्ञ महोत्सव

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थमण्डल की ओर से वानप्रस्थाश्रम में प्रति वर्ष दो बार यज्ञ तथा कथा हुआ करती हैं। १२.१०.५० से २०.१०.५० तक वानप्रस्थाश्रम में होने वाला यज्ञ मण्डल के अध्यक्ष जी के अस्वस्थ होने के कारण स्थगित करना पड़ा था। यज्ञप्रेमी सत्संगियों को सहर्ष सूचित किया जाता है कि उक्त यज्ञ १०.१२.५० (२५ मार्गशीर्ष सं.२००७ वि.) रविवार से आरम्भ हो कर १७.१२.५० (३ पौष सं. २००७ वि.) रविवार तक होगा। यज्ञ प्रति दिन प्रातःकाल हुआ करेगा। यज्ञ के पश्चात् कथा भी हुआ करेगी। सायंकाल को व्याख्यान हुआ करेगा। इस यज्ञ में भाग लेने के लिये श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी, अध्यक्ष दयानन्दमठ, दीनानगर। स्वामी अभेदानन्द जी बिहार, श्रीस्वामी आत्मानन्द जी, अध्यक्ष, वैदिक साधन आश्रम रायपुर (जगाधरी) आदि संन्यासी महानुभाव तथा अनेक वानप्रस्थी पधारने का वचन दे चुके हैं। सत्संगियों के लिये यह विशेष उपयोगी अवसर है। इतने तपस्वी महानुभाव कदाचित् ही एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। अध्यात्मजिज्ञासुओं, वेदप्रेमियों, यज्ञभक्तों के लिए यह स्वर्ण अवसर है।

आइए, इस ज्ञानगङ्गा में नहाइए। चूंकि हरद्वार में उतने दिनों शीत कुछ अधिक होता है, अतः शीत काल का उपयोगी बिस्तर तथा गर्म कपड़े अवश्य साथ लाइए।

यज्ञ प्रेमियों से अनुरोध है कि वे इस यज्ञ में अपने सामर्थ्य के अनुसार अपनी अपनी आहुति अवश्य डालें। यज्ञ के दिनों में एक विशेष लंगर भी चलता है।

जो सज्जन यज्ञ में यजमान बनना चाहें, वे मण्डल के अध्यक्ष श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी से पत्र व्यावहार कर के निश्चय करलें।

ज्ञानचन्द्र आर्य्य सेवक
मन्त्री
सार्वदेशक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थमण्डल
ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दार्शनिक ऐतिहासिक साहित्य में क्रान्ति करने वाला ग्रन्थरत्न

सांख्यदर्शन का इतिहास

वैदिक दर्शनों में सांख्यदर्शन सबसे पुराना माना जाता है। आर्ष वाङ्मय में इसके रचयिता कपिल मुनि को आदि विद्वान् First philosopher कहा गया है। यूरोप के इतिहास खोजी विद्वानों ने इस दर्शन तथा इसके कर्त्ता के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की भ्रान्तियां फैलाई हैं। भारतीय दार्शनिक विद्वानों में भी इस दर्शन के सम्बन्ध में नाना भ्रम हैं। विरजानन्द वैदिक संस्थान के प्रधान अनुसन्धान विद्वान् श्रीमान् पं० उदयवीर शास्त्री जी विद्यभास्कर ने वर्षों परिश्रम करके इस शास्त्र के सम्बन्ध में खोज का कार्य्य कर इस विशाल इतिहास ग्रन्थ को लिखा है। जिसमें कपिल मुनि तथा अन्य पुरातन सांख्याचार्यों यथा आसुरि, पञ्चशिख, वार्षगण्य आदि के इतिहास के साथ अर्वाचीन सांख्याचार्यों का इतिहास भी दिया है। शास्त्रीय पद्धति से अनुसन्धान करके इतिहास-अनुक्रम से सिद्ध कर दिखाया गया है कि सांख्यदर्शन अत्यन्त पुराना है। योरुपीय विद्वानों तथा उनके शिष्यों प्रशिष्यों का यह मत है कि सांख्यदर्शन ईसा की चौदहवीं शती का बना हुआ है। इस मत का योरुपीय पद्धति से ही खण्डन करके इसकी प्राचीनता सिद्ध की गई है। इस दर्शन के सम्बन्ध में यह भी एक असूलक धारणा फैली हुई है कि श्री शङ्कराचार्य्य जी ने इस शास्त्र का कोई उद्धरण नहीं दिया। योग्य लेखक ने शंकराचार्य्य के वेदान्तदर्शनभाष्य में सांख्यसूत्र के उद्धरण दिखलाकर इसको असारता सिद्ध की है। प्रसन्नता की बात यह है कि पाश्चात्य पद्धति के ऐतिहासिक विद्वानों ने भी इस ग्रन्थ की उपादेयता, उपयोगिता तथा इसमें वर्णित परिणामों की यथार्थता को स्वीकार किया है। ग्रन्थ निर्माण में संस्थान को इतना धन व्यय करना पड़ा है कि एक प्रति पर तीस रुपयों से भी अधिक लागत बैठती है, ग्रन्थ छप चुका है। अब उसको जिल्द बंध रही है। एक मास में पुस्तक तय्यार हो जाएगा। बहुत सुन्दर जिल्द बनाई जा रही है।

मूल्य ३०) डाक व्यय पृथक।

पुस्तक मिलने का पता—

स्वामी वेदानन्द, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

सावित्री प्रकाश

सभी वैदिकधर्म्मी, चाहे वे आर्य्यसमाजी हों या सनातनधर्म्मी, गायत्री मन्त्र की महिमा मानते हैं। इसके जप के उत्कर्ष को स्वीकार करते हैं। शास्त्रों में अर्थ ज्ञान के बिना जप करने को व्यर्थ बतलाया है। पुराणों तथा तन्त्रों तक में इस मन्त्र की महिमा गाई गई है। किन्तु अभी तक इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या कहीं से प्रकाशित नहा हुई थी। विरजानन्द वैदिक संस्थान के संचालक स्वामी वेदानन्द तीर्थ ने वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों आदि के आधार से इसकी विस्तृत व्याख्या लिखकर इस न्यूनता की पूर्णता कर दी है। व्याख्या की उपयोगिता के लिए स्वामी जी का नाम ही पर्याप्त है। इसमें ओ३म् की व्याख्या के प्रसङ्ग में इसके परमेश्वर के निज नाम होने की सिद्धि मनोहर रीति से की गई है। एक एक पद की व्याख्या करके इसके जप की विधि बता दी गई है। इतनी उत्तम पुस्तक का मूल्य केवल १) है। डाक व्यय पृथक है।

मिलने का पता—

विरजानन्द वैदिक संस्थान, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

मुद्रक—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय दीवान हाल दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

॥ ओ३म् ॥

वेद:पथ

मासिक

❀ वैदिक आचार--विचार--व्यवहार-प्रसारक ❀

तृतीय वर्ष { तप:=माघ २००७ वि० (१२६ द०)=जनवरी १९५१ ई० } षष्ठांक

सम्पादक
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
दयानन्द वैदिक
संस्थान
ज्वालापुर,
जि० सहारनपुर

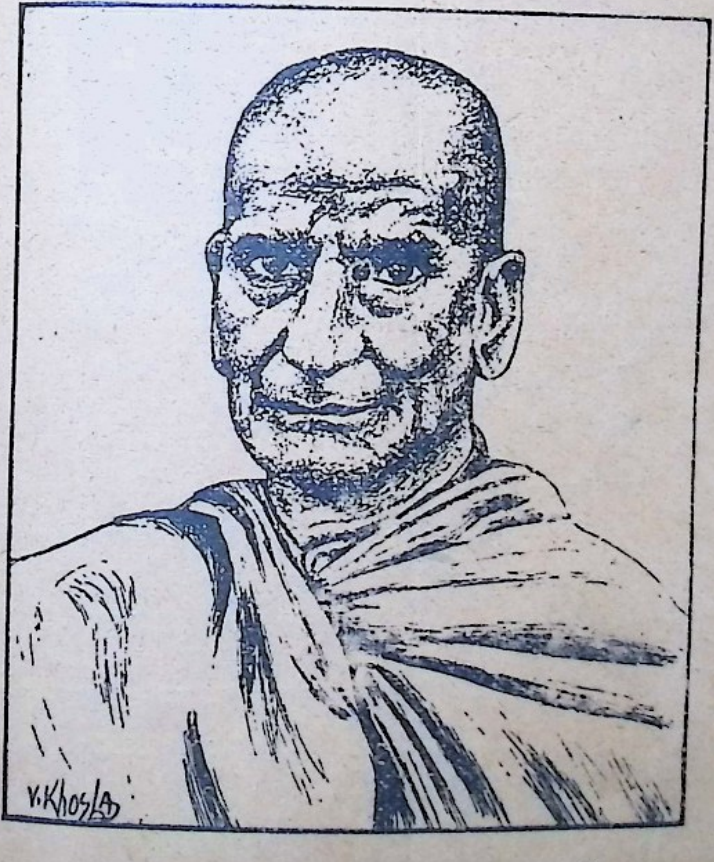

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा
५≡)
वी० पी० द्वारा
५।।)
एक प्रति ।।)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ
१. स्वाध्याय वैदिक सूक्त संग्रह	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	१४१
२. विद्यादाता की महत्ता	विद्याविनीत विद्यार्थी	१४३
३. आत्मा का स्थान (४)	श्रीमान् स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी	१४८
४. व्यापार-व्यवहार	श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती जी	१४९
५. वैराग्य भावना का अनुपम सिद्धान्त	श्रीमान् आचार्य्य वैद्यनाथ शास्त्री जी	१५०
६. पञ्चजन	श्रीमान् पं० विश्वनाथ जी	१५२
७. कालपरिमाण निर्देशपद्धति	श्रीमान् विद्याभूषण प्रो० भीमसेन शास्त्री जी एम० ए०	१५५
८. त्रिविष्टप् और वेद	डा० गंगाचन्द्र अग्रवाल	१५९
९. सा० द० सं० वा० मण्डल का कार्य्यविवरण		१६२
१. सम्पादकीय—		१६४

आवश्यक सूचना

द्वितीय वर्ष के आरंभ से वेदपथ देहली से प्रकाशित होता है। ग्राहक एवं पाठक प्रबन्ध संबंध पत्रव्यवहार 'व्यवस्थापक, वेदपथ मासिक, आर्य्यसमाज दीवानहालदेहली' में करें। वार्षिक मूल्य भी वहीं भेजें। लेख 'सम्पादक, वेदपथ मासिक, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर) के नाम भेजे जाएं।

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

ओ३म्

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ० १।४१।४)

वेद पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

द्वितीय वर्ष — देहली — तपः = माघ २००७ वि० (१२६ द०) = जनवरी १९५१ ई० — षष्ठाङ्क

ओ३म्

स्वाध्याय सूक्ति संग्रहः

[स्वामी वेदानन्द सरस्वती]

संपूर्ण वेद सूक्त उत्तम रीति से उक्त है, पूजित भगवान् का उक्त है, सूत्रों का समुदाय है। उस में एक भी वचन दुरुक्त नहीं है। चिरकाल से वेद के पठन पाठन का ह्रास होने से इस समय वेद दुरुह प्रतीत हो रहा है। मानव हित के लिए प्रवृत्त हुआ वेद आज मानवों के प्रमाद के कारण दुर्बोध हो रहा है। हमारा सप्रमाण विश्वास है, जब तक पुनः पूर्ववत् वेद का प्रसार न होगा, तब तक मानव-जाति का हित पूर्णतया सिद्ध न हो सकेगा। सूर्य्य के अभाव में अग्नि, चन्द्र, विद्युत ऐसे प्रकाशकारक होते हुए भी सूर्य्य प्रकाश का अभाव खटकता ही रहता है, इसी भांति वेद ज्ञान के अभाव में नानाविध अल्प ज्ञानों के होने पर भी मानव-हित पूर्णतया सिद्ध नहीं हो रहा। उस हित की सिद्धि के लिए वेद प्रचार अनिवार्य्य है। तथाकथित अनेक वैदिकों ने वेद को दुर्बोध, कठिन प्रसिद्ध कर रखा है। इस मिथ्या प्रवाद को दूर करने एवं वैदिक शिक्षाओं को हृदयंगम करने के लिये हम वेदपथ में वैदिक सूक्तियों का संग्रह प्रकाशित करने लगे हैं। विविध भाषाओं में भिन्न भिन्न अवसरों के उपयुक्त आभाणक अथवा कहावतें होती हैं जिन्हें लोग अनायास कण्ठस्थ कर लेते हैं और अवसर आने पर उनका प्रयोग उपयोग भी करते हैं जिस से उन के वचन विन्यास में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। वेद में भी ऐसे वचन बहुतायत से हैं। यदि पाठक उन्हें कण्ठस्थ कर लें, और यथावसर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उनका प्रयोग भी करें और अन्यों को भी प्रेरणा करें, तो अनायास उन्हें सहस्रों वेद वाक्य कण्ठस्थ हो जाएंगे। उन वचनों के बल पर वे वेदाभ्यास करने में भी समर्थ हो सकेंगे। तब उन्हें ज्ञात हो सकेगा कि वेद सरल है, कठिन नहीं है।

१ अग्निमीडे पुरोहितम् (१-१-१)
अग्निम् ईडे पुरोहितम्
सब से पूर्व विद्यमान भगवान् की मैं स्तुति करता हूं।

२ स देवां एह वक्षति १-१-२)
स देवान् आ इह वक्षति
[क्योंकि] वह देवों को (दिव्य गुणों को) इस संसार में पहुंचाता है।

३ देवो देवेभिरागमत् (१-१-५)
देवः देवेभिः आ-अगमत्
भगवान् दिव्यगुणों के साथ आता है। अथवा भगवान् दिव्य गुणों के द्वारा प्राप्त होता है।

४ अग्ने सचस्वा नः स्वस्तये (१-१-६)
अग्ने। सचस्व नः स्वस्तये
अग्ने = भगवन् हमारी स्वस्ति = उत्तमस्थिति के लिए हम में संसक्त हूजिए।

५ वायवायाहि (१-२-१)
वायो आयाहि
सब से बलवन्, भगवन्! तू आ।

६ श्रुधी हवम् (१-२-१)
प्रकार सुन

७ मेधं जुषन्त वह्नयः (१।३।६)
समाज का भार उठाने वाले संघ से प्रीति करते हैं।

८ यज्ञं वष्टु धियावसुः (१।३।१०
बुद्धि धन वाली (संस्कृति) यज्ञ को चाहे।

९ यज्ञं दधे सरस्वती (१।३।१२)
सरस्वती यज्ञ को धारण करती है।

१० इन्द्रं पृच्छ विपश्चितम् (१।४।४)
विद्वान् ऐश्वर्य सम्पन्न से पूछ जिज्ञासा...

११ स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि (१।४।६)
(स्याम इत् इन्द्रस्य शर्मणि)
हम इन्द्र के ही आश्रय में रहें।

१२ तस्मा इन्द्राय गायत् (१-४-१२)
उस इन्द्र के लिए गाओ।

१३ रोचन्ते रोचना दिवि (१।५।१
द्यौ में (मस्तिष्क) प्रकाश चमकते हैं।

१४ समुषद्भिरजायथाः (१।६।३)
सम् उषद्भिः अजायथाः
कमनीयों के साथ हो

१५ इन्द्रः—विश्वायुर्धेह्यक्षितम्।
इन्द्र विश्वायु धेहि अक्षितम्
सम्पूर्ण जीवन क्लेशरहित धारण करा...

१६ अथा न इन्द्रसोमपा गिरामुपश्रुतिं चर (१।१०।...
हे सोमप इन्द्र। अब हमारी वाणियों को सु...

१७ उक्थमिन्द्राय शंस्यम् (१।१०।५)
उत्तम वचन इन्द्र के लिए कहने चाहिए।

१८ त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् (१।११।...
तुझ सर्वोत्कृष्ट, किसी न हारने वाले ...
हम प्रणाम करते हैं।

१९ अग्ने देवां इहावह (१।१२।१०)
अग्ने! दिव्यगुणों को यहां लाना

२० दैवैरा सत्सि बर्हिषि (१।१२।४)
तू यज्ञ में देवों के साथ बैठता है।

२१ अग्निनाग्निः समिध्यते (१।१२।६)
अग्नि के द्वारा अग्नि जलाई (चमका...
जाती है।

२२ अग्ने देवेभिर्याहि यक्षि च (१।१४।१)
हे अग्ने देवों के साथ जा और पूजा कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२३ देवेभिरग्न आगहि (१।१४।२)
अग्ने ! देवों के साथ जा ।

२४ मध्वः सुजिह्व पायय (१।१४।७)
हे उत्तम जिह्वा वाले । मधु पिला ।

२५ इन्द्र सोमं पिब ऋतुना (१।१५।१)
हे इन्द्र ! ऋत्वनुसार सोम पी

२६ जुहोत प्र च तिष्ठत (१।१५।६)
त्याग करो तथा प्रतिष्ठा पाओ ।

२७ शमीभिर्यज्ञमाशत (१।२०।२)
शान्ति के साधनों के साथ यज्ञ का उपयोग करो ।

२८ अप्रजाः सन्त्वभिणः (१।२१।५)
सर्वभक्षक सन्तानरहित होवें ।

२९ सवितारमुपह्वये (१।२२।५)
जगदुत्पादक को पास बुलाता हूँ ।

३० सवितारमुप स्तुहि (१।२२।६)
जगदुत्पादक की समीप होकर स्तुति कर ।

३१ सविता स्तोम्यो नु नः (१।२२।८)
जगदुत्पादक सचमुच हमारा स्तोतव्य है ।

३२ दाता राधांसि शुम्भति (१।२२।८)
दाता धनों की शोभा बढ़ाता है ।

oooooooooooo

विद्यादाता की महत्ता

[*विद्याविनीत विद्यार्थी*]

आर्ष्य शास्त्रों में ज्ञान दान करने वाले महामनुष्य महान् माहात्म्य किया गया है। उस की तनिक सी बानगी यहां दिखाई जाती है, आचार्य्य यास्क मुनि जो निरूक्त नामक वेदांग के कर्ता हैं आदेश करते हैं—

य आतृणत्य वितथेन कर्णावदुःखं कुर्वन्नमृतं प्रयच्छन्।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै, न द्रुह्येत कतमच्चनाहः ॥२।४।२

जो कानों को कष्ट न देता हुआ, अमृत प्रदान करता हुआ, कभी मिथ्या न होने वाले [अबाध्य सत्य] ज्ञान के द्वारा कानों को फाड़ता है, मनुष्य उस को पिता और माता माने और किसी भी दिन उस से द्रोह न करे ।

यथार्थ ज्ञान अमृत है, जीवन का हेतु है, प्रमाद-पाप रूप मृत्यु से बचाता है, उस अमृत को जो हमारे कानों में डालता है, सचमुच वह महोप कारी वन्दनीय है। शब्द कान में जाते हुए मार्ग बनाते हैं, मानों वे कानों को फाड़ते हैं किन्तु वे कानों को पीड़ा नहीं देते, प्रत्युत जीवन प्रदान करते हैं । माता पिता बालक के जन्म दाता होने के कारण वन्दनीय हैं। माता पिता का उपकार न मानकर उन से द्रोह करना जैसे पाप है, वैसे ही सत्य ज्ञान दाता गुरु का विरोध करना पाप है ।

मनुजी महाराज भी ऐसी बात कहते हैं—

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ।
स माता सपिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन ॥ (२।१४४

जो दोनों कानों को सच मुच वेद से आवृत करता है, उसे माता तथा पिता जानना चाहिए। मनुष्य उस से कभी द्रोह न करे ।

मनु जी अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि में मानों युक्तियां देते हुए कहते हैं—

उत्पादक ब्रह्मदात्रोर्गरी यान् ब्रह्मदः पिता ।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥२।१४६

उत्पन्न करने वाले तथा वेद ज्ञान दान करने वाले में वेद दान देने वाला पिता अधिक बड़ा है, क्योंकि विप्र का ब्रह्मजन्म=वेदविद्या

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन्म ही लोक परलोक में शाश्वत स्थायी है ।

ज्ञानी मनुष्य की कीर्त्ति केवल इस जीवन में ही नहीं होती, प्रत्युत उस के शरीरान्त के पश्चात् भी उस की कीर्ति स्थिर रहती है। ब्रह्मजन्म की उत्कृष्टता का हेतु देते हुए मनु जी कहते हैं—

कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः ।
संभूति तां तस्य विद्या यद्योनावभिजायते ॥२।१४७
आचार्य्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः ।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्यां साजरामरा ॥२।१४८

यतः माता पिता काम के वशीभूत होकर मिल कर इसे उत्पन्न करते हैं, सुजन्म तो उस का वह जानो जो वह विद्यायोनि में उत्पन्न होता है क्योंकि वेद पार गामी आचार्य्य विधि पूर्वक सावित्री=गायत्री इस की जिस जाति का निर्माण करता है, वह अजर अमर=अभिष्ट स्थायी है।

यद्यपि शास्त्र में सन्तानोत्पत्ति की भावना से दम्पति को मिलने का आदेश है, तथापि इस आदेश का पालन करने वाले विरले ही होते हैं। अतः बहुधा सन्तान कामज होती है। अतः मातृ गर्भ से च्युत होना मात्र जन्म नहीं है, जन्म और उत्तम जन्म तो वही है कि विद्यायोनि में हो। मनु जी इस हेतु का उपोद्बल इस भांति करते हैं कि वेद वेदाङ्ग पारगामी आचार्य्य सावित्री=गायत्री, ईश्वर संबन्धिनी विद्या के दान द्वारा शिष्य को जो कुछ बना देता है, वह स्थायी होता है। आचार्य्य उसे यथार्थ मनुष्य बनाता है, अतः आचार्य्य का महत्त्व बहुत बड़ा है।

इस लिये

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्म्मस्य च शासिता ।
बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥२।१५०

ब्राह्म जन्म का कर्ता (साधक) [तथा] स्वधर्म्म का उपदेष्टा विप्र आयु में बालक होता हुआ भी वृद्धका धर्म्मानुसार पिता होता है क्योंकि

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बाल मित्याहुः पितेत्येवतु मन्त्रदम् ॥२।१५[३]

अज्ञानी ही बालक होता है, मन्त्र देने वा[ला] (वेद ज्ञान देने वाला) पिता होता है। लोक [में] भी अज्ञानी को बालक कहते हैं, और वेद [देने] वाले को पिता कहते हैं।

पिता शब्द का मूल-अर्थ पालक रक्षक है। रक्षा का सब से बड़ा साधन यथार्थ ज्ञान है। उस का देने वाला ही सब से बड़ा और सच्चा रक्षक=पिता है। मनुजी ने यहां एक ऐसी [बात] कही है जिस पर बिशेष ध्यान देने की आव[श्]यकता है। वे केवल पढ़ाने वाले को [ही] आचार्य्य नहीं कहते, वरन जो वेद पढ़ाने[के] साथ पढ़ने को आत्मधर्म्म, ज्ञानानुसार आचर[ण] करनेकी युक्ति भी सिखाए। अर्थात् शाब्दि[क] वादात्मक ज्ञान के साथ कार्मिक क्रियात्म[क] अनुष्ठान भी सिखाए। आचार्य्य के इस कर्त[व्य] का विचार करने से उस का मातृत्व तथा पि[तृ]त्व स्पष्ट सामने आता है। अर्थात् मा[तृत्व] तथा पितृत्व धर्म्म के साथ आचार्य्य में मन्त्र[दा]त्व तथा स्वधर्म्म शासितृत्व अधिक हैं। [अत] एव वह जन्म दाता माता पिता से अ[धिक] आदरणीय है, और अत एव उस के प्रति [अनादर] करना पातक है।

आज कल, यतः, विद्याविक्रय होता है, [अतः] गुरुओं का वह गौरव नहीं है। परिणाम स्पष्ट है। पढ़ने वाले भी विद्या से हीन [हो] जाते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा का स्थान

[श्रीमान् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज]

"स य एषोऽन्तर्हृदय आकाश स्तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः, अमृतो हिरण्मयः। अन्तेरण तालुके यएष स्तन इवावलम्बते सेन्द्र योनिः। यत्रासौ केशान्तो विवर्तते व्यपोह्यशीर्षकपाले। भूरित्यग्नौ प्रतिष्ठति, भुवइति वायौ, सुवरित्यादित्ये, महइति ब्रह्मणि, आप्नोति स्वाराज्यम्, × आप्नोति मनसस्पतिम् × ,वाक्पति श्चक्षुष्पतिः, श्रोत्रपति विज्ञानपतिः एतत्ततो भवति आकाश शरीरं ब्रह्म। सत्यात्मप्राणारामम्। मनआनन्दम्। शान्ति समृद्धममृतम्। इति प्राचीन योग्योपास्व।" (तैत्तिरीय १।६)

अर्थात (जो कि यह हृदय के अन्दर आकाश है। उस में यह पुरुष मनोमय हो कर प्रविष्ट है। अर्थात जब यह अन्नमय कोश का विवेक कर, उस से ऊंचा उठ, प्राणमय कोश में प्रवेश करता है, और उसका भी विवेक कर उस से भी ऊंचा उठ मनोमय सत्वप्रधान कोश में प्रतिष्ठित होता है तब इस हृदय में प्रवेश करता है'। जब यह इस हृदय में प्रवेश करता है तो इस का स्वरूप प्रकाशमय होता है, और अमृत होता है-अर्थात अब यह अपने प्रकाशमय स्वरूप से च्युत नहीं होता। यह हृदय कहां है ? इस का उत्तर महर्षि, चिन्हों का निर्देश करते हुए आगे चल कर देते हैं।

हमारे तालु के अन्दर जो यह स्तन जैसा लटक रहा है। यह ही उस ऐश्वर्य सम्पन्न हृदय के निर्माण की आधार शिला है। यह हृदय वहां ही है जहां शिर के कपाल स्थान को छोड़ कर मुण्डन किया जाता है।

यहां यह मनोमय विशिष्ट आत्मा "भूः" इस व्याहृति के द्वारा अग्नि के प्रकाश में, "भुवः" इस व्याहृति के द्वारा अग्नि के प्रकाश में, "भुवः" इस व्याहृति के द्वारा अन्तरिक्ष के विद्युत के प्रकाश में "स्वः" इस व्याहृति के द्वारा द्युलोक में आदित्य के प्रकाश में प्रतिष्ठा पाकर=अर्थात् योग साधनों द्वारा इन सब प्रकाशों से क्रम से पार होता हुआ, "महः" इस व्याहृति के द्वारा इस हृदय में ब्रह्म में प्रतिष्ठित होता है। तब यह स्वाराज्य को प्राप्त होता है=अर्थात् मन वाणी, श्रोत्र और विज्ञान का स्वामी बनता है। उस समय यह ऐसा प्रतीत करता है कि आकाश को शरीर बना कर ब्रह्म सर्वत्र फैला हुआ है। यह सत्य रूप है। जगत्प्राण इस के निमन्त्रण में है। इस का मनन आनन्द रूप है। यह शान्ति का भण्डार है। यह अमर है। हे प्राचीन योग्य इस ब्रह्म की उपासना कर।)

पाठक समझ गये होंगे कि जिस हृदय का इस प्रसङ्ग में व्याख्यान किया गया है, वह हमारे तालु के ऊपर के भाग में शिर में है। उसी का नाम शिर का लघु छिद्र है जहां वह विराजमान है। उसी में पहुंच कर आत्मा उस महान् प्रकाश के दर्शन करता है जो उन सब प्रकाश से श्रेष्ठ है जिन के वह दर्शन करता हुआ अन्त में यहां पर पहुँचा है।

इस प्रकार उपनिषदों के आधार पर हमारे शरीर में दो हृदय सिद्ध होते हैं। एक स्तन के नीचे छाती के वाम भाग में और दूसरा तालु के ऊपर शिर में।

इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट हो गया कि आत्मा मन के ऊपर अधिकार करने के बाद ही विज्ञान और आनन्द की प्राप्ति के लिये इस हृदय में पहुँचता है। इस से पहिले वह दूसरे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हृदय में ही रहता है। यहीं पहुँच कर उसे ब्रह्मज्ञान होता है।

इसी विषय को स्पष्ट करने वाला उपनिषद् का एक और प्रसङ्ग हम आगे उद्धृत करते हैं।

'शतं चैका हृदय नाम स्तासां मूर्धान मभिनिः स्टतैका। तयोर्ध्व मायन्नमृतत्व मेति विष्वङ्ङ्न्यां उत्क्रमणे भवन्ति।''(कठ २।६।१६)

इस के साथ ही मिलता हुआ छान्दोग्य का यह प्रसङ्ग भी है।

"शतञ्चैका हृदयस्य नाडय स्तासां
मूर्धान मभिनिः स्टतैका।
तयोर्ध्व मायन्न मृतत्व मेति
विष्वङ्ङ्न्या उतक्रमणे भवन्ति।
(छा० ८।६।३)

(हृदय की १०१ नाड़ियें हैं। उन में से एक मूर्धा की ओर गई है। उस के द्वारा आत्मा ऊपर जाकर अमृत को प्राप्त होता है। शेष सब नाड़ियें उस के उत्क्रमण में सहायक होती हैं।)

आचार्य यम और महर्षि याज्ञवल्क्य के इन वचनों से स्पष्ट हो जाता है, कि एक ऐसी नाड़ी है जिस का छाती वाले हृदय और मूर्धा के हृदय दोनों से सम्बन्ध है। एक ऐसा अवसर आता है कि आत्मा का उस नाड़ी के द्वारा मूर्धा के हृदय में उत्क्रमण होता है। वह अवसर ऊपर आये प्रसङ्गों के अनुसार आत्मा का मन के ऊपर अधिकार होने के बाद ही आता है। इस प्रकार आत्मा का मन के ऊपर अधिकार होने से पहिले उस का नीचे के हृदय में ही निवास रहता है ऐसा मानना पड़ता है।

हृदय की इन नाड़ियों के रङ्ग रूप का वर्णन करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य अन्यत्र लिखते हैं—

"अथ या हृदयस्य नाडयस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति, शुक्लस्य, नीलस्य, पीतस्य, लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः'' (छान्दोग्य ८।६।१)

(अब जो कि ये हृदय की नाड़ियें हैं, वे पिङ्गल वर्ण, शुक्ल वर्ण, नील वर्ण, पीत वर्ण और रक्त वर्ण की हैं, अत्यन्त सूक्ष्म हैं। यह सूर्य भी, पिङ्गल, शुक्ल, नील, पीत और लाल रङ्ग का है।)

इस प्रसङ्ग में महर्षि ने नाड़ियों के रूप और उन की आकृति का वर्णन किया है। सूर्य को यहां दृष्टान्त के रूप में उपस्थित किया गया है। इन्द्र धनुष में सूर्य की किरणों का जो रूप दृष्टिगोचर होता है, इन नाड़ियों में उसी रूप की झलक दिखलाई गई है। इन नाड़ियों को सूर्य की किरणों की उपमा इन की सूक्ष्मता को स्पष्ट करने के लिये भी दी गई है। इसी प्रसङ्ग में आगे चल कर मृत्यु के बाद सूर्य में ही इन नाड़ियों का लय भी कहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन के बीच में आत्मा का निवास है वे हृदय की नाड़ियें सूर्य की किरणों के समान अत्यन्त सूक्ष्म हैं। चीर फाड़ में इनका पता ही नहीं लगता अतः शारीरक में इन की गणना भी नहीं की जा सकी। जिन महर्षियों ने इन की गणना लिखी है उन्होंने योग समाधि में ही इनका प्रत्यक्ष किया होगा।

जिस प्रकार बाहर के जगत् में तीन लोक माने जाते हैं वैसे ही हमारे इस शरीर में भी तीन लोक हैं। छाती से नीचे पैरों तक का शरीर का भाग भूलोक है। छाती और उसके ऊपर का सारा धड़ अन्तरिक्ष लोक है। और गले से ऊपर का शिर का सारा भाग द्यु लोक है। जिस बाहर के द्यु लोक में सूर्य चमक रहा है और तीनों लोकों को प्रकाशित कर रहा है, इसी प्रकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे अन्दर के द्युलोक में भी एक सूर्य चमक रहा है जोकि अन्दर के तीनों लोकों को प्रकाशित कर रहा है। वह सूर्य हमारे शरीर के हृदयाकाश में एक ज्योति पुञ्ज के रूप में चमक रहा है जिस का कि प्रसिद्ध नाम सहस्रार चला है। शरीर के सब विज्ञान तन्तुओं को इसी से प्रकाश मिल रहा है।

जिस प्रकार सूर्य एक प्रकाश पुञ्ज दृष्टि गोचर हो रहा है और उसके चुंधिया देने वाले प्रबल प्रकाश के अन्दर विभिन्न नील पीत आदि रंग देखने में नहीं आते, परन्तु उन विभिन्न रंगों को हम इन्द्रधनुष आदि में स्पष्ट देखते हैं, इसी प्रकार इस अपने हृदयाकाश के सूर्य में भी अभ्यासियों को एक पुञ्जित श्वेत प्रकाश ही दृष्टि गोचर होता है परन्तु सुषुम्णा आदि के विज्ञान तन्तुओं में यह विभिन्न रूपों में चमकता हुआ अभ्यासियों ने देखा है। इस लिये यह सूर्य ही हमारे बाहर के सूर्य का प्रतिनिधि है अथवा उसी के उपादान तत्व से इस का निर्माण हुआ है। हमारे हृदय की नाड़ियों में इसी सूर्य का प्रकाश विभिन्न रूपों में चमक रहा है। (क्रमशः)

इस प्रसङ्ग को पढ़ कर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि हमारे हृदय की अनेक रंगों में चमकती हुई अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ियें हैं।

यमाचार्य और महर्षि याज्ञवल्क्य ने हृदय की इन नड़ियों का वर्णन संक्षेप में किया है। प्रश्न उपनिषद् में महर्षि पिप्पलाद ने इन का व्याख्यान शाखा प्रशाखाओं में जाकर और भी विस्तार से किया है। वह प्रसङ्ग भी पाठकों के परिचय के लिये हम आगे उद्धृत करते हैं।

"आत्मन एष प्राणो जायते, यथैषा पुरुषे छाया एतस्मिन्नेत दाततम्। मनोऽधिकृतेना या त्यस्मिन् शरीरे। (प्रश्न ३।३

हृदि ह्येष आत्मा, अत्रैतदेकशतं नाड़िनाम, तासांशतं शत मेकै कस्यां द्वासप्तति द्वसिप्ततिः प्रतिशाखा नाड़ी सहस्राणि भवन्ति आसु व्यान श्चरति।

पायूपस्थेऽपानम् चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणःस्वयं प्रतिष्ठते, मध्ये तु समानः (प्रश्न ३।६)

अथैकयोर्ध्व उदानः, पुण्येण्ये पुण्यं लोकं नयति पापे न पाप मुभाभ्या मेव मनुष्य लोकम्।"

(प्रश्न ३।७)

(इस प्राण की आत्मा से उत्पत्ति होती है (आत्मा यहां निमित्त कारण है उपादान नहीं) जैसे यह पुरुष की छाया सदा पुरुष के साथ ही रहती है इसी प्रकार यह प्राण भी छाया की तरह पुरुष के साथ ही एक योनि से दूसरी योनि में जाता है। यह प्राण इस आत्मा के ही आधीन है। इस शरीर में यह मन के निमन्त्रण में रहता हुआ आता है।

यह आत्मा हृदय में है। इस हृदय में एक सौ नाड़ियें हैं। फिर उन की एक २ शाखा में सौ सौ नाड़ियें और हैं। और फिर उन की एक एक शाखा में बहत्तर बहत्तर हजार नाड़ियें और हैं। इन सब नाड़ियों में प्राण के एक भाग व्यान का सञ्चार रहता है।

मल स्थान और मूत्र स्थान में प्राण के दूसरे भाग अपान का, और चक्षुः श्रोत्र, मुख और नासिका में स्वयं प्राण का सञ्चार रहता है। शरीर के मध्य भाग में प्राण के एक भाग समान का अधिकार है।

और एक नाड़ी जो ऊपर की ओर गई है उस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर उदान प्राण का अधिकार है। यह उदान ही अन्त में इस नाड़ी के द्वारा आत्मा के उत्क्रमण में सहायक होता है। यह आत्मा को पुण्य के प्रताप से पुण्य लोक में, (जहां सुख अधिक है ऐसी योनि में) पाप के प्रताप से पाप लोक में, (जहां दुःख अधिक है ऐसी योनि में) और पाप तथा पुण्य के समान होने पर मनुष्य लोक में (जहां सुख दुःख दोनों समान मिलें ऐसी योनि में) आत्मा को ले जाता है।

उत्क्तमण में सहायक सौ से भिन्न एक सौ एकवीं नाड़ी प्रथम दोनों प्रसङ्गों में भी थी, और इस प्रसङ्ग में भी है। इतना भेद है कि वहां आत्मा का मन के ऊपर अधिकतर होने से उत्क्रमण ब्रह्मरन्ध्र की ओर हुआ था। और यहां अधिकारी न होने से उत्क्रमण किसी अन्य योनि के लिये है। यहां शाखा प्रशाखाओं की नाड़ियों की भी गणना की गई है और वहां नहीं की गई थी। और यहां इन नाड़ियों पर व्यान के सञ्चार का भी निर्देश किया गया है, वहां नहीं किया गया था। उत्क्रमण नीचे के हृदय से ही हो सक्ता था अतः यहां भी आत्मा का स्थान नीचे वाला हृदय ही माना गया है।

'अङ्गुष्ठ मात्रः पुरुषोऽन्तरात्मासदाजनोनां हृदयं सन्निविष्टः। तं स्वाच्छरीरा त्वन्टहेन्मुन्जादिवेषीको धैर्येण तंविद्याच्छुभमामृतम्, तं विद्याच्छुन्नममृतम्।''

(कठ २।२७)

(अङ्गुष्ठ परिमाण वाला अन्तरात्मा प्राणियों के हृदय में सदा समीप है। उसे अपने इस शरीर से पृथक् करो। जैसे कि मूंज से सींक को पृथक् किया जाता है। अब उसे स्वच्छ और मरण के बन्धन से पृथक समझो।

इस प्रसङ्ग में भी आत्मा को नीचे के हृदय में ही बतलाया गया है। उसने अभी अपने मन पर अधिकार कर आत्मा को शरीर से पृथक नहीं समझा। और इस लिये उसे ऐसा करने का उपदेश दिया जा रहा है। इस अनुष्ठान के बाद ही उसे उत्क्रमण का और ऊपर के हृदय में जाने का अधिकार होगा।

इस प्रसङ्ग में आत्मा का परिमाण अङ्गुष्ठ मात्र कहा है। परन्तु आत्मा का परिमाण अणु है जैसा कि हम आगे चल कर स्पष्ट करेंगे। उस का आश्रय स्थान अङ्गुष्ठ जितना है, इस लिये उसे अङ्गुष्ठ मात्र कह दिया गया है।

अन्यत्र भी आया है—

"अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः। हृद्यमनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदु- दुरमृतास्ते भवन्ति" (श्वेताश्वतर ३।१३)

(अङ्गुष्ठ जितना बड़ा अन्तरात्मा पुरुष प्राणियों के हृदय में सदा रहता है। मन पर अधिकार करने वाला आत्मा हृदय में रहने वाले को मन से सावधान हो कर जब अपने आप को हृदय में जान लेता है अर्थात् हृदय से पृथक् समझ लेता है। तब वह अमर होने का अधिकारी होता है) यहां भी अङ्गुष्ठ मात्र परिमाण का ही भाव है। ब्रह्म को जानने से पहिले अपने स्वरूप को जाने यह निर्देश है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यापार-व्यवहार

[श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज]

भारत के व्योपारियों की शिकायत पूर्वी अफ्रीका में कई स्थानों पर कर्णगोचर हुई। भारत में आ कर भी ऐसे शब्द सुनाई देते हैं। इस विषय को सर्वथा असत्य मानना यदि असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है।

अब प्रश्न होगा, यदि यह सत्य है, तो इस का उपाय क्या है ? मेरी सम्मति में देश के लिये व्यापार अत्यन्त आवश्यक है। व्यापार हीन देश अवनति के खात में अवश्य गिरता है। वेद में व्यापार द्वारा धन वृद्धि की प्रार्थना है। यथा—

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तन्मे भूयो भवतु माकनीयो। (अ० ३।१५।५)

धन से धन का इच्छुक जिस धन से व्यापार करता है उस से धन में वृद्धि हो, न्यूनता न हो।

यह सारा सूक्त ही व्यापार विषयक है।

व्यापार में सब से अधिक सदाचार की आवश्यकता है। सत्ययुक्त व्यापार ही सदाचार की कोटि में प्रविष्ट होगा। असत्ययुक्त व्यापार प्रपंच चोर के व्यवहारवत् दुराचार है। दुःख से लिखना पड़ता है, इस समय प्रत्येक व्यापारी यही कहता है—'सत्य से व्यापार होता ही नहीं।' व्यापारियों की यह धारणा ही सत्य के न पालन का हेतु है।

महर्षि दयानन्द जी ने व्यवहार भानु में इस विषय पर गाथा लिख कर सिद्ध किया है, कि व्यापार में सत्य का ही पालन करना चाहिये। ऋग्वेद में भी लिखा है।

जहि न्यत्रिणं पणिं वृकोहि षः।

जो व्यापारी दूसरों को खाता है अर्थात् ठगता है। उन के साथ सत्य का व्यवहार नहीं करता, उन से दाम अधिक लेता है। उन को वस्तु कम देता है। उस को मारो, कोड़े मारो, जान से मारो, दण्ड से मारो क्योंकि वह वृक है। अर्थात् जिस प्रकार वृक (भेड़िया) अजा अवि को मार कर खाता है, इसी प्रकार वह साधारण प्रजा को, जिन को हिसाब नहीं आता है, ठगता है, खाता है।

एक उपाय इस का दण्ड है। दूसरा उपाय यह है, कि उन का जीवन धर्ममय बनाया जाए ताकि वह इस ठगने को बुरा समझ कर अपने आप सद्व्यवहारी हो जाएं।

आर्यसमाज में जिला रोहतक निवासी भगत् फूलसिंह हुए हैं। वे प्रथम पटवारी थे। उस समय वह घूस लेते थे। कई वर्ष के पश्चात् वह आर्यसमाजी बने। जिस समय उन्हों ने, 'घूंस लेना पाप है' ऐसा सत्यार्थप्रकाश द्वारा जाना उस समय उन को दुःख हुआ, उन्हों ने नौकरी से त्याग पत्र दे दिया; और अपने ग्राम में आकर अपनी भूमि गिरवी रखदी और उस से जो धन मिला वह उन व्यक्तियों का दिया, जिन से पहले किसी समय घूंस ली थी। उनसे क्षमा मांगते हुए प्रार्थना की—'आप मूल धन लेलें मैं वृद्धि (सूद) नहीं दे सकता वह छोड़दें।

उस के ऐसा करने का हेतु केवल धर्मभाव ही था। आज कल समाचार पत्रों में श्रीमान रामकिशन डालमिया की चर्चा है। और वे कहते हैं कि मैं प्रथम धन कमाने में सत्य का व्यवहार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न करता था, मैं ठगी युक्त (ब्लैकमार्कीट) व्यापार करता था। किन्तु अब नहीं हवेलीरामजी के सत्संग से मुझे बोध हुआ। इस लिये मैंने ठगो युक्त व्यापार को तिलांजलि देदी है। इस समय मैं और व्यापारियों को भी कहता हूं, वे भी मेरी भांति ठगी का व्यापार छोड़दें और सत्यता युक्त व्यापार करें। उन का कथन तो ठीक है, परन्तु जो धन उन्होंने कूट व्यापार द्वारा संग्रह किया है। क्या वह उस के लिये भी कोई प्रायश्चित करना चाहते हैं। अथवा बातें ही करेंगे। यदि अंतिम पक्ष है तो जब तक उन का व्यवहार जैसा वह कहते हैं सिद्ध न हो, उस समय तक कुछ कहना कठिन है। अभी तो यही कह सकते हैं "देखें ऊंट किस करवट बैठता है।"

सन्त चरण दास जी ने एसे व्यापारियों के विषय में एक पद्य अपने ग्रंथ में लिखा है। उन का जन्म एक व्यापारी के गृह में हुआ, उन्हों ने पहली आयु में व्यापार किया और अन्य व्यापारियों को देखा। इस कारण उन का यह अनुभूत विषय था। उन का पद्य निम्म प्रकार है।

प्रगट चोर चौराहे बैठा वाणिया मारग ...
वापक सापक, तराजू तेंगे, कलमकरद, गल...
तोले डुकता, झोले झुकता. हसता हसता ...
परको हरता नहीं डरता; शाह पदी के ओढ़े
प्रपंच ठाणे, राम न जाणे, समता साच न ...
ठग जन चोर महाजन वाजे येही अचरज ...

वह इन व्यापारियों को चोर कहते हैं ... मार्ग जाने वाले अर्थात् ग्राहकों को लूट ... साथ ही लिखते हैं यह परमात्मा को नहीं ... इन का नाम स्मरण आदि सब प्रपंच है ... में लिखते हैं। सब से बड़ा आश्चर्य यही ... यह हैं तो ठग किन्तु लोग इनको म... कहते हैं।

अब भारत स्वतन्त्र है, स्वतन्त्रता प्राप्त ... में ठगी का व्यापार शोभा नहीं देता। ... में सत्य का व्यवहार होना चाहिये। जैसे ... को सत्य का व्यवहार करना चाहिये वैसे ही ... क्षत्रिय, आदि सब को इसी मार्ग पर ... चाहिये।

वैराग्य भावना का अनुपम सिद्धान्त

[लेखक—आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री पंचवटी नासिक]

वेद परम प्रभु का कल्याण मय उपदेश है। इस में मनुष्य के कल्याण की सभी बातों का सन्निवेश परम कारुणिक भगवान् ने किया है। जहां अनेक प्रकार के ज्ञान, विज्ञान और सांसारिक अभ्युदयों का उस में उपदेश है, वहां संसार से विरक्ति प्राप्ति कर परम शान्ति के प्राप्ति रूप निश्रेयस और उस के साधनों का भी परमेश्वर ने वेद में स्पष्ट उपदेश दिया है। योग और वैराग्य आदि की भावनायें वेद ... समुद्भुत हुई हैं। मनुष्य को संसार में ... लिप्त रहते हुए जहां घोर अशान्ति ... में उस के सामने खड़ी हो जाती है, ... शान्ति के विषय में विचार करने को ... लगता है। यही कारण है कि संसार की ... अशान्त घटनावों ने कई महापुरुषों ... को संसार से विचलित कर योग ...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

झुका दिया। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। योग वास्तव में है क्या? और है क्या तत्वतः भोग? हमारे शरीर में विराजमान आत्मा जब इन्द्रिय रूपी द्वारों से बाहर की दुनियां को देखता है और उस में राग या द्वेष-युक्त होता है तो उस अवस्था का नाम भोग है और जब वह इन द्वारों की अपेक्षा छोड़ कर बाहर के विश्व प्रपंच से हट कर अपने में अन्तर्मुख होता है तो उस अवस्था को योग कहते हैं। परन्तु यह योग की अवस्था का वर्णन जितना सरल है, उस की प्राप्ति उतनी ही कठिन है। निरन्तर भोगैश्वर्य में पड़ा हुआ मनुष्य भोगों से ऊपर नहीं उठ पाता। वह अपने भोगक्षेत्र की पूर्त्ति में ही सन्तुष्ट रहता है। इन्द्रिया-रामता उसे इस सीमा से बाहर जाने नहीं देती। वास्तव में ये इन्द्रियां हैं भी विचित्र ही! इन से जहां अच्छाइयां प्राप्त हैं वहां बुराइयों की जड़ भी यही हैं। इन को विषयोछामता को शान्त करना बड़ा ही कठिन कार्य है। जितना ही ये भोगों में पड़ती हैं, इन की इच्छा तीव्र होती जाती है। अग्नि में घृत डालने पर वह जिस प्रकार तीव्र होता जाता है, उसी प्रकार विषयों के भोग से इन को विषयगर्द्धा बढ़ती जाती है। विषय भोग से कभी इन की तृप्ति नहीं होती। समय बीतता जाता है और इन की इच्छा बढ़ती जाती है। इन्द्रियों को प्रथम विषय के प्रति काम होता है। उस की पूर्त्ति होने पर पुनः अनुराग होता है और वह बढ़ कर तृष्णा का रूप धारण कर लेता है। तृष्णा कभी शान्त नहीं होती जब तक कि समुचित प्रतीकारोपाय न बर्ता जावे। इसी लिये कहना पड़ता है कि हम वृद्ध हो गये परन्तु तृष्णा जीर्ण नहीं हुई। अंग ढीले हो जाते हैं, मुख दांतों से रहित और शरीर जर्जरित हो जाता है परन्तु 'तृष्णा' प्रबल ही बनी रहती है। यह मनुष्य को चैन नहीं लेने देती। इन्द्रियां सदा इस के बहाव में बहती रहती हैं। मन सदा इन्हें लिये हुए इस में बहता रहता है। मनुष्य इस की पूर्त्ति के लिये बेचैन रहता है परन्तु यह पूरी नहीं होती हैं।

वेद इस तृष्णा की निवृत्ति का उपदेश देता है। क्योंकि तृष्णा की पूर्त्ति होना तो कभी सम्भव नहीं, उस की निवृत्ति ही की जा सकती है। उस की निवृत्ति के साधन को ही दार्शनिक परिभाषा में वैराग्य या निर्वेद कहा जाता है। वैराग्य क्या है? मन और इन्द्रियों के विषया-नुराग को रोकना। इन की विषयों की तरफ जो अनुरक्तता है उसे रोकना और विरक्तता की भावना पैदा करना। मन और इन्द्रियों को राग विषयों में है। उस राग को हटाना ही वैराग्य है। वह राग के विपरीत विराग, तृष्णा के विपरीत वितृष्णा की भावना का द्रढ़ीभूत करना है। हमारी इन्द्रियां शत्रु और मित्र दोनों ही हैं। उन को निरर्गल बना रखने पर वे शत्रु हैं और उन पर विजय रखने पर वे ही मित्र बन जाती हैं। इस लिये उन्हें भोग की विपरीत भावना से सदा वश में रखने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य को जिन विषयों से अनुराग अथवा राग है वे दो प्रकार के हैं। एक दृष्ट जो इस दृश्य संसार के विविध भोग साधन हैं और दूसरे जो दूसरे जन्म में मिलने वाले उत्तम जन्म सुख आदि हैं। जिन्हें आनुश्राविक कहा जाता है। इसी दूसरी कोटि में वे लोग भी आते हैं जो विदेह तो हो गये हैं परन्तु प्रकृति से पार नहीं गये हैं। इन दोनों प्रकार के विषयों की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इच्छा मनुष्य संसार में प्रवृत्त होता हुआ अनुरक्त होता है। उस की इन्द्रियां और मन इन में सराग होते हैं। इन विषयों के भंगुरत्व, तापमयत्व आदि परिणामों को देख कर इन्द्रियों को और मन को इन से हटाना चाहिये। यह इन इन्द्रियों आदि के प्रवाह को ज्ञान के साथ उलटा फेर देने पर होता है। जिन में राग है उन में राग न होने देना इस ओर बढ़ने का प्रकार है। यह विरक्तता ही दृढ़ हो जाने पर वैराग्य के उदात्त रूप को धारण कर लेती है। अथर्व १९।७।५ का यह मन्त्र इस दिशा में अच्छा मार्ग-दर्शन कराता है।

इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनःषष्ठानिः मे हृदि ब्रह्मणा संशितामि। यैरेव सस्टजे घोरं,तैरेव शान्तिरस्तु नः

अर्थात् हमारे हृदय में छठे मन के साथ जो यह पाँच इन्द्रियें हैं, ये परमेश्वर द्वारा अपने कर्मों में अत्यन्त तीक्ष्ण बनाई गई हैं। जिन इन इन्द्रियों ने संसारी विषय भोगों से हमारे लिये घोर अशान्ति उत्पन्न कर दी है , इन्हीं के द्वारा हमें शान्ति भी प्राप्त हो। मन्त्र बहुत ही ... रूप में बतला रहा है कि इन्द्रियों से जो अशान्ति उन के विषय गर्द्धा के कारण होती है ... निवृत्ति और शान्ति भी उन्हीं से प्राप्त ... जावे। तात्पर्यतः इन्द्रियों द्वारा होने वाले विष... नुराग से अशान्ति होती है परन्तु जब ... द्वारा विषय विराग का पथ ग्रहण कर ... जाता है, तब शान्ति की प्राप्ति होती है। ... वेद का यह मन्त्र एक प्रशस्त मार्ग हमें दिखा... हैं। वह यह कि हम इन्द्रियों और मन को ... के पथ से हटा कर विरक्तता के पथ पर ले ... इसी में शान्ति निहित है। राग के कारणों ... ही विराग की भावनाओं से ओत-प्रोत ... वैराग्य है। इस प्रकार वेद हमारे समस्त ... उत्तम वैराग्य मार्ग उपस्थित करता है। इस ... के अनुसरण में ही कल्याण है।

....

पञ्चजन

[*श्रीमान् पं० विश्वनाथ जी आर्योपदेशिक*]

वेदों में यह शब्द अनेक स्थानों में अनेक रूपों में पढ़ने को मिलता है। परन्तु इस का एक ही अर्थ मनुष्य है, जो इस के २५ नामों में से एक है। वैदिक शब्द यौगिक हैं, और इस शब्द का अर्थ है पांच प्रकार के मनुष्यों का समुदाय। वे ऐसे कौन से मनुष्य हैं, यह बात विचार के योग्य है।

निरुक्तकार यास्क ने बतलाया है, कि:—

गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षां सीत्ये के ।३.८

अर्थात् कई एक का मत है कि गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस ये पांच जन हैं। तात्पर्य यह कि उस समय के बहुत से विद्वान् गन्... पितरों देवों असुरों और राक्षसों को मनुष्य... मानते हैं। पौराणिक सिद्धान्त के अनुसार ... मनुष्य से भिन्न देव योनियां हैं, तब पञ्च... शब्द का यह अर्थ सम्भव ही नहीं हो सक... अतः यह निरुक्त का प्रमाण उन के इस ... विश्वास की शिला पर एक वज्रपात है ... महर्षि दयानन्द के इस सत्योक्ति का कि ... संस्कृत साहित्य में गन्धर्व देवादि शब्द मनुष्य... के लिये ही प्रयुक्त हुए हैं, एक पुष्ट प्रमाण है ...

निरुक्त विज्ञान के इन प्रकाण्ड परि...

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किस अर्थ में मनुष्य के लिये उक्त शब्दों का प्रयोग किया है, इस की व्याख्या निरुक्त में नहीं मिलती, अतः शब्दार्थ के अनुसार काव्य सङ्गीतादि कला के मर्मज्ञ रसिक जनों का नाम गन्धर्व है। माता पिता की भांति प्रजा वर्ग से स्नेह रखने, उन की पालना और रक्षा के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले, कर्त्तव्य परायण शासक जन तथा अन्य देश जाति और धर्म की सेवा करने वाले दानी परोपकाररत सज्जन पुरुष पितर कहलाते हैं। महाभारत में युधिठिष्र के यज्ञ में श्री कृष्ण जी को अर्घाप्रदान करने का प्रस्ताव रखते हुए महात्मा भीष्म ने उन के लिये पितर शब्द का भी प्रयोग किया है। यथा:—तमिमं योग सम्पन्नमाचार्यं पितरं गरुम्। अर्चताच्यर्मर्चार्हञ्च सर्वेसंत्तन्तुमर्हथ।

यह कृष्ण योगी, आचार्य गुरु और पिता है, हर प्रकार से पूजा के योग्य है, अतः सब लोग अर्घ द्वारा इन की पूजा करें। किसी दूसरे की पूजा के लिये मुझे क्षमा करें। इसी प्रकार वेद शास्त्र के ज्ञाता, धर्म तत्व के वेत्ता वक्ता धर्त्ता और प्रचारक, वैज्ञानिक कलाप्रवीण नये नये आविष्कारों के प्रकाशक, विद्या शिक्षा और सुनीति का दान करने वाले विद्वज्जन देव कोटि के मनुष्य कहे जा सकते हैं।

स्वप्राणपोषक, विषय लम्पट भोगैश्वर्य को ही जीवन का उद्देश्य समझने वाले स्वार्थी वञ्चक दम्भी, लोभी, ईर्ष्यी, घृणी, अभिमानी, असन्तुष्ट कामी, क्रोधी, निर्लज्ज, मोह, अविद्या और सन्देह के जाल में फंसे हुए भ्रान्तचित्त, आलसी, प्रमादी, परदुःख में सुख और परसुख में दुःख मानने वाले मानव शरीर में पशुओं से भी निकृष्ट जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य असुर कहलाते हैं।

शुभ कर्मों में विघ्न डालने वाले, संघटन का नाश करने वाले देश द्रोही, मित्रघाती, अत्योचारी, हिंसक, चोर, डाकू, श्वापद वृत्ति पुरुष राक्षस बतलाये गए हैं। संसार के सब अच्छे बुरे मनुष्य स्वाभाविक रीति से इन पांच श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं; छटी श्रेणी कोई नहीं।

औपमन्यव—(उपमन्यु का सुपुत्र) चार वर्णों और पांचवें निषाद को पञ्च जन मानता है। यथा:—चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चमाः इत्यौपमन्यवः। उपमन्यु पुत्र के इस वचन ने जन्म मूलक वर्ण व्यवस्था का गढ़ तोड़ दिया है। पाठक पूछेंगे यहां तो केवल चार वर्णों का वर्णन हुआ है, गढ़ तोड़ने वाली कौन सी बात है? तो उस के उत्तर में निवेदन है कि निषाद शब्द। यास्क ने इस का अर्थ जाति विशेष न कर के 'निषण्णमस्मिन् पातकमिति' कहा है। अर्थात् निषाद एक ऐसा पुरुष है जिस का जीवन धर्म से रहित और पाप से पूर्ण हो। यदि निषाद को जाति विशेष का पुरुष मानें तो यह संगत है। क्योंकि कोई पूरा का पूरा समुदाय सर्वथा पापी नहीं हो सकता। और चतुर्वर्णस्थों में भी महापापी देखे जाते हैं, अतःपुनः यह विशेषण किस का होगा? वास्तव में वेद ने मानव जगत् को आर्य और दस्यु—धर्मात्मा और पापी दो श्रेणियों में विभक्त किया है। उन में धर्मात्मा लोग अपनी योग्यतानुसार चार वर्णों में विभक्त हो कर जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार यही दो पांच में विभक्त हो कर पांच जन कहलाते हैं।

संसार में आकृति भेद से भी पाञ्च प्रकार के मानव पाये जाते हैं और यह हैं आर्य, मंगोल, द्रविड, हबशी और पुराने अमरीका निवासी रेड इंडयनज यद्यपि वेद के आर्य किसी विशेष वंश के नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक धर्मात्मा पुरुष आर्य कहलाता है, चाहे वह द्रविड़ वा मंगोल ही क्यों न हों। और आर्यवंश का भी पापी मनुष्य दस्यु है। हम यह भी नहीं मानते कि आर्यवंश का एक समूह मध्य एशिया से योरुप और दूसरा भारत आ गया। आर्य तो सृष्टि के आदि से भारत ही में निवास करते हैं। तथापि इस तथ्य से भी इनकार नहीं हो सकता कि आकृति और भाषा की दृष्टि से योरुप और उत्तरी भारत के लोग एक ही वंश के सिद्ध होते हैं, चाहे उन्हें आर्यवंश के कहो अथवा कोई और नाम दो। यह भी हो सकता है कि वह मध्य एशिया से न ही तो भारत ही से योरुप पहुंचे हों, परन्तु उस समय तो भारत की सीमा भी मध्य एशिया तक विस्तृत थी, वे वहां से भी जा सकते थे।

एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि वैदिक धर्म की दृष्टि से वेद ईश्वर की वाणी है। उस में इतिहास तथा भूगोल सम्बन्धी बात न होनी चाहिये। क्योंकि वेद अनादि और सब लोकों से एक सा सम्बन्ध रखता है। इस का उत्तर यह है कि वेद में मानव, पशु पक्षी आदि का वर्णन इस लोक सा ही है। रूप रंग अवयव कर्म स्वभाव आदि का भी उल्लेख तो पांच प्रकार की आकृति का भी वर्णन हो जावे तो क्या दोष है वैज्ञानिक विद्वान् जब दूसरे लोकों में सृष्टि की सम्भावना पर विचार करते हैं, तो उन में अपनी पृथिवी की सी अवस्था को ही अनुभव करते हैं। जब जीवन के साधन सब लोकों में एक से होते हैं, तो मानव पशु आदि की रचना भी एक ही सी होनी चाहिये।

एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि प्राचीन और नवीन योरुपीयन विद्वानों ने भी यह अर्थ नहीं किया। इस का उत्तर यह है कि बहुत प्राचीन टीकायें तो मिलती नहीं और यास्क के समय कदाचित अफरीका आदि भूभागों का विशेष ज्ञान न था और योरुपीयन विद्वान् वैदिक आर्यों को इतना सभ्य और विज्ञ मानने को तय्यार न थे, फिर ऐसा अर्थ कैसे किया जाता। इस के अतिरिक्त यह भी जानने की बात है कि प्राकृतिक पदार्थों के गुणों की भांति वेदार्थ भी सीमित नहीं। विद्युच्छक्ति के कितने नये नये प्रयोग किये जा रहे हैं। यह किसे पता था कि किसी पदार्थ की फफूंदी से जिस के कारण घृणा से वह पदार्थ ही फैंक दिया जाता था एक दिन पैंसलीन जैसी गुणकारी औषधि बन जायेगी। ऋषियों ने कैसी सुन्दर बात कही है:—

सन्तोष स्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने। त्रिषु चैव न कर्त्तव्योऽध्ययने जपदानयोः।

अर्थात् स्वभार्या भोजन न्यायार्जित धन में सन्तोष करना चाहिये, परन्तु विद्या जप और दान में कदापि नहीं। सन्तोष उन्नति का बाधक है अत एक पदार्थ विज्ञान की भांति वेदार्थ में भी नई २ गवेषणा होनी चाहिये। अब देखिये इस अर्थ के अनुसार वेद मन्त्रों के अर्थ कैसे शोभायमान होते हैं।

पञ्चजना मम होत्रंजुषध्वम् । ऋ० १०-५३-४

पांच प्रकार के मनुष्यो मेरे यज्ञ का सेवन करो।

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत । ऋ० ८-६३-७

पांच प्रकार के मनुष्यों की प्रजा ने इन्द्र की महिमा में जय ध्वनि का नाद किया।

अग्निऋषिः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । ऋ० ९-६६-२०

प्रभु पूज्य सर्वज्ञ पांच प्रकार के मनुष्यों का हितैषी और सब शुभ कार्यों में अग्रणीय है।

विश्वनाथ आर्योपदेशक छुछली (गोरखपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

[आर्य्य, मंगोल आदि जाति भेद का यू० एन० ओ० (विश्वराष्ट्रसंघ) के महान् वैज्ञानिकों ने खण्डन कर दिया है] वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर उन्हों ने घोषणा की है कि मनुष्य जाति एक है। रंग भेद के कारण आपाततः भेद प्रतीत होता है, श्वेत, लाल, काला, पीला, गेहुआं ये पांच रङ्ग प्रायः विभाजक हैं। वेद ने 'पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्' [= पंचजन = सभी मनुष्य (बिना किसी भेद के मेरे होत्र का सेवन करें] कह कर मनुष्य जाति की एकता की घोषणा की है।

वेदानन्द पञ्चजन का अर्थ करता है व्यक्तवाक् सृष्टि। सृष्टि में बोलने वाले जन दो प्रकारके हैं, एक अव्यक्तवाक् यथा पशु पक्षी आदि दूसरे व्यक्तवाक्—मनुष्य। भूलना नहीं चाहिये कि पञ्चजन शब्द में पञ्चशब्द संख्या (पांच) अर्थ वाला है। प्रत्युत पञ्च (पची व्यक्ति करणे) का अर्थ है व्यक्त। प्रपञ्च आदि शब्द इस के बन्धु हैं। उन का अर्थ है जन्मा हुआ = सृष्टा। पञ्चजन का, इस भांति, अर्थ होता है—व्यक्तवाक् जन अर्थात् मनुष्य। इस अर्थ को मान लेने पर संख्या का झमेला तथा उस से उत्पन्न होने वाली कोई भी समस्या शेष नहीं रहती। (सम्पादक]

कालपरिमाणनिर्देशपद्धति

[*श्रीमान् प्रो० भीमसेन शास्त्री जी एम० ए० कोटा*]

(१) काल-परिमाण में विविध इकाइयों का निर्देश

कालनिर्देश में पाश्चात्य लोक सर्वप्रथम तारिका (= तारीख = तिथि) का निर्देश करते हैं, ततः मासिकाः और अन्त में वर्ष का। यथा ४ फरवरी १८२५ को मूलशङ्कर का जन्म हुआ। पर यह निर्देश क्रम अस्वाभाविक है। जब हम किसी घट के काल के जिज्ञासु होते हैं तब सर्वप्रथम जिज्ञासा वर्ष को होती है। अनेक पुरुषों की जिज्ञासा तो वर्ष को जान कर ही विरत हो जाती है। सूक्ष्मेक्षिकप्रवण जिज्ञासु की जिज्ञासा इतनी शीघ्र उपशान्त नहीं होती। वह घटना के ऋतु अथवा मास को भी जानना चाहती है। कुछ लोग और भी आगे बढ़ते हैं, वे उस मास की तिथि भी जानना चाहते हैं। इस में कोई भी सन्देह नहीं कि जिज्ञासा का विषय प्रथमतः वर्ष होता है, तदनन्त्र मास, तदनु तिथि। किसी की जिज्ञासा का सर्वप्रथम विषय तिथि, द्वितीय विषय मास तथा चरम विषय वर्ष नहीं हुआ करता। जब जिज्ञासा का स्वाभाविक क्रम वर्ष, मास, तिथि है तब २ निस्संशय वर्णन का भी स्वाभाविक क्रम वर्ष, मास, तिथि ही है। इस में किसी भी प्रेक्षावान् को वैमत्य नहीं हो सकता। आर्य्य गण प्रत्येक व्यवहार में बड़े वैज्ञानिक थे। उन्होंने कालनिर्देश में इसी स्वाभाविक क्रम का सदा निर्देश किया है। यथा—

(१) धार्मिक कार्य्यों में जो संकल्प वाक्य है उस में 'ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथमचरणे' के अनन्तर प्रथम वर्ष, ततः अयन, तदनन्तर ऋतु, तदनुमास, तत् पश्चात् पक्ष और अन्त में तिथि उच्चारण होती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(२) मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्टये
त्रिनवत्यधि केऽब्दानामृतौ सेव्य घन स्वने ॥
सहस्यमास शुक्लस्य प्रशस्ते ऽह्नि त्रयोदशे ।
मगलाचारविधिना प्रासादोऽ यं निवेशितः ॥

अर्थात् मालवगण के निश्चय के अनुसार (चले हुए शूद्रक विजयसूचक कृतनामक+ संवत) ४९३ वर्ष व्यतीत हो जाने पर मेघों के शब्द अच्छे लगने वाले ऋतु में पौष मास के शुल पक्ष की प्रशस्त त्रयोदशी के दिन इस प्रसाद (देव स्थान, सूर्य्यमन्दिर) की प्रतिष्ठा माङ्गलिक विधि से कीगई।

उपर्युक्त उद्धरण दशपुर (मन्दसौर) के पट्टवाय श्रेणी जुलाहों द्वारा बनवाए सूर्य्य-मन्दिर पर उत्कीर्ण लेख में से लिया गया है।

(३) उस मन्दिर का कुछ भाग धीरे २ टूट गया। फिर इस सूर्य्य मन्दिर का जीर्णोद्धार पट्टवाय श्रेणी ने ही मन्दिर प्रतिष्ठा के ५२६ वर्ष पश्चात् [अर्थात् ४९३+५२६=१०२२ कृत संवतमें] कराया। उस जीर्णोद्धार समाप्ति की तिथि उसी शिलालेख में आगे इस प्रकार दी है—

स्वयशोवृद्धये सर्वमत्युदार मुदारया ।
संस्कारितमिदं भूयः श्रेण्या भानुमतोगृहम् ॥
वत्सरशतेषु पञ्चसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु।
यातेष्वभिरम्य तपस्य मासशुक्ल द्वितीयायाम्।

अर्थात—उदार (पट्टवाय) श्रेणी ने अपने यश की वृद्धि के लिये संपूर्ण (टूटे भाग) की मरम्मत (निवेश काल से) ५२९ वर्ष बीत जाने पर मनोहर फाल्गुण मास की शुक्ल द्वितीया को कराई।

(४) सुराष्ट्र (काठियावाड़) में गिरि नगर (गिरिनार, जूना गढ़) के समीप एक सुदर्शन नामक विशाल तड़ाग का निर्माण श्री चन्द्र गुप्त मौर्य ने (विक्रम संवत् के लग भग १४०० वर्ष पूर्व★) कराया था। सम्राट् अशोक ने उस में नालियां बनाई थीं। इस महातड़ाग की पालि (बांध) महाक्षत्रप रुद्र दामा प्रथम के राज्य काल में टूटी। उपर्युक्त शक महाक्षत्रप ने उस सुदर्शन तड़ाग की मुरम्मत कराई थी तथा निर्माण जीर्णोद्धार के वर्णन पुरस्सर शिला लेख उत्कीर्ण कराया। उस शिलालेख में उस बांध के टूटने की तिथि इस प्रकार दी है।

महाक्षत्रपस्य रुद्रदाम्नो (राज्यकाले) वर्षे द्विसप्ततितमे मार्गशीर्षे बहुलप्रतिपदायाम्—

अर्थात् महाक्षत्रय रुद्रदामा (राज्य काल में)

+कुछ शिला लखों में मालवगण संवत् का निर्देश है। सारे ऐतिहासिक इसे विक्रम संवत् मानते आए हैं। वस्तुत यह सम्राट् शूद्रक प्रवर्तित कृत संवत् है। और अलबेरूनी के अनुसार विक्रम संवत् से ४०० वर्ष पुराना है। सारे ऐतिहासिकों के इस महान् भ्रम की ओर ध्यान श्री प० भगवद्दत्त जी ने दिलाया है। पाठक इस संवत् के विशेष परीक्षणार्थ उपर्युक्त विद्वद्वर्य के अमूल्य ग्रन्थ 'भारत वर्ष का इतिहास' के द्वितीय संस्करण के पार्श्व ३०४—६ देखें।

★हमारे युरोपियन इतिहास लेखकों ने चन्द्र गुप्त मौर्य का काल विक्रम संवत से २६८ वर्ष पूर्व माना है। पर श्री प० भगवद्दत्त जी के उपर्युक्त इतिहास से स्पष्ट है कि सम्राट् चन्द्र गुप्त मौर्य भारत युद्ध से लगभग १६०० वर्ष पश्चात् हुए, अर्थात् विक्रम संवत् से लगभग १४०० वर्ष प्राचीन हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शकाभ्युदय[1] संवत् के ७२ वर्ष बीतने पर मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा को ....

(५) संवत्सर शतनवके द्विषष्टि
सहितेऽतिलङ्घिते चास्याः।
ज्येष्ठे सितयञ्चम्यां पुनर्व-
सौ गुरुदिने समाप्तिरभूत्॥

(जैन सिद्धर्षिकृत उपमिति भवप्रपंचकथा।)

अर्थात् संवत् ९६२ बीतने पर ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी को पुनर्वसु नक्षत्र में बृहस्पति के दिन इस इस (उपमिति भवप्रपञ्चकथा) की समाप्ति हुई।

(६) श्री विग्रहराज्य के स्तम्भ लेख में तिथि इस प्रकार दी है—

ओं॥ संवत् १२२० वैशाख शुदि[1] (शुक्ल तिथि[2]) १५॥

(७) स्वातन्त्र्यमन्त्रदाता महर्षि दयानन्द के 'वेद विरुद्ध मतखण्डन' ग्रन्थ का निर्माण काल—

शशिशामांक चन्द्रेऽब्दे कार्तिक मास्यासिते दले।
अमायां भौमवारे च ग्रन्थोऽयं पूर्तिमगमत्॥

अर्थात् सं० १९३१ के कार्तिक की अमावास्या मङ्गलवार को यह ग्रन्थ बन कर समाप्त हुआ।

(८) जगद्गुरु महर्षि के शिक्षा पत्रीध्वान्त निवारण ग्रन्थ का निर्मिति-समय—

भूमि रामाङ्क चन्द्रेऽब्दे सहस्यासिते दले।
एकादश्यामर्कवारे ग्रन्थोऽयं पूर्तिमागमत्॥

अर्थात सं० १९३१ पौष बदि ११, रविवार के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

(९) व्यापक दृष्टि वाले महर्षि के 'गोकरुणानिधि' ग्रन्थ की रचना का काल—

मुनि रामांक चन्द्रेऽब्दे तपस्य स्यासिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽलं कृतोऽयं कामधेनुपः॥

अर्थात सं० १९३७ फाल्गुन बदि १०, गुरुवार के दिन यह ग्रन्थ बन कर पूर्ण हुआ॥

पाठक ध्यान रखें कि, महर्षि के उपर्युक्त लेखों में केवल संस्कृत में ही नहीं, भाषा में भी वही क्रम, संवत, मास, पक्ष, तिथि, का है।

विशाल संस्कृत वाङ्मय में से शतशः उदाहरण दिये जा सकते हैं, पर स्थान संकोच वश हम इकाईयों तक ही सीमित रहते हैं। दहाई में पग नहीं रखते।

(२) वर्ष-गणना पद्धति

वर्ष गणना की दो पद्धतियां प्रचलित हैं— १. प्रचलद् वर्ष-गणना, २. गतवर्ष गणना। पाश्चात्य वर्ष गणना तथा हिजरी वर्ष गणनाएं प्रथम पद्धति का उदाहरण है। उदाहरणतः '४ फर्वरी ख्रीष्टाब्द १८२५ को मूल शंकर का जन्म हुआ' का अभिप्राय है कि ख्रीष्ट से १८२४ वर्ष बीतने पर आनेवाली फर्वरी की ४ तारीख को जन्म हुआ। यहां वर्ष तो १८२४ ही बीते हैं पर जल्ल १८२५वें वर्ष का निर्देश किया जाता है। तनिक विचारें तो यह पद्धति भी अस्वाभाविकता पर आश्रित है। हम अपने सारे ही व्यवहारों में अतीत वस्तु का ही वर्णन किया करते हैं।

[1] प्रचलित शक संवत् तो शकों के तृतीय विनाश से चला है। इस के बहुत पूर्व से एक शकाभ्युदय संवत चला हुआ था। यह महाक्षत्रप चष्टन के राजय से चला प्रतीत होता है। इस भूले संवत् की ओर ध्यान श्री प० भगवद्दत्त ने अपने इतिहास में दिलाया है।

[2] देखो दयानन्द सन्देश के सं० २००६ कार्त्तिक के अंक में पार्श्व २०९-२१५ में हमारा लेख 'पदैक देश ग्रहणे पदमात्र ग्रहणम्' शीर्षक लेख।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रत्येक मनुष्य यही कहता है कि ११ बज कर २५ मिनट हुए हैं। कोई भी नहीं कहता कि १२वें घन्टे के २५ मिनट बीते हैं। हम यही कहते हैं कि १० रुपये ८ आने ६ पाई व्यय किये हैं। कोई नहीं कहता कि ग्यारहवें रुपये के ८ आने ६ पाई व्यय किये हैं। हम यही कहते हैं कि ४ मन २० सेर गेहूँ है। कोई नहीं कहता कि पांचवें मन के २० सेर गेहूँ हैं। जब सभी व्यवहारों में (काल विषय में भी जैसा कि ऊपर ११ बज कर २५ मिनट उदाहरण दिया है) अतीत गणना का, पूर्ण वस्तु गणना का ही नियम है तो संवत निर्देश में भी वही क्रम स्वाभाविक है। बुद्धिम दगेसर आर्य जन सदा से अतीत वर्षों की ही गणना करते आए हैं अतः विक्रम संवत १८८१ फाल्गुन कृष्णा १, शुक्रवार को श्री मूलशंकर का जन्म हुआ का यही अभिप्राय है कि विक्रम की शक-विजय से १८८१ वर्ष व्यतीत होकर आने वाले फागुन मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा वार को दिव्य बालक मूलशंकर का जन्म हुआ।

हमारी वर्ष गणना अतीत वर्ष गणना है, इस के कुछ प्रमाण विविध इकाइयों का निर्देशक्रम बताते हुए दिये जा चुके हैं। उन्हें लेख के पिछले अंश में देखलें। यहां और भी कुछ प्रमाण देते हैं—

(१) यदाऽब्दानां कलेर्जग्मसपः त्रिशंच्छतानि वै। चत्वारिंशत् समाश्चान्यास्तदा भाष्यमिदं कृतम्॥
(श्री हरि स्वामी कृत शतपथ भाष्य)

जब कलि संवत् के [७+३० शत (=३,०००) + ४० अर्थात्] ३०४७ वर्ष व्यतीत हो गए तब यह भाष्य बनाया।

(२) पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्व-
कान्नवति सहितेषु।
मालव गण-स्थिति-वशात् काल ज्ञानाय-लिखितेषु।

अर्थात् मालव-गण-स्थिति से काल-ज्ञानार्थ लिखे गए (पून्द्रक प्रवर्तित कृत संवत के) ५८९ वर्ष बीतने पर (=विक्रम संवत् १८६)

यह दशपुर (मन्दसोर) में यशोधर्म के राज्य काल में निर्मित कूप पर उत्कीर्ण प्रशस्ति का २४वां श्लोक है।

(३) श्री वर्धमान कवि विरचित गणरत्न महोदधि-में निर्माण काल इस प्रकार दिया है—

सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।
वर्षाणां विक्रमतो गण-रत्न-महोदधिर्विहितः॥

अर्थात् विक्रम- (विजय) से ११९७ वां व्यतीत होने पर गण रत्न महोदधि बनाया गया।

सारे ही परिमाण निर्देशों में हम बड़ी वस्तु से छोटी वस्तु की ओर चला करते हैं। यथा धन में रुपया, आना, पाई (अथवा पौंड, शिलिङ्ग पेंस); तौल में मन, सेर, छटांक; भूमि के नाप में मील, फर्लांग, गज; संख्या में कोटि, लक्ष, सहस्र, शत, दहाई, इकाई आदि। काल परिमाण निर्देश में भी हम यही कहते हैं कि युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष ८ मास २५ दिन राज्य किया। अङ्क गणित में भी समय के जोड़ने घटाने के प्रश्नों में भी सारे संसार में भारतीयों का ही क्रम चलता है। फिर घटनाओं के काल निर्देश में ही यह वाम-मार्ग का आश्रय क्यों।

+ यह श्लोक दयानन्द संदेश के सं० २००४ माघ के अंक में पार्श्व १३५ पर उद्धृत हुआ है। वहां अर्थ ३७४० वर्ष किया है। वह ठीक नहीं। जिन पाठकों के पास वह अंक हो संशोध लें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम अपनी दासता मनोवृत्ति वश अपनी शुद्ध परम्परा की अपने हाथों हत्या कर के अब संवत् को अन्त में लिखने लगे हैं। यह अतीव खेदास्पद है। हमारी दासता मनोवृत्ति ने इसी प्रकार अन्य विषयों में भी हमें उत्पथ प्रवृत्त कर दिया है। चिट्ठियों में पहले हम स्थान का वर्णन करने के पश्चात् संबोध्य पुरुष का वर्णन करते थे। हमारे वृद्ध जन आज भी हिन्दी उर्दू में पता लिखते हुए पहिले स्थान का नाम, तदनु मुहल्ले का नाम, ततः गली का नाम और अन्त में व्यक्ति का नाम लिखते हैं। कैसा स्वाभाविक क्रम है। जिस पत्रालय (डाकखाने) से पत्र चलता है, वहां के कर्मियों को सर्वप्रथम गन्तव्य स्थान ही देखना होता है। गन्तव्य स्थान पर पहुँचने पर उस स्थान का हैड पोस्टमेन मुहल्लों के नाम देख देख कर चिट्ठियां पोस्टमेनों को वितरण करता है। संबन्धित पत्र प्रापक (पोस्ट-मेन) को भी मुहल्ले के तश्चात गली, ततः गृह-संख्या, ततः अभीष्ट व्यक्ति का नाम देखना होता है। इसी क्रम से पता हमारे पूर्वज लिखते रहे हैं, तथा लिखा जाना चाहिये। जापानियों ने पाश्चात्य देशों से सारी विद्याएँ, कलाएँ सीखीं। पर उनहों ने पते के क्रम को पलटने का अन्धानुकरण नहीं किया। पर हम तो 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' (अन्धे के नेतृत्व में चलते हुए अन्धे) की बुद्धि के आदर्श उदाहरण हैं। अब हमें इस दासता मनोवृत्ति को छोड़ कर काल निर्देश में संवत, मास, (पक्ष), तिथि का क्रम ही रखना चाहिये।

हमारे महर्षियों द्वारा प्रवर्तित काल-निर्देश-क्रम इतना स्वाभाविक तथा उपयोगी है कि, अनेक यूरोपियन ऐतिहासिकों ने अपने तिथि पत्रों आदि में यत्र तत्र उस का उपयोग किया है।

पाठक इस को पढ़ कर ही न छोड़ दें, आज से ही अपने व्यवहार को भी शुद्ध करें। सारे ही काल निर्देशों में (चान्द्र तथा सौर में भी) पहले वर्ष, ततः मास, तदनु तिथि का निर्देश किया करें।

oooooooooooooooo

त्रिविष्टप् और वेद

[*डाक्टर गंगाचन्द्र अग्रवाल वैद्य शास्त्री प्राणेश औषधिमन्दिर मिर्ज़ापुर*]

आर्यों का आदि स्थान कहां था—यह प्रश्न विवादास्पद है। कुछ लोग इन्हें भारत के बाहर का बताते हैं! और कुछ लोग कहते हैं कि वे तिब्बत के निवासी थे। लोकमान्य श्री बाल गङ्गा धर टिलक ने इस विषय की विवेचना अपनी पुस्तक—The Arctic Home in the Vedas में की है और उत्तर प्रदेश के साम्प्रतिक शिक्षा मंत्री श्री सम्पूर्णानन्द जी ने भी अपने "आर्यों का आदि देश" में अपने विचार व्यक्त किए हैं। अस्तु, आर्यों का आदि स्थान कहीं भी हो, प्रस्तुत लेख का विषय यह है कि आर्यों के आदि जन्म स्थान त्रिविष्टप (तिब्बत) का उल्लेख भगवान् वेद में है वा नहीं। वेदों को इतिहास की पुस्तक मानने वाले इस धारणा के लिये स्वतन्त्र हैं कि वेद में स्थान विशेष, पर्वत विशेष, नदी विशेष के नाम हैं, किन्तु खेद तब होता है जब वेद को ईश्वरोक्त मानने वाले भी 'आर्यों का आदि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन्म-स्थान तिब्बत है. अपने इस मन्तव्य की पुष्टि में वेद का प्रमाण देने लगते हैं। ऐसा ही प्रयास श्रीमान् म० शिव पूजन सिंह जी 'पथिक' सिद्धान्त शास्त्री, साहित्यालंकार का है, जो उन्होंने जुलाई, १९५० के 'वेदपथ' में "भारत की प्राचीन संस्कृति "पर एक आलोचनात्मक दृष्टि शीर्षक अपने लेख में किया है। आप अर्थ सहित दो वेद मन्त्रों को उद्धृत करके लिखते हैं कि आर्यों का आदि जन्म स्थान त्रिविष्टप (तिब्बत) है। वेदों का भी यही सिद्धान्त है। अस्तु, अब तक तो मुसलमानों को मदीना (मुसलमानों का तीर्थ विशेष) की गन्ध सन्ध्या में प्रयुक्त उपस्थान मंत्रान्तर्गत—ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं.................मदीनाः स्याम (यजुः० ३६।२४) में आती ही थी, किन्तु मुझे देवबन्द के पढ़े एक मौलवी मिले जो कहने लगे कि आप की मज़हबी किताबों में मेरे यहां की सब बातें भरी पड़ी हैं, कहां तक कहें मुसलमान पहलवान गामा तक का ज़िक्र आप की गीता में है और मुझे सुनाने लगे—गामा विश्य च भूतानि धारयाम्यहमोत्रसा। पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः (गीता १५।१३) चूंकि इस श्लोक में गामा शब्द आया है, अतः गामा पहलवान का नाम आ गया। मैं अवाक् रह गया, मेरा माथा ठनका कि राज भाषा हिन्दी हो जाने से हिन्दी का प्रचार तो बढ़ रहा है, किन्तु आर्यों में अरबी, फारसी पढ़ कर दूसरों के घरों की हालत जानने की प्रवृति कम हो रही है और उधर हालत यह हो रही है कि संस्कृत पढ़ पढ़ कर अपनी बातों को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न हो रहा है।

तात्पर्य यह है कि ऐसी ही मनोवृत्ति कुछ आर्य विद्वानों की त्रिविष्टप विषयक धारणाओं के सम्बन्ध में भी पायी जाती है। आर्य समाज के स्वनाम धन्य प्रवर्तक ऋषिवर दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में लिखा है:—"प्र०-मनुष्यों को आदि सृष्टि किस स्थल में हुई (उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् जिस को तिब्बत कहते हैं" जिस तरह आज कल आर्यों के आदि देश की सृष्टि में वेद-मन्त्र का हवाला दिया जा रहा है, वेद के अद्वितीय विद्वान् ऋषिवर दयानन्द ने किसी वेद-मन्त्र का हवाला नहीं दिया और वे दे भी कैसे सकते थे, जबकि वह जानते थे कि यतः वेद इतिहास की पुस्तक नहीं है, अतः आर्यों के आदि देश का उल्लेख उस में आ ही नहीं सकता—चाहे वह तिब्बत हो, पामीर का पठार हो, योरप का उत्तरी प्रदेश हो, रूस का घास का मैदान हो, एशियाई आर्कटिक प्रदेश हो या मध्य और पूर्वी योरप हो। बहुत सम्भव है कि स्वामी जी महाराज की इस धारणा का स्रोत कोई ऐतिहासिक पुस्तक हो, जिस का हवाला उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में नहीं दिया। वेद के एक अन्य विद्वान् साम वेद के भाष्यकार तुलसी राम स्वामी भी इस विषय के लिए वेद के किसी मन्त्र का हवाला नहीं देते। सम्भवतः श्री तुलसी राम स्वामी ही सर्व प्रथम थे जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश विषयक पौराणिक कोलाहल के उत्तर में अपनी लेखनी का प्रयोग किया था। वह प० ज्वाला प्रसाद मिश्र के 'दयानन्द तिमिर भास्कर' के उत्तर में स्वरचित 'भास्कर प्रकाश' में लिखते हैं:—हिमालय की सर्वोच्च चोटी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अब तक हिमपात से दबी रहती है और मनुष्य वहां नहीं जन्म सकते । आर्यावर्त तिब्बत के पश्चात् अन्नोत्पत्ति योग्य ठंडा हुआ । अतः तिब्बत में आदि सृष्टि होना संगत था ।" स्पष्ट है कि इस स्थल पर श्री तुलसी राम जी स्वामी ने किसी वेद मन्त्र का प्रमाण न दे कर केवल युक्ति से काम लिया है । 'त्रिविष्टप' शब्द का उल्लेख अमर कोष के प्रथम काण्ड के स्वर्ग वर्ग के श्लोक ६ में है । जहां तक मुझे ज्ञात है, सर्व प्रथम श्री मनसा राम जी 'वैदिक तोप' ने अपने पौराणिक पोल प्रकाश के द्वितीय भाग के पृष्ठ ११५७ पर तिब्बत के पक्ष में वेद का प्रमाण दिया । जब पौराणिक पण्डित श्री कालू राम जी शास्त्री ने अपनी पुस्तक "आर्य समाज की मौत" में इन शब्दों में चैलेञ्ज दिया कि वह कौन आर्य समाजी है जिस ने अपनी जननी का दूध पिया हो, इस सिद्धान्त को वैदिक सिद्ध करे तब ऐसा प्रतीत होता है कि श्री मनसा राम जी ने जोशीले चैलेञ्ज के उत्तर देने के जोश में वेद का प्रमाण दे डाला । अस्तु यदि कोई व्यक्ति प्रत्येक सम्भव, असम्भव बात का वेद—प्रमाण मांगता फिरे, तो ऐसे प्रमाणों का वेदों से देने का प्रयास करना कहां तक उचित है—यह विचारणीय है ।

श्री शिवपूजन सिंह जी ने अपने लेख में उद्धृत वेद-मन्त्रों के जो अर्थ दिए हैं, वे श्री मनसा राम जी के किए हुए अर्थों से मिलते जुलते हैं, या यों कहिए कि उन्हों ने ये अर्थ श्री मनसा राम जी के पौराणिक पोल प्रकाश से ही लिए हैं । उन का उद्धृत प्रथम मन्त्र यह है—

साकं सजातैः पयसा सहैहयुदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥

(अथर्ववेद ११-१७)

ध्यान देने योग्य बात है कि इस मन्त्र में केवल 'विष्टप' शब्द है, त्रिविष्टप् नहीं किन्तु श्री मनसाराम जी ने इसे त्रिविष्टप् के अर्थ में ग्रहण किया है जो हमें असंगत लगता है ।

दूसरा मन्त्र है:—

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र विरोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥

(ऋ० ८।९१।५)

इस में भी त्रिविष्टप् शब्द नहीं है ।

आगे श्री मनसा राम जी ने लिखा है:—"इन दोनों वेद-मन्त्रों के द्वारा परमात्मा ने असूली तौर से बतलाया कि जो स्थान पानियों से सारी पृथवी से पहिले बाहर प्रकट हुआ और जिस में इन्सानों की पहिले पहल पैदाइश हुई उसी का नाम त्रिविष्टप् या स्वर्ग है । "यहां पर श्री मनसा राम जी ने भावी एतराजों से अपनी कथा तीन शब्दों से की है:—"असूली तौर से"—किन्तु यह सन्दिग्ध सा वचन है ।

श्री मन्सा राम जी ने उसूली तौर का नाम ले कर यह दिखलाया है कि वेद का सिद्धान्त है कि इन्सानों की पहिले पहिल की पैदायश तिब्बत में होती है । इस से साफ जाहिर कि उन्होंने इसे रूढ़ि अर्थ में लिया है । वेद के शब्द यौगिक या योग रूढ़ि होते हैं, रूढ़ि नहीं । अतः यदि त्रिविष्टप् शब्द वेद में कहीं मिल भी जाए तो वह तिब्बत का वाचक नहीं हो सकता तात्पर्य यह है कि तिब्बत में मनुष्यों की आदि सृष्टि होने का प्रमाण वेदों से देना समीचीन नहीं । विद्वानों से प्रार्थना है कि वे इस सम्बन्ध में अपने विचारों को प्राकाश्य में लावें ।

इति शम् ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर

वैशाख २००६ वि० से कार्तिक २००७ वि० तक

कार्य्य विवरण

वार्षिक अधिवेशन के पश्चात् चार मास कुशल से बीते, पांचवें मास में गड़बड़ चली, यज्ञ, कथादि सभी गड़बड़ में हुए।

उस अधिवेशन में उपदेशक विद्यालय (जिस का नाम दयानन्द विद्यालय रखना स्वीकृत हुआ था) खोला गया किन्तु अन्तःविरोध के कारण उस की प्रगति सन्तोष प्रद न रही, फलतः इस विरोध के कारण उस का बलिदान हुआ।

वार्षिक अधिवेशन में वेद पथ नामक मासिक पत्र प्रवृत्त करना स्वीकृत हुआ था। पहले ही वर्ष किसी विशेष यत्न के बिना, पूरा शुल्क देने वाले उस के ६०० ग्राहक बन गए।

तीसरा कार्य्य कुम्भ के अवसर पर प्रचार करने का था। इस कार्य्य में हमें पर्य्याप्त सफलता मिली। कुम्भ के अवसर पर एक बहुत बड़ा यज्ञ हुआ, जो लगातार दस दिन चलता रहा, उस यज्ञ का संपूर्ण व्यय श्री म० भागचन्द्र आर्य्य की प्रेरणा से श्री ला० पन्ना लाल जी ने देने की कृपा की। म० भाग चन्द्र जी ने उत्तम सामग्री तथा शुद्ध घृत का स्वयं प्रबन्ध किया। म० भाग चन्द्र जी परिवार समेत यज्ञ से कई दिन पूर्व पधारे, और लगभग कुम्भ के अन्त तक यहाँ रहे और अनेक कार्य्यों में सहयोग देते रहे। श्री लाला पन्ना लाल जी प्रथम और अन्तिम दिन आ कर यजमान बने। यज्ञ बहुत सुन्दर और शोभा युक्त रहा।

कुम्भ के कारण उस से दो मास पूर्व साधु महात्मा तथा कुछ स्वयंसेवक आने लग गए थे। उन के भोजनादि का प्रबन्ध दानी महानुभावों के उदारता पूर्ण दान के द्वारा सरलता पूर्वक हो गया। उन का भूरि २ धन्यवाद।

आश्रम में यज्ञ की पूर्णाहूति के पश्चात् सार्वदेशिकार्य्यप्रतिनिधि सभा तथा पंजाब प्रान्तीय आर्य्य प्रतिनिधि सभा के सहयोग से मायापुर—वाटिका में एक विशाल पंडाल में प्रचार का आयोजन किया गया, जो कुम्भ से चार दिन बाद तक चलता रहा। यह प्रचार बहुत सफल रहा। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा निम्नलिखित ट्रैक्ट प्रचारार्थ वितरण करने के लिए भेजे—

गोकरुणानिधि	१०००००	एकलाख
आर्य्योद्देश्यरत्नमाला	५००००	पचासहज़ार
वेदविरुद्धमतखण्डन	१००००	दशहज़ार
वेदान्तिध्वान्त निवारण	१००००	दशहज़ार
शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण	१००००	दशहज़ार

इस के अतिरिक्त मण्डल की ओर से निम्नलिखित ट्रैक्ट छपवा कर बांटे गए—

ट्रैक्ट का नाम	संख्या	
१. तीर्थ	१००००	दशज़ार
२. मनुष्य बन	५०००	पांचहज़ार
३. गङ्गा की उत्पत्ति	५०००	पांजहज़ार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४. हमारा नाम आर्य्य है हिन्दू नहीं २००० दोहज़ार

५. भारतीय करण (शुद्धि) २००० दोहज़ार

तीर्थ के लेखक श्री स्वामी स्वतन्त्रता नन्द जी हैं। 'मनुष्य बन' तथा हमारा नाम आर्य्य है हिन्दू नहीं' स्वामी वेदानन्द ने लिखा। गङ्गा की उत्पत्ति। श्री पं० विश्व नाथ जी आर्य्योपदेशक ने लिखी। 'भारतीय करण' श्री ठाकुर अमरसिंह जी ने लिखा।

इन के लिये दान क्रमशः ला० मथुरादास पुरी जी बा० ज्वालाप्रसाद सिन्हा ऐडवोकेट, म० करोड़ीमल जी, म० गोपालचन्द्र जी आर्य्य एवं म० सांगधा पटेल भाली झापुरकर ने दिया। लेखकों तथा दाताओं का भूरि २ धन्यवाद।

गत वार्षिक अधिवेशन के पश्चात् हरद्वार में हर की पौड़ी पर सुभाष चौक में वैदिक धर्म प्रचार का कार्य्य आरम्भ किया गया जो दस सप्ताह के पश्चात् बन्द कर देना पड़ा। कारणों का उल्लेख शोभनीय नहीं है।

कुम्भ के अवसर पर प्रचार केवल मायापुर वाटिका में ही किया गया। प्रत्युत रोड़ी में उत्तर प्रदेश की सरकार की ओर से मधनिषेध एवं समाजोत्थान शिविर में भी मण्डल के अध्यक्ष तथा उन की प्रेरणा से अन्य सन्यासियों के व्याख्यान भी हुए। इसी प्रकार मोहनाश्रम में भी प्रचार में सहायता दी गई। इस के अतिरिक्त गोरक्षा सम्मेलन में भी सहयोग दिया गया। साधुओं में प्रचार करने के लिये मण्डल के अध्यक्ष साधु सम्मेलन तथा साधुओं द्वारा प्रवर्त्तित अनेक सभाओं में सम्मिलित होते रहे, और उन में भाषण भी किये। कुम्भ में हमारे प्रचार के कारण पर्याप्त हलचल रही। अभ्यागत साधुओं ने वेदान्तिध्वान्त निवारण के वितरण से क्षुब्ध हो कर शास्त्रार्थ के लिये चुनौति दी, उसका योग्य उत्तर छाप कर वितरण कर दिया गया।

भावि में कुम्भ के अवसर पर प्रचार करने के सम्बन्ध में एक दो परामर्श देना अनुचित न होगा।

प्रचार में पहला महत्त्व स्थान का है। हमारा परामर्श है कि भविष्यत् में एक प्रचार शिविर सप्तसरोवर में अवश्य लगाया जाए। अत्यन्त अल्प भाड़ा देने पर स्थान मिल जाता है। दूसरी यह कि अध्यक्ष तथा प्रचारक सभी सन्यासी होने चाहियें। अब की बार हम ने भजन तक सन्यासियों के कराये। उस से आशातीत सफलता हुई। हमारे इस परामर्श के मूल में कुम्भ के अवसर पर आने वाली जनता की भावना है। वह साधुओं के दर्शन और गङ्गास्नान के लिये आती है। यदि आप के प्रवक्ता एवं प्रबन्धक साधु सन्यासी होंगे तो आप को श्रोता पर्याप्त अधिक संख्या में मिलेंगे, इस से आप का लक्ष्य अनायास सिद्ध होगा।

इस प्रचार कार्य्य में हमें अनेक सन्यासियों का सहयोग प्राप्त हुआ, यथा श्री स्वामी अभेदानन्द जी, श्री स्वामी नारायणानन्द जी, श्री स्वामी प्रणवानन्द जी, श्री स्वामी महेश्वरानन्द जी, श्री स्वामी ओमानन्द जी, श्री स्वामी अभयानन्द जी, श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द जी, श्री स्वामी जीवन मुनि जी, श्री स्वामी सगुणानन्द जी, श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द जी, श्री स्वामी सोमानन्द जी, श्री स्वामी सत्यानन्द जी आदि आदि।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिस उद्देश्य से मण्डल की स्थापना की गई थी, मण्डल के वर्त्तमान स्थान पर रहने से उस की पूर्त्ति असम्भव है। साधुओं के स्थान कनखल, तथा हरद्वार में हैं। इस ओर साधुओं के स्थान प्राय: नहीं हैं। इस बात का आप महानुभाव अवश्य विचार कीजिये।

इस समय २००६ वि० के वार्षिक अधिवेशन के अतिरिक्त तीन नैमितिक अधिवेशन भी हुए। वर्षान्त में अधिकारी इस भान्ति थे—

अध्यक्ष—स्वामी वेदानन्द

उपाध्यक्ष—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती जी

मन्त्री—श्री पं० ज्ञानचन्द्र जी

उपमन्त्री—डा० लीलाराम जी

पुस्तकाध्यक्ष—श्री स्वामी अभयानन्द जी

कोषाध्यक्ष—श्री म० कृष्ण जी

दु:खद घटना—श्री ला० नारायणदत्त जी, मण्डल के आरम्भ काल से इस के सदस्य और कोषाध्यक्ष रहे हैं। उन का ७-११-५० को देहान्त हो गया। लाला जी आर्यसमाज के स्तम्भ थे। मण्डल के बहुत बड़े सहायक एवं हितचिन्तक थे। उन के निधन से जो क्षति हुई है, उस की पूर्त्ति कठिन है।

आय व्यय विवरण—इस समय का आय व्यय लेखा पुनः प्रकाशित किया जाएगा।

वेदपथ—पूर्व वेदपथ की चर्चा की जा चुकी है। यह एक मासिक पत्र है। इस का उद्देश्य जनता में वैदिक आचार-विचारों का प्रसार करना है। इस के लिये यत्न किया जाता है कि लेख मूल वेद पर आधारित हों। इस पत्र में लेख देने वाले महानुभाव उच्चकोटि के त्यागी सन्यासी तथा अन्य विद्वान हैं। उन में से कुछ एक के नामों का उल्लेख यहां किया जाता है—

१. स्वामी वेदानन्द २. श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ३. श्री स्वामी अभेदानन्द जी ४. श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी ५. श्री शान्त स्वामी अनुभवानन्द जी ६. श्री स्वामी आत्मानन्द जी ७. आचार्य्य वैद्यनाथ शास्त्री जी ८. आचार्य्य रामानन्द शास्त्री जी ९. पं० विश्वनाथ जी आर्योपदेशक १०. आचार्य्य उदयवीर शास्त्री जी ११. श्रीमती माता प्रेमसुलभामती जी १२. ब्र० भूषण चैतन्य जी।

उद्योग किया जाए, तो पत्र की उन्नति हो सकती है।

ओ३म् शम्

सम्पदाकीय

विस्थापित का भोजन शक्ति की दृष्टि से— लखनऊ २०-११-५० वर्त्तमान में एक जांच द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि "उत्तर प्रदेश में आ बसे हुए विस्थापितों का भोजन शक्ति आदि की दृष्टि से, समान साधनों वाले उत्तर प्रदेश वासियों के भोजन की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। इस अन्तर का कारण विस्थापितों की शारीरिक दशा तथा उन के जीवन यापन का प्रकार है।

यह जांच इन्डियन रिसर्च फंड असोसिएशन की प्रेरणा पर की गई थी। भोजन शक्ति परीक्षण अधिकारी ने यही सूचित किया है कि स्थानीय वासियों की अपेक्षा विस्थापितों में दूध का प्रयोग अधिक होता है"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारत सरकार की ओर से मदरास प्रदेश में कलानूर में एकभोजन-अनुसन्धानालय स्थापित है। कई वर्ष हुए उस की ओर से फूड food नामक पुस्तिका प्रकाशित हुई थी। उस में पंजाब के भोजन को भारत के सभी प्रान्तों के भोजनों की अपेक्षा श्रेष्ठतर बतलाया गया था। और पंजाबी भोजन का वर्णन कुछ इस प्रकार का था-गेहूँ की रोटी, कभी कभी बाजरा एवं मक्कई की भी, माष की दाल, शाक, दही, घृत, लस्सी एवं दूध। दही, लस्सी, दूध, घृत का पुष्कल मात्रा में व्यवहार। मांस के सम्बन्ध में उस में लिखा गया था कि जिन परिवारों में मांस का व्यवहार होता है उनमें नासूर cancer रोग की बहुतायत है। सरकार के इस अनुसन्धान से यह पता चलता है कि मांसाहार स्वास्थ्य के लिए हानि कर है। पिछले दिनोंभोजन की समस्या से घबरा कर सरकार के भोजन विभाग ने जनता को मांसाहार की प्रेरणा की थी जो नितान्त अनुचित थी। पशु खाने के लिए नहीं बने, उन का दूध लेना चाहिये जैसा कि वेद में कहा गया है—'पयः पशूनां रसमोषधीनाम्=पशुओं का दूध तथा औषधियों का रस लेना चाहिये। तथा कृषि, सवारी आदि कार्य्यों के लिये पशुओं का व्यवहार करना चाहिये। देश को स्वास्थ्य का भोजन देने के सम्बन्ध में हमें वैज्ञानिक अनुसन्धानों से कार्य्य लेना चाहिये। यूरुप में आज मांसाहार बहुत न्यून हो गया है। उस के विपरीत भारत में बढ़ गया है।

शासन कार्य्य में त्रुटि का हेतु—इस समय जिस को देखो, वह सरकार के कार्य्य व्यवहार में दोष दिखाने में तत्पर है। मनुष्य के कार्य्य में त्रुटिका होना अस्वाभाविक नहीं है। इस त्रुटि का मूल बहुत गहरा है। जब दोष के कारण का निवारण न किया जाएगा, दोष बना रहेगा। मनु आदि वैदिक महर्षियों का कहना है कि राज्य कार्य्य के लिये सदाचारी योग्य कर्म्मचारी नियुक्त करने चाहिएं। किन्तु इस समय हमारे शासन कार्य्य में नियुक्त राज्य कर्म्मचारी किस योग्यता के हैं, ये निम्नाङ्कित समाचार से ज्ञात होता है—"प्रयाग २३ नवम्बर" पोलीस के सब इन्स्पेक्टर पद प्राप्त करने के अभिलाषी राजनैतिक पीड़ित परीक्षार्थियों ने जो एक चुनाव बोर्ड के समक्ष मौखिक परीक्षा के लिये उपस्थित हुए, निम्नलिखित बातें कह कर परीक्षकों को चकित कर दिया—

'असहयोग आन्दोलन ९ अगस्त १९४२ को आरम्भ किया गया था। इंडियन नैशनल कांग्रेस सन् १९१४ में स्थापित की गई थी, सन १८५७ का विद्रोह नोआखाली में आरम्भ किया गया था। महात्मा गान्धी ने कांग्रेस के सभी आन्दोलन अहमदनगर दुर्ग से चलाए थे बीस से अधिक राजनैतिक पीड़ित यह न बता सके कि जलियांवाला बाग कहां है। एक मनुष्य ने जो कहता है कि वह नासिक में कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुआ, बताया कि नासिक मैसूर राज्य में है। और एक दूसरे परीक्षार्थी ने कहा कि चम्पारन राजस्थान में है जहां चावल की खेती होती है।

भूगोल के विद्यार्थी भी पछे नहीं रहे। एक ने बताया ग्रीनविच महाद्वीप है। मैडगास्कर मदरास के दक्षिण में एक बन्दरगाह है। पठानकोट अफगानिस्तान में एक महत्वपूर्ण नगर है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्वालियर दक्षिण में है। इन्डोनेशिया योरुप में है, हिमाचल प्रदेश कोरिया में है।

एक राशनिंग इन्स्पेक्टर ने बतलाया कि जाली राशन काड मृतक मनुष्य का राशनकार्ड होता है जो उस की मृत्यु के पश्चात् काय्य में लाया जाए।

अनेक परीक्षार्थियों ने बताया कि appreciation of money (सिक्के का मूल्य निर्धारण) का अर्थ होता है जनता की पसन्द का धन। तथा inflation (फैलाव) का अर्थ होता है आग लगाना।"

हम जानते हैं कि कई उच्च पदस्थ महानुभाव इस से भी विलक्षण एवं चकित कर देने वाली योग्यता का प्रदर्शन कर सकते हैं। विदेश सम्बन्धी अज्ञान तो कथंचित् क्षमा भी किया जा सकता है किन्तु स्वदेश सम्बन्धी एवं स्वतन्त्रता के अन्दोलन विषयक अज्ञान अक्षन्तव्य है।

विश्वशान्ति सम्मेलन—इग्लैंड के शफील्ड नगर में होने वाले विश्वशान्ति सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले कई प्रतिनिधियों पर ब्रिटेन की सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया। उधर वर्गवादियों ने पोलैंड के वारसा नगर में विश्वशान्ति सम्मेलन रचा डाला। संसार इस समय जैसी विषम परिस्थिति में है उसे देखते शान्ति की नितान्त आवश्यकता है किन्तु हमें इन शान्ति वादियों की शान्ति कामना एवं भावना पर सन्देह है। वर्गवादी अन्यत्र क्या करते हैं, उस का विचार न कर के हम अपने देश के वर्गवादियों का व्यवहार देख कर कह सकते हैं कि इन की शान्ति कामना 'मुख में राम राम, कक्ष में छुरी' के समान है। यही अमरीका तथा ब्रिटेन और उन के साथियों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है।

हमारी दृढ़ धारणा है कि जब तक संसार पर कूट राजनैतिक (पोलिटीकल) लोगों का राज है तब संसार में शान्ति नहीं हो सकती। कूट राजनैतिक अनेक बहानों से दूसरे देशों के स्वातन्त्र्य को हड़पने के उपाय करते रहते हैं। वे शान्ति के अग्रदूत कैसे हो सकते हैं, चाहे स्टालिन हो। चाहे ट्रूमन या ऐटली, सभी एक थैली के चट्टे बट्टे हैं। इन सभी का लक्ष्य येन केनापि प्रकारेण संसार पर अपने देश का प्रभुत्व जमाना है।

जिन का सिद्धान्त हो कि शान्ति के लिए युद्ध अनिवार्य्य है, वे शान्ति क्या करेंगे। आज कल प्रचार युग है। लोगों को अपने पक्ष में करने के लिये ये लोग नित्य नई रचनाएं करते रहते हैं। शान्ति प्रिय तिब्बत पर अकारण आक्रमण करने वाले वर्गवादी (कम्यूनिस्ट) भी शान्ति की चर्चा करते हैं। किमाश्चर्यमतः परम्!!!

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल का वार्षिक अधिवेशन—अस्तु मण्डल का वार्षिक अधिवेशन १७-१२-५० को वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में हुआ। मण्डलाध्यक्ष स्वामी वेदानन्द तीर्थ का आग्रह था कि उन के स्थान पर अध्यक्ष किसी अन्य महानुभाव को चुना जाए। उन की इच्छा का मान करते हुए मण्डल ने श्री स्वामी आत्मा नन्द सरस्वती जी को अध्यक्ष चुना। स्वामी जी वयोवृद्ध होने के स्थान प्रौढ़ विद्वान् एवं तितिक्षु हैं। आशा है कि उन के मण्डलध्यक्ष होने से मण्डल उन्नति करेगा। अन्य अधिकारी इस भांति निर्वाचित हुए।

उपप्रधान—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती जी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मन्त्री—श्री पं० ज्ञान चन्द्र जी आर्य्यसेवक
उपमन्त्री—श्री डा० लीला राम जी वानप्रस्थ
कोषाध्यक्ष—श्री महाशय कृष्ण जी
पुस्तकाध्यक्ष—श्रीमती माता प्रेमसुलभायतीजी

चुनाव के अतिरिक्त गतवर्ष का आयव्यय लेखा आदि पर विचार हुआ।

वेद की ओर—पिछले दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त के अवसर पर भाष्य देते हुए प्रसिद्ध विद्वान् श्री जयकर ने संस्कृत भाषा के अध्ययन पर बल देते हुए वेद, वैदिक सभ्यता एवं वैदिक संस्कृति के अपनाने तथा उसे सुरक्षित रखने की प्रबल प्रेरणा की।

इसी प्रकार राष्ट्रपति देश रत्न श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने देहली विश्वविद्यालय के दीक्षान्त अभिभाषण में आदेश किया कि देश में विभिन्न संस्कृतियों की चर्चा चलाई जाती है। किन्तु भारत की संस्कृति तो एक ही है और वह है वैदिक संस्कृति। प्रत्येक देश की संस्कृति निराली होती है। उस की कुछ विशेषतायें होती हैं, जिन के कारण उस का भेद एवं पार्थक्य स्पष्ट प्रतीत होता है। भारत में जिस संस्कृति की अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही है, वह वैदिक है, अवश्य उस पर कुछ अन्य संस्कृतियों की छाया पड़ी है, किन्तु स्वातन्त्र्य-सूर्य्य के उदय के साथ वह छाया अनायास मिटती जा रही है। देशोद्धार एवं संसार में अपने गौरव की प्रतिष्ठा के लिए अपनी वैदिक संस्कृति को अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। संसार में भारत को जो करना है, वह उसी के अवलम्ब से किया जा सकेगा।

कांग्रेस के अध्यक्ष श्री डा० टंडन तो भारतीय संस्कृति के साग्रह प्रचारक हैं।

प्रधान मन्त्री श्री नेहरू जी भारत में भले ही मिश्रित संस्कृति Composite Culture की चर्चा करें, किन्तु विदेशों में जा कर वे भारतीय संस्कृति के उग्र अग्रदूत बन जाते हैं।

इस से वायु प्रवाह की दिशा का अनुमान सरलता से किया जा सकता है। जो संस्थायें अपने को वेदों का ठेकेदार समझती और मानती हैं, उन का कर्त्तव्य है कि वे वैदिक संस्कृति का विशद निरूपण संसार के संमुख रखें। वेद में तो उस को 'साप्रथमा संस्कृतिः' कहा है। किसी अन्य अवसर पर हम उस के स्वरूप का संक्षिप्त निवारण करने की चेष्टा करेंगे।

सरदार पटेल का निधन—जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः=जो उत्पन्न हुआ है उस को अवश्य एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही होगा, यह अबाध्य सिद्धान्त है। वेद कहता है मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्=दोपायों, चौपायों आदि सभी जीवधारियों पर मृत्यु के शासन का चक्र चला है। मृत्यु के सन्मुख होने पर अपनी विवशता का ज्ञान होता है।

सरदार पटेल बोलते कम और करते अधिक थे। आज से ढाई सहस्र वर्ष खण्ड-खण्ड हुए भारत को जिस प्रकार चाणक्य ने अखण्ड बनाया था, ठीक उसी प्रकार सरदार पटेल ने अंग्रेजों के भाग जाने के बाद छोटी बड़ी लगभग छः सौ रियासतों में बटे भारत को एक और अखण्ड कर दिया। उन का जीवन रहता तो कदाचित् भारत पूर्ववत् संपूर्णाङ्ग हो जाता।

सरदार पटेल के निधन से यदि कोई सहानुभूति का पात्र हुआ है तो भारत देश ही हुआ है। संसार भर में सरदार पटेल के निधन पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शोक सभायें हुई हैं और अभी हो रही हैं। भारत की यह क्षति कैसे पूरी होगी। सरदार की हमें अभी आवश्यकता थी, किन्तु वे हम से छिन गए। जगत्सूत्रधार हम से अधिक ही हमारा हित जानता है। उस के विधान के सामने कैसे बोलें?

योगी अरविन्द का देहावसान—

सरदार पटेल के निधन से पूर्व भारत को एक और चोट सहनी पड़ी। वह थी अरविन्द का देहान्त। उन से अनेक मतभेद होने पर भी हम अनुभव करते हैं कि उन के देहावसान से भारत की बहुत बड़ी क्षति हुई है। चालीस वर्ष के मौन के वे कुछ कुछ बोलने से लगे थे। लेख द्वारा तो अपने विचार चिरकाल से दे रहे थे। १९१४ ई० में उन्हों ने 'आर्य्य' नामक मासिक पत्र निकाला जो अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी भाषाओं में प्रकाशित होता था। सात वर्षों तक वह चला। उस में उन्हों ने वेद के कई सूक्तों पर अपने विचार प्रकट किए। उसी आर्य्य में उन्हों ने स्वामी दयानन्द की वेद भाष्य शैली को उत्कृष्ट बतलाया। उन्हों ने अनेक ग्रन्थ लिखे जिन में सब से बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण 'दिव्य जीवन' Life Divine नामक महाग्रन्थ है। इस में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के सम्बन्ध में अरविन्द जी ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

उन के शिष्यों ने यह भ्रान्त विचार फैलाया था कि अरविन्द का देह अमर रहेगा, किन्तु सब के देखते उन का आत्मा इस विनश्वर देह को जानो असार मान कर उड़ गया। चेलों ने फिर भी उन का देह सम्भाले रखा। अन्त में उसे दफनाया गया। हमारी समझ में नहीं आया ऐसा क्यों किया गया है? कदाचित् कबर-पूजा की भावना।

अफ्रीका का जनरल स्मटस तथा विश्व-विख्यात् नाटक कार बर्नार्डशा तो अपने शव के जलाने की व्यवस्था कर जाते हैं किन्तु योगी अरविन्द का देह मिट्टी में दबाया गया। इस का हेतु?

अरविन्द समस्त जगत् की सम्पत्ति बन चुके थे। उन के उठ जाने से सारा संसार क्षति ग्रस्त हुआ है?

रनतलाई का पाखण्ड—उड़ीसा में रनतलाई नामक एक ग्राम है, वहां के एक गडरिये लड़के ने जिस को नेपाली बाबा कहा जाता है और जिस की आयु ग्यारह वर्ष बताई जाता है, अपने पाखण्ड के बल पर सहस्रों जनों को अपनी ओर खींचा। उस ने प्रसिद्ध किया कि उसे एक साधु एक जड़ी दे गए हैं जो सब रोगों का नाश करती है। दूर दूर से लोग उससे वह जड़ी प्राप्त करने आने लगे। उड़ीसा सरकार ने जांच कर के घोषित किया कि यह निरा पाखण्ड है। उस की दी जड़ी से किसी को लाभ नहीं हुआ। भारत की जनता अशिक्षित होने के कारण अन्धविश्वासी है। अतः सरकार की इस घोषणा का उन पर कोई प्रभाव नहीं, लोग वहां जाने से न रुके। परिणाम स्वरूप वहां हैजा फूट पड़ा है।

महर्षि चरक ने अपने अमर ग्रन्थ चरक में लिखा है यदि सब रोगों की कोई एक औषधी होती तो ऋषि लोग इतना परिश्रम क्यों करते? किन्तु यह अन्ध विश्वासी चरक की बात काहे को सुनें। बात यह है कि किसी समय आत्मिक चिकित्सा के साथ साथ शरीर चिकित्सा के भी प्रकाण्ड पण्डित होते थे। वे सर्वत्र घूम कर मूल्य के बिना सब की चिकित्सा करते थे। लोगों को उन से लाभ पहुँचता था। आज कल के बाबा जी अपने उन पूर्वजों की कमाई खा रहे हैं और मूढ़ों को यमद्वार पहुंचा रहे हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छप गया   प्रकाशित हो गया

सांख्यदर्शन का इतिहास

जिस ग्रन्थरत्न की इतने काल से प्रतीक्षा हो रही थी, अन्तको वह छपकर आगया। इस ग्रन्थरत्न में सांख्यदर्शन की रचना का काल, रचयिता, तथा पुराने सांख्याचार्यों एवं सांख्य के नवीन संप्रदाय के प्रवर्त्तक ईश्वर कृष्ण तथा अन्य सांख्याचार्यों का प्रामाणिक इतिहास हैं। सप्तसिन्ध कहां है? सरस्वती कहां थी। अब कहां है? वर्तमानकाल में मिलने वाला सांख्यदर्शन ही सांख्यविषयक सब से पुराना ग्रन्थ है, इस सांख्यदर्शन के उद्धरण किन किन पुराने ग्रन्थों में मिलते हैं इत्यादि सहस्रों विषयों का निरूपण आप को इस ग्रन्थरत्न में मिलेगा। विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री जी के जीवनसार के अध्ययन का यह सार है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए० पी० एच० डी तथा डा० मंगलदेव शास्त्री एम० ए० डी० फिल ऐसे उद्भट विद्वानों ने इस की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि सांख्यदर्शन के संबन्ध में संसार की अन्य किसी भी भाषा में इतना बड़ा तथा प्रामाणिक ग्रन्थ आप को नहीं मिल सकता। ग्रन्थ की प्रति थोड़ी छपाई हैं। अतः मंगाने में शीघ्रता कीजिए। मूल्य ३०) तीस रुपये। डाकव्यय अतिरिक्त।

:::::::::::::::::::

क्या आप गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं?

यदि आप का उत्तर हां में है, तो क्या आप उसका अर्थ, उसका गौरव, उसके जप की विधि जानते हैं? इन तथा इन जैसी अन्य आवश्यक बातों जानने के लिए सावित्रीप्रकाश नामक पुस्तक का स्वाध्याय कीजिए। उसके लेखक अध्यात्मविद्या के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ हैं। गायत्री मन्त्र की इतनी उत्तम व्याख्या आपको और कहीं नहीं मिलेगी। अनेक समाचार पत्रों तथा विद्वानों एवं साधकों ने उसकी प्रशंसा की है। इतनी गुणगणाढ्य पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया है, डाक व्यय इसके अतिरिक्त है।

मिलने का पता—

मन्त्री— विरजानन्द वैदिक संस्थान

ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

["Regd. No. E. P. 425. रजि० सं० इ० पी० ४२५

क्या आप आर्यों के परम धर्म का पालन करते हैं ?

ऋषियों का आदेश है—'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' वेद संस्कृत भाषा में हैं। लोग चाहते हुए भी इस कठिनता के कारण उस मे लाभ न उठा सकते थे। ऋषि दयानन्द ने सब से पहले इस कठिनता को दूर किया। ऋषि से प्रेरणा पाकर उनके चरण चिन्हों पर चलने वाले श्री स्वामी वेदानन्द ने सर्वसाधारण के लिए वेद को सुलभ कर दिया है। एक दिन के लिए एक मन्त्र के विचारण से ३६६ मन्त्रों का संग्रह 'स्वाध्याय सन्दोह' नामक विशाल ग्रन्थ रच कर उन्होंने सर्वसाधार के लिए वेद का द्वार खोल दिया है। मन्त्रों की व्याख्या वेदमन्त्रों, उपनिषद्वचनों तथा अन्य अनेक ऋषियों के वचनों से पुष्ट की गई है। भाषा सरल, ललित है। साधारण जनता तथा लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने समान रूप से इस की प्रशंसा की है। समाचारपत्रों के सम्पादकों ने इस की सराहना की है। यह बात सर्वसम्मत है कि संप्रति प्रतिदिन स्वाध्याय करने के लिए इससे उत्कृष्ट ग्रन्थ और कोई नहीं है। इतने विशाल ग्रन्थ का मूल्य केवल छः रुपये ६) है। डाक व्यय इससे पृथक् है। मंगाने को शीघ्रता कीजिए अन्यथा अगले संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह इसका दूसरा संस्करण है।

प्रार्थना करना सीखिए

प्रत्येक आस्तिक को प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। ऋषि ने साधारण जनों की सुविधा के लिए चारों वेदों से केवल आठ मन्त्र स्तुति प्रार्थना-उपासना के लिए संकलित किए हैं। आराधक प्रवर श्री स्वामी वेदानन्द ने उनकी भावमयी व्याख्या लिखी है, जिसे पढ़ते समय पाठक तन्मय हो जाता है। आप भी उसे पढ़िये और आनन्द विभोर हूजिए, उसका नाम 'ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासनामन्त्राः' है। मूल्य केवल ढ़ाई आने, डाक व्यय पृथक्।

नैमित्तिक वैदिक पाठ

संकलन कर्ता—श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी तथा व्याख्याकर्ता श्री स्वामी वेदानन्द जी

पुराने आर्य्य प्रत्येक कार्य्य करते हुए भगवान् का स्मरण किया करते थे। उनका यह स्मरण वेद मन्त्रों के द्वारा होता था। श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने प्रत्येक अवसर के उपयोगी ऐसे मन्त्रों का संकलन कर दिया है। वेदों के मार्मिक विद्वान स्वामी वेदानन्द ने उनकी सुललित व्याख्या कर दी है। प्रत्येक आस्तिक वैदिक के पास यह पुस्तिका होनी चाहिए। मूल्य चार आने। डाक व्यय पृथक्।

मिलने का पताः—

मन्त्री, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर

मुद्रक—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय दीवान हाल दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

॥ ओ३म् ॥

वेद पथ

मासिक

❀ वैदिक आचार-विचार-व्यवहार-प्रसारक ❀

द्वितीय वर्ष { तपस्यः=फाल्गुण २००७ वि० (१२६ द०)=फरवरी १९५१ ई० } सप्तमांक

सम्पादक
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
विरजानन्द वैदिक
संस्थान
ज्वालापुर,
जि० सहारनपुर

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा
५≡)
बी० पी० द्वारा
५।)
एक प्रति ॥)

★ ग्राहकों से प्रार्थना ★

'वेद पथ' को सभी वैदिक धर्म्म सर्वोत्कृष्ट पत्र स्वीकार करते हैं। इसका श्रेयः ग्राहक महानुभावों को है। इसके प्रचार से वैदिकधर्म्म का प्रचार क्षेत्र बढ़ता है। अतः आपसे प्रार्थना है कि कम से कम एक एक ग्राहक और बनाने का यत्न कीजिए।

व्यवस्थापक
'वेद पथ' मासिक
देहली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

लेखक

विषय पृ०

१. वैदिक सूक्तिसंग्रह [श्रीमान् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज] १६१
२. आत्मा का स्थान (६) [श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज] १७१
३. युग [श्रीमान् आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी] १७६
४. मस्तिष्क और बाहु के सहयोग— [श्रीमान् पं० विश्वनाथ जी] १७८
५. सन्ततिनिरोध १८०
६. वेदों पर श्री पुरुषोत्तम दास टंडन का प्रहार [श्रीमान् पं० जयदेव शर्म्मा जी] १८३
७. मानस तरङ्ग (४) [श्रीमान् ब्रा० भूषण चैतन्य जी] १८६
८. आराधना [कवीन्द्र पं० सुधीन्द्र जी] १८९
९. ब्रह्म का स्वरूप [विद्या भास्कर श्री पं० उदयवीर शास्त्री जी] १९१
१०. साहित्य समीक्षा १९७
११. सम्पादकीय १९९

आवश्यक सूचना

वेदपथ मासिक अब देहली से प्रकाशित होता है, अतः उसका मूल्य व्यवस्थापक वेद पथ मासिक, देहली के पते पर भेजना चाहिये। समालोचना के लिए पुस्तकें, तथा प्रकाशनार्थ लेख आदि स्वामी वेदानन्द, सम्पादक 'वेद पथ' मासिक के पते पर भेजिए प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र-व्यवहार भी व्यवस्थापक से करना चाहिए।

वार्षिक चन्दा भेजते हुए भी अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखिए।

व्यवस्थापक, 'वेद पथ' मासिक देहली।

ईश्वरभक्ति

ऋषि मुनि भगवान् की आराधना के लिए वेद मन्त्रों का आश्रय लिया करते थे। महर्षि ने वेदों से 'विश्वानि देव—' आदि आठ मन्त्र संकलित किये। स्वामी वेदानन्द तीर्थ ने उसकी हृदयहारिणी भावमयी व्याख्या लिखी है जिसे पढ़ते हुए स्वान्त शान्त हो जाता है। उसका नाम 'ईश्वर स्तुतिप्रार्थनोपासना मन्त्राः' मूल्य एक प्रति =)॥ एक सौ प्रति इकट्ठी मंगाने वाले को —)॥ के भाव से एक प्रति दी जाएगी, डाक व्यय पृथक्। सौ प्रति मंगाने वाले को ६।=) मूल्य पेशगी भेजना चाहिए।

मन्त्री, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासिवानप्रस्थ मण्डल,
ज्वालापुर जि० [सहारनपुर]

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ० १।४१।४)

वेद पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि विस्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

द्वितीय वर्ष { देहली
तपस्य=फाल्गुण २००७ वि० (१२६ द०)= फरवरी १६५१ ई० } सप्ताङ्क

स्वाध्याय सूक्ति संग्रह

[*स्वामी वेदानन्द सरस्वती*]

३३, हत वृभ सुदानवः (ऋ० १ २४ ६)

हे उत्तम दानियों ! अज्ञानान्धकार का नाश करो।

३४, मा नो दुःशंस ईशत (ऋ० १।२३।६)

हम पर बुरी कीर्त्ति वाला अथवा बुरी शिक्षा देने वाला शासन न करे।

३५, विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः (ऋ१।२३।१०)

मरने मारने में तत्पर सभी विजयिओं को हम बुलाते हैं।

३६, उग्रा हि पृश्निमात्तरः (ऋ० १।२३ १०)

पृथिवी (देश) को माता मानने वाले [देश भक्त सचमुच तेजस्वी होते हैं।

३७, यच्छुभं याथना नरः (ऋ० १।२३।११)

हे नरो ! मनुष्यो ! जो शुभ है, उसे प्राप्त करो।

३८, देवा भवत वाजिनः (ऋ० १।२३।१६)

हे विजयाभिलाषीयो ! वेगवान् होवो।

३९, अद्वेषो हस्तयोर्दधे (ऋ० १।२४।४)

मैं हाथों में अद्वेष=प्रीति धारण करता हूँ।

४०, मूर्धानं राय आरभे (ऋ० १।२४।५)

धन के सिर (मूल कारण) का निर्माण करता हूं।

४१, उतापवक्ता हृदयाविधश्चित् (ऋ० १।२४ ८

और अपशब्द बोलने वाला तो हृदय को बीधने वाला होता है।

४२, अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि (ऋ० १।२४।१०

भगवान् के नियम अटल होते हैं।

४३, वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते (ऋ० १।२६।१

हे बलाध्यक्ष पवित्र ! वस्त्र पहन हो।

४४, सीदन्तु मनुष्यो यथा (ऋ० १।२६।४

मनुष्यों की भांति बैठिये।

४५, प्रियो नो अस्तु विश्पतिः (ऋ० १।२६।७

प्रजापालक हमारा प्यारा हो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४६. वन्दध्या अग्निं नमोभिः (ऋ १।२७।१)

नेताओं को नमस्कारों से वन्दना करता हूं।

४७. मीढ्वां अस्माकं बुभूयात् (ऋ १।२७।२)

सुखवर्षक भगवान् हमारा हो, अथवा भगवान् हमारे लिये सुख वर्षक हो।

४८. शिक्षा वस्वो अन्तमस्य (ऋ १।२७।५)

अतिशय समीपवर्ती धन दे।

४९. घाजो अस्ति श्रवाय्यः (ऋ १।२७।८)

ज्ञानोपदेश (अरबी का वअज़) सुनने सुनाने योग्य होता है।

५०. यजाम देवान् यदि शक्तवाम (ऋ १।२७।१३

हम यथा शक्ति देव यज्ञ करें।

५१. मा ज्यायसः शंसमावृक्षि देवाः (ऋ१।२७।१३

हे देवो! बड़े की प्रशंसा मत करें।

५२. ससन्तु त्या आरातयो बोधन्तु शूर रातयः (ऋ १।३०।४

हे शूर! वे कंजूसियां सो जाएं और दान जागें।

५३. समिन्द्र गर्दभं मृण (ऋ१।३०।५

हे राजन्। लोक वाणी के दबाने वाले को मसल दे।

५४. सर्वं परिक्रोशं जहि (ऋ १।३०।७

सब प्रकार के गिला (रुदन) को त्याग दे।

५५. विभूतिरस्तु सूनृता (ऋ १।३०।५

ऐश्वर्य्य मधुर हो।

५६. ऊर्ध्वस्तिष्ठा (ऋ १।३०।६

ऊपर खड़ा हो, ऊंचा खड़ा हो। ऊपर उठ।

५७. हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये (ऋ १।३०।७

अपनी कार्य्य सिद्धि के लिए हम परस्पर मित्र बन कर भगवान् को पुकारते हैं।

५८ देवो देवानामभवः शिवः सखा (ऋ१।३१।१

तू देव-देवों का कल्याणकारी सखा है।

५९. दभ्रेभिश्चित्समृता हंसिभूयसः (ऋ १।३१।

तू युद्ध में अल्पों के द्वारा बहुतों को मारता है। अथवा छोटों दुर्बलों के द्वारा प्रबलों बड़ों की हत्या करता कराता हैं।

६०. मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये (ऋ १।३१।

ज्ञानी के लिए तू श्रेय तथा प्रेम दोनों का निर्माण करता है।

६१. देवो देवेष्वनवद्य जागृविः (ऋ १।३१।

हे निर्दोष! तू देव देवों में जागता है।

६२. त्वं कल्याणं वसु विश्वमोपिषे (ऋ १।३१।

हे कल्याण भले! तू सब धन को बोता तथा काटता है।

६३. अच्छ याहि, आ वहा दैव्यं जनम्, आ साद्य बर्हिषि, यक्षि च प्रियम् (ऋ १।३१।१७

अच्छा जा! देव हितकारी जन को ले आ, और आसन पर (अथवा हृदय में) बिठा, और [फल स्वरूप) प्रिय = इष्ट पदार्थ को पा।

६४. मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध (ऋ १।३३।

हे हम से बहुत अधिक बढ़े हुए! पणि= बनिया मत बन।

६५. अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः (ऋ१।३३।

अयाज्ञिक सनकी मरजाएं।

६६. इहब्रवीतु य उ तच्चिकेत (ऋ १।३५।६

यहां वह बोले, जो वक्तव्य वस्तु को निश्चय पूर्वक जानता हो॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा का स्थान

[श्रीमान् स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी, अध्यक्ष, सार्वदेशिक दयानन्द सन्यासी वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर]

६

जो आत्मा अभी अन्नमय, प्राणमय, और मनोमय में फंसा हुआ है, उस को लक्ष्य का निर्देश इस आगे के प्रसङ्ग में किया गया है—

मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय। तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति। (मु० २।२।७

शरीर का नेता अर्थात् प्राणमय और अन्नमय के प्रबन्ध में लगा हुआ आत्मा, अन्न में= अन्नमय कोष में अपने हृदय को स्थापित कर उस में प्रतिष्ठित है। जो आनन्द रूप अमृत ब्रह्मरन्ध्र में चमक रहा है और प्राप्तव्य है, उसे विद्वान् लोग विज्ञान से अर्थात् इन कोषों और आत्मा के विवेक से देख पाते हैं)

इस प्रसङ्ग में स्पष्ट ही सिद्ध होता है कि आत्मा नीचे के हृदय में प्रतिष्ठित है। क्योंकि उसे विवेक नहीं हुआ, और विवेक के बिना ऊपर के हृदय में उत्क्रमण हो नहीं सक्ता।

इस आगे के प्रसंग में महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी अज्ञानी आत्मा की स्थिति नीचे के हृदय में ही मानी है।

"य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एष अन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिन् शेते। तानि यदागृह्णाति तदैष पुरुषः स्वपिति नाम। तद्गृहीत एव प्राणो भवति। गृहीता वाक् गृहीतं चक्षुः। गृहीतं श्रोत्रम् गृहीतं मनः॥ (बृहदारण्यक २।१।१०)

(जो यह विज्ञानमय आत्मा है वह अपने विज्ञान से इन प्राणों=इन्द्रियों के विज्ञान को समेट कर जो कि हृदय के अन्दर आकाश है उस में सोता है। उन इन्द्रियों को जब यह पकड़ लेता है=उन्हें कार्य से विरत कर देता है, तब यह पुरुष सोता है। उस समय नासिका, वाणी, चक्षु, श्रोत्र और मन सब काम करना बन्द कर देते हैं।

इस प्रसङ्ग में भी आत्मा को इन्द्रियों से काम लेता हुआ और सोने के समय उन्हें समेट लेता हुआ प्रकट किया गया है। इन्द्रियों के बन्धन में=प्राणमय कोष में ही फंसा होने के कारण यह आत्मा भी अभी अज्ञानी है, उत्क्रमण का अधिकारी नहीं, अतः इस का भी निवास नीचे के हृदय में ही है।

और भी आगे चल कर कहा है

"अथ यदा सुषुप्तो भवति, यदा न कस्य चनवेद, हिता नाम नाड्यो द्वासप्तति सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते" (बृहदारण्यक २।१।१९)

(अब जब मनुष्य सो जाता है, जब किसी को भी नहीं जानता तब उस की जो हिता नामक ७२००० बहत्तर हजार नाड़ियें हैं उन के द्वारा फैल कर पुरीतत नाड़ी में सोता है।

हिता नामक हृदय की नाड़ियों के पास ही हृदयाकाश में पुरीतत नाड़ी होगी जिस में आत्मा सोता है। क्योंकि ऊपर के प्रसंग में महर्षि याज्ञवल्क्य ने ही जीव का शयन हृदय के आकाश में लिखा है।

यहां सारी प्रशाखाओं का सङ्कलन नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया गया, इसी लिये संखया बहत्तर हज़ार लिखी है।

यह आत्मा भी अभी अज्ञानी ही है, अतः इस का स्थान भी नीचे का हृदय ही है।

अन्यत्र महर्षि याज्ञबल्क्य लिखते हैं—

"कतमः स आत्मेति, योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु, हृद्यन्त ज्योतिः पुरुषः (वृहदारण्यक ४।३।७)

(यह कौन सा आत्मा है, जो कि विज्ञान-मय नामक है और हृदय के अन्दर प्राणों के मध्य में है, और जो अभी अन्तर्ज्योति है, जिस का प्रकाश अभी उस के अन्दर ही है प्रकट नहीं हुआ)

'इस प्रसङ्ग में महर्षि ने आत्मा का नाम विज्ञानमय कहा है। और उसे उस हृदय में उपस्थित किया है जो प्राण केन्द्र के मध्य में शिर में है। क्योंकि वह मन पर अधिकार कर विज्ञान-मय में प्रविष्ट हो चुका है। उस का विवेक ब्रह्म-रन्ध्र में भगवान् की सहायता से करना चाहता है और अपनी अन्तर्हित विज्ञान ज्योति को प्रकट करना चाहता है।

प्राणों का केन्द्र मस्तिष्क में है, इस के सम्बंध में यजुर्वेद के एक मन्त्र के द्वारा महर्षि याज्ञ-वल्क्य क्या कहते हैं, इसे आगे पढ़िये—

"अर्वाग्बिल श्चमस ऊर्ध्व बुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्। तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना। य एष ऊर्ध्व बुध्नः सशिर एव। प्राणा वाव विश्वरूपं यशः ;। प्राणावा ऋषयः। वाग् स्येपृमी ब्रह्मणा संवित्ते"। (वृहदारण्यक २।२।३)

(एक कटोरा है जिस का पेंदा ऊपर और छिद्र नीचे है। उस में विश्वरूप यश रक्खा हुआ है। उस के किनारे पर सात ऋषि हैं, और आठवीं वाणी है जो ब्रह्म के साथ संवाद करती है। इसके व्याख्यान में महर्षि लिखते हैं कि यह कटोरा हमारा शिर है और इस में जो विश्वरूप यश है वह प्राण है। सात ऋषि भी प्राण हैं। और आठवीं ब्रह्म से संवाद करने वाली अथवा उसका गुण गान करने वाली वाणी भी शिर के पास ही है।)

इस प्रसंग में महर्षि ने प्राणों का केन्द्र शिर माना है। यद्यपि प्राण, शरीर में भिन्न २ स्थानों में रह कर भिन्न २ कार्य कर रहे हैं परन्तु उन का प्रधान केन्द्र शिर ही है।

अभ्यासी आत्मा को जहां ब्रह्म की प्राप्ति होती है वह स्थान भी यह ब्रह्मरन्ध्र वाला हृदय ही है। इस विषय में आचार्य यम कहते हैं—

तन्दुर्दर्शं गूढ़ मनु प्रविष्टं गुहा हितं गह्वरेष्ठं पुराणम्। अध्यात्म योगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्ष शोकौ जहाति। (कठ १-१-१२)

(वह दृष्टि से गम्य नहीं है। वह पुराण है और छिपा हुआ हृदय की गुहा में प्रविष्ट है। उस देव को अध्यात्म योग से मनन कर बुद्धि-मान् पुरुष हर्ष शोक से छूट जाता है।)

ब्रह्म ऊपर की गुहा के अन्दर जिसे कि ब्रह्म-रन्ध्र वाला हृदय कहते हैं, मिलता है। आत्मा को उस की प्राप्ति के लिये उस का वहां ही ... कर मनन करना होता है।

ऊपर के हृदय में पहुँचने पर ही ब्रह्म प्राप्त होता है, इस का आचार्य और भी स्पष्टीकरण करते हैं—

"ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्यं लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे, छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः।" (कठ ३।६।१६)

शरीर के उत्कृष्ट पर भाग में गुहा में प्रविष्ट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दो आत्माओं को आहिताग्नि पञ्चाग्नि विद्या में निपुण ब्रह्मज्ञानी लोग अपने सुकृत का फल प्राप्त करते हुओं को, छाया और धूप के समान देखते हैं।)

हमारे शरीर के उत्कृष्ट पर भाग में विद्यमान गुहा हमारा ब्रह्मरन्ध्र का हृदय ही है। ब्रह्मज्ञानी का अग्न्याधान अध्यात्म अग्नि में हो होता है। पञ्चकोष विवेक ही उनका पञ्चग्नि विद्या में नैपुण्य है। इस हृदय में छाया स्थानीय जीव और आतप स्थानीय ब्रह्म है। जीव ज्ञानवान् है परन्तु ब्रह्मज्ञान के सामने तो उस का ज्ञान छाया के समान ही है। वह यहां रहकर प्रभु के ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त कर रहा है, और यह ही उस के सुकृत का फल उसे प्राप्त हो रहा है, और यह ही उसे ज्ञान देना रूप प्रभु के सुकृत का फल है। प्रभु का अपना कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है।

यह ही विषय संक्षेप में महर्षि तित्तिरि ने कहा है—

"यो वेद निहितं गुहायांपरमे व्योमन्"

(जो उत्कृष्ट आकाश में गुहा में प्रविष्ट को जानता है)

हमारे शरीर में उत्कृष्ट आकाश, शरीर के द्युलोक नामक शिर में हृदयाकाश ही है। उसी में ब्रह्म को जाना जाता है। इसी लिये उसे यहां इस स्थान में निहित कहा गया है।

इसी विषय को महर्षि याज्ञवल्क्य ने छान्दोग्य में भी कहा है—

"अथ यदस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म, दहरो ऽस्मिन्नन्तराकाशः, तस्मिन् यदन्तस्त हन्वेष्ट व्यम्, तद्वाव विजिज्ञासितव्यम्" (छान्दोग्य ८।८।१)

(अब जो हमारे इस ब्रह्मपुर में कमल के समान दहर नामक स्थान है। इस के अन्दर का आकाश भी दहर है। उस के अन्दर जो है उसे खोजना चाहिये और उसी के ज्ञान की इच्छा करनी चाहिये।"

हमारे शरीर में ब्रह्मपुर हमारा द्युलोक नामक शिर है। उस में कमल की आकृति वाला हमारा हृदय है। उसके अन्दर के आकाश को और उस हृदय को दोनों को ही यहां दहर कहा गया है। दहर शब्द का अक्षरार्थ होता है "ददाति, हन्ति, रमयति च" देता है, नष्ट करता है, और रमण कराता है) इन दोनों में ही ब्रह्म का निवास है। ब्रह्म ज्ञान देता है, अज्ञान का नाश करता है और आनन्द में रमण कराता है। उस के सम्बंध के कारण, हृदय और हृदयाकाश को भी आत्मा के लिये ऐसे साधन उपस्थित करने वाला कह दिया गया है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने आत्मा और ब्रह्म दोनों को इस हृदय में दिखलाया है—

"एषम आत्माऽन्तर हृदयेऽणीमान् व्रीहेर्वा यवाद्वा शामाकाद्वा, श्यामाक तण्डुलाद्वा। एषम आत्माऽन्तर हृदये ज्यामान् पृथिव्या, ज्यायानन्तरिक्षात्, ज्यायान्दिवो, ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः" छान्दोग्य ३।१४।३

(यह मेरा आत्मा अन्दर के हृदय में, धान से, जौं से, सामक से, और सामक के दाने से भी अत्यन्त छोटा है।

यह मेरा आत्मा अन्दर के हृदय में, भूमि से, अन्तरिक्ष से, द्युलोक से और इन सारे लोकों से भी बहुत बड़ा है॥

यहां अन्दर का हृदय शिर वाला हृदय ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिया गया है। इसमें प्राप्त करने वाले और प्राप्तव्य दोनों ही आत्माओं का एक का अणु और दूसरे का व्यापक स्वरूप दिखलाया गया है। इस प्रसंग से स्पष्ट किया गया है कि आत्मा को ब्रह्म प्राप्ति के लिये इस स्थान का आश्रय लेना पड़ता है।

इसी प्रकार के दृश्य का एक स्थान पर बृहदारण्यक में भी वर्णन किया गया है—

"मनोमयोऽयं पुरुषोभाः सत्यस्तस्मिन्नत हृदये यथा बीहिर्वा यवोवा (दूसरे को लक्ष्य करके कहते हैं) सराष सर्वस्येशानः सर्वस्वाधिपतिः, सर्वमिदं प्रशास्ति पदिदं किञ्च"

यह मनोमय पुरुष अन्दर के हृदय में प्रकाश रूप है, सत् रूप है। और यह वह सब का इश्वर, सब का स्वामी है। यह जो सब संसार है सब पर यह शासन करता है।)

यहां भी अन्दर का हृदय वही ब्रह्म रन्ध्र वाला हृदय है। यहां भी इस हृदय में जीव ज्ञान रूप प्रकाश को प्राप्त कर रहा है और ब्रह्म उस ज्ञान की प्राप्ति में उसका स्वामी बना हुआ है। यहां जीव का धान अथवा जौं जितना परिमाण, उस के यहां के निवास स्थान के परिमाण के कारण कह दिया गया है। इस का वास्तविक परिमाण हम उपनिषद् के वाक्य से ही आगे चल कर व्यक्त करेंगे।

श्वेताश्वर में भी जीव और ब्रह्म इन दोनों के ज्ञान के लिये इसी हृदय में उल्लेख किया गया है—

"नसंदृशे तिष्ठति रूप मस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्, हृदा-हृदिस्थं मनसा मएनमेव विदुरमृतास्ते भवन्ति" श्वे.४.२०

(इस का रूप प्रत्यक्ष गोचर नहीं है। इसे चक्षु से कोई नहीं देखता। हृदय साधन से अर्थात् हृदय में रह कर हृदय में वर्तमान ब्रह्म को जानते है, वे अमर हो जाते है।

इस प्रसंग में यह निर्देश किया गया है कि ब्रह्म ऊपर के हृदय में मिलेगा। साधक आत्मा उस हृदय में पहुँचने की योग्यता प्राप्त करे, और उसे जान कर मोक्ष का अधिकारी बने।

इसी विषय का स्पष्टीकरण अथर्ववेद में बड़ी उत्तम रीति से किया गया है—

"अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्य यः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ तस्मिन् हिरण्यये कोषेभ्यरे त्रिप्रतिष्ठते देवा यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्म विदो विदुः।"

(जिस के साथ कोई युद्ध नहीं कर सकता ऐसी एक नौ द्वारों वाली और आठ चक्रों वाली देवताओं की नगरी है। उस में एक सुवर्ण मय कोष है जिसे कि स्वर्ग कहते हैं और वह प्रकाश से घिरा हुआ है। हे देवो! उस तीन अरों वाले और तीन स्थानों पर प्रतिष्ठित सुवर्ण मय कोष में जो आत्मा वाला पूजनीय देव है उसे ब्रह्मज्ञानी जानते हैं।)

इन दो मन्त्रों में निम्न विषय प्रकट किये गये हैं—

१ हमारे इस शरीर में आठ चक्र और नौ द्वार हैं।

२ जब तक यह शरीर देवताओं की नगरी बना रहता है=अर्थात् इस के इन्द्रिय आदि देव असुर नहीं बन जाते देव ही बने रहते हैं, तो इस नगरी पर कोई रोग अथवा काम आदि शत्रु विजय नहीं पा सकते।

३. इस में एक स्वर्ग नामक प्रकाश से घिर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हुआ कोष है। जोकि सुवर्ण जैसे उपादान से बना है। चक्र का ही दूसरा नाम कोष है। प्रकाश वाला कोष हमारे शरीर में सहस्रार ही है जो कि शिर में है। देवों का स्थान स्वर्ग भी हमारा शिर ही कहलाता है। प्रकाश वाला स्थान होने के कारण इसे ही द्युलोक भी कहते हैं।

४. इस कोष का निर्माण तीन अरों पर हुआ है। और इसी लिये यह अपने त्रिकोण आधार में तीन स्थानों पर टिका हुआ है।

५. इस में एक यक्ष है-पूजनीय देव है जिसे कि ब्रह्म कहते हैं

६. उस की शरण में आत्मा आनन्द तथा ज्ञान की प्राप्ति के लिये आया हुआ है, इसी लिये इस का दूसरा नाम आत्मन्वत्=आत्मा वाला हो गया है।

७. इस यक्ष को ब्रह्म ज्ञानी ही जान सक्ता है, दूसरा कोई नहीं। हम समझते हैं कि हमारे इस ऊपर के विश्लेषण से इन मन्त्रो का सब विषय पाठकों की समझ में आगया होगा। इस अवस्था में आत्मा जिन उलझनों को पार करता हुआ पहुँचा है वे कुछ कम महत्व की न थी। इसे इन उलझनों से निकाल कर इतने ऊंचे स्थान पर ले आना, अथवा वहां ही उलझाए रखना, ये दोनों ही यद्यपि मनो देव के काम हैं परन्तु यह सत्य है कि आत्मा की उपेक्षा अथवा सावधानता उस की इन दोनों अवस्थाओं में मुख्य कारण हैं।

आत्मा का परिमाण—

"एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश। प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा।" (मुण्डक ३।९)

(यह अणु आत्मा मन से ही जानना चाहिए। पांचों प्राणों का निवास इसी के पास है। प्राण एक व्यापक तत्व है जिस का सारी प्रजाओं के चित्तों के साथ सम्बन्ध है। विशुद्ध हो जाने पर आत्मा का ज्ञान भगवान् के ज्ञान की सहायता से इतना विस्तृत हो जाता है कि उस का भी सम्बन्ध प्रजाओं के सब चित्तों के साथ हो जाता है। इस प्रसंग में स्पष्ट ही आत्मा का परिमाण अणु माना है।

यह प्रश्न हो सक्ता है कि देव मन का स्थान प्राणों तथा ज्ञान इन्द्रियों के केन्द्र में शिर में माना गया है। और यक्ष मन का कर्म इन्द्रियों के केन्द में छाती वाले हृदय में माना गया है। और यह भी मन्तव्य कोटि में आचुका है, कि मन आत्मा की स्वीकृति के बिना कुछ नहीं कर सक्ता। उस का कोई ज्ञान तथा कर्म उस की प्रेरणा के बिना सम्भव नहीं है। ऐसे स्थल मिलते हैं कि जहां मन कई काम कर लेता है और आत्मा को उन का पता भी नहीं लगता। परन्तु उन स्थलों में भी उसे आत्मा की आज्ञा हो चुकी होती है। ऐसे अभ्यास में आये हुए कर्मों के स्थल में एक बार आज्ञा प्राप्त हो जाती है और फिर वे उसी प्रकार के कर्म उसी आज्ञा के आधार पर अभ्यास के चक्र में होते रहते हैं।

जैसे कि हम ने २५ कोस की यात्रा आरम्भ की है। अपने लक्ष्य पर पहुंचने के लिये २५ कोष चल कर जाने के विषय में पर्याप्त सोच विचार कर लिया है, आत्मा की मन को आज्ञा मिल चुकी है। मन भी पैरों को चलने की प्रेरणा कर चुका है और पैरों ने भी चलना आरम्भ कर दिया है। अब २५ कोस तक यह चलने का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभ्यास आप चलता रहेगा। बार बार मन को आत्मा से और पैरों को मन से आज्ञा लेने की अब आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार शौच व्यायाम, स्नान, नित्य कर्म, भोजन, शयन आदि जो अभ्यास में आये नित्य के कर्म हैं उन में भी बार २ आज्ञा की आवश्यकता नहीं रहती, इसी प्रकार और भी अभ्यास में आये हुए कर्मों के विषय में जान लेना चाहिये।

परन्तु पहिले अथवा तत्काल मन को आत्मा की आज्ञा लेनी ही पड़ती है और उसे उस के निमन्त्रण में रहना ही पड़ता है और यदि बात ऐसी है तो जब आत्मा नीचे के हृदय में होगा तब दैव मन से और जब यह ऊपर के हृदय में रहेगा तब यज्ञ मन से काम कैसे लेगा।

इस प्रश्न का उत्तर सरल ही है। नीचे के हृदय से लेकर ऊपर के हृदय तक और फिर सारे ही शरीर में प्रेरण तन्तुओं ज्ञान तन्तुओं और हृदय की और अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ियों का इतना विस्तृत जाल बिछा हुआ है जिसे कि देख कर बुद्धि चकरा जाती है। बस उसी नाड़ी जाल के द्वारा आत्मा कहीं भी बैठा हुआ किसी मन के ऊपर अपना निमन्त्रण का हाथ रख सक्ता है।

इस प्रकार उपनिषदों के समन्वय तथा वेद के भी कुछ सिद्धान्तों के आधार पर हमें अपने शरीर में दो हृदय मानने पड़ते हैं। उन में से एक छाती में और एक शिर में है। आत्मा भिन्नः अवस्थाओं में इन दोनों ही स्थानों में निवास करता है, संसार दशा में नीचे के हृदय में और परमार्थ दशा में ऊपर के हृदय में वह कहीं भी रहता हुआ प्राण तन्तुओं और ज्ञान तन्तुओं के द्वारा शरीर साधन शक्तियों पर अधिकार रख सक्ता है।

मैं ने ये पंक्तियें केवल प्रसङ्ग को छेड़ने के लिये लिखी हैं। विद्वानों के विचार मिलने पर ऊहापोह का अवसर मिले यह ही ध्येय है। (समाप्त) [विद्वान् पाठकों से निवेदन है कि वे इस विषय पर अपने विचार भेजने की कृपा करें। हृदय एक है अथवा दो हैं, इस विषय पर शास्त्रीय रीति से विवेचना करने की आवश्यकता है। मन भी ऐक है या दो, यह भी विचारणीय विषय है सम्पादक]

युग

[*श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रतानन्द सरस्वती जी महाराज*]

सहस्र युग पर्यन्त महर्यद ब्राह्मणो विदः।
रात्रिं युग सहस्रातां तेऽहोरात्रविदो जनाः।

(गीता)

सहस्र युग पर्यन्त ब्रह्मा का दिन होता है और इतनी ही रात्री होती है। यह बात दिन रात के ज्ञाता विद्वान् कहते हैं।

इस गणना का मूल चार युगों की कल्पना है। कलियुग, द्वापर, त्रेता, कृतयुग। इन चारों युगों के वर्ष भी नियत हैं। यथा—

कलियुग चार लाख बत्तीस हजार वर्ष ४३२०००, द्वापर आठ लाख चौंसठ सहस्र ८६४०००, त्रेता बारह लाख छियानवे हजार १२९६०००, सत्ययुग सतरह लाख अठाईस हजार १७२८००० वर्ष। इस रीति से चतुर्युगी तेंतालीस लाख बीस हज़ार ४३२०००० वर्ष की होती है। अतः ७१ चतुर्युगों का मन्वन्तर होता है। अतः

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४३२०००० × ७१ = ३०६७२०००० तीस करोड़ सतसठ लाख बीस हज़ार वर्ष हुए। मन्वन्तर १४ होते हैं। इस लिये चौदह मन्वन्तरों के ३०६७२०००० × १४ = ४२९४०८०००० चार अरब उनतीस करोड़ चालीस लाख अस्सी हज़ार वर्ष हुए। १५ संधियां होती हैं। एक संधि सतरह लाख अठाईस सहस्र वर्षों १७२८००० की होने से पन्द्रह संधियों के दो करोड़ उनसठ लाख बीस हज़ार २५९२०००० वर्ष हुए। यदि संधियां और मन्वन्तरों को जोड़ें तो ४२९४०८००००+ २५९२००००=चार अरब बत्तीस करोड़ ४३२-००००००० वर्ष होते हैं।

७१ चतुर्युगों का मन्वन्तर और १४ मन्वंतर का सृष्टिकाल होता है। अतः ७१×१४=९९४ चतुर्युग हुए। १५ संधियों के ६ मन्वन्तर बनते हैं। इस प्रकार ९९४+६=१००० चतुर्युग हुए जो कि गीता में लिखे हैं। मनु जी भी लिखते हैं—

तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्य महर्विदुः ।
रात्रिं च तावतीमेव तेहोएत्रविदो जनाः ।
(मनु अध्याय १/७३)

अर्थात् दिन रात के जानने वाले विद्वान सहस्र युग का ब्रह्म दिन और उतनी ही रात जानते हैं।

अथर्ववेद में भी इस विषय में यह पाठ मिलता है—

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वेयुगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
(अथर्व ८।२।२१)

अर्थात् सृष्टि काल की गणना के लिये सौ और दस हज़ार के बिन्दु लगा कर आगे दो तीन चार लिखते हैं यथा ४३२००००००० । यही ऊपर लिखी गणना है।

यह है ज्योतिष वा काल गणना वालों की मर्यादा। धर्ममर्यादा इस से भिन्न है। वह ऐतरेय ब्राह्मण, मनुस्मृति, और महाभारत में लिखी है, वह इस प्रकार है—

कलिः शयानो भवति, सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥
(ऐतरेय ब्राह्मण ७।३।३)

अर्थात् सोना कलियुग है; जागना द्वापर है। खड़ा होना त्रेता और काम करना कृतयुग है।

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम् ।
कर्मस्त्रम्युद्यतस्त्रता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥
(मनु० ९ ३०२)

सोना कलियुग है जागना द्वापर है। कर्म करने का यत्न करना किन्तु उस पर दृढ़ रहना त्रेता और उद्यम से काम करना ही सत्य-युग है।

महाभारत शांति पर्व में निम्न पाठ है—

दण्डनीत्यां यदाराजा सम्यक्कात् येन वर्तते ।
तदा कृतयुगं नाम कालसृष्टं प्रवर्तते ॥
(महा० शां० अ० ६९।८०

जब राजा पूरी रीति से दण्ड प्रयोग करता है तब ही काल क्रम से सत्ययुग प्रवर्तित हुआ करता है।

दण्ड नीत्यां पदाराजा जीतं शानुवर्तते।
चतुर्थम् शमुत्सृज्य तदा त्रेता प्रवर्तते ॥
(महा० ६९।८७)

जब राजा पूर्ण रीति से प्रवृत न होकर दण्ड रीति के चतुर्थांश को त्याग करके उसके तीन भागों का पालन करता है। तब ही त्रेता युग प्रवृत होता है।

अर्धं त्यक्त्वा यदा राजा नीत्यधर्मनुवर्तते ।
ततस्तु द्वापरं नाम स कालः सम्प्रवर्तते ॥
महा० शां ६९।८९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जब राजा दण्ड नीतिका अर्ध भाग त्याग कर अर्ध का पालन करता है, तब द्वापर नाम-युग उत्पन्न होता है।

दण्डनीतिं परित्यज्य यदा कार्त्स्न्येन भूमिपः।
प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तेत तदा कलिः॥
महा शां० ६६९१

जब राजा दण्ड नीति को छोड़ कर अयुक्त उपाय से प्रजा को पीड़ित करता है तब कलियुग प्रवृत्त होता है।

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च भरतर्षभ।
राजवृत्तानि सर्वाणि राजैव युगमुच्यते॥
महा० शांति० ६९।६

हे युधिष्ठर! सत्य युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये सब ही राज वृत्त हैं, इस से राजा ही युग रूप से कहा जाता है।

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च भरतर्षभ।
राजमूला इति मतिर्मम नास्त्यत्र संशयः॥
महा शा० १३९।१०

सतयुग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग का मूल राजा ही है। हे युधिष्ठर! इस में मुझे कोई संशय नहीं है।

ऐतरेय ब्राह्मण और मनु जी के सोने जागने आदि शब्दों की व्याख्या महाभारत में करदी गई है। भीषम जी कहते हैं! जब राजा दण्ड का पालन करता है तब सत्ययुग होता है, जब चौथाई भाग त्याग कर तीन चौथाई न्याय का पालन करता है तब त्रेता हो जाता है, जब आधो-आध होता है तब द्वापर हो जाता है। जब राजा न्याय नीति को छोड़ कर प्रजा पीड़क हो जाता है तब कलियुग की उत्पति होती है।

इस प्रकार जो सालों का हिसाब है वह इतिहास वा समय गणना के आधार पर है और जो ऐतरेय ब्राह्मण, मनुस्मृति और महाभारत का वर्णन है वह धर्म की दृष्टि से है और उस धर्म में राजा को ही मूल कारण माना गया है। इसलिये लोगों को समय गणना के काल चक्र को अपने दोषों का कारण न मान कर दूसरे धर्म विषयक लेख को मान कर राजा को वा अपने आप को पाप का कारण मानना चाहिये। यही उचित और युक्ति युक्त है। महर्षि दयानन्द जी ने अपने बनाये व्यवहार भानु नामक ग्रंथ में ऐसा ही लिखा है।

मस्तिष्क और बाहु के सहयोग में राष्ट्र श्री निहित है

[श्रीमान् आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी पंचवटी नासिक]

मनुष्य में जहां मस्तिष्क है वहां बाहु भी है। मस्तिष्क ज्ञान के लिए है और बाहु रक्षा के लिये। मस्तिष्क ज्ञान का प्रति रूप है और बाहु बल का। दोनों का ही शरीर में अपना अपना उपयोग है। शरीर के लिये इन की उपयोगिता प्रत्यक्ष सिद्ध है। यदि मस्तिष्क न हो तो हम एक क्षण भी किसी चीज़ के जानने बूझने और निर्णय में समर्थ न हों। परन्तु यह रहे और बाहु बल न हो, तो बड़ी ही कठिन समस्या उपस्थित हो सकती है। ऐसी अवस्था में हमारे शरीर की रक्षा भी कठिन हो जाये परन्तु इन दोनों के रहते हुये भी यदि इन में परस्पर सहयोग नहीं तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कार्य और भी अधिक बिगड़ सकता है। केवल मास्तिष्क क्या कर सकता है यदि बाहु कमज़ोर है। मस्तिष्क की ताकत का ठप्पा भी लोगों पर बाहु बल से बैठाना पड़ता है। राजपूतों में बाहु बल तो था परन्तु मस्तिष्क नहीं था इस का दुरपरिणाम सामने आया। आजकल बाहु बल की कमी है। सभी उपदेश तो देते हैं परन्तु क्षात्र धर्म से देश विहीन सा हो रहा है। महाभारत दोनों के सहयोग का उदाहरण है। वह एक महान् वृत्तहर भारत की स्थापना का युद्ध था। वहां पर कृष्ण के मस्तिष्क और अर्जुन आदि के बाहुबल का सहयोग था। हमारे शरीर में जैसे दोनों की अवश्यकता है वैसे ही राष्ट्र या समाज में भी इन की अत्यन्त अवश्यकता है। राष्ट्र का मस्तिष्क वैदिक भाषा में ब्राह्मण वर्ग है और उस का बाहुबल क्षात्र वर्ग है। किसी राष्ट्र या समाज में केवल वैज्ञानिक क्षात्र वर्ग=सैन्य के बिना राष्ट्र वा समाज को समुन्नत नहीं कर सकते हैं। केवल सैन्य शक्ति वैज्ञानिक वर्ग के बिना सामर्थ्यहीन है। राष्ट्र के जनसमुदाय को वेद ने चार भागों में बांटा है। ब्रह्मण=बुद्धि जीवी वर्ग, क्षत्रिय=सैन्य वर्ग, वैश्य=व्यापारी और शूद्र श्रमिकवर्ग। ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य और शूद्र इन्हीं के परिभावक शब्द हैं। ब्राह्मण राष्ट्र का मस्तिष्क है, वह सारी अभ्यन्तर और बाह्य नीति को अपने हाथ में रखता है। कहा गया क्षत्रि उस के अनुसार रक्षा के सूत्र को संचालित करता है। वेद में क्षत्रिय को बाहु कहा गया है जो रक्षा (Defence) का प्रति रूप है। इंगलिश के Arm और Army शब्द भी इस आर्थ की सन्निकटता के द्योतक है।

अस्तु! राष्ट्र का कल्याण इसी में है कि मास्तिष्क और बाहु का समन्वय हो। अन्यथा राष्ट्र चमक नहीं सकेगा। आर्यों की राजनीति का यह मूलसूत्र रहा और सारी नीति इसी पर आधारित थी। यही कारण है कि आर्य जाति ने कभी भी कहीं पर मुंह की नहीं खायी। अनेकों कठिनाइयां मार्ग में आयीं विविध परिवर्तन हुये परंतु आर्यों के राजशासन में कोई अव्यवस्था नहीं आपाती। मस्तिष्क बढ़ने पर वास्तव में आकाशीय उड़ान बहुत बढ़ जाति है और कभी २ उल्टे मार्ग पर चले जाने पर केवल मनोवेग के बढ़ जाने से कर्त्तव्य हीनता राष्ट्र में आ जाती है। केवल बाहुबल बढ़ जाने पर मस्तिष्क को भी कभी २ नीचे दब जाना पढ़ता है। बाहुबल की उद्दामता राष्ट्र में निरंकुशता पैदा कर देती है। कल्याण इसी में है कि बाहु मस्तिष्क के नीचे रह कर कार्य करे। मनु की राजनीति को हम यदि देखें तो उससे हमें बड़ी प्रेरणा इस विषय में मिलती है। लोग कहते हैं कि वह पुरानी हो गयी परन्तु उन को नहीं मालूम की वह इन नवीन नीतियों की जननी है और नवीन समस्यावों का समाधान भी उस में निहित है। मनु० ६।३२१ में बतलाया गया है कि—नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाऽक्षत्रं ब्रह्मवर्धते। ब्रह्म क्षचञ्च सम्पृक्तमिह चामुत्र वर्धते॥ अर्थात् क्षात्रशक्ति ब्राह्म शक्ति के बिना समृद्धि को नहीं प्राप्त होती और न क्षात्रशक्ति के बिना ब्रह्म शक्ति ही कृतकार्य होती है। दोनों मिलकर ही इस और उस लोक में समृद्ध होते हैं। शास्त्रानुशील व्यसनियों से यह छिपा नहीं है कि जो कुछ मनु जी कहते हैं वह औषधिरूप ही होता है। यहां पर भी उसी प्रकार यदि समझ लिया जावे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तो कितनी उपयोगिता पूर्ण शिक्षा हमारे लिये निकल आती है। यह भूत भविष्यत् और वर्तमान सब में हमारे लिये उत्तम मार्ग दिखलाने वाली हो सकती है। इस में सन्देह नहीं कि मनु सदा ओषधिरूप ही उपदेश दिया करते थे। आज फस्लों की रक्षा के लिये टिड्डीदल को घातक समझा जा रहा। सर्वत्र उन के हटाने का प्रयत्न जनता और सरकार की तरफ से होता है। मनु ने और हमारे अन्य नीति कारों ने राज्य के लिये छः आपदों में "शलभों" टिड्डियों को भी गिनाया है। विधानशास्त्र का तो मूल ही मनु से जमा। परन्तु विचारने की बात यह है कि मनु यह बातें कहां से कह रहे हैं। मनु का आधार वेद है। मनु वही कहते हैं जो वेद से उन्हें प्राप्त हुआ है। मनु के कितने श्लोक तो वेदों के मन्त्रों की शिक्षा को ज्यों की त्यों दिखलाते हैं। यहां भी मनु की इस शिक्षा का मूल यजुर्वेद ३६।३० का मन्त्र है। मन्त्र इस प्रकार है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥

अर्थात् जहां पर ब्रह्मतेज और क्षात्र बल अभिन्न हो कर सहयोग से कार्यों में जुटते हैं वहां राष्ट्र, पवित्र विज्ञान आदि से सम्पन्न और तेजस्वी होता है।

वर्तमान समय में लोग वेदों से विमुख होते जा रहे हैं। यदि वे इन से शिक्षा ग्रहण करें तो अपना और अपने राष्ट्र का कल्याण कर सकते हैं। वेद की सभी शिक्षायें सारभूत हैं। उन पर चलने से ही मानव सुख शान्ति का जीवन व्यतीत कर सकता है।

सन्तति निरोध

[श्रीमान् पं० विश्वनाथ जी आर्य्योपदेशक]

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुप्रजा सुभगांकृणु।
दशास्यां प्रजानाधेहि पतिमे का दशं कृधि॥
(ऋ० १०।८५।४५)

हे बल सम्पन्न गृहस्थी! तु अपनी इस स्त्री को उत्तम सन्तान, तथा सौभाग्य से प्रबल बना। इस में दस सन्तानों को उत्पन्न कर, ग्यारहवां इस का पति होगा।

इस वेदमन्त्र में १० सन्तान और ग्यारहवां पति कह कर १० तक सन्तान की सीमा कर दी है। यदि वेद मर्यादानुसार कोई २५ वर्ष गृहस्थ भोग करे, तो सन्तान होने पर एक वर्ष संयम की विधि से २॥ वर्ष के पश्चात् दूसरा बालक उत्पन्न होगा और स्वाभाविक ही १० से अधिक संख्या सन्तति की न होगी। इस वेदाज्ञान के अनुसार किसी भी गृहस्थी को दस से अधिक सन्तान उत्पन्न न करनी चाहिये। देश कालानुसार कमी जितनी चाहे कर ले। धर्म शास्त्र की दृष्टि से तो "चतुर्थे ब्रह्मचारी स्याद्गृहे तिष्ठन्न विस्मतः" चार सन्तान हो जाने पर इसे ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिये।

किसी भी देश की अन्न की उपज के साथ वहां की जन संख्या का विशेष सम्बन्ध होता है। "अन्नाद भवन्ति भूतानि" अन्न ही से मनुष्य आदि प्राणियों की स्थिति होती है। इस नियम को हमारे ऋषि भी जानते थे। अतएव उन्होंने नियम बनाये—अन्नं बहु कुर्यात्=अन्न बहुत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्पन्न करो, अन्नं न निन्द्यात्=अन्न का अपमान करते हुए उसे नष्ट न करो "अन्नं न परिचक्षीत" अन्न जूठा न रहने दो, हर प्रकार से उस की रक्षा करो।

अधिक सन्तान कोई भी नहीं चाहता परन्तु अपनी काम चेष्टा से पराभूत हो कर इस अनिष्ट बहु सन्तति के बोझ को लाचार हो कर उठाना पड़ता है। परन्तु सृष्टि नियम तो किसी अनिष्ट को सहन नहीं करते। अतः जब अन्न की उपज की अपेक्षा जन संख्या बढ़ जाती है तो प्रकृति नियम को युद्ध महामारी अथवा दुर्भिक्षों द्वारा इस में समता करनी पड़ती है। मनु जी ने इस का अन्य प्रकार से भी वर्णन किया है।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्य पूजा व्यति क्रमात्।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

जहां अपूज्यों की पूजा होती है परन्तु पूज्यों को कोई पूछता भी नहीं, वहां दुर्भिक्ष, मृत्यु और भय प्रजा के नाश का कारण होते हैं। यदि देखा जावे तो अवांच्छित सन्तान का होना भी अपूज्यों की पूजा है। वांच्छित सन्तान का तो पालन पोषण भी अच्छी प्रकार से होता है और अवांच्छित बेचारे बिन बुलाये अतिथि होते हैं।

दुर्भिक्षों का वर्णन संसार के सब इतिहासों में है परन्तु जब वर्षा हो कर अन्न उत्पन्न हो जाता (समता तो पहले ही दुर्भिक्ष से उत्पन्न हो जाती थी) तो लोग इन्हें भूल जाते और उपाय की चिन्ता ही नहीं करते। मुसलमान इतिहासकारों ने इस का कहीं २ वर्णन किया है। अकबर के समय के दुर्भिक्ष का, दरबारेअकबरी नाम की पुस्तक के पृ० ४२५ पर इस प्रकार वर्णन हुआ है।

"दुर्भिक्ष की विपत्ति आई लोगों की दुरवस्था देखी न जाती थी। सहस्रों मनुष्य भूकों मरते थे और मानव को मानव खाये जाता था।"

अंगरेजों के समय जो भारत में दुर्भिक्ष पड़े, कुछ का वृत्तान्त श्रीराम जी ने प्रताप ७-११-४६ में इस प्रकार दिया है:—

पहला	दुर्भिक्ष सन्	१८६०-६१ ई० में पड़ा	२	करोड़	मनुष्य	मरे
दूसरा	,,	१८६५-६७	५	,,	,,	,,
तीसरा	,,	१८६८-७०	४॥	,,	,,	,,
चौथा	,,	१८७३-७४	२	,,	,,	,,
पांचवां	,,	१८७६-७७	६	,,	,,	,,
छटा	,,	१८६६-६७	७	,,	,,	,,
सातवां	,,	१८६६-१६००	६	,,	,,	,,
योग ७	,,	१८६० से १६०० ई०	३२॥	,,		

सन् १८६६-१६०० का दुर्भिक्ष मैंने स्वयं देखा था, पंजाब में दुर्भिक्ष न था। बेकानीर का प्रान्त तो विनष्ट हो गया था। लाखों मनुष्य पंजाब में आ गये और हम लोग घरों से आटा चावल, दाल आदि इकत्र कर के उन को देते थे।

तत्पश्चात् पंजाब में नहरें चलने लगीं और अन्न का बाहुला हो गया। यातायात का प्रबन्ध भी अच्छा था। अतएव १६४३ तक अन्न का कोई संकट न था। १६४२ में बंगाल में युद्ध के कारण दुर्भिक्ष पड़ा और ३० लाख मनुष्य मर गये। १६४४ में पहले पहल अन्न की कमी अनुभव हुई और विदेश से ६४६ टन मंगवाना पड़ा। ४५ में ८५० टन, ४६ में २२५० टन, ४७ में २३३० टन और ४८ में २८४० टन। अन्न बाहर से मंगवाया गया।

यह स्पष्ट है कि अन्न का विशेष प्रान्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाकिस्तान में चला गया और जन संख्या बढ़ गई, अतएव अन्न का संकट उत्पन्न हो गया। यदि विदेश से अन्न न मंगवाया जाये तो फिर दुर्भिक्ष पड़ने लगें और करोड़ों मनुष्य मरें। भारत सरकार की ओर से पड़ती की भूमि में अनाज उपजाने तथा जल सिंचाई का भी प्रबन्ध किया जा रहा है। इस से कुछ काल दुर्भिक्ष रुकेगा परन्तु पुनः वही समस्या सन्मुख उपस्थित होगी, क्योंकि भारत की जन संख्या बढ़ जाने के कारण उत्पत्ति की संख्या भी बढ़ रही है। इस लिये इस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

अमेरिका, केनेडा, अर्जेनटाइन, रूस, आस्ट्रेलिया में भूमि के क्षेत्र बहुत अधिक हैं, परन्तु जन संख्या बहुत कम है, अतएव इस के बढ़ाने का यत्न किया जाता है। ४ से अधिक बालकों के उत्पन्न करने पर पुरस्कार और मासिक सहायता दी जाती है तो भी अमेरिका के संयुक्त राज्य में प्रति वर्ष प्रति सहस्र मनुष्यों पर १७ की उत्पत्ति तथा १० की मृत्यु होती है। इस प्रकार ७ प्रति सहस्र वर्ष में वृद्धि होती है। इंगलैंड में तो १५ की उत्पत्ति और १२ की मृत्यु हो कर केवल ३ की वृद्धि होती है, परन्तु भारत में ३३ प्रति सहस्र उत्पत्ति और २४ की मृत्यु हो कर ६ की वृद्धि होती है। १० वर्ष के पीछे प्रति सहस्र ६० की जन संख्या बढ़ जाती है। विभक्त भारत की जन संख्या अनुमान से ३३ करोड़ है। अतः अब इस में २८८०००००० की वृद्धि हो कर जन संख्या ३६ करोड़ के लगभग हो जावेगी और इस से अन्न का सङ्कट बढ़ता ही जावेगा।

अन्न उत्पन्न होगा कि जब योरुप और अमेरिका में विलासिता का अधिक्य वर्णन किया जाता है तो उत्पत्ति क्यों कम है? इस का उत्तर यह है कि वहां पर विवाह बड़ी आयु में होते हैं। यद्यपि १५ वर्ष की आयु में कन्या का विवाह वैध है, तथापि २० वर्ष से पूर्व न्यून संख्या में ही विवाह होते हैं। दूसरे सहवास के लिये वहां स्त्री की इच्छा मुख्य होती है, और वह अधिक सन्तान को पालन पोषण, स्वास्थ्य और सौन्दर्य की दृष्टि से घृणित समझती हैं अतः भारत से सहवास मात्रा कम होती है, और सन्तति निरोध के उपायों का भी वहां अधिक प्रचार है।

भारत में भी हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में उत्पत्ति अधिक है। इस का कारण विधवाओं का न होना है क्योंकि उन में तो १० बच्चों की माता भी विधवा हो जावे तो वह दूसरा विवाह करा लेती है और इसे अगर्हित ही नहीं प्रत्युत प्रशंसनीय समझा जाता है। बहु-विवाह भी संख्या के बढ़ाने का कारण हैं। आज से ६० वर्ष पूर्व पञ्जाब और बङ्गाल में मुसलमानों की संख्या कम थी परन्तु १९४१ में वह बढ़ गये और पाकिस्तान का कारण बने। भारत में भी उन की संख्या बढ़ती जावेगी। जब भी वह संख्या में अधिक हुए, यह असम्प्रदायक राज्य समाप्त हो जावेगा। भारत का राज्य इस्लामी राज्य होगा और हिन्दुओं से वही बरताव होगा जो अब पाकिस्तान में हुआ और हो रहा है। ईरान और अरब की भान्ति भारत में भी कोई हिन्दू दृष्टिगोचर न होगा।

अब प्रश्न होगा कि इस अन्न के संकट और इसलामी राज्य से बचने का उपाय क्या है? मेरे विचार में इस का पहला उपाय सब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारतियों के लिये बहुविवाह निषेध का विधान है। हिन्दुओं के लिये यह विधान हो, मुसलमानों के लिये न हो, इस से तो और भी हानि होगी। दूसरा उपाय है १६ वर्ष से कम कन्या और २५ वर्ष से पूर्व बालक के विवाह का निषेधात्मक विधान। शारदा एकट का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा और न आगे पड़ेगा। आर्यसमाज के प्रचार से पञ्जाब में तो यह रोग कम हो गया, परन्तु मैं यहां यू० पी० में देख रहा हूं कि ५-५ वर्ष के बालकों के विवाह पूर्ववत् हो रहे हैं। तीसरा है शुद्धि। भारत के सब मुसलमान हिन्दुओं की जातियों से हैं। अतएव उन्हें विवश करने की आवश्यकता नहीं। प्रेम पूर्वक समझाने से वह शीघ्र ही वैदिक धर्म में वापस आ सकते हैं। इस के लिये प्रबल आयोजन तथा आन्दोलन की आवश्यकता है। इस प्रकार हम भारत वर्ष को अन्न के संकट तथा प्राचीन संस्कृति के नाश होने से बचा सकते हैं और सन्तति निरोध का सर्वोत्तम उपाय तो ब्रह्मचर्य पूर्वक ऋतु गमन का नियम ही है। यदि यह असम्भव हो तो कृत्रिम उपायों को छोड़ कर एक जर्मन और जापानी वैद्य के अनुसन्धान के अनुसार ऋतु काल के ६ दिन से २५ दिन तक गर्भ स्थिति की सम्भावना होती है, अतः इन दिनों में सहवास छोड़ देना चाहिये। इस से आवश्यकता से अधिक सन्तान न होगी।

[सन्तति निरोध के कृत्रिम, अस्वाभाविक साधनों के आविष्कारक पश्चिम को भी इन उपायों की अनिष्टकारिता का बोध होने लगा। शारीरिक एवं मानसिक विकारों की वृद्धि से वहां के लोक नेता चौंक उठे हैं। स्वाभाविक उपाय—ब्रह्मचर्य—के, वैज्ञानिक रीति से प्रचार की आवश्यकता है। लोगों में ब्रह्मचर्य भावना का प्रबल प्रचार किये बिना सन्तति-समस्या एवं उस का फल स्वरूप खाद्य-समस्या भयङ्कर रूप धारण करेंगे। वेद इन समस्याओं का समाधान 'कृषि-मित्कृषस्व=खेती अवश्य कर तथा 'सुयमं जास्पत्य-मस्तु'=दाम्पत्य, पति पत्नी का सन्तानोत्पादन व्यवहार सुनियन्त्रित होना चाहिये। ये दो उपाय अमोघ हैं। इन के प्रचार और व्यवहार के बिना ये समस्याएं विकट से विकटतर होती चली जाएंगी। —सम्पादक]

वेदों पर श्री पुरुषोत्तमदास टंडन जी का प्रहार

वेदों में गौ को अवर्णनीय दुर्दशा की है !

[*लेखक श्रीमान् पं० जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ*, वनस्थली विद्यापीठ जयपुर]

'वनस्थली विद्यापीठ' श्री पं० हीरालाल जी शास्त्री (वर्तमान मुख्य मन्त्री संयुक्त राजस्थान) के द्वारा प्रणीत कन्या-कालेज है। इस का लक्ष्य महिला समाज में उच्च शिक्षण, और उदात्त भावना, देश सेवा और लोक सेवा के भाव जागृत करना है। वह अपनी एक अद्वितीय परम्परा पर चल रही है। प्रति वर्ष वहां का वार्षिकोत्सव देश के किसी प्रसिद्ध महा पुरुष के सभापतित्व में मनाया जाता है। इस वर्ष १६५० का वार्षिकोत्सव ६ नवम्बर १६५० को श्री

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुरुषोत्तमदास टंडन जी (वर्तमान सभापति अ० भा० कांग्रस) के सभापतित्व में मनाया गया था।

सभापतिपद से दीक्षान्त-भाषण करते हुए श्री टंडनजी ने हिन्दू समाज में बहुत सी रूढ़ियों की आलोचना करते हुए उन अंध विश्वासों को मूढ़ग्राह कहा। जैसे रोगों को दूर करने के लिए लोग मन्त्र जाप कराते हैं देवी, देवता पर पूजा चड़ाते हैं इत्यादि। इसी प्रसंग में श्री टंडनजी ने यहां तक कह डाला कि—"वेदों में गौ की ऐसी दुर्दशा की है जिसका यहां वर्णन नहीं करना चाहता।"

मैं तथा मेरे अन्य अनेक सनातनी व आर्य भाइयों को यह बात सुन कर बहुत आघात लगा अनेकों ने तो जिज्ञासा से ही मेरे से पूछा कि क्या सचमुच वेदों में ऐसी गौ की दुर्दशा है जिस का जिह्वा से वर्णन नहीं हो सकता। मैं प्रश्न सुन कर स्वयं अवाक था।

मेरे चित में थोड़ा सा भी सन्देह नहीं था कि वेदों में गौ के सम्बन्ध में जितनी उच्च भावना है वैसी भावना इस भूमि के तख्ते पर किसी सभ्यता और किसी देश में, न प्राचीन काल में और न अर्वाचीन काल में मिल सकती है। मैंने उन को उत्तर दिया कि टंडनजी का यह विचार और कथन उन का 'मूढ़ग्राह' ही कहा जा सकता है।

बाद में मुझे पता चला कि राजर्षि टंडनजी इस सम्बन्ध में इतने उथले पानी में हैं कि उन को प्राचीन ऋषियों का तिल भर भी ज्ञान नहीं है। वे स्वयं राधास्वामी मत में हैं जिसमें गुरु के प्रसाद से बेटा बेटी पाये जाते हैं, गुरु का जूठन चाटते हैं इत्यादि वे दूसरों के मूढ़ग्राह की बात करते हैं, मुझे विस्मय हुआ।

प्रसंगान्तर में न जाकर केवल वेदों के सम्बन्ध की बात कहता हूँ—कि—वेदों में गौ और गौ के किसी पर्याय शब्द से भी गौ के प्रति अनादर का भान या गौ को पीड़ा देने उस का मांस खाने के सम्बन्ध में एक भी वाक्य नहीं कहा गया है। गौ का पालन करने की सब से पहली आवाज़ वेद में उठाई गई है। और उसे 'अघ्न्या' कभी न मारने योग्य कहा गया है।

गोपतौस्यात वह्वीः। यजुर्वेद अ० १। मं० १॥

आप्यायध्वमघ्न्याः। यजु० १ १॥

हे न मारने योग्य गौवो तुम खूब पुष्ट होवो।

उन गौवों पर इतना ध्यान दिया गया है कि उन को राज यक्ष्मा न सतावे, उन के बच्छे न मरें उन को चोर लुटेरे न सतावें, और पाप हत्या आदि की बात करने वाले उन के स्वामी न हों।

प्रजापतीः अनमीवः अयक्ष्मा। मा व स्तेनईशत माघशंसः। यजु० १।१।

और वे गोपाल के पास स्थिर रूप से रहें।

ध्रुवा अस्मिन् गोपतौस्यात। यजु० १।१॥

यह यजुर्वेद का पहला मन्त्र है जिस में गौ के लिये कितने महत्व की बातें कह दी हैं, क्या किसी भी ग्रन्थ में, किसी भी धर्म ग्रन्थ में किसी भी उपदेश ग्रन्थ में सब से पहले गौ के सम्बन्ध में इतनी बातें एक साथ बतलाई गई हैं।

लेख को समाप्त करने के पहले ५।७ उद्धरण वेद के देना आवश्यक हैं जिस से वेद के वचनों की दृष्टि में गौ का महत्वपूर्ण स्थान पाठकों को ज्ञात होगा।

(२) यजुर्वेद (३।२२) संहितासि विश्वरूपी। ऊर्जा माविश गौवत्येन। हे गौ तू विश्व की एक रूप है, उत्तम भोजन से तू मुझे प्राप्त हो। मैं गोपति होने का भाग्य प्राप्त करूं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कालिदास ने तो पृथ्वी को समुद्र रूप ४ स्तनों वाली गौ कहा है परन्तु वेद की दृष्टि में समस्त संसार ही गौ का रूप है। इस लिये वेद ने रूप, रश्मि, मेघ, पृथ्वी, वाणी, और यज्ञ सब को गौ कहा है। और स्थान २ पर उन का अनेक सुख प्रद रस देते हुए उन का गौ रूप स्पष्ट किया है। ऋषियों ने सर्वत्र ही वेद ज्ञान द्वारा पवित्र गौ के विश्वरूप दर्शन किये हैं।

(३) (३१ अध्याय मन्त्र ८)

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृत पृषदाज्यम्।
......................गावो ह जज्ञिरे तस्मात्॥

समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले यज्ञ से पृषद् आज्य उत्पन्न हुआ। गौएं भी उस से उत्पन्न हुई।

पूर्व मन्त्र में उस महान यज्ञ से वेदों की उत्पत्ति कही है, उसी से गौवों की उत्पत्ति लिखी है फलतः गौएं वेद की दृष्टि में ईश्वरीय पवित्र देन हैं जिस से पोषक तत्वघृत आदि मिलते हैं।

(४) ऋ० ८।१०१।१५॥

माता रुद्रनां दुहिता वसूनां स्वसादित्याना ममृतस्य नाभिः।
प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मागाम् अनागां अदिति वधिष्ट॥

गौ रुद्रों (दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुषों की माता व वसुओं, गृहस्थ वसाकर रहने वाले लोगों की कन्या के समान प्रिय एवं कृपा पात्र है, आदित्यों, विद्वान् ज्ञानी पुरुषों की बहिन के समान मंगल कामना करने योग्य है। मैं (वेद) जानकार आदमी को बलपूर्वक बतला रहा हूं कि गौ एक निरपराध प्राणी है उस की हिंसा मत किया करो।

संसार में कोई भी ऐसी उच्चतम सभ्यता है जो कहती हो कि अमुक पशु को इसलिये मत मारो कि वह बेकसूर है। तब स्पष्ट है कि जो देश प्राणियों को या गाय को मार कर खाते हैं वे उस के भोलेपन और निरपराध होने का ही उसे दण्ड देकर कितने क्रूर हैं। अंग्रेजों के जमाने में यह सेनाओं के लिये घोर गोवध भारत के सिर पर आ चढ़ा है जिस का अन्त अभी कांग्रेसी सरकार आ जाने पर भी स्वराज्य में नहीं हो सका है। शायद गौ भक्षक मुसलमानों को प्रसन्न रखने का इस में भी कोई राज है। उस कांग्रेस के सभापति श्री टंडनजी गाय की दुर्दशा वर्तमान सरकार के कमजोर दिल के कोने में न देख कर वेद में होने का प्रचार कर रहे हैं। अपार अहिंसा की मूर्ति श्री म० गान्धी भी गाय पर अभी इतने कृपालु न हुए थे कि ऊपर लिखी वाणी का पालन कर के, निरपराध गौ की हिंसा रुकवा सकते। फिर टंडनजी ही क्या कर सकेंगे जिन की दृष्टि में गौ का दूध भी पीना उचित नहीं। समझ नहीं आता कि वे गौमाता का दूध न पिएंगे तो क्या दूसरा उपयोग लेंगे? वेद ने ही सब से पहले गौ को माता कहा है, गौ को बहिन कहा है। इस से बड़ा मान और क्या हो सकता है?

(५) गौ का वास्तविक नाम "अघ्न्य" है वह मारने लायक नहीं है। वेद में अघ्न्या शब्द गौ के लिये २५–३० से अधिक बार आया है। सब से महत्व की बात यह है कि जैसे हिन्दू जगत् गंगाजली, गीता शालिग्राम की बटिया, शिवलिंग, आदि हाथ में लेकर शपथ करता है, वेद में 'अघ्न्या' यह गौ का नाम लेकर शपथ लेने को कहा है, वैसे करने से वह पाप से और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दण्ड से छूट सकता है।

यदापो अध्न्या इति वरुणेति शपामहे।

जतो वरुण नो मुञ्च॥ यजु० २०।१८॥

इस प्रकार वेद की दृष्टि में गौ को गंगाजल और इष्टदेव का स्थान प्राप्त है। इस से ऊंचा स्थान इस लोक में दूसरा हो ही नहीं सकता। परन्तु टंडनजी को इस का ज्ञान न होने से शायद अंग्रेजों की पढ़ाई पट्टी का मूढ़ग्राह सता रहा है।

(६) अब लीजिये वेद के छोटे २ वाक्य-

मधुः दुहे धेनुः सरस्वती (यजु० २०।६४)

सरस्वती गौ मधुररस प्रदान करती है।

शिशुमती धेनुः भिषग् (यजु० २१।३३)

बच्चे वाली गाय पूरा वैद्य है। इस के घर रहते दूसरे डाक्टर की आवश्यकता नहीं है। इसका विवरण किसी वैद्य डाक्टर को करना चाहिये।

गां माहिंसीरदितिं विराजम्। य० १३।४३॥

गौ अदिती है वह नाश करने काटने लायक नहीं है उसे मत मार। ओ! मारने वाले मत मार।

विमुच्यध्वमध्न्याः देवयानाः। य०१२।७३॥

देव मार्ग में गमन करने वाली इन गौओं को खुली छूट देदो, जहां चाहें विचारें खाएं पीएं।

कामं कामदुघे धुक्ष्व। य० १२।७२।

हे! कामधेनु सब की इच्छा अपना रस दे कर पूर्ण कर।

(७) १३ वें अध्याय में गौ, अश्व, बकरी, भेड़ आदि सभी उपयोगी जन्तुओं को मारने का सर्वथा निषेध है। यदि वेद का शासन हो तो समस्त जीव जगत् सुखी हो सकता है। उस सर्वोच्च वेद पर श्री टंडनजी का प्रहार है कि में गौ की दुर्दशा है। अभी ऐसे १०० प्रमाण और लिखे जा सकते हैं परन्तु यह दिग्दर्शनमात्र है। वेद के मानने वालों को जाग जाना चाहिये, उन पर किस प्रकार के आक्रमण कौन कौन कब करते हैं? वे सावधान होकर धर्म ग्रन्थों की रक्षा करें। उनको निष्प्रयोजन बदनाम करने वाले बहुत हैं।

मध्यकाल में जब शाक्तों और राक्षसों का विशेष प्राबल्य रहा तब भारतीय साहित्य में बहुत गंदगी आ घुसी है। हमें उस से भी सावधान हो जाना चाहिये। उसका दिग्दर्शन विभूति ने थोड़ासा अपने नाटक 'उत्तर राम चरित्र' में दिखलाया है, यह वाममार्गियों की लीला का फल है। परन्तु वेद में वैसी कहीं कोई बात नहीं है। (उद्धृत)

मानस तरङ्ग

[लेखक—आ० श्री भूषण चैतन्य शास्त्री, साहित्याचार्य लुधियाना]

[चतुर्थ उछ्वास]

"अग्न आयाहि........,,!

मानवता का पूजारी मानव जगत् में सर्वत्र सदा सत्य की प्रष्ठिा चाहता है। इस सत्यासत्य की समरस्थली में उस को विजयी होने के लिये एक नेता की आवश्यकता है। इस लिये, हे अग्निस्वरूप-परमात्मन्! आज से मैं तुझ को नेता के रूप में वरण करता हूँ। हे वरणीय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यथार्थ पथ के पथप्रदर्शक ! तू ही मेरा एक मात्र नेता है। "त्वमग्ने यज्ञानां होता" अग्नि ! तू विश्व के सर्वविध यज्ञों के होता है। इस लिये आ मेरे जीवन यज्ञ का होता बन "अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये नि होता सत्सि बर्हिषि" (सामवेद का प्रथम मन्त्र)

हे चिरज्योतिर्मय प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! आज अग्नि के रूप में आ, मेरी वाणी रूपी हवि को ग्रहण कर। मेरे यज्ञमय जीवन का तू होता है।

प्रभु जी ! मैं तेरे ही दरस का अभिलाषी,
ढूंढ रहा हूं कब से तुझ को (इस अनन्त पथ में)
होके सतत उदासी"
तू अनन्त जग का स्रष्टा, घट घट वासी,
अजर अमर, अचल, अनुपम, रवि-शशि-चिर प्रकाशी"

ब्रह्ममुहूर्त्त के अनन्तर प्राची दिशा में जब भानु नैश नीरवता को मिटाता हुआ उद्भासित हो उठता है, तब प्राणी जगत् निद्रा की अलसता को त्यागता हुआ जाग उठता है। तेरी अनन्त शक्ति से शक्ति शाली होकर सूर्य की किरणें विजय उल्लसित हो कर असीम जलधि वक्षस्थित तरंगमाला के ऊपर मन्द मन्द स्वर्गीय नृत्य करती हुईं, गगनचुम्बी उन्नत अनुन्नत रजत वर्ण विशिष्ट हिमाच्छादित शुभ्र शैलमाला के ऊपर आकाश गंगा का सौन्दर्य बढ़ाती हुईं, कानन, उपकाननस्थ तृण, गुल्म, लता, विटपियों के शिशिर शीकर सिक्त नव नव पत्र, पुष्प मञ्जरियों के उपर अलक्त वर्ण छटा से तुम्हारी चिन्मयता का सन्देश देती हुईं, प्रकृति जननी के प्रेमाश्रु के द्योतक (परिचायक) निरवधि झरने वाले तरलित चन्द्रिका चन्दन वर्णा झरना के वारिविन्दुओं में पारिजात पुष्पों की माला का रूप धारण करती हुई, शीत ऋतु के कुज्झटिकाच्छन्न ह्रद, तालाब, तड़ागस्थ जलराशि के उपरिभाग में शान्त तथा धीर वाष्प राशि में असीम जलधि गर्भ में प्रच्छन्न हीरा मुक्ताओं के भ्रम उत्पन्न करती हुई, वन उपवनस्थ वृक्ष पंक्तियों के पत्र पुष्पों के रिक्त मार्ग से मञ्जुल प्रकाश के रूप में मानो किसी खोई हुई वस्तु के अन्वेषण के तुल्य छन, छन, कर आगे बढ़ती हुई प्राणीयों के गमनागमन तथा निवास के स्थान में अवस्थित नानाव्याधि विस्तारक कीटाणुयों को शक्ति हीन करतो हुई, नाना भांति से अपवित्र हुए वायु में पवित्रता का संचार करती हुई, उष्णत्व लातीहुई, और पुष्पों के सुगन्ध वायु से सुगन्धित हो कर, मलय वायु के साथ मिल कर अस्थिर तथा अशान्त चित्त वाले सम्पन्न मानवों के हृदय में प्रति प्रातः स्थिरता एवं शान्ति उत्पन्न करती हुई, तेरे रचित विश्व यज्ञ को प्रति दिन सार्थक कर रही हैं। ओ विश्व यज्ञ के होता ! तू आ, और आकर मेरे जीवन यज्ञ को भी सफल बना मेरे यज्ञमय जीवन के कार्य तेरे बिना पूर्ण कैसे होंगे ? विलम्ब न कर अभी आजा। "अग्न आयाहि..."।

प्रकृति जननी के विस्तृत अञ्चल में स्थान पा कर एक दो नहीं कितने ही मानव अपने हृदय के असहनीय दुःखों को पल पल में भूल जाते हैं। जहां बैठने पर निराशा का अन्तर्धान और आशा का आधान होता है। प्रकृति यद्यपि जड़ है फिर भी चेतन जगत् के श्रेष्ठ प्राणी मानवों से ग्रहणीय अनेकानेक चैतन्य वर्द्धकः शिक्षाओं से ओतप्रोत है। जहां ऋषि, मुनि, योगी, ध्यानियों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के साधनानुभूत प्रकृत साधना का अति प्राचीन चित्ताकर्षक पवित्र स्थान रहा, वहां वर्तमान तथा आने वाले तरुण साधकों के लिये भी चित्ताकर्षक है। जहां वह पुरातन है, वहां नूतन भी प्रत्येक दृढ़प्रतिज्ञ मानव को वहां से कुछ न कुछ सदा अवश्य मिल ही जाता है। हे मेरे जीवन यज्ञ के होता। अग्नि स्वरूप परमात्मन्! मैं तुम्हारी साधना में कितने नगरों, उपनगरों तथा पल्लियो के वासी ज्ञानी, मानी, धनियों की वाणी सुन चुका हूं, किन्तु यह मूक प्रकृति अपने अस्फूट शब्दों से मुझे अपनी साधनों में अधिक सफल बना रही है। मानव जगत् के प्रेम का आस्वादन किया। उस प्रेम के अधिकांश भाग को वञ्चना, प्रतारणा, छल, कपटतामय पाया। वहां तो दिन रात्रि का भेद हैं? अन्धकार प्रकाश का भेद है, समय असमय का भेद है, निज पर का भेद है, स्त्री पुरुष का भेद है, धनी निर्धन का भेद है, स्वजातीय विजातीय का भेद है, सहवासी प्रवासी का भेद है, स्वदेशी परदेशी का भेद है! राजप्रसाद और झोंपड़ी का भेद है, शिक्षित अशिक्षित का भेद है, मेरे तेरे का भेद है। न जाने और भी कितने भेद हैं। किन्तु तेरी आज्ञा कारिणी चिर स्नेहमयी इस प्रकृति जननी के विशाल अञ्चल में सर्वविध इहलौकिक भेदों का अभाव है। यहां के चिन्तन से ही तुझ को पा सका। मैं ने अपने जीवन यज्ञ का होता तुझे हो निश्चय किया है। परन्तु एक बात है। हे अन्तर्यामिन्! तू तो सब कुछ जानता है, मैं जब तेरा ही हूँ तो इस संसार में मेरा और क्या रह गया? कुछ भी नहीं! मैं तेरे लिये हृदय मन्दिर को छोड़ कर और कोई विशेष मन्दिर नहीं बना सकूंगा। तू इस दिगन्त में व्याप्त सुनील स्वच्छ आकाश रूपी—महा मन्दिर का निर्माता है, ओ विश्वकर्मन् अग्ने! इस विशाल मन्दिर को चन्द्र सूर्य ग्रह, उपग्रह तथा बहुमूल्य नक्षत्र मालाओं के चित्रण कला की चातुरी का एक अद्वितीय उदाहरण हमारे सामने रख दिया है। निष्कपट मन रूपी आसन को छोड़ कर कोई अन्य आसन तेरे लिये नहीं देसकूंगा। जो विश्व शिल्पी अग्नि! तू इस स्वच्छन्द प्रकृति के आंगन में बिना हाथों के, नित्य प्रति मण्यायोग्य स्थानानुसार आसनों को सुसज्जिता कर रख देते हो, उषाकालीन सूर्य की अलक्त रश्मियों से च्छुरित. शिशिरबिन्दु दूर्वादल मानों नाना रत्नों से जटित बहुमूल्य आसन है। मैं अपनी सत्य तथा मधुर वाणी को छोड़ कर तुझे मधुपर्क के रूप में अपर कोई वस्तु न दे सकूंगा। अरे! तू तो रक्त, नील, शुभ्र आदि नाना विध कमल पुष्पों के अवर्णनीय पात्रों में, चन्दन कस्तूरी आदि से सुगन्धित मानव निर्मित मधुपर्क से शत सहस्त्र गुण अधिक मलय वायु प्रवाहित सूर्यालोक से आलोकित स्निग्ध-पुष्परेणु अच्छादित, अलिगुञ्जनों से मुखरित मूर्त्त श्रद्धा भक्ति, सुलक्षणा, विनयशीलसम्पन्न रमणियों की पवित्र हस्ताञ्जलियों का भ्रम उत्पन्न करने वाले अर्द्ध प्रस्फूटित पुष्प पत्रपुटों में चित्तविमोहक मधुपर्क का निर्माता है। ओ मेरे एक मात्र नेता! ओ मेरे जीवन यज्ञ के एक मात्र होता! मैं तेरा सत्कार कैसा करूँ? मेरा जीवन यज्ञ तेरे बिना सफल नहीं होगा। अतः "अग्न आयाहि.........................।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आराधना

[कवीन्द्र पं० सुधीन्द्र जी]

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

जीवन की इस लघु सरिता के
प्राण प्रवाहित तुम करते हो,
अपनी पावन अनुकम्पा से,
जीवमात्र का दुःख हरते हो।

विषम वेदना होने पर तुम
सुख की वृष्टि किया करते हो,
सर्वोत्पादक ! पापविमोचन,
भवभय हारिन ! प्राण रूप हो।

शुद्ध रूप का भक्त उपासक मैं
ध्याता, आराध्य तुम्हीं हो,
प्रज्ञा प्रेरक ! हृदयोद्धारक !
शुद्ध बुद्धि दाता तुम ही हो।

पुण्य कार्यहित मेधा याचक,
भक्तमात्र तारक तुम ही हो।

* आचमन मन्त्र *

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥

अन्तर्यामिन् ! सर्व प्रकाशक,
पूर्णानन्द प्रदायक तुम हो ;
मन वांच्छित सुख तृप्ति विधायक,
सृष्टि सार सर्वस्व तुम्हीं हो।

मनस्तुष्टि, ऐश्वर्य प्राप्ति हित
सुख की वृष्टि किया करते हो,
शाश्वत सुख चहुं दिशि बरसा दो,
देव ! सुधा के बिन्दु तुम्हीं हो।

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः । ओं चक्षु चक्षु । ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् । ओं नाभि । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः । ओं शिरः ओं बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतलकरपृष्ठे ।

स्वार्थ पूर्ण जन के जीवन में,
सकल इन्द्रियां खेल खिलातीं,
वाक् प्राण निरसंबल स्वामिन्,
चक्षु श्रोत्र नाभि इठलाती ।

हृदय, कण्ठ, शिर बाहु कराङ्गुलि,
ज्ञान क्रियादिक लुप्त करातीं,
हे विश्वेश्वर ! हे जन स्वामिन् !
आत्मा तुम से ही बल पाती।

कृपाकांक्षिणी मधुर इन्द्रियां,
अब न कभी हों ये मदमाती ।

* मार्जन मन्त्र *

ओं भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

प्राण प्रिय मन शिर पवित्र हों,
दुःखनाशक चक्षु पवित्र हों,
सुख-दायक कल कण्ठ मधुर हों,
पूजनीय मानस महान् हों ।

जगत्-पिता नाभी पवित्र हों,
ज्ञान रूप पद्गति सुन्दर हों,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्य रूप बुद्धि विशुद्ध हों,
भक्ति शक्ति की वृष्टि रूप हों,
व्यापक, विश्व रूप, बलदायक,
अखिल इन्द्रियां वीर्यवती हों ॥

प्राणायाम मन्त्र

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ॥

प्राणरूप ! प्राणों के प्रियतम
दुखनाशक आनन्द घन तुम,
जगत् वन्धु विश्वेश शक्ति तुम
दुष्ट भिन्दन एकमात्र तुम ।
अविनाशी सर्वज्ञ पिता तुम
कुम्भक रेचक पूरक जलितुम,
श्वास श्वास से झङ्कृत हो तुम
हृदय हृदय से गुंजित हो तुम ।

अघमर्षण मन्त्र

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

ओं समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्यमिषतो वशी ॥२॥

ओं सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

विश्व वन्द्य, तव महाशक्ति से,
वेदज्ञान आलोक छा गया ।
दिव्य शक्ति से उदधि चराचर,
तथा प्रलय साकार हो गया ।
वशी ! तुम्हारी सहज शक्ति से,
वर्ष रात्रि दिन नियम बन गया ।
पूर्व कल्प के सदृश विश्व में,
सूर्य चन्द्र द्युलोक बन गया ।
अवनि तथा अम्बर में सहसा,
लोक लोक उद्बुद्ध हो गया ।
देख तुम्हारी अद्भुत क्षमता,
पाप पुण्य का रूप बन गया ।

मनसा परिक्रमा मन्त्र

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥

१. प्राची दिशि के पुण्य देवता
अग्नि देव ! पावक महान् तुम ।
रचित तुम्हारी सूर्य रश्मियां,
अघतम नाशक बाण बन गईं ।
सकल चराचर पालक बन कर,
युग युग का वरदान बन गईं ।
ओज शक्ति दायिनी किरण को,
जग त्रायक को प्रेम वन्दना ।
द्वेष हमारा और शत्रु का,
दाढ़ दग्ध हो, यही प्रार्थना ।
जीवन पाविनी प्रेम सुधा की,
पुण्य वृष्टि हो मात्र कामना ॥

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधि-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

२. दक्षिण दिशि के पुण्य देवता,
इन्द्र देव ! राजन् ! महान् तुम ।
अस्थि हीन सर्पादि सृष्टि तव,
जाल रूप हो बाण बन गई ।
ज्ञान दायिनी शक्ति तुम्हारी,
युग युग का वरदान बन गई ।
रक्षक, हिंसक सर्पादिक का,
जग त्रायक को प्रेम वन्दना ।
द्वेष हमारा और शत्रु का,
दाढ़ दग्ध हो यही प्रार्थना ।
जीवन दायिनी प्रेम सुधा की,
पुण्य वृष्टि हो मात्र कामना ॥

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वोजम्भे दध्मः ॥ ३ ॥

३. पश्चिम दिशि के पुण्य देवता,
वरुण देव ! सौंदर्य सार तुम ।
अतुल कृपा से, विषधर, पशुगण,
रक्षा का आधार बन गया ।
मात्र तुम्हारा हविष्यान्न ही,
प्राणों का प्रिय प्राण बन गया ।
रक्षक पशु को अन्न देव को,
जग त्रायक को प्रेम वन्दना ।
द्वेष हमारा और शत्रु का,
दाढ़ दग्ध हो यही प्रार्थना ।
जीवन दायिनी प्रेम सुधा की,
मात्र वृष्टि हो पुण्य कामना ॥

ओं उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ४ ॥

४. उत्तर दिशि के देवतात्मा,
सोम प्राण, रक्षक महान् तुम ।
संघर्षण की प्रबल शक्ति से,
अणु अणु में संचार हो गया ।
विद्युत गति को, सोम सुधा को,
स्वायम्भुव को प्रेम वन्दना ।
द्वेष हमारा और शत्रु का,
दाढ़ दग्ध हो यही प्रार्थना ।
जीवन दायिनी प्रेम सुधा की,
मात्र वृष्टि हो पुण्य कामना ॥

ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ५ ॥

अधो दिशा के देवतात्मा,
विष्णु रूप व्यापक महान् तुम
सहज शक्ति से समुद्भूत ही
लतागुल्म वरदान बन गया ।
हरी भरी सज्जा से भूषित,
तरुवर जीवन प्राण बन गया ।
विभो ! तुम्हारे विश्व रूप की,
सृजन शक्ति को प्रेम वन्दना ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

द्वेष हमारा और शत्रु का,
दाढ़ दग्ध हो यही प्रार्थना ।
जीवन दायिनी प्रेम सुधा की,
मात्र वृष्टि हो पुण्य कामना ॥

ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ६ ॥

ऊर्ध्व दिशा के सुखद देवता,
बृहस्पति व्यापक महान् तुम ।
सोम-सुधा-युत तर्पण वर्षण,
जग जीवन वरदान बन गया ।
शस्य श्यामला सुजला सुफला,
वसुन्धरा का प्राण बन गया ।
सृष्टि सार, सर्वस्व वृष्टि को,
विश्व देव को प्रेम वन्दना ।
द्वेष हमारा और शत्रु का,
दाढ़ दग्ध हो यही प्रार्थना ।
जीवन दायिनी प्रेम सुधा की,
मात्र वृष्टि हो पुण्य कामना ॥

उपस्थान मन्त्र

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १ ॥

देव तुम्हारी अनुकम्पा से,
हृद्वीणा के गान गूंजते ।
जीवन गहन तमिस्रा में तुम,
ज्ञान दीप्ति से हमें तारते ।
प्रलयोत्तर भी सगुण रूप तुम,
देव ! जन्म देकर उभारते ।
पूर्ण भक्ति से, प्राप्त शक्ति से,
दिव्य रूप साधक निहारते ॥

ओं उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ २ ॥

वेधा अमित विश्व में मानव,
कनक कामिनी मात्र उपासक ।
प्रणतपाल ! सर्वज्ञ ! देव ! तुम,
जीवात्मा के सुखद प्रकाशक ।
पथप्रदर्शिका ध्वजा पताका,
यथा सृष्टि के मार्ग प्रदर्शक ।
महामहिम ! ऐश्वर्य सृष्टि का
मात्र तुम्हारा ही परिचायक ।

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ꣳ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ३ ॥

चित्र विचित्र दृश्य जगती के,
मात्र आप की छवि दर्शाते ।
अखिल पदार्थ दृश्य भूतल के,
शक्ति आप से ही हैं पाते ।
अग्नि सूर्य चन्द्रादिक को भी,
दिव्य प्रकाश प्रदान कराते ।
अम्बर अवनि लोक लोकान्तर,
मात्र तुम्हें आधार बनाते ।

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अखिल लोक के चक्षु प्रकाशक,
चिर शाश्वत् हित साधक तुम हो।
हे अनादि ! शतशः वर्षों तक,
दर्शन श्रवण आप का ही हो।
विभो ! आप की अनुकम्पा से,
हों स्वतन्त्र, सुन्दर वाणी हो।
जीवन मिले यदि युग का भी,
शाश्वत ध्यान आप का ही हो।

समपर्ण

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च । मयस्कराय च । नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

हे सुखदायक, कल्याण रूप !
अर्चन वन्दन शतशः प्रणाम।
सुख स्रोत सदा आनन्द रूप,
श्रद्धायुत हार्दिक है प्रणाम।
हे शिव स्वरूप ! आराध्य देव,
प्रियतम प्राणों के लो प्रणाम।
हे विश्वरूप । सच्चिदानन्द,
आत्मापर्ण है शत शत प्रणाम॥

[ऊपर 'आराधना' शीर्षक से सन्ध्यामन्त्रों का कवितामय अनुवाद, भेंट किया गया है। इस को पढ़े, रसलें, कण्ठस्थ करें, सन्ध्या करते समय इस का भी पाठ कर लें तो सन्ध्या में स्वाद अधिक आएगा। हमारी प्रार्थना पर कविवर पं० सुधीन्द्र शास्त्री बी० ए० ने वेद पथ के लिये यह आराधना भेजी है। इस के लिये हम उन का भूरि २ धन्यवाद करते हैं।

इस आराधना में क्रम का त्याग भी नहीं हुआ स्पष्टीकरण का ह्रास भी नहीं हो पाया। कवि की इच्छा है, ऋषि ने जो क्रम निर्धारित किया है, उसी क्रम से इस अनुवाद का भी उपयोग किया जाए। यथा अघमर्ष मन्त्रों के पश्चात् 'शन्नो देवी'—मन्त्र का विधान है। आराधकों को चाहिए वे उसी स्थान पर 'शन्नो देवी'—के काव्यानुवाद का पुनः पाठ करें। इसी भांति तच्चक्षुर्देवहितं—' के पश्चात् गायत्री मन्त्र का पुनः पाठ किया जाता है। उस के अनुवाद को पुनः वहां पढ़ने का कष्ट कीजिए।

इस में 'हे इश्वर ! दयानिधे'—इस आर्षवाक्य का अनुवाद रह गया है। कविवर उसे शीघ्र भेज देंगे। संभवतः वह अगले अंक में छप जाएगा—सम्पादक]

ब्रह्म का स्वरूप

[*विद्याभास्कर श्री पं० उदयवीर शास्त्री जी*]

(३)

जीवात्मा की चार अवस्थाओं में से पहली जागरित अवस्था का वर्णन कर दिया गया, अब दूसरी स्वपन अवस्था का वर्णन किया जाता है। इसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति न्यूनाधिक रूप में करता है, फिर भी यह अवस्था बड़ी जटिल है। प्रथम अवस्था के सम्बन्ध में हम अधिकाधिक जान सकते हैं और जानने का यत्न कर सकते हैं। क्योंकि जागरित अवस्था में हमारे ज्ञानकी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साधन सब इन्द्रियां पूर्ण रूप से बाहर विषयों की ओर खुली रहती हैं, और उनके विषयों में विचरण के समय हम प्रतिक्षण सतर्क रहते हैं, परन्तु स्वप्न अवस्था में कुछ स्थिति बदली हुई रहती है, उस समय हम ऐसा अनुभव अवश्य करते हैं, कि हमारी सब इन्द्रियां और अन्य ज्ञान साधन जागरित अवस्था के समान वहां भी अपने अपने कार्यों में संलग्न हैं। देखना, सूंघना चलना, बोलना, कार्यकरना आदि सब इन्द्रियों का व्यापार जागरित के समान ही स्वप्न अवस्था में भी प्रतीत होता रहता है। प्रायः स्वप्न में हमें यह ज्ञान नहीं होता, कि यह स्वप्न है, बहुत कम अवसरों में ऐसा देखा गया है, कि स्वप्न की अवस्था में ही ऐसा ज्ञान होता है, कि मैं यह स्वप्न देख रहा हूं। कभी कभी स्वप्न में ही हम दूसरे स्वप्न की ऐसे बात करते हैं, कि जागरित में, इस से यह प्रमाणित होता है, कि जागरित के साथ स्वप्न अवस्था का बड़ा सम्बन्ध है।

आजतक विद्वानों में इस बात पर बड़ा मत-भेद चला आरहा है, कि स्वप्न अवस्था की वास्तविकता क्या है? अनेक दार्शनिक स्वप्न को ठीक ऐसा ही अनुभव मानते हैं, जैसा जागरित को, ऐसा मानने वालों में शङ्कर मता-नुयायी वेदान्ती और बौद्धों का नाम लिया जा सकता है। इनके विचार से स्वप्न एक ऐसा ही नया अनुमान है, जैसा कि जागरित। इनमें यदि कुछ विशेषता है, तो वह इतनी ही है, कि जागरित में हम जिन तत्त्वों व पदार्थों का अनुभव करते हैं, वे सब हमारे मन की कल्पना अथवा रचना नहीं है, परन्तु स्वप्न के सम्पूर्ण दृश्य केवल हमारे मन की कल्पना है। जब कोई भी व्यक्ति जागरित अवस्था की दृष्टि से सोया हुआ होता है, उसकी बाह्य इन्द्रियां इधर से अवरुद्ध होती हैं, वह स्वप्न लोक में विचरण करता हुआ रहता है, उस समय वहां ये जागरित अवस्था के कोई भी भूत भौतिक उपस्थित नहीं रहते, फिर भी मन उन सब की सृष्टि कर लेता है। अन्यत्र उपनिषद् में आता है—'न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति, अथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते' वहां स्वप्न अवस्था में न रथ होते हैं, न घोड़े, और न उनके चलने के मार्ग; परन्तु यह मन उन सब की रचना कर लेता है, और वहां भी ठीक वैसा ही जगत् बस जाता है, जैसा कि जागरित में पहले ही बसा हुआ है। जागरित अवस्था का जगत हिरण्यगर्भ के मन की कल्पना अथवा रचना है, यह शंकर मतानुयायी वेदान्तियों का विचार है। जैसे स्वप्न जगत् हमारे मनकी रचना है, इसी प्रकार जागरित जगत् हिरण्यगर्भ के मन की रचना है। इन विद्वानों ने समष्टि जगत् के एक अभिमानी चेतन को हरण्यगर्भ माना है, जैसे एक शरीर का अभिमानी चेतन जीव कहा जाता है।

इसके विपरीत दूसरे विद्वान स्वप्न जगत् को जागरित के अनुभवों का स्मरण-मात्र मानते हैं। उनकी धारणा है, कि जो कुछ हम जागरित अवस्था में देखते सुनते खाते पीते आते जाते लिखते पढ़ते हैं, उसी का स्मरण हमें स्वप्न में होता है। इन विद्वानों के विचार से वहां मन अपनी किसी नई सृष्टि की रचना नहीं करता। फिर भी जागरित के दृश्यों से स्वप्न के दृश्यों में कुछ विशेषता अवश्य रहती है। उसे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हम इन्हीं शब्दों में स्पष्ट कर सकते हैं, कि जागरित दृश्यों के अनुभवों का जो क्रम रहता है, स्वप्न में सर्वथा वैसा ही स्मरण नहीं होता, उसमें बहुत बार एक विचित्र विशृंखला हो जाती है। जागरित का वही नगर कभी स्वप्न में दूसरे ढंग का दीख जाता है, उसका गृह-सन्निवेश और मार्गों की दिशा व बनावट कुछ बदली हुई मालूम होती है, जो व्यक्ति जागरित में कभी हाथी पर सवार नहीं हुआ, पर उसने हाथी को देखा है, और दूसरे व्यक्तियों को हाथी पर सवार देखा है, वह कभी २ स्वप्न में अपने आपको भी हाथी पर सवार हुआ देखता है। इस विशेषता का विवेचन, प्रस्तुत विचार-धारा को मानने वाले विद्वान् इसप्रकार कहते हैं, कि जब ऐसे व्यक्ति की तीव्र भावना हाथी पर सवार होने की होती है, तब वह जागरित अवस्था में ही दूसरे सवार व्यक्तियों के स्थान पर स्वयं अपने सवार होने की कल्पना करता है। ये ही भावना स्वप्न में मूर्त्तरूप धारण कर लेती हैं।

स्वप्न के दृश्य, जागरित में अनुभव हुए ज्ञानों के ही स्मृतिमात्र हैं, इन विचारों की पुष्टि के लिये विद्वानों का कहना है, कि यह परीक्षण करके अच्छीतरह देखा गया है, कि जो व्यक्ति जन्म से ही अन्धे हैं, जिनोंने इस देह के साथ सम्पर्क में आकर कभी भी रूप अथवा रूपवाले पदार्थों का जागरित अवस्था में साक्षात्कार नहीं किया, ऐसे व्यक्तियों को स्वप्न में भी रूप अथवा रूपवाले पदार्थों के दृश्य दिखाई नहीं देते। यदि जागरित के साथ स्वप्न का कोई सम्बन्ध न हो, और स्वप्न सर्वथा एक नवीन सृष्टि हो तो जागरित की इस विशेषारिथति का उस पर कोई प्रभाव न होना चाहिये, और तब जन्मान्ध को भी स्वप्न में रूपदर्शन होने के लिये कोई बाधा नहीं होनी चाहिये। जब वह मन की ही कल्पनामूलक रचना है, तब वह चक्षु और रूप के दृश्यों की भी कल्पना क्यों नहीं कर लिया करता।

इसप्रकार स्वप्न जगत् जागरित अवस्था के अनुभवों के आधार पर ही माना जाना चाहिये ऐसा मानने पर भी स्वप्न जगत् मानसी सृष्टि कहा जासकता है। कारण यह है, कि स्मृति का मुख्य साधन मन ही है। स्मृति के लिये बाह्य विषय या इन्द्रियों की उपेक्षा नहीं होती। जागरित के जो संस्कार आत्मा में बस जाते हैं। उनमें से जिनके प्रति वासना तीव्र रही है, उन्हीं की उखाड़ पछाड़ स्वप्न अवस्था में मन के द्वारा हुआ करती है। यद्यपि जागरित अवस्था में इन्द्रियों का बाह्य विषयों की ओर जिस प्रकार खुला और पूर्ण व्यापार होता है, वैसा इन्द्रियों का व्यापार स्वप्न अवस्था में नहीं रहता; फिर भी स्वप्न की मानसिक वासनाओं से इन्द्रियां प्रभावित अवश्य होती हैं, इस प्रकार स्वप्न अवस्था में मानसी वासनाओं का ही प्राधान्य होने से उस जगत् को मानसी सृष्टि कहना उचित ही है। आत्मा के लिये बाह्य जगत् के भोग बाह्य साधनों द्वारा उपस्थित किये जाते हैं, परन्तु स्वप्न अवस्था में सब सुख दुःख आदि भोग केवल वासना मूलक होते हैं। वहां खाना पीना नहाना धोना पढ़ना लिखना राग द्वेष भय हिंसा मैथुन आदि सब ही कुछ कार्य चलते हैं, पर हैं वह सब केवल वासना। इन्हीं सब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भावों को उपनिषद् की चतुर्थ कण्डिका द्वारा इन शब्दों में प्रदर्शित किया है—

स्वप्नस्थानो ऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः
प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः ॥ ४ ॥

जीवात्मा की द्वितीय अवस्था 'स्वप्न' है। प्रथम अर्थात् जागरित अवस्था में इन्द्रियां बाहर विषयों की ओर खुली रहती हैं, इसलिये उस अवस्था में जीवात्मा 'बहिःप्रज्ञ' कहा जाता है, परन्तु यहां स्वप्न अवस्था में इन्द्रियों के द्वार बाह्य विषयों की ओर से रुद्ध रहते हैं, इस समय जो कुछ भी ज्ञान आत्मा को होता रहता है, वह सब आन्तरिक साधनों द्वारा ही होपाता है, इस-लिये यहां यह 'अन्तःप्रज्ञ' कहा जाता है, जागरित अवस्था में जिस प्रकार शरीर के सात अंग और उन्नीस द्वार बताये गये हैं, उसी प्रकार यहां पर भी समझने चाहियें, परन्तु उनमें यहां कुछ भेद हो जाता है, जो क्रमशः इस प्रकार बताया जाता है—

(१)-जागरित अवस्था में शरीर के दो हाथ दो पैर मूर्धा उरस् और उदर ये सात स्थूल अंग बताये गये हैं। परन्तु स्वप्न अवस्था में इस स्थूल शरीर का बिल्कुल भी उपयोग नहीं होता, यह तो उस समय शय्या आदि पर निश्चेष्ट पड़ा रहता है। परन्तु सर्वथा इसके समान ही शरीर हमें वहां दृष्टिगोचर होता है। उसमें भी हाथ पैर मूर्धा आदि सब अंग पूर्ण रूप में दिखाई देते हैं, यद्यपि यह सब मानसी भावना का ही चमत्कार होता है। जागरित से इतना ही इस का भेद है। जागरित में साक्षात् स्थूल शरीर और उस के अंग हैं, स्वप्न में केवल भावना मूलक।

(२)-जागरित अवस्था के उन्नीस द्वारों में पांच स्थूलभूत भी गिनाये गये हैं। परन्तु स्वप्न में उन के स्थान पर सूक्ष्म भूतों की स्थिति मानी जाती है। द्वारों की संख्या पूरी उतनी ही रहती है, क्योंकि स्वप्न में भी इन्द्रियों का पूरा व्यापार दृष्टिगोचर होता है, यद्यपि इन्द्रियां उस समय बाह्य विषयों के साथ व्यापृत नहीं रहतीं। इसलिये इन्द्रियों का यह व्यापार भी भावा मूलक ही होता है। किसी भी रूप में इन्द्रियों का व्यापार दृष्टिगोचर होने से इस अवस्था में भी जीवात्मा को 'एकोनविंशतिमुखः' कहा गया है। यद्यपि जागरित अवस्था के समान इन्द्रियों का बाह्य विषयों के साथ व्यापार स्वप्न अवस्था में नहीं रहता, फिर भी स्वप्न व्यापार का सीधा प्रभाव कभी कभी इन्द्रियों पर होता हुआ देखा गया है। स्वप्न में भयावह दृश्य देखने पर व्यक्ति चीख पड़ता है। आवेग पूर्ण स्थिति में बात करते रहने पर अस्पष्ट रूप में बड़बड़ाता भी रहता है। कभी हर्ष के आवेग में हंसता और शोक व दुःख के आवेग में कांपता सिहरता तथा रोता हुआ भी देखा जाता है। आयुर्वेद में स्वप्नदोष के रूप में जिस रोग का वर्णन किया गया है, वह भी इसी स्थिति का प्रभाव है। इसी कारण दोनों अवस्थाओं में कुछ भेद होने पर भी जागरित के समान ही स्वप्न में भी जीवात्मा को 'एकोनविंशतिमुखः' कहा गया है।

इन दोनों अवस्थाओं के भेद का एक और मुख्य आधार है—भोग। जागरित में आत्मा बाह्य स्थूल विषयों का उपभोग करता है, परन्तु स्वप्न अवस्था में सब भोग वासना मात्र है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसी लिये उपनिषत्कार ने इस अवस्था में जीवात्मा को 'प्रविविक्तभुक्' कहा है। बाह्य-विषय सब स्थूल भोग हैं। उन से सर्वथा पृथक् [=प्रविविक्त] है वासना पूर्ण प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि' वही स्वप्न अवस्था में आत्मा के लिये भोज्य रूप में उपस्थित होती है। स्वप्न में हमें ऐसा दीखता है, कि हम कोई फल खाते हैं, अथवा भोजन करते हैं, परन्तु वह निश्चित ही जागरित अवस्था का स्थूल फल अथवा भोजन नहीं है, वह हमारी वासना पूर्ण बुद्धि का ही चमत्कार होता है।

अभी तक यह स्पष्ट किया गया, कि स्वप्न अवस्था की इस स्थिति का मूल आधार मन है। मन को शास्त्रों में अति चञ्चल कहा है—

यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवं तदु
सुप्तस्य तथैवेति दूरङ्गमम्।
ज्योतिषां ज्योतिरेकं तनमे मनः
शिवसंकल्पमस्तु ॥ य० ३४।१

यह मन जागते और सोते दूर दूर भागता ही रहता है। गीता में भी कहा है—'चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्'। यह मन बहुत ही चञ्चल और प्रबल है। मन के समान यह विशेषता तेज में भी पाई जाती है। 'तेजस्' तत्त्व स्वभावतः चञ्चल अथवा तीव्र गतिशील है। कदाचित इसी लिये मन को 'ज्योतिषां ज्योतिः' कहा गया है, क्यों कि ये महात्मा कभी कभी तेज से भी आगे निकल जाते हैं। क्यों कि स्वप्न अवस्था मानसी सृष्टि मानी गई है, इस लिये वहां विषयों का दृश्य परिवर्त्तन भी अतिक्षणिक होता है। तीव्रता से दृश्य बदलते रहते हैं। 'तैजस' कहा गया है, फिर उस को भोगने वाला जीवात्मा भी क्यों न 'तैजस' कहा जाना चाहिये। 'द्वितीयः पादः' यह आत्मा की द्वितीय अवस्था कही जाती है। [क्रमशः]

—卐—

साहित्य समीक्षा

[१. समीक्षा के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी चाहिएं। एक प्रति आने पर समीक्षा प्रकाशित नहीं हो सकती।

२. समीक्षा पुस्तक पढ़ कर की जाती है, उस में समय लगता है। पुस्तक भेजने वाले सज्जन इस का विशेष ध्यान रखने की कृपा किया करें।]

लघु सिद्धान्त कौमुदी भैमी टीका समेत

संस्कृति भाषा के, इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशली आदि आचार्य्यों के बनाए अनेक व्याकरण हैं। काल क्रम से इन में से अनेकों का लोप हो चुका है। पाणिनि जी का रचा 'शब्दानुवाद शासन नामक व्याकरण जिसे अष्टाध्यायी भी कहते हैं, सर्वोत्कृष्ट तथा वैज्ञानिक होने के कारण आज भी जीवित है। उस पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनेक भाष्य टीकाएं, बनीं, और आज भी बन रही हैं। मराठों के उत्कर्ष के समय काशीवासी महराष्ट्र ब्राह्मण भट्टोजिदीक्षित नामक वैयाकरण ने सूत्र क्रम की उपेक्षा करके नए प्रकरण बना कर अष्टाध्यायी (पाणिनीय) व्याकरण की एक व्याख्या रची। इस में वह उपज्ञाता नहीं, क्योंकि इस से पूर्व उस के गुरु राम चन्द्र की रचना विद्यमान थी। भट्टोजिदीक्षित के वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी ग्रन्थ का संक्षेप दाक्षिणात्य वरदराज ने दो रूपों में किया, छोटे का नाम 'लघुसिद्धान्त कौमुदी' है पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश कराने के लिये पण्डित लोग इसे द्वारीभूत करते हैं। भारत वर्ष में संस्कृत व्याकरण की सरकारी परीक्षाओं में इस का सर्वत्र समावेश है। इस की संस्कृत तथा हिन्दी, गुजराती मराठी, अंग्रेज़ी भाषाओं में अनेक टीकाएं हैं किन्तु प्रायः दुरूह हैं और अतएव विद्या के उपयुक्त वे नहीं हैं। पं० भीमसेन जी की भैमी-टीका ऐसी है जिसे बुद्धिमान् विद्यार्थी अपना मार्ग प्रदर्शक बना सकता है। 'टीका गुरूणां गुरुः' =टीका गुरुओं की भी गुरु होती है, इस उक्ति की यथार्थता इस में चरितार्थ दीखती हैं। पंजाब की प्राज्ञ, काशी, कलकत्ता, बिहार; जयपुर आदि की प्रथमा परीक्षार्थ इस से भरपूर लाभ उठा सकते हैं, प्रयोगों को साधनिका पर विशेष लक्ष्य रखा गया है।

विद्यार्थी ही नहीं, वरन् वैयाकरण पण्डित भी इस से लाभान्वित हो सकते हैं। पुस्तक बहुत बड़ी है, आजकल की महंगाई के युग में ४॥) मूल्य अधिक नहीं है। लेखक से—लाजपात राय मार्केट देहली से मिलती है।

मनोविज्ञान या शिव संकल्प—लेखक स्वामी आत्मानन्द जी वैदिक साधनाश्रम, रायपुर, प्रकाशक-वैदिक साहित्य सदन, सीता राम बाज़ार देहली।

श्री स्वामी आत्मानन्द जी आर्य्यसमाज की विभूति हैं, वे अच्छे सुयोग्य एवं चिन्ताशील विद्वान् हैं। उन की रचनाएं सदा पठनीय होती हैं। प्रस्तुत पुस्तक यजुर्वेद के ३४वें अध्याय के प्रथम छः मन्त्रों की उत्तम व्याख्या है। कई स्थानों पर मतभेद का अवकाश है, किन्तु सर्वथा अभिनन्दनीय है। पुस्तक का द्वितीय संस्करण निकलना इस की उपादेयता का प्रबल प्रमाण है। इस संस्करण में लेखक का जीवन परिचय भी दे दिया गया है, जो अधूरा, भ्रामक एवं अनेक विषयों में अशुद्ध भी है। आशा है, अगले संस्करण में यह त्रुटि दूर कर जाएगी। मूल्य २॥)

[टि० समीक्षित पुस्तकों के भेजने के लिए लोग हमें पत्र लिख दिया करते हैं, कृपया उनके लिये प्रकाशों को ही पत्र लिखना चाहिये।]

वैदिक निर्वाचन प्रणाली—लेखक श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी, अध्यक्ष सार्वदेशिक दयानन्द सन्यासि वानप्रस्थ मण्डल ज्वालापुर, तथा वैदिक साधनाश्रम रायपुर।

यजुर्वेद के कुछ एक मन्त्रों की यह व्याख्या है, जो कि चुनाव के सम्बन्ध में है। इन मन्त्रों के मनन से यह पता लगता है कि वेद चुने जाने वालों के लिये कुछ विशेषताओं का निर्देश करता। श्री स्वामी जी एक प्रौढ़ स्वध्यायशील विचारक हैं। वेद उन के विचारों का मूल स्रोत है, उस पर उन के विचार मनन करने योग्य है। प्रत्येक भारतीय को यह पुस्तिका पढ़नी चाहिये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक बाल शिक्षा (प्रथम भाग) लेखक महात्मा विद्यानन्द विदेह जी, प्राप्ति स्थान—वेद संस्थान, अजमेर। मूल्य ।=)

विदेह जी वेदनिष्ठ महात्मा हैं। उन्होंने बालकों के लिये व्यावहारिक तीस वैदिक सूक्तियों का संकलन करके उन पर अपनी सरल सुबोध व्याख्या लिखी है। सूक्तियतां वेद की हैं, उन के माधुर्य में तो किसी को सन्देह का अवकाश ही नहीं हो सकता, विदेह जी की व्याख्या भी मधुर है। कागज़ तथा मुद्रण दोनों अच्छे हैं।

वैदिक योग पद्धति—लेखक तथा प्रकाशक एवं मूल्य उपर्युक्त—विदेह जी की लेखनी अप्रतिहत चलती है, उस का प्रमाण उन की यह पुस्तिका है। आप ने योग के 'याज्ञवल्क्य योग, वशिष्ठ योग, कृष्ण योग, अरविन्द योग तथा पातञ्जल योग—ये योग के पांच प्रसिद्ध प्रकार' बताए हैं। योगाभ्यासियों में वशिष्ठ योग, याज्ञवल्क्य योग, कृष्ण योग को कोई नहीं जानता। उन में राजयोग, हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग आदि की प्रसिद्धि है। अतः विदेह जी का कृष्णादि को योग प्रकारों का प्रवर्त्तक कहना सम्प्रदाय एवं परम्परा की अनभिज्ञता का परिचायक है। पातञ्जल योग के सम्बन्ध में आप के शब्द 'परन्तु है अतिशय जटिल तथा सर्वसाधारण के दैनिक जीवन में सर्वथा अव्यवहार्य्य' बता रहे हैं कि आप ने यह मार्ग देखा तो क्या सुना भी नहीं। आप ने पातञ्जलि के योग लक्षण पर आक्षेप किया है, वह सर्वथा आप की अयोगिता का साधक है। पातञ्जलि योग वैदिक है। आप ने जिन बातों को योग वा योग साधन बतलाया है, वे सब उपादेय होती हुई भी योग के बहिरङ्ग साधन हैं। विदेह जी यह पुस्तक न लिखते तो अच्छा होता। मुद्रण तथा कागज़ दोनों प्रशस्त हैं।

—★—

सम्पादकीय

गणतन्त्र दिवस। किसी समय भारत वर्ष बहुत विशाल देश था। राजनैतिक, सामाजिक आदि क्रान्तियों के कारण भारत की भौगोलिक परिधि संकुचित होते होते आज वह अत्यन्त अल्पदेश रह गया है। किसी समय अफगानिस्थान, बलोचिस्थान, तुर्किस्थान, तिब्बत, ब्रह्मदेश, सिंगल आदि भारत के अंग थे। आज यह भारत से बहिर्भूत हैं। इनमें कई देश तो ऐसे हैं कि जो भारत को आंख दिखाने का दुःसाहस कर रहे हैं। इन उथल पुथलों के कारण जहां भारत की सीमा घटी, वहां कई बार इस विशाल देश को परतन्त्रता में भी बन्धना पड़ा। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आर्य्य जाति ने पराधीन हो कर सदा अपनी स्वाधीनता के लिए प्रयत्न जारी रखा। पराधीनता के दिनों में जो यातनाएं भारतीयों को सहन करनी पड़ी उन का स्मरण करके मनुष्य रोमांचित हो उठता है। और जब इतिहास के द्वारा हमें यह ज्ञात होता है, कि क्रांति-चक्कर में पड़ कर अनेक जातियों का अस्तित्व सदा के लिए मिट गया, किन्तु आर्य्य जाति ने अपना अस्तित्व बनाए रखने में अद्भुत जीवट-प्राणशक्ति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का परिचय दिया है। तब इस जाति के आगे विवश नतमस्तक होना पड़ता है। अंग्रेजी शासन की नींव पड़ी १७५७ ई० में-और १७७३-५ में रंगपुर (बंगाल) में विद्रोह उठ खड़ा होता है। भारत में अंग्रेज़ी शासन का जब निष्पक्ष एवं यथार्थ इतिहास लिखा जाएगा तब ज्ञात होगा कि आर्य्यजाति की स्वतन्त्र्य भावना का दीपक सदा ही प्रदीप्त रहा, यह कभी बुझने नहीं पाया। ईसा की उन्नीसवीं शती जब राजा राममोहनराय की प्रेरणा से भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा का उपक्रम हुआ, तब से भारतीयों के हृदय से भारतीयता के लोप करने के अनेक साधन किये गए। संभव था कि भारत की रूप-रेखा कुछ और ही हो जाती कि महर्षि दयानन्द के गुरुवर दण्डिप्रवर विरजानन्द सरस्वती के शिष्य राजाओं एवं सामन्य जनों ने अन्य देश-भक्तों के साथ मिसकर १८५७ का प्रबल स्वातन्त्र्यसंग्राम छेड़ा। ऐतिहासिक जयचन्द्र विद्यालङ्कार (हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष) का कथन है कि दयानन्द सरस्वती का भी उस संग्राम में भाग था। [इस विषय पर अपने विचार हम कभी दूसरे समय प्रकट करेंगे] यह तो निर्विवाद बात है कि उन्नीसवीं शती में दयानन्द प्रथम महामनुष्य हैं जिन्होंने असन्दिग्ध एवं स्पष्ट शब्दों में स्वराज्य को पर-राज्य से उत्कृष्ट बताया और जिन्हों ने भारतयों को उनके अतीत गौरव की तथा चक्रवर्त्ती राज्य की स्मृति दिला कर, देशभक्ति का पुनीत पाठ पढ़ाया। उन के तथा उनके पीछे आने वाले देशभक्तों के तप, त्याग का परिणाम १५-८-४७ को भारत की स्वतन्त्रता के रूप में प्रकट हुआ।

गतवर्ष २६ जनवरी को भारत सर्वतन्त्र स्वतन्त्र गणतन्त्र घोषित किया गया।

अपने शासनकाल में अंग्रेज यहां और बाहर यह घोषित करते रहे कि गणतन्त्र या प्रजातन्त्र भारत की परम्परा के प्रतिकूल है। शासक लोग शासत जाति को सदा बनाए रखने में ऐसे कुकर्म किया ही करते हैं। बुद्ध के जीवन काल में लिच्छिवियों आदि के कई गणराज्य विद्यमान थे। बुद्ध का तो जन्म भी एक गण-राज्य में हुआ था! सिकन्दर को पंजाब में कई गणराज्य से लोह-लेना पड़ा था। इस पर यह कहते जाना कि गणतन्त्र भारत के अनुकूल नहीं किसी दूषित मनोवृत्ति का ही द्योतक है।

सभी भारतीयों का मन प्रथम गणतन्त्रदिवस मनाते समय उल्लास पूर्ण था। किन्तु चिन्ता-शील विचारकों के ललाटों पर अन्नसंकट, विस्था-पितों की समस्या, काश्मीर का प्रश्न भारत की सीमाओं पर की विकट परिस्थिति। अन्तर्राष्ट्रीय संकटमयी परिस्थिति आदि की छाप झलकती थी। भूखा भारत कदाचित उस धूम-धाम से इस पुनीत पर्व को नहीं मना सका, जिस के योग्य था। भगवान् कृपा करें कि हम आगामी वर्ष इस वर्ष को इस के अनुरूप गौरव के साथ मना सकें।

नेता जी। बीसवीं शती में भारत ने नेता अनेक हुए हैं किन्तु 'नेताजी'। का गौरवास्पद पद भारत के गौरव स्वरूप सुभाषचन्द्र बोस को ही प्राप्त हुआ है। हमारा विश्वास है कि भारत अभी स्वतन्त्र न हो पाता यदि नेता जी 'आजादहिन्द फौज' का संघठन न करते और उस के द्वारा भारत पर आक्रमण न करते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नेताजी पर आज़ाद हिन्द फौज की श्रद्धा थी। इस के लिए अपना अाँखिभू (आंख देखा) उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। सन् १६४५ की बात है, इन पक्तियों का लेखक धर्मप्रचार कार्य्य के लिए लाहौर से बाहर जा रहा था। रेल के जिस डब्बे में लेखक था उस में बन्नू जिले के चार पांच मुसलमान भी थे जो आज़ाद हिन्द सेना में कार्य्य कर चुके थे। प्रसग छिड़ने पर एक यात्री ने नेताजी की चर्चा करते हुए उनका नाम ले डाला। वे सैनिक तुरन्त फड़क उठे और कहने—भाई ! नेता जी कहो। लेखक के प्रश्न करने पर उन्होंने नेता जी का केवल दो घंटे विश्राम करके दिनरात कार्य्य संलग्न रहने, सैनिकों के साथ समवृत्ति रहने मतवाद के भेदभाव के भूत को भगाने। भूखों रह कर युद्धसंचालन की बातें सुना सुना कर सभी यात्रियों को पुलकित किया।

सभी जानते हैं कि गान्धी जी और उनकी विचारधारा में अन्त था और गान्धी जी के प्रचण्ड विरोध के कारण उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष पद त्यागना पड़ा था। किन्तु वास्तवक महत्ता की सत्ता बहुत प्रबल होती है। जब नेताजो ने अंग्रेजी सरकार के गुप्तचरों की आंखों में धूली झौंक कर भारत की सीमा पार की, और गांधी जी को ज्ञात हुचा तो उनके मुख से सहसा ये शब्द निकले कि सुभाष सचमुच वीर शिरोमणि है जो अपने भविष्य को इस प्रकार संकटापन्न करने का साहस कर सकता है।

ऐसे महामनुष्यों के स्मरण से मन में उत्साह का संचार, एवं वीरता का स्फुरण होता है। और अपनी कृतज्ञता की भावना व्यक्त होती है। किन्तु देश की सरकार तथा भारत का सब से बड़ा राजनैतिक दल "नेता जी" की उपेक्षा कर रहा है। हा ! हन्त !!

गांधी जी का अपमान जनवरी मास पर्वमास है। गणतन्त्र पर्व, नेता जी की जयन्ती एवं गान्धी की बरसी इसी मास में पड़ती हैं। २३ को नेता जी जयन्ती, २६ को गणतन्त्रपर्व तथा ३० को गान्धी जी की बरसी होती है। आज जब ये पंक्तयां लिखी जा रही हैं। गांधी जी की बरसी है। सहसा हमारा मन गांधी जी को स्मरण करने लगा। लाखों मत भेद हों किन्तु उन का गौरव निर्विवाद हैं कांग्रेसी शासक समय कुसमय, प्रयोजन हो यो नहो। संगति लगे या न लगे गांधी जी का नाम लिया ही करते हैं किन्तु चलते सदा उनके सिद्धान्तों के विपरीत हैं। इस का उदाहरणार्थ, एक प्रमाण लीजिए संयुक्त प्रान्त के स्कूलों की छटी श्रेणी में साहित्य-प्रकाश नामक पुस्तक पढ़ाई जाती है। उस का आरंभ 'बापू-वन्दना' से होता है ! हम अविकल उद्धृत करते है। पाठक पढ़े और अपने भाग्य को राएं—

["बापू ने हमारा तथा हमारे देशका कल्याण किया है, यह सब को ज्ञात है अतः उनको वन्दना करना उचित है:"]

वन्दे भारत के भगवान् ।
दीनानाथ दुःखी जन पालक,
हरिजन दयानिधान ॥ वंदे—
बाधक कुमति सुमति के साधक,
आराधक सद्ज्ञान ।
परम अहिंसक, शान्ति उपासक,
नाशक तिमिर महान् ॥ वन्दे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्षमाशील समदर्शी अनुपम,
स्वच्छ हृदय मतिमान ।
सरलस्वभाव, मन्त्रमोहनयुत,
कौन न करता मान ॥ वन्दे
कोटि कोटि मानव सब के,
करते गौरव गान ।
कल्याणी वाणी के बल पर,
बनता विश्व विधान ॥ वन्दे
रागद्वेष से वञ्चित,
संचित ईश्वरीय वरदान ।
राष्ट्र पिता माता जगती के,
अमर विना अपमान ॥
वन्दे भारत के भगवान्

यदि गान्धी जी आज जीवत होते और प्रतिदिन भगवान् की प्रार्थना करने पर भी उन को भगवान् कहा जाता तो उनके मन को कितना क्षोभ होता। सभी को विदित है कि उनके जीवन काल में उन के किसी विहारी भक्त ने उन की मूर्ति बना उसे मन्दिर में स्थापित कर दिया। गान्धी जी ने अपने उस श्रद्धालु के इस विवेकविहीन कृत्य का इतना विरोध किया कि उसे सब आयोजन नष्ट करना पड़ा। आज उन महामनुष्य को भगवान् घोषित किया जा रहा है। और यह विष कोमल हृदय बालकों को पान कराया जा रहा है।

इस भावना से एक बहुत बड़ी व्यावहारिक हानि है। मनुष्य को मनुष्य से स्फूर्ति मिल सकती है। वह सोचता है जब अमुक मनुष्य ने यह महान् कार्य्य किया है मैं भी ऐसा महान् कार्य्य कर सकता हूं। यदि उसे यह सुझा दिया जाए कि अमुक कार्य्य का कर्त्ता भगवान् है, परमेश्वर है तो वह हतोत्साह हो जाता है। वह सोचता है जो कार्य्य महान् भगवान् ने किया है। वह मेरे जैसे अल्प सामर्थ्य वाले से कैसे संभव हो सकता है। आर्य्यजाति जब तक महाराज राम को तथा श्री कृष्ण को मनुष्य मान कर, मान करती रही। तब तक उन के अवदानों का उत्साहपूर्वक अनुकर करके जगत् में अग्रणी बनी रही। जब से उस ने इन विभूतियों को मनुष्य न रहने देकर भगवान् बना दिया तब से पूजा के पात्र तो हो गए या रह गए किन्तु जीवनों को प्रेरणा देने की शक्ति इनकी नष्ट कर दी गई। गान्धी जी को भगवान् बना कर उन की स्फूर्तिदायिनी शक्ति के नाश का उपक्रम किया जा रहा है। जो अत्यन्त अनिष्टकारी है। फिर गांधी जी को भारत का भगवान् मान कर अलक्षित रूप में बालकों को यह शिक्षा दी गई है कि भगवान् अनेक और कि भिन्न भिन्न देशों के भिन्न भिन्न भगवान् हैं। इस वन्दना में और भी आक्षेप योग्य बातें हैं किन्तु हम उन का उल्लेख नहीं करते।

हमारा ऐसा विचार है कि महामनुष्यों के सब से अधिक विरोधी उन के तथाकथित अनुयायी ही हैं।

हमारा दुःख और बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि इस पुस्तक के सम्पादक कानपुर के दयानन्द हायर सैकेण्डरी स्कूल के मुख्याध्यापक हैं। क्या हम कानपुर की डी.ए.वी. कमेटी से पूछ सकते हैं कि इस प्रकार के नास्तिकता भरे विचारों का प्रचारक मुख्याध्यापक वैदिक भावों का क्या प्रचार करता होगा। यू. पी. के शिक्षा-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विभाग से हम प्रार्थना करना चाहते हैं कि गांधी जी के विचारों का आदर करते हुए इस प्रकार की भद्दी रचना को पाठ्यपुस्तक से निकलवाने की कृपा करें।

नयपाल नयपाल की खटपट मिटती दिखाई देती है। राणा सीधे मार्ग पर आता दिखाई देता है किन्तु कुछ हिचकिचाहट अवश्य है। भारत का पड़ौसी होने के कारण उस की स्थिति का भारत पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य्य है। इसी कारण भारत तथा भारत सरकार का उस के अन्तःकलह से चिन्तित होना स्वभावक है। आशा है, नयपाल के वृद्ध महामन्त्री समय की गति एव संसार प्रवाह को विचार कर नयपाल जनता का हृदय अपने वश में करने की चेष्टा करेंगे। अन्यथा............... ।

तिब्बत तिब्बत पर चीनी वर्ग वादी सरकार ने, बिना किसी उत्तेजन के, आक्रमण कर दिया। समस्त संसार इस पर भौंचक्का रह गया। योरुप के स्वार्थी कूट नीतिज्ञ तो चुप रहे हां वर्गवादी बोले वे भी तिब्बत के विरुद्ध। हमारे महामन्त्री नेहरु जी ने चीन सरकार को इस कार्य्य की निन्दा से रोकने की चेष्टा की, किन्तु चीनी सरकार ने उस सौजन्य पूर्ण सद्भावना युक्त परामर्श का ऐसे तिरस्कार पूर्ण शब्दों में उत्तर दिया जिसे भूलना कठिन है।

तिब्बत सृष्टि के आरम्भ से भारत का अंग रहा है। वैदिकों के सिद्धान्तानुसार मानव सृष्टि आरम्भ वहीं हुआ। तिब्बती लोग स्वभाव से शान्ति प्रिय हैं। वे किसी से झगड़ना नहीं चाहते और न किसी को अपने देश के कार्य्य व्यवहार में हस्ताक्षेप करने देना चाहते हैं। तिब्बत किसी समय चीनी साम्राज्य का अंग बन गया किन्तु राजनैतिक कारणों से बाधित हो कर चीन को उस की स्वतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ी। यह आश्वासन देने पर कि चीनी सरकार तिब्बत के शासनादि में किसी प्रकार हस्ताक्षेप नहीं करेगी तिब्बत ने चीन का नाम मात्र का प्रभुत्व मान लिया।

तिब्बत तथा भारत की सीमा दूर तक मिलती है। तिब्बत की किसी राजनैतिक घटना का भारत पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। अतः चीन के आक्रमण करने पर भारत सरकार को चिन्ता हुई। अब सुनते हैं सद्भावना दिखाने की भावना से चीनी सरकार अपनी सेनायें तिब्बत से हटा रही है ताकि पारस्परिक वार्तालाप हो सके।

पाठकों को यह ज्ञात ही है कि तिब्बत एक शिष्टमण्डल चीनी सरकार से वार्तालाप करने के उद्देश्य से चीन को चला था। अभी वह वहां पहुँचा ही न था कि तिब्बत पर आक्रमण हो गया। चीन ने आक्रमण करके शिष्टसंसार की सहमति खो दी थी। आज के शक्तिशाली राष्ट्र इन बातों की परवाह नहीं करते।

कोरिया कोरिया की समस्या बहुत विषम हो चुकी है। चीन ने वहां उसी नीति का अनुसरण किया है जो पाकिस्थान ने काश्मीर पर आक्रमण करने की थी। पाकिस्थान ने भी कहा था हमारी सेना ने काश्मीर पर आक्रमण नहीं किया किन्तु स्वयं सेनकों ने किया है। यही चीन कह रहा है। हेतु भी दोनों के एक से हैं।

इन सब को देखकर एक सत्यभक्त सत्य का इस भांति गला घुटता देख कर निराश हो जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तथाकथित बड़ों की अनर्गल बातें—कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि जो मनुष्य किसी भांति किसी उच्च स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं, वे अपने आप में नहीं समा पाते। उन्हें यह विचार सताने लगता है कि वे सर्वज्ञ हैं और अतः एव सभी विषयों पर अपने विचार उद्गारों को उगलने का उन्हें अधिकार है। वे भूल जाते हैं कि वे मनुष्य हैं और कि मनुष्य के ज्ञान की सीमा होती है। कोई भी मनुष्य न सर्वज्ञ था, न है, न होगा। उस की अल्पज्ञता बनी रहेगी। कोई कितना ही महान् विद्वान ज्ञानी बन जाए, उसके लिए उस के ज्ञात विषयों की अपेक्षा अज्ञात विषय अधिक ही रहेंगे।

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे देश के नेता इस अबाध्य तथ्य में विश्वास नहीं रखते। समय कुसमय वे लोग अपने क्षेत्र से बाहर और सर्वथा अज्ञात विषय पर भी अपना मत झाड़ दिया करते हैं। कांग्रेस के वर्तमान अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तम दास जी भी उसी श्रेणी के महामनुष्य हैं। आपकी जयपुर के अन्तर्गत वनस्थली विद्यापीठ में दीक्षान्त अभिभाषण के लिए गए। वहां गौ और वेद के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें कहीं, जिन में वास्तविकता का इतना ही सम्बन्ध है जितना अग्नि और शीत का। टंडन जी का यह रोग पुराना है। आर्य्यसमाज दीवानहाल, देहली के मन्दिर के उद्घाटन के अवसर पर भी श्रीमान ने कुछ ऐसी ही अनर्गल और बेतु की गप्पें हांकी थी। टंडन जी ने वेद कभी नहीं पढ़े किन्तु वेद पर अपनी सम्मति दे डालते हैं। हम आप के व्यक्तिगत विश्वास की बात नहीं कहते क्योंकि उस की चर्चा से कुछ और रहस्य खुलेगा। हम टंडन जी से इतना निवेदन करना चाहते हैं कि वे अपनी वाणी को संयम में रखें। यदि टंडन जी को अपने मन पर दुराग्रह है तो वे अपने उमंत के सम्बन्ध में इस अंक में प्रकाशित लेख को पढ़ें और मनन करें। राजर्षिपद को सफल करने के लिए किसी वेदज्ञ के चरणों में बैठ कर वे वेद पढ़ें, मनन करें और पुनः वेद के सम्बन्ध में कुछ बोलने का साहस करें।

धर्म्मनिरपेक्ष राज्य का चमत्कार—भारत का विभाजन दो जातियों के विभेद का सिद्धांत मान कर किया कराया गया। मुसलमान अपने लिये पृथक् देश मांगते थे, उन की काल्पनिक मिथ्या संख्या के आधार पर हिन्दुओं की जगत्प्रसिद्ध उदारता के अनुसार उन को न्याय्य भाग से भी अधिक भाग दे दिया गया। किन्तु उन्होंने हिन्दुओं का वहां रहना असंभव कर दिया। पापिस्थान की सब से अधिक मांग करने वाले मुसलमानों ने पापिस्थान जाना उचित न समझा, कुछ जो गये, उन में से अनेक आ चुके हैं और एक बड़ी संख्या वापस आने को तय्यार बैठी है। भारत में अन्न संकट के समान स्थान कष्ट भी है। पापिस्थान से आए हिन्दुओं के रहने की अभी पूरी व्यवस्था नहीं हो पाई कि पापिस्थान के समर्थक पुनः भारत में बुलाए जा रहे हैं। क्या इस से विस्थापितों की समस्या सुलझ जाएगी? हमें इस बात का ज्ञान है कि अनेक पाकिस्तानियों ने अपने परिवार पापिस्थान भेज रखे हैं और यहां उन्हों ने सम्पत्ति भी प्राप्त कर ली है और यहां भी अपनी सम्पत्ति का उपभोग कर रहे हैं। धर्म्म निरपेक्ष शासक आंखें मूंदे मस्त बैठे हैं।

जो मुसलमान यहां रह रहे हैं उन में हमें शालीनता का अभाव दीखता है। हिन्दू प्रधान देश में उन्हें गोहत्या में कोई संकोच नहीं है, उन के इस कुकृत्य के कारण कई स्थानों पर साम्प्रदायिक कलह भी हो चुके हैं। इस से भी हमारे धर्म निरपेक्ष शासकों के नेत्र खुलते प्रतीत नहीं होते। हम गोहत्या का विरोध धार्मिक दृष्टि के साथ आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से भी करते हैं। इस समय भारत में अन्न की विकट समस्या है। उस के साथ ही दूध की भी बहुत कमी है। क्या गोहत्या से यह दूध की कमी और अधिक न बढ़ेगी? क्या इस से गोघातकों को हानि नहीं पहुंचेगी? कृषि प्रधान देश में गोहत्या से कृषि कर्म में भी क्षति पहुँचेगी, जिस से सरकार की 'अन्न अधिक उपजाओ' योजना को बहुत बड़ा धक्का पहुँचेगा। सरकार और किसी दृष्टि से न सही, केवल अपनी 'अधिक अन्न उपजाओ' की योजना को सफल बनाने के लिये ही सही भारत में कानून द्वारा, गोहत्या बन्द कर दे, अन्यथा जो परिणाम होगा, उस के बताने की आवश्यकता नहीं है। सभी भारतीय गोहत्या विरोधी आन्दोलन आरंभ करके तब तक शान्त न बैठें, जब तक इस का निषेधकानून न बन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छप गया प्रकाशित हो गया

सांख्यदर्शन का इतिहास

जिस ग्रन्थरत्न की इतने काल से प्रतीक्षा हो रही थी, अन्तको वह छपकर आगया। इस ग्रन्थरत्न में सांख्यदर्शन की रचना का काल, रचयिता, तथा पुराने सांख्याचार्यों एवं सांख्य के नवीन संप्रदाय के प्रवर्त्तक ईश्वर कृष्ण तथा अन्य सांख्याचार्यों का प्रामाणिक इतिहास है। सप्तसिन्धु कहां हैं ? सरस्वती कहां थी। अब कहां है ? वर्तमानकाल में मिलने वाला सांख्यदर्शन ही सांख्यविषयक सब से पुराना ग्रन्थ है, इस सांख्यदर्शन के उद्धरण किन किन पुराने ग्रन्थों में मिलते हैं इत्यादि सहस्रों विषयों का निरूपण आप को इस ग्रन्थरत्न में मिलेगा। विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री जी के जीवनसार के अध्ययन का यह सार है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए० पी० एच० डी तथा डा० मंगलदेव शास्त्री एम० ए० डी० फिल ऐसे उद्भट विद्वानों ने इस की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि सांख्यदर्शन के संबन्ध में संसार की अन्य किसी भी भाषा में इतना बड़ा तथा प्रामाणिक ग्रन्थ आप को नहीं मिल सकता। ग्रन्थ की प्रति थोड़ी छपाई हैं। अतः मंगाने में शीघ्रता कीजिए। मूल्य ३०) तीस रुपये। डाकव्यय अतिरिक्त।

क्या आप गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं ?

यदि आप का उत्तर हां में है, तो क्या आप उसका अर्थ, उसका गौरव, उसके जप की विधि जानते हैं ? इन तथा इन जैसी अन्य आवश्यक बातों जानने के लिए सावित्रीप्रकाश नामक पुस्तक का स्वाध्याय कीजिए। उसके लेखक अध्यात्मविद्या के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ हैं। गायत्री मन्त्र की इतनी उत्तम व्याख्या आपको और कहीं नहीं मिलेगी। अनेक समाचार पत्रों तथा विद्वानों एवं साधकों ने उसकी प्रशंसा की है। इतनी गुणगणाढ्य पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया है, डाक व्यय इसके अतिरिक्त है।

मिलने का पता—

मन्त्री— विरजानन्द वैदिक संस्थान

ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्या आप आर्यों के परम धर्म का पालन करते हैं ?

ऋषियों का आदेश है—'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' वेद संस्कृत भाषा में हैं। लोग चाहते हुए भी इस कठिनता के कारण उस से लाभ न उठा सकते थे। ऋषि दयानन्द ने सब से पहले इस कठिनता को दूर किया। ऋषि से प्रेरणा पाकर उनके चरण चिन्हों पर चलने वाले श्री स्वामी वेदानन्द ने सर्वसाधारण के लिए वेद को सुलभ कर दिया है। एक दिन के लिए एक मन्त्र के विचारण से ३६६ मन्त्रों का संग्रह 'स्वाध्याय सन्दोह' नामक विशाल ग्रन्थ रच कर उन्होंने सर्वसाधार के लिए वेद का द्वार खोल दिया है। मन्त्रों की व्याख्या वेदमन्त्रों, उपनिषद्वचनों तथा अन्य अनेक ऋषियों के वचनों से पुष्ट की गई है। भाषा सरल, ललित है। साधारण जनता तथा लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने समान रूप से इस की प्रशंसा की है। समाचारपत्रों के सम्पादकों ने इसकी सराहना की है। यह बात सर्वसम्मत है कि संप्रति प्रतिदिन स्वाध्याय करने के लिए इससे उत्कृष्ट ग्रन्थ और कोई नहीं है। इतने विशाल ग्रन्थ का मूल्य केवल छः रुपये ६) है। डाक व्यय इससे पृथक् है। मंगाने को शीघ्रता कीजिए अन्यथा अगले संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह इसका दूसरा संस्करण है।

प्रार्थना करना सीखिए

प्रत्येक आस्तिक को प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। ऋषि ने साधारण जनों की सुविधा के लिए चारों वेदों से केवल आठ मन्त्र स्तुति प्रार्थना-उपासना के लिए संकलित किए हैं। आराधक प्रकार भी स्वामी वेदानन्द ने उनकी भावमयी व्याख्या लिखी है, जिसे पढ़ते समय पाठक तन्मय हो जाता है। आप भी उसे पढ़िये और आनन्द विभोर हूजिए, उसका नाम 'ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासनामन्त्राः' है। मूल्य केवल ढ़ाई आने, डाक व्यय पृथक्।

नैमित्तिक वैदिक पाठ

संकलन कर्ता—श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी तथा व्याख्याकर्ता श्री स्वामी वेदानन्द जी

पुराने आर्य्य प्रत्येक कार्य्य करते हुए भगवान् का स्मरण किया करते थे। उनका यह स्मरण वेद मन्त्रों के द्वारा होता था। श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने प्रत्येक अवसर के उपयोगी ऐसे मन्त्रों का संकलन कर दिया है। वेदों के मार्मिक विद्वान स्वामी वेदानन्द ने उनकी सुललित व्याख्या कर दी है। प्रत्येक आस्तिक वैदिक के पास यह पुस्तिका होनी चाहिए। मूल्य चार आने। डाक व्यय पृथक्।

मिलने का पता:—

मन्त्री, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर

मुद्रक—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय दीवान हाल दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

वेद-पथ

मासिक

वैदिक आचार--विचार--व्यवहार--प्रसारक

द्वितीय वर्ष | मधु=चैत्र २००७ वि० (१२६ द०)= मार्च१९५१ ई० | अष्टमांक

सम्पादक
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
विरजानन्द वैदिक
संस्थान
ज्वालापुर,
जि० सहारनपुर

जगद्गुरु महर्षि दयानन्द

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा
५≡)
वी० पी० द्वारा
५॥)
एक प्रति ।।)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

१. स्वाध्यायसूक्तिसंग्रह	श्रीमान् स्वामी वेदानन्द जी महाराज	२०५
२. ३३ देवता	श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज	२०६
३. ब्रह्म का स्वरूप (४)	श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री	२०८
४. वर्णसंकर	श्री पं० विश्वनाथ जी	२१२
५. भूखा कोई न मरे	श्रीमान् आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री	२१५
६. मन का शरीर पर प्रभाव	श्री माता प्रेमसुलभायती जी	२१
७. सत्यं शिवं सुन्दरम्	श्रीमान् म० लालचद्र जी	२१
८. श्रीमद्भगवद्गीता के सात श्लोक	कविराज गंगाचन्द्र जी	२२
९. अद्भुत प्रबोध	'प्रबोधानुगामी'	२२३
१०. महाधन शिरोमणि – पं० लेखराम जी सम्पादक		२२
११. सम्पादकीय		२२

卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐

आवश्यक सूचना

वेदपथ का आगामी अङ्क **नवसंवत्सराङ्क** होगा, जिस में नवीन स्फूर्ति देने वाले उत्तमोत्तम लेख होंगे। जो सज्जन प्रचारार्थ अधिक संख्या मंगवाना चाहें, वे अभी से व्यवस्थापक के साथ पत्रव्यवहार करें। एक प्रति का मूल्य १) होगा।

व्यवस्थापक

वेदपथ मासिक,

दीवान हाल देहली

卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐卐

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ० १।४१।४)

वेद-पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

द्वितीय वर्ष — देहली — मधु=चैत्र २००७ वि० (१२६ द०)= मार्च १९५१ ई० — अष्टमाङ्क

ओ३म्

स्वाध्याय सूक्ति संग्रह

[स्वामी वेदानन्द सरस्वती]

६७. अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे (ऋ० १।३६।१)

हम उत्तम रीति से कहे वचनों द्वारा नेता की कामना करते हैं।

६८. सत्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य (ऋ० १।३६।२)

हे सन्त्य=सन्त जी ! तू हमारे लिये इसी जीवन में उत्तम मन वाला होता हुआ इस संसार में जीवन संग्रामों में हमारा रक्षक=कार्यसाधक बन।

६९. दिवि स्पृशन्ति भानवः (ऋ १।३६।३)

तेजस्वी द्यौलोक को स्पर्श करते हैं।

७०. विभृसन्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् (ऋ० १।३६।९)

हे संगमनीय पवित्र प्रशस्त नेतः। हिंसा-रहित दर्शनीय धूम=आन्दोलन का सृजन कर।

७१. ऊर्ध्व ऊषुण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता (ऋ० १।३६।१३)

प्रकाशमान सविता की भांति हमारी कार्य सिद्धि के लिये ऊपर ही ठहर।

७२. कृधी न ऊर्ध्वं चरथाय (ऋ० १।३६।१४)

हमें ऊपर विचरने (उन्नत होने) को समर्थ कर।

७३. विदा देवेषु नो दुवः (ऋ० १।१३४।१४)

देवों के प्रति हमारी सेवा को जता।

७४. मा नः स रिपुरीशीत (ऋ० १।३६।१६)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

वह शत्रु हम पर शासन न करे।

७५. नि केतुना विश्वं समात्रिणं दह (ऋ० १।३६।१४)
ज्ञान के द्वारा सब भोगभावनाओं को जला।

७६. देवत्तं ब्रह्म गायत (ऋ० १।३७।४)
परमात्मा के दिये वेद का गान करो।

७७. वन्दस्व मारुतं गणम् (ऋ० १।३८।१८)
सैनिक समूह की वन्दना करो।

७८. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ! देवयन्तस्त्वेमहे (ऋ० १।४०।१)
हे वेदपते ! उठ ! दिव्य गुणाभिलाषी हम लोग तुझे चाहते हैं।

७९. यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति-श्रवः (ऋ० १।४०।४)
जो ज्ञानी मनुष्य को श्रेष्ठ मानवीय धन देता है, वह अखुट यश को प्राप्त करता है।

८०. नयन्ति दुरितं तिरः (ऋ० १।४१।३)
[ज्ञानीजन] दुरित को दूर कर देते हैं।

८१. न दुरुक्ताय स्पृहयेत् (ऋ० १।४१।९)
बुरी बात की स्पर्धा न करे।

८२. अप तं परिपंथिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्। दूरमधिस्रुतेरज (ऋ० १।४२।३)
उस विरोधी चोरी कुटिलता से भरे हुए को विदारण के अधिकार से दूर भगा।

८३. पदाभि तिष्ठ तपुषिम् (ऋ० १।४२।४)
दुःखदायी को पांव से दबा।

८४. पूषन्नवो वृणीमहे (ऋ० १।४२।५)
पुष्टिदातः प्रभो ! तेरी प्रीति को हम चुनते हैं।

८५. धनानि सुषणा कृधि (ऋ० १।४२।६)
धनों को उत्तम रीति से विभक्त कर।

८६. सूक्तैरभि गृणीमसि (ऋ० १।४२।१०)

हम सूक्तों=उत्तम वचनों के द्वारा बोलते हैं।

८७. अस्मे धेहि श्रवो बृहत् (ऋ० १।४४।२)
हमें महान् यश दे।

८८. जीवसे नमस्या दैव्य जनम् (ऋ० १।४४।५)
जीवन के लिये दैव्य जन को नमस्कार कर।

८९. शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः (ऋ० १।४४।१४)
मरुत् स्तोम=स्तुति समूह को सुनें।

९०. यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् (ऋ० १।४५।
उत्तम यज्ञ वाले, तेजस्वी मानव पुरुष की संगति कर।

९१. प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् (ऋ० १।४५।३)
अत्यन्त बुद्धिमान् की बात=पुकार सुन।

९२. इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरासदय वसो (ऋ० १।४५।
हे धनिन् ! आज यहां तू दैव्य जन को आसन पर बिठा।

९३. विश्वस्य हि प्राणनं जीवनम् (ऋ० १।४८।१०)
प्राण लेना ही संसार का जीवन है।

९४. उषो भद्रेभिरा गहि (ऋ० १।४९।१)
प्रभात भलाइयों के साथ आ।

९५. त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः (ऋ० १।५१।५)
शठे शाठ्यं समाचरेत्।

९६. सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे (ऋ० १।५१।६)
तू सदा से दस्यु हत्या के लिये समर्थ है।

९७. न दुष्टुति द्रेविणोदेषु शस्यते (ऋ० १।५३।१)
धन-दाताओं की निन्दा अच्छी नहीं होती।

९८. अकामकर्शनः सखा सखिभ्यः (ऋ० १।५३।
मित्र मित्रों की कामनाओं का घातक नहीं होता।

९९. मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः (ऋ० १।
अपने अभिलाषी भक्त की कामना का विघात तू नहीं करता।

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३३ देवता

श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

वेद में ३३ देवता लिखे हैं यथा—

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्

(ऋग्वेद ८।२८।१)

त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन्

प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत्। (यजु० १४।३१)

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा।

(अथर्व० १०.७।२३)

त्रयस्त्रिंशद् देवताः। (अथर्व० १६।१७।१०)

यह ३३ देवता कौन से हैं? शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ चन्द्र, १ नक्षत्र—यह ३३ देवता हैं।

अब प्रश्न है-८ वसु कौन से हैं ? इस में अनेक मत हैं, यथा:—

अग्निश्च जातवेदाश्च सहोजा अजिरा प्रभुः।
वैश्वानरो नर्यपाश्च पंक्ति राधाश्च सप्तमः।
विसर्पैवासृमोऽग्नी नामेतेऽष्टो वसवः क्षितौ।

(तैतिरीयारण्यक १।६।१)

अग्नि, जातवेदः, सहोजा अजिरा, वैखाना, नर्यपाः पंक्तिराधः विसर्पो—यह आठ वसु भूमि पर ही हैं। अर्थात् यह आठ नाम अग्नि के ही हैं। यही आठ प्रकार की अग्नि आठ वसु माने जाते हैं।

महाभारत में ऐसा लिखा है:—

धरो ध्रुवश्च सोमश्च सावित्रोऽथानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवाऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥

महाभारत अनुशासन पर्व अ० १५० श्लोक १६ धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु हैं।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है:—

कतमे वसवः इति—अग्निश्च पृथिवी च, वायुश्चान्तरिक्षं च, आदित्यश्च द्यौश्च, चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसवः, एतेषु हीदं सर्वं वसु हितमेते हीदं सर्वं वासयन्ते, तद्यदिदं सर्वं वासयन्ते—तस्माद् वसवः

(शतपथ १४.५.७।४)

वसु कौन हैं? अग्नि पृथिवी, वायु अंतरिक्ष आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, नक्षत्र—यही आठ वसु हैं। इन में ही ये सब बसते हैं, सब को वासस्थान देते हैं, इस लिये इनका नाम वसु है।

इस प्रकार वसु के अर्थ वास स्थान देने वाला मान कर वसु संज्ञा हुई है।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास के अंत में शतपथ का पाठ प्रश्न उठा कर दिया है:—

"(प्रश्न) सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उन में मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ?

(उत्तर) ये सब भूगोल, लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती है। क्योंकि

"एतेषु हीदं सर्वं वसु............

(शतपथ कांड १४ प्रपाठक ६ ब्रा० ७ कं० ४)

तैत्तिरीयारण्यक में केवल अग्नि के आठ भेदों को वसु माना गया है। उस का भाव यही है कि देवता शब्द के अनेक अर्थ हैं, उन अर्थों में प्रकाशक अर्थ को मुख्य मान कर अग्नि के आठों भेदों को वसु मान लिया है।

इसी प्रकार महाभारत में कथित वसु भी अग्नि के नाम ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि उसमें किसी को बसाने की चर्चा नहीं है।

शतपथ कार के बसाने वाले होने से इन का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नाम वसु है, यह अर्थ मानकर जहां २ सृष्टि संभव है, उन सब को वसु बताया है। इस प्रकार वस्तुभेद और नामभेद के निर्देशक होने पर भी ये सर्व लेख निर्दोष ही हैं।

रुद्र और आदित्य आदि अन्य देवताओं के विषय में फिर कभी लिखूंगा।

ब्रह्म का स्वरूप

विद्याभास्कर श्री उदयवीर शास्त्री जी

(४)

जीवात्मा की तृतीय अवस्था सुषुप्ति बताई गई है। दूसरी स्वप्न अवस्था केवल मन की सक्रियता पर आधारित है, यह पिछली पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है। इस तृतीय अवस्था में मन का भी कोई व्यापार नहीं रहता, बाह्य इन्द्रियों से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है, विद्वानों के कथनानुसार उतने समय तक मन पुरीतत् अथवा सुषम्णा नाड़ी में चला जाता है, और सर्वथा अपने कार्य से विश्राम लेने की स्थिति में रहता है, संसार में आत्मा को जितने भी सुख दुःख आदि भोगों की उपलब्धि होती है, उस का कारण मन को ही माना गया है—'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः'। मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष इन दोनों अवस्थाओं के लिये मन को ही एक साधन बताया गया है। जब यह मन सांसारिक बाह्यविषयों की ओर आकृष्ट होकर आत्मा को उधर खींच ले जाता है, तब यह उसके बन्ध अर्थात् सांसारिक सुख दुःख आदि की प्राप्ति का कारण बनता है; परन्तु जब विषयों से हट कर शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य आदि सम्पत्ति का लाभ कराकर समाधि अर्थात् आत्म-साक्षात्कार की ओर प्रयत्नशील आत्मा का सहकारी रहता है, तब यह मोक्ष का भी कारण हो जाता है। अभिप्राय यह है कि जीवात्मा का कोई भी कार्य मन की सहकारिता के बिना संभव नहीं, अर्थात् जब तक किसी के प्रति कामना-इच्छा न हो, तब तक कोई क्रिया हो नहीं सकती।

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्
यद्यद्धि कुरुते किञ्चत् तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥
मनु०२।४

कामना के बिना किसी क्रिया का होना संभव नहीं, और कामना मन के सहयोग के बिना हो नहीं सकती, इसलिये प्रत्येक सुख-दुःख अथवा मोक्ष की प्राप्ति के लिये मन का सहयोग आवश्यक है। अब यह देखना चाहिये कि सुषुप्ति अवस्था में मन अपना क्या सहयोग देता है।

यह बताया गया है कि इतने समय के लिये मन पुरीतत अथवा सुषुम्णा नाड़ी में चले जाने पर बाह्य इन्द्रियों के सम्पर्क से विच्छिन्न हो जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि सुषुप्ति अवस्था वही है, जहां बिना प्रयास मन का व्यापार रुद्ध हो जाय। जहां प्रयत्नपूर्वक चित्तवृत्तियों का निरोध करके ऐसी अवस्था प्राप्त की जाय, उस का नाम योग अथवा समाधि कहा जाता है। फलतः अपने आप को अपने व्यापार से दूर कर लेना ही सुषुप्ति अवस्था के उत्पादन में मन का सहयोग कहा जा सकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वस्तुतः मन सुषुम्णा में रहता है, अथवा अन्यत्र—इसका साक्षात्कार तो योगी जन ही कर सकते हैं, परन्तु इतना स्पष्ट है कि इस अवस्था में कोई भी व्यक्ति बाह्य आघातों अथवा विषयजन्य सुख दुःख आदि से उतने समय के लिये दूर हो जाता है। इस स्थिति को लोक में गहरी निद्रा के नाम से भी पुकारा जाता है, जब इस अवस्था को पार कर जागरित अवस्था में अपनी आंखें खोलता है, तब उसे सुषुप्ति के निर्बाध आत्मीय आनुकूल्य का भान होता है, वह याद करता है—मैं इतने समय तक आनंद पूर्वक सोया हूं, मुझे कुछ भी बाह्य विकारों के आघात का अनुभव नहीं हुआ। यह प्रतीति सुषुप्ति अवस्था में मन के व्यापार के अभाव को प्रकट करती है। उतने समय न कोई संकल्प उठाता है, और न किसी तरह के राग-द्वेष आदि का ही ज्ञान होता है। केवल आत्मा चैतन्य की ही स्थिति उस समय रहती है, जो हमारे तत्कालीन व्यवस्थित प्राण संचार से प्रमाणित होती है। सुषुप्ति अवस्था का यह स्वरूप, माण्डूक्य की पञ्चम कण्डिका द्वारा निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया गया है:—

> यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते,
> न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् ।
> सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवा-
> नन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥५॥

जब गहरा सोया हुआ किसी भी तरह के संकल्प विकल्प की कामना नहीं करता, न किसी तरह के स्वप्न को ही देखता है, वह अवस्था सुषुप्ति है। सुषुप्ति अवस्था में यह आत्मा एकाकी रहता है, एकाकी रहने का अभिप्राय यही है कि इस समय बाह्य इन्द्रियों के सहयोग से मन इस को विषयों की ओर आकृष्ट नहीं करता, और न वासनाजन्य भोगों को ही उपस्थित करता है, फलतः यह केवल चेतन रूप में ही प्रकट रहता है, जो उसका अपना वास्तविक अस्तित्व है। ऐसी स्थिति में जब वहां बाह्य सुख-दुःख राग द्वेष आदि विकार तथा भावना भी जागरित नहीं रहतीं, तब उसे ठीक ही 'आनन्दमय' तथा आनन्द-भुक् कहना चाहिये।

'आनन्द'—यह केवल परमात्मा का वास्तविक रूप है, यह रूप उसका इसीलिये है क्योंकि वह प्राकृतिक बन्धनों अथवा विकारों से सर्वथा अलिप्त है, जब जीवात्मा के साथ भी कुछ समय के लिये इन विकारों का जिस-किसी रूप में भी सम्पर्क न रह रहा हो, तब इस की भी उस अवस्था को ईश्वरीय स्थिति से संतुलन करके प्रकट किया जाता है। इसी दृष्टि से यहां जीवात्मा को 'आनन्दमय' कहा गया है। सुषुप्ति अवस्था में और किसी भी तरह का भोग न होने तथा केवल चैतन्यात्मक अपने रूप का भान होने के कारण, जीवात्मा को 'आनन्द-भुक्' कहना सर्वथा उचित है, यह उतने समय में हर तरह के झंझट से अलग हुआ२ एक प्रकार के अलौकिक आनन्द का ही उपभोग करता है।

इस बात को प्रथम कहा जा चुका है, कि सुषुप्ति अवस्था में मन सहित इन्द्रियों का कोई व्यापार नहीं रहता, पहली दोनों अवस्थाओं में किसी न किसी तरह का इनका व्यापार बना ही रहता है, इस लिये उन अवस्थाओं में जीवात्मा 'एकोनविंशतिमुखः' कहा गया है, इसके भोग के लिये उन्नीस द्वार साधन रूप में खुले रहते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं। परन्तु सुषुप्ति में वे सब रुके रहते हैं। यहां केवल एक ही भोग का द्वार है, और वह है-आत्मा का अपना रूप चै-तन्य। उस समय चैतन्य का अस्तित्व ही भान और भान का साधन है। इसलिये इस अवस्था में जीवात्मा 'चेतोमुखः' कहा गया है। तथा इसी आधार पर यहां इस का नाम 'प्राज्ञ' है। यह जीवात्मा की तृतीय अवस्था कही जाती है।

इन के अतिरिक्त लोक में जीवात्मा की और भी—मूर्च्छा तथा समाधि आदि अवस्थाएं देखी जाती हैं। उपनिषद् में इनका पृथक् वर्णन नहीं किया गया, क्योंकि वर्णित अवस्थाओं में ही इनका भी समावेश हो जाता है। मूर्च्छा का सुषुप्ति में, और समाधि का मोक्ष अवस्था में समावेश समझना चाहिये। प्रथम दोनों अवस्थाओं में उतने काल के लिये आत्मा के दुःखादि रहित होने पर भी उसे विवेक अथवा स्वसाक्षात्कार नहीं होता। अभिप्राय यह है, कि इन दोनों अवस्थाओं के बीतने पर जब जागरित अवस्था में जीवात्मा होता है, वह अविवेकी अथवा अज्ञानी ही रहता है। तथा इन दोनों ही अवस्थाओं के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। अन्तिम दोनों अवस्थाओं में जीवात्मा विवेकी होता है, वह प्रकृति पुरुष के भेद का साक्षात्कार कर लेता है। इसलिये समाधि लगाने वाले योगियों को 'जीवन्मुक्त' भी कहा जाता है।

अब तक एक ही शरीर में अनुभव होने वाली जीवात्मा की तीन अवस्थाओं का वर्णन किया गया। इन तीनों अवस्थाओं को जन्म-जन्मान्तरों में जीवात्मा बराबर अनुभव करता रहता है। चौथी अवस्था को इस स्थूल शरीर के साथ उसी समय अनुभव करता है, जब उसे प्रकृति-पुरुष के भेद का ज्ञान अथवा आत्म-साक्षात्कार हो जाता है। यह साक्षात्कार होने पर जब तक वह स्थूल शरीर बना रहता है, आत्मा जीवन्मुक्त कहलाता है, फिर यथावसर शरीर का पात हो जाने पर वह जीवात्मा परान्त-काल-पर्यन्त मोक्ष आनन्द का अनुभव करता है। उस समय में उस के साथ किसी तरह का भी शरीर या इन्द्रिय आदि साधन नहीं रहते; परन्तु आत्म-साक्षात्कार की इतनी प्रबल शक्ति उसमें हो जाती है, कि वह बिना ही किसी साधन के उस अलौकिक आनन्द का अनुभव कर सकता है। उस आनन्द के अनुभव की अवधि अत्यधिक है, इसलिये शास्त्रों में कहीं कहीं उस आनन्दानुभव को नित्य अथवा अनन्त कह दिया गया है। यह एक ध्यानपूर्वक विचारणीय बात है, कि एक शरीर के साथ कोई भी व्यक्ति जितने भी ज्ञान का सम्पादन करता है, अथवा जिन किन्हीं वस्तुओं या तत्त्वों का साक्षात्कार करता है, उस ज्ञान अथवा साक्षात्कार का प्रकाश एक परिमित काल तक ही अपने पूर्ण अस्तित्व में रहता है, फिर धीरे २ उस में अनेक प्रकार की शिथिलता आ ही जाती है। यह आत्म-साक्षात्कार का प्रकाश अति प्रबल है। यदि और ज्ञान अथवा वस्तुसाक्षात्कार चालीस पचास या सौ वर्ष अथवा उससे भी और अधिक समय तक अपना चमत्कार दिखाते हैं, तब यह आत्मसाक्षात्कार अरबों-खरबों वर्षों तक अपना अस्तित्व स्थिर रख सकता है, उसके अनन्तर इस में भी शिथिलता आने लगती है, और वह विवेकी आत्मा धीरे २ पुनः अविवेक की ओर अग्रसर होने का अवसर पा जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस परान्त कालावधिक आनन्दानुभव के लिये ही आत्मा सततप्रयत्न शील रहा करता है, जब हम कुछ क्षणों तक ही रहने वाले वैषयिक सुखों के लिये, संसार में न मालूम कितने तूफ़ान खड़े करते रहते हैं, तब इस परान्त काल पर्यन्त आनन्दानुभव के लिये प्रयत्न शील रहना कोई टोटे का सौदा नहीं। शास्त्रकारों ने अतिरंजन रूप में इस को निरवधिक अथवा अनन्त कह कर इस की ओर आत्माओं के आकर्षण का ही मार्ग खोला है। परन्तु यह भी एक समस्या है कि उस अलौकिक आनन्दानुभव की अभिव्यक्ति को किस प्रकार जिज्ञासु के सन्मुख उपस्थित किया जाय। इस समस्या को सुलझाने के लिये महर्षि कपिल ने अपने ग्रन्थ सांख्य-दर्शन में एक सूत्र लिखा है—

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ॥५।११६॥

समाधि, सुषुप्ति और मोक्ष में जीवात्मा की ऐसी ही स्थिति होती है जैसी ब्रह्म की स्थिति स्वभावतः रहती है। सुषुप्ति अवस्था का वर्णन ऊपर कर दिया गया है, उससे स्पष्ट है कि जीवात्मा उस अवस्था में बाह्य विषयजन्य किसी प्रकार के भी अघात का अनुभव नहीं करता, वह एक अतिशय अनुकूल स्थिति का ही अनुभव वहां करता है, ब्रह्म तो किसी प्रकार के भी प्राकृतिक आघातों से सर्वदा ऊपर है। इतने ही अंश में सुषुप्ति की समानता ब्रह्म से की जाती है। परन्तु समाधि अवस्था में इस से कुछ विशेषता रहती है, और वह यह कि वहां उस अतिशय आनुकूल्य अथवा अलौकिक आनन्द का अनुभव ज्ञानपूर्वक होता है। उस अनुभव से मोक्ष रूप ब्रह्मानन्द के अनुभव का कुछ अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। यद्यपि समाधि अवस्था में ठीक ही उस अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है, परन्तु समाधि हटने पर शरीराश्रित लौकिक व्यापार साधने ही पड़ते हैं, मोक्ष में यह बाधा भी दूर हो जाती है, इस से स्पष्ट होता है कि ब्रह्मानन्द ही मोक्ष है। जीवात्मा जब इस अवस्था में पहुँचता है, तब वह भी मोक्ष अथवा उस आनन्द को भोगता है।

इस से यह परिणाम निकलता है कि जीवात्मा की चतुर्थ अवस्था वही है, जो ब्रह्म का रूप है। इस अवस्था का वर्णन करने के लिये यही आवश्यक है कि ब्रह्म-रूप का वर्णन किया जाय। ब्रह्म का वर्णन शास्त्रों में दो प्रकार से किया जाता है—एक विधि रूप में, दूसरा निषेध-रूप में। विधि-रूप वर्णन इस प्रकार का होता है,कि परमात्मा सत् चित् आनन्द स्वरूप है, सर्वज्ञ है सर्वान्तर्यामी है, जगत् के उत्पत्ति स्थिति प्रलय का कर्त्ता है, सब का नियन्ता व पालक है इत्यादि। निषेध रूप वर्णन इस प्रकार का है—कि वह अजन्मा है, निर्विकार है, निरंजन है, निस्त्रैगुण्य है, न बहिःप्रज्ञ है, न अन्तः प्रज्ञ है, न उभयतः प्रज्ञ है, न वह इन्द्रियों से देखा जाता है, न उस के साथ कोई व्यवहार किया जाता है, वह अग्राह्य है, अचिन्त्य है, अलक्षण है, अव्यपदेश्य है...इत्यादि। इन सबके आधार पर उस की वास्तविक स्थिति को समझने का यत्न किया जाता है। शब्द-मात्र से कह देना या जान लेना अलग बात है, वस्तुतः जिन व्यक्तियों ने इस स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया होता है, वे ही इस चतुर्थ अवस्था का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनुभव कर पाते हैं। इसी अर्थ को माण्डूक्य की छठी और सातवीं कण्डिकाओं में इस प्रकार प्रदर्शित किया है:—

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्यप्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ६॥॥

नान्तः प्रज्ञं नः बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शांतं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥

यह बात पहिले स्पष्ट की जा चुकी है कि जीवात्मा की चतुर्थ अवस्था मोक्ष, ब्रह्म का ही रूप है, अतएव उस अवस्था का वर्णन करने के लिये दो कण्डिकाओं के द्वारा ब्रह्मरूप का संकेत किया गया है। पहली कण्डिका में ब्रह्म का विधिरूप वर्णन है। यह परमात्मा सब का नियन्ता, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी और सब का आधार है, सब भूतों के उत्पादन और प्रलय का करने वाला है ॥६॥

अब दूसरी कण्डिका में ब्रह्म का निषेधरूप से वर्णन है, वह जीवात्मा की तरह। न बहिःप्रज्ञ है, न अन्तःप्रज्ञ, न अभयतःप्रज्ञ है, न उस में प्रज्ञान की न्यूनाधिकता का उल्लेख किया जा सकता है—जैसे कि जीव-धर्म में देखा जाता है। न वह आंखों से देखा जाता है, न व्यवहार किया जाता है, न अन्य इन्द्रियों से ही गृहण किया जाता है, न उस के कोई चिन्ह हैं, न वह बुद्धि से चिंतन किया जाता है, न वह वाणी से कहा जाता है। वह एक व्यापक ज्ञान-स्वरूप तत्त्व है, जहां सब त्रिगुणात्मक प्रपंच समाप्त हो जाता है, वह शांत कल्याणकारी एक मात्र पर ब्रह्म है, उसी को चतुर्थ मानते हैं। वह सर्वव्यापक तत्त्व है, उसीका साक्षात्कार करना चाहिये ॥७॥

इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि जीवात्मा की चतुर्थ अवस्था पर ब्रह्म की प्राप्ति ही है। यह जीवात्मा का परमलक्ष्य है, यही मोक्ष है। यह अपनी पहली अवस्थाओं को भोगता तथा उन्हें साधन बनाता हुआ, इसी चतुर्थ अवस्था की प्राप्ति के लिये सदा ही प्रयत्नशील रहता है। [क्रमशः]

वर्ण सङ्कर

[श्रीमान् पं० विश्वनाथ जी आर्य्योपदेशक]

वेदों में चारों वर्णों का तो उल्लेख है, वर्ण संकर का नहीं। कदाचित् जैसे सृष्टि में स्वयमेव तो एक जाति ही की सन्तान उत्पन्न होती है, परन्तु मनुष्य ने खच्चर आदि वर्ण संकर पशु-जाति के लिये स्वयं यत्न किया, ऐसे ही स्मार्त वर्ण सङ्करता का प्रादुर्भाव हुआ। वर्ण सङ्कर को बहुत घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, परन्तु वर्ण संकरता क्या होती है, इसे बड़े वड़े पौराणिक विद्वान् भी नहीं जानते। यदि जान लें तो अपने में लज्जा का अनुभव करने लगें, अथवा इसे एक साधारण बात समझने लगें मनुस्मृति में तीन प्रकार की वर्ण सङ्करता कही है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यभिचारेण वर्णानामवेवेद्यादनेन च ।
स्वकर्मणाञ्च त्यागेन जायन्ते वर्ण संकरः

वर्णों के व्यभिचार, वर्जित स्त्रियों से विवाह और वर्णोचित कर्मों के त्याग से वर्णसङ्कर उत्पन्न होते हैं। वर्णों के व्यभिचार का एक अर्थ तो यह है कि विवाह के बिना दुराचार के रूप में स्त्री पुरुष के अनुचित सम्बन्ध से उत्पन्न हुई सन्तान। श्री मद्भगवद्गीता में भी इसी से ही अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी को कहा है:—

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ।

अर्थात्—व्यभिचारिणी दुष्ट स्त्रियों से वर्ण सङ्कर उत्पन्न होता है। परन्तु प्रश्न उत्पन्न होता है। कि वर्णसङ्कर सन्तान के माता पिता ने पाप किया, किन्तु सन्तान का क्या अपराध है? सृष्टि नियम विवाह के बाध्य नहीं समर्थ स्त्री पुरुष के सहवास से सन्तान होगी ही और माता-पिता के अनुरूप ही होगी। मानव में होने वाले सब गुण भी उस में होंगे। हां, पालन पोषण और शिक्षा का पूरा प्रबन्ध स्यात् न हो। परन्तु संसार के अधिकांश महापुरुष पहले अनाथ ही थे। अतः कोई ऐसा बालक द्विज तो क्या, ऋषि भी बन सकता है। महापुरुषों की उत्पत्ति तो तप से होती है।—

महात्मनां समुत्पत्तिस्तपसा भावितात्मनाम् ।
(महाभारत शा० २९६-१२)

सत्यकाम की कथा प्रसिद्ध है, जब अपनी माता से (गुरु से यज्ञोपवीत लेने के लिये) अपना गोत्र पूछने गया, तो मां ने कहा "परिचारिणी यौवने त्वामालमे" (छांदोग्य ५·४) सेवा करते हुए मैंने यौवन अवस्था में तुझे प्राप्त किया, अतः मैं अपने और तुम्हारे नाम के सिवाय कुछ नहीं जानती। सत्यकाम ने गुरु से जब इस प्रकार कह दिया तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—इस प्रकार सत्य की बात जो अपने पर कलङ्क लगाती हो, ब्राह्मण ही कह सकता है। ऐसा स्वभाव रखने वाला ही ब्राह्मण बनता है। यह कह कर गुरुने उसे यज्ञोपवीत दे दिया। हमारे पौराणिक महानुभाव कह देते हैं कि वह व्यभिचार की सन्तान नहीं, प्रत्युत विवाहित ब्राह्मण माता-पिता का पुत्र था, उस के सत्य बोलने से गुरु को यही विदित हुआ। परन्तु यह बात निम्न तर्कों से सर्वथा मिथ्या सिद्ध होती है—(१) ब्राह्मण वंश में, क्या बालक और क्या युवा-वृद्ध दूसरे वर्णों ही की भांति झूठ बोलते हैं इस विषय में उनमें तनिक भी विशेषता नहीं पाई जाती, और सत्य बोलने वाले भी सभी वंशों में मिल जाते हैं। (२) सत्यकाम की माता जाबाला का परिचर्याकर्म उसे स्पष्ट शूद्र जाति की सिद्ध करता है। (३) एक ब्राह्मणी अपने गोत्र से अनभिज्ञ नहीं रह सकती—(४) कोई भी स्त्री कितनी काम में लगी हो अपने पति को भूल नहीं सकती (५) उसने तो अपने पति के मरने जीने का कुछ भी परिचय नहीं दिया। अतः सिद्ध है, कि प्राचीन समय में यद्यपि व्यभिचार को एक महापातक समझा जाता था, और इसके लिये कड़ा दण्ड भी था जिस कारण हमारे राजा गौरव के साथ कह सकते थे कि "नस्वैरी स्वैरिणी कुतः" मेरे राज्य में कोई दुराचारी स्त्री पुरुष नहीं है—परन्तु यदि कोई ऐसी घटना हो जावे तो सन्तान को अपने गुण कर्मानुसार ही सब अधिकार प्राप्त हो जाते थे।

अंग्रेजों ने अपनी सभ्यता को भारत पर लाद दिया। और व्यभिचार का अर्थ स्त्री की इच्छा न होने पर उससे बलात्कार भोग करना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रह गया। उसकी अपनी इच्छा हो तो किसी अवस्था में भी यह अपराध नहीं समझा जाता। इसका परिणाम यह है कि योरोप की भांति यहां भी व्यभिचार बढ़ रहा है, हमारे शास्त्रों में विवाह सम्बन्ध के बिना किसी प्रकार से भी स्त्री पुरुष का सहवास अपराध है और स्त्री पुरुष दोनों दण्डय है। शोक है कि इस धारा में कोई संशोधन नहीं हुआ। इससे भारत में प्राचीन वैदिक संस्कृति की आशा वृथा ही है।

मेरे विचार में हिन्दु कोड बिल के स्थान पर भारतीय कोड बिल पास होना चाहिये जिसमें स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में एक पत्नी से एक समय विवाहादि की धारा के साथ ही उपर्युक्त धारा में भी परिवर्त्तन होना चाहिये।

वर्णव्यभिचार का दूसरा अर्थ है असमान वर्ण में विवाह, परन्तु अनुलोम विवाह की तो स्मृतिकारों ने आज्ञा दे ही रखी है।

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृता।
तेच स्वाचैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्र जन्मनः मनु० ३-१३

शूद्र की स्त्री शूद्र ही हो, वैश्य की वैश्या और शूद्रा दोनों, क्षत्रिय की ब्राह्मणी छोड़ तीनों और ब्राह्मण की चारों वर्ण की भार्या हो सकती हैं। परशुराम जी की माता मही दोनों क्षत्रिया थीं। इन्हें वर्णसंकर नहीं माना गया। आजकल तो उन्हें बिरादरी से छेंक दिया जाता। परशुरामजी की महिमा बहुत गाई जाती है, परन्तु उनके जीवन से शिक्षा नहीं ली जाती। प्रतिलोम विवाह को अनुचित समझा गया है और इससे उत्पन्न हुई सन्तान को वर्णसंकर कहा गया है, यथा—

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहिकस्तथा।
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मबहिष्कृतः।
(भविष्य० उत्तर० ४-१६-६२; याज्ञ०३)

ब्राह्मी में क्षत्रिय के वीर्य से सूत, वैश्य से वैदेहिक, शूद्र से चाण्डाल वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं। यह समझ नहीं आती कि जब ब्राह्मण से शूद्र में ब्राह्मण उत्पन्न होगा तो ब्राह्मणी में शूद्र से इतनी घृणित सन्तान क्यों? और जब सूत आदि स्वतन्त्र जातियां विद्यामान थीं, तो इस प्रकार सूत आदि वर्ण संकरों की उत्पत्ति की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। मेरे विचार में जब जन्म से जाति की प्रथा चली, तब सूत आदि जातियां जिन से घृणा की जाती थी, उन्हें वर्णसंकर सिद्ध करने के लिये उपर्युक्त स्मार्त्त ठप्पा लगा दिया गया। अन्यथा—

यदुं तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत। भा० स्क० ८अ० २२
यदोर्वंशं नरः श्रुत्वः सर्व पापैः प्रमुच्यते भा० ६ स्क० २३

राजा ययाति चन्द्रवंशी का विवाह शुक्राचार्य ब्राह्मण की कन्या देवयानी से हुआ। देवयानी से यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। यदु की सन्तान से क्षत्रियों का यादव वंश चला, जिसमें श्रीकृष्ण जी का भी जन्म हुआ अतः पुराण ने यह भी लिखा कि इस वंश की कथा सुन कर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। यदि स्मृतियों की वर्णसंकरता की बात कभी चालू हुई होती, तो यादव वंश भी एक सूत वंश होता परन्तु वह तो ययाति पिता की क्षत्रिय जाति ही के कहलाये।

अवेद्यावेदन का अर्थ माता के सपिण्ड और पिता के गोत्र में विवाह के हैं। विज्ञान की दृष्टि से विवाह जितना भी दूर हो, उतना ही प्रशस्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होगा। परन्तु विशेष अवस्था में अथवा देशकाल के रिवाज से यह बन्धन भी दृढ़ नहीं रह सका। अर्जुन का विवाह अपने मातृकुल में सुभद्रा से हुआ। उसी से वंश चला और परीक्षित्, जनमेजय आदि क्षत्रिय ही बने रहे, वर्णसंकर नहीं कहलाये। पञ्जाब के पश्चिम में रहने वाले अरोड़वंश में भी मामी की लड़की से विवाह का बहुत रिवाज हो गया था। मनुजी ने भी कहा है:—

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥(मनु० ३।५)

जो माता के सपिण्ड में और पिता की सगोत्रा न हो विवाह के लिये द्विजों में वह प्रशस्त कन्या है। अर्थापत्ति से शूद्रों में सामान्य रूप में और द्विजों में विशेष अवस्था में सगोत्र विवाह अथवा माता के पिण्ड में गर्हित न होगा। प्राचीन काल में न केवल चन्द्रवंश, प्रत्युत यादव वंश में भी परस्पर विवाह हुए।

शेष रह गई स्वकर्म त्याग से वर्ण-संकरता। जब कोई अपने वर्ण के अनुकूल कर्म करता ही नहीं, तो वह उस वर्ण का क्यों कहा जावे? स्ववर्ण भ्रष्ट हो कर वह वर्णसंकर ही कहलायेगा। मेरे विचार में यथार्थ वर्णसङ्करता यही है। उपर्युक्त वर्णसङ्करता का मनु में इस लिये वर्णन हुआ कि उन का कर्म-भ्रष्ट होना सम्भव है। श्रीकृष्ण जी ने भी इस कर्मभ्रष्ट वर्णसङ्करता का गीता के तीसरे अध्याय में लोक-संग्रह का उपदेश करते हुए वर्णन किया है:—

उत्सीदयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥

हे अर्जुन! यद्यपि मुझे (परम विवेकी होने से) कर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं, तो भी मैं कर्म करता हूं। अन्यथा लोग भी कर्म भ्रष्ट होकर वर्णसङ्कर बन कर नष्ट हो जावें।

यदि इस धारणा पर भारत के वर्णस्थ लोगों की परख की जावे, तो चारों ओर वर्णसङ्कर ही वर्णसंकर दिखाई पड़ेंगे। क्या ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने का अभिमान करने वाले अपने २ वर्ण के कर्म कर रहे हैं? कहां हैं वर्णाश्रम-संघा? तनिक इस स्मार्त धर्म की कसौटी पर वर्णसङ्करता से बच कर तो दिखायें; अन्यथा इस जात-पात के बखेड़े को कि जिसने भारत को दासता की कड़ी में जकड़ कर चकनाचूर कर दिया और अब देश के स्वतन्त्र हो जाने पर भी जो पांव का पत्थर बना हुआ है जो दुःख सागर से पार नहीं होने देता!—विवेक की अग्नि से इस अज्ञान को भस्मसात् कर के, प्राचीन आर्ष मानवधर्म का प्रचार कर के भारत का उद्धार करें, यही सब का कर्त्तव्य है।

भूखा कोई न मरे

[श्रीमान् आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी, पंचवटी, नासिक]

दुनियां जब से उत्पन्न हुई गरीबी, अमीरी चली आ रही हैं। परन्तु दोनों भाई भाई के रूप में रहती आई। कुछ दिनों से दो विभक्तियों के रूप में ये परिवर्त्तित हो कर संघर्ष का रूप धारण करना चाहती हैं। इस का प्रधान कारण स्वार्थप्रवृत्ति और कुछ पाश्चात्य इज्मों की चहल पहल है। जहां वाद तो बहुत खड़े हो जायें और पालन करने वाले अथवा कर्मशील

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

व्यक्ति कम हों, वहां पर ऐसी अवस्था का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वास्तव में देखा जावे तो शासन-सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य यही है कि प्रत्येक नागरिक को उसके नागरिक अधिकारों को निर्बाध भोगने की स्वतन्त्रता हो। जहां इस में तनिक भी हस्तक्षेप हुआ, क्षोभ का वातावरण तत्काल पैदा हो जाता है। परन्तु इन अधिकारों के साथ साथ इन से मुख्य जीवन निर्वाह का अधिकार है—जो प्रत्येक को प्राप्त होना चाहिये। अच्छी व्यवस्था वही है जिस में कोई भूखा न मरता हो, अधिक खाने से भले ही कोई मर जावे। ऋग्वेद १०।११७।८ का यह वाक्य-खण्ड--नवा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुः। उताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः। इसी भावना का संकेतक है। इस मन्त्र-वाक्य का यह भाव स्पष्ट है—संचालक विद्वानों को ऐसा संचालन करना चाहिये कि कोई भूखा न मरे अधिक खाने से भले ही कोई मर जावे। कितना उत्तम उपदेश है और कितना महत्त्वपूर्ण! राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को इसी के अनुरूप प्रयत्न करना चाहिये, जिससे लोगों की सुख समृद्धि बढ़े। किसी देश का विद्वद्वर्ग उस का नेता समझा जाता है। उस का यह परम कर्त्तव्य है कि वह सदा नये जन-वर्ग को उस की आने वाली कठिनाइयों की सूचना देता रहे। वेदों में इस प्रकार के अनेकों अमूल्य उपदेश भरे पड़े हैं, यदि संसार उन पर चले तो महान् लाभ हो सकता है। ऐसे भी स्थल हैं, जहां पर यह भाव अभि व्यक्त किया गया है कि "गले भर पानी में खड़ा हुआ भी, हे भगवन्, मैं प्यास से मरता हूँ। हे इन्द्र, मेरी रक्षा कर।"—अपांमध्ये तस्थिवान्सम्. तृष्णाविदज्जारितारम्। अग्ने सुक्षत्र मृडय॥ यह मन्त्र इसी बात का उन्नायक है। ऐसी अवस्था तब होती है जब लोगों में स्वार्थ की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। पानी में बैठे हुए प्यासे मरना—यह साफ अव्यवस्था और स्वार्थ-वृद्धि के कटु परिणाम को अभिव्यक्त कर रहा है। संसार में समस्त भोगसामग्री पड़ी है परन्तु मुट्ठी भर लोगों के अधिकार में होने से शेष जन से अपना लाभ नहीं उठा पाते। वस्तुयें उन के सामने हैं, उनके परिश्रम से उत्पन्न होती हैं, परन्तु वे उनका उपयोग नहीं ले सकते। यह घटना संसार में प्रतिक्षण अनुभव हो रही है। परन्तु इसका निराकरण नहीं हो पा रहा है। प्रयत्न सभी करते हैं, परन्तु सफलता दृष्टि से दूर है। सभी आधुनिक वाद जो पश्चिम की उपज हैं, समस्या के सुलझाने के लिये घुड़दौड़ में रत हैं। लेकिन ये सुलझाने के अतिरिक्त कभी कभी उलझन अधिक पैदा कर देते हैं। वर्गवाद के हामी यह समझते हैं कि उन सभी बुराइयों की रामबाण औषधि उन्हीं के पास है, शेष सभी वाद निरर्थक हैं। परन्तु, वे यह नहीं देखते कि जहां पर यह वाद सफल है, क्या वहां पर वे समस्यायें सुलझ गई हैं? कहना पड़ेगा--नहीं कभी नहीं। वास्तव में बात यह है कि भौतिकवाद में जीवन को चैन नहीं प्राप्त हो सकती। वह समस्या को सुलझाने में जितना ही प्रयत्न करेगा, समस्या उलझती रहेगी। वह तो रोग की दवा रोग के बढ़ाने में समझता है। यही कारण है कि आज जो देश अपने घर की व्यवस्था सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं, वे ही दूसरे देशों में उसी व्यवस्था को उत्पन्न करने में प्रयत्नशील हैं। क्योंकि बिना ऐसा किये उन की दृष्टि में उनकी समस्या सुलझ नहीं सकती। उनका

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समस्याओं का सुलझाव दूसरों की समस्याओं के उलझने और दूसरे के आत्मबलिदानों पर निर्भर है। वैदिक मार्ग इस भौतिक मार्ग से भिन्न है। वह त्याग और अपने स्वार्थों के बलिदान की शिक्षा देता है। उसकी उद्घोषणा है कि त्याग से त्यागी के साधन घटते नहीं। प्रत्येक व्यक्ति यह समझ ले कि उसे अपनी आवश्यकता से अधिक का संचय नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करना दूसरों को उनकी उतनी ही आवश्यकतायें बढ़ाना है। एक व्यक्ति अपना पेट भरे, यह ठीक है, परन्तु यदि वह सौ आदमियों के पेट भरने जितनी वस्तुओं को अपने अधिकार में रखना चाहता है तो इस का तात्पर्य यह होगा कि सौ व्यक्ति भूखे मरेंगे। प्रत्येक मनुष्यको अपनी इस 'अधिक' स्वार्थवृत्ति का त्याग करना चाहिए। वह भी किसी दबाव के कारण नहीं, बल्कि स्वेच्छा से और स्वधर्म समझ कर। महात्मा गांधी इसे ही शब्दान्तर से स्वेच्छा पूर्वक ग़रीबी का व्रत (Voluntary Poverty) कहा करते थे। राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति इस भावना से यदि ओत प्रोत हो तो कभी दुष्परिणाम सामने आ ही न सकें। दुष्परिणामों का उपस्थित होना ही इस भावना के अभाव का परिचायक है। वेद के सिद्धान्तों पर चलने में ही लोगों का कल्याण निहित है। लोगों को उस पर ध्यान देना और उसका अनुसरण करना चाहिये।

मन का शरीर पर प्रभाव

[श्रीमती माता प्रेमसुलभायती जी]

आज ३।७।४६ को अपने अनुभव के आधार पर मन की दशा लिखने की इच्छा हुई। वेद और उपनिषदों की शिक्षा के अनुसार मन का अध्ययन करके अपने मन की गतिविधि को कई वर्षों से ध्यान पूर्वक देख रही हूँ (मुझे अब निश्चय हो गया है कि जब मन को अवस्था ठीक रहती है, सभी शरीर की अवस्था भी स्वस्थ रहती है)। इस शरीर में मन, मानो, संकल्प विकल्प और नाना प्रकार की इच्छाओं वा कल्पनाओं से भरा हुआ एक बड़ा मानसरोवर है। जैसे जल से भरे तालाब में वायु के झोंके से या कंकड़ी आदि के फेंकने पर सम्पूर्ण तालाब का जल कम्पायमान हो जाता है, अर्थात् जल के प्रत्येक बिन्दु पर उस लहर का प्रभाव पड़ता है, वैसे ही सत्य, असत्य, सुख, दुःख, ज्ञान, अज्ञान, धर्म, अधर्म की चिन्ता, राग, द्वेष, प्रसन्नता, अप्रसन्नता इत्यादि कंकड़ियों के गिरने से मनरूपी मानसरोवर में जो लहर उठती है, उस का प्रभाव शरीर के प्रत्येक भाग पर विशेष रूप से पड़ता है। इस शरीर के अन्दर दो प्रकार की शक्तियां काम करती हैं। ईश्वर के विधान के अनुसार एक का प्रयोग मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार करता है, परन्तु दूसरो प्रकार से शक्तियों का ज्ञान मनुष्य को नहीं होता। इन दोनों परसमान रूप से मन का अधिकार रहता है।

जैसे—जब मनुष्य दुःखित और चिन्तत रहता है, तब उस की सब शक्तियां निर्बल होने लगती हैं। नेत्रों की ज्योति घट जाती है मस्तिष्क (खोखला) निर्बल हो जाता है: उदर बल-हीन होने से भोजन पचाने की शक्ति क्षीण हो जाती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। तब नाना प्रकार के रोग चारों तरफ से उस पर आक्रमण कर देते हैं। चिन्ता-पिशाची सम्पूर्ण जीवन को कष्ट पूर्ण बना देती है।

राग-द्वेष से मनुष्य का मान सरोवर विकृत होकर रुधिर को जला देता है। सम्पूर्ण शरीर में ठीक मात्रा में रुधिर न पहुँचने से शरीर सूखने लगता है। गुप्त शक्तियां भी निर्बल होकर अपना काम ठीक नहीं करतीं और नाना प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

असत्य भाषण, असत्याचरण और असत्य व्यवहार से मन निर्बल हो कर रुधिर के केन्द्र, हृदय को निर्बल बना देता है, जिस का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है। उसी प्रकार प्रत्येक अनुचित कर्म का प्रभाव मन के द्वारा सारे शरीर की श्रेष्ठ शक्तियों को निर्बल और रोगी बना कर जीवन को दुःखमय बना देता है। मानस-रोगी को सारा संसार ही दुःखमय दिखाई देता है।

किसी कवि ने कहा है--

"चिंता ज्वाल, शरीरवन, दावा लगि लगि जात।
प्रकट धुआं नहीं देखिये, उर अन्दरधुंध आय॥
उर अन्दरधुंधुं आय जरे ज्यों कांच की भट्टी।
जर गये लोहू मास, रह गई हाड़ ठट्टी॥"

इसके विपरीत जब अपने मन को श्रेष्ठ संकल्प वाला बनाने का यत्न करके सत्य कर्म में लगता है, तब मानसरोवर की लहरें शरीर के सम्पूर्ण भागों पर अपने वेग का प्रभाव डाल कर उसे बलवान् बना देती हैं। शिव-संकल्प मन ही इस शरीर को स्वस्थ रखने में समर्थ है। प्रसन्न मन ही शारिरिक शक्तियों को बलवान् बनाता है। मन की श्रेष्ठता से शरीर की शक्तियां ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार अपना अपना काम ठीक करती है, जिस से शारीरिक, मानसिक दोनों शक्तियां विकसित होकर अध्यात्म उन्नति का साधन बनती हैं।

मनु महाराज ने कहा है--'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:,--मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। आगे कहा है—

बन्धाय विषयासक्त मुक्त्यै निर्विषयं मनः॥

अर्थात् बन्धन का कारण विषयों की आसक्ति ही है। विषय रहित मन मुक्ति वा शान्तिदायक है। यथार्थ में मन ईश्वर की विचित्र रचना है। ईश्वर की विलक्षण रचना का यह महान् उदाहरण है। मन के चार पाद हैं:—

(१) वाणी
(२) प्राण
(३) चक्षु
(४) श्रोत्र

भगवान् की रचना की विलक्षणता है, कि बाह्य जगत् से शरीर के अन्दर के अवयव पुष्ट होते हैं। वाणी की पुष्टि अग्नि से, प्राण की पुष्टि वायु से, नेत्रों की पुष्टि आदित्य से, और श्रोत्रों की पुष्टि दिशाओं से होती रहती है; और इन्हीं से ये अपने काम की योग्यता प्राप्त करते रहते हैं।

जो मनुष्य इस प्रकार मन के पादों को जानता और उनसे लाभ उठाता है, वह संसार में यशस्वी तेजस्वी और बलशाली हुआ करता है। ऐसे मनुष्य के मानसरोवर में वाणी, प्राण, चक्षुओं और श्रोत्रों के द्वारा ज्ञान की धारायें आकर प्रतिक्षण उसे भरा करती है। इसलिये इनके सम्बन्ध को जान कर मानसरोवर को सदा श्रेष्ठ ज्ञानधाराओं से भरते रहने वाला मनुष्य आनन्द-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पथ का पथिक बन कर मानो, जन्म को सफल करने में समर्थ होता है।

वेद में मन की बहुत महिमा गाई गई है। यथार्थ बात तो यही है, कि जीवन के उत्थानार्थ सृष्टि के आदि में भगवान् ने जीवों पर दया करके वेद ज्ञान का प्रकाश किया है। उसके अनेक स्थलों पर यही बताया गया है कि मनुष्य-जीवन का अन्तिम ध्येय मोक्ष, सुख की प्राप्ति है। भगवान् कहते हैं-कि "न मे पुरव: सख्ये रिषाथना" हे मनुष्यो! मेरी मित्रता में कभी कष्ट न पाओगे। मनुष्य का कर्म के अनुसार ही जन्म मिलता है और प्रत्येक कममन धर्म के द्वारा ही किया जाता है। इसलिये वेद भगवान् ने कहा कि हे मनुष्यो अपने श्रेष्ठ सर्वज्ञ मित्र प्रभु से प्रार्थना करो कि मेरा मन शिव संकल्प वाला होवे—तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (य० ३६।१-६

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्

[श्रीमान् म० लालचन्द्र जी, मेरठ छावनी]

सत्यं शिवं सुन्दरम्—भगवान् सनातन है, वह आदि और अनादि है, सत्य है, शिव है, शाश्वत है, वह परम सुन्दर है, पूर्ण है, नित्यानंद, है। वह आनंदरूप अमृतरूप, अमृतमय परमात्मा प्रकाशता है। वह सर्वशक्तिमान् इन्द्र विश्व में विराजता है। भगवान् सत्-चित-आनन्द है। भगवान् सत्य है, परम-मंगलकारी परम कल्याण-कारी शिव है, वही सुन्दर है, भगवान् ज्ञानमय ज्ञानस्वरूप है, वह पूर्णानन्द है। वह नित्य है, अविनाशी है, सर्वव्यापक है, सर्व-अन्तर्यामी है। वह घट २ का वासी सब का निरंतर साथी है। वह सब का है, सब उसके हैं। वह सब में है, सब उसमें है। वह अनेक प्राणियों में एक रूप अन्तर्यामी प्रभु है। भगवान् सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् सर्वा-श्रय है। भगवान् प्रत्येक मनुष्य के हृदय में है भगवान् के नाते सभी जन हमारे हैं, हम सब के हैं, भगवान् हम में है। हम भगवान् में हैं, हम भगवान् से अलग नहीं हो सकते—जब हम भगवान् को भुला देते हैं और मनमाना निःशृंख-लता का जीवन व्यतीत करते हैं, तो हम भगवान् से अपने आप को दूर अनुभव करने लगते हैं। भगवान् हमें कभी नहीं भूलते, हम भी भगवान को कभी न भूलें।

हम सदा दिव्य गुण धारण करें और अपने सद् गुणों का विकास करें, सदा सत्य में दृढ़ रहें और स्थिर बुद्धि से सब से यथायोग्य धर्मानु-सार निष्कपट प्रेम का व्यवहार करें तो हमें अनुभव होगा कि हम भगवान् के निकट हो रहे हैं। भगवान् सुन्दर इस लिए है कि वह सत्य और शिव हैं। हम भी तो सत्‌चित हैं, हम भी तो सत्य और शिव हैं तो हम सुन्दर क्यों नहीं होते। हम निरन्तर सत्य का और मंगल का आचरण करें तो हम अवश्य सुन्दर होंगे, और अपने सौंदर्य में हम पूर्ण होने का जितना साधन करेंगे हम भी उतने दिव्य गुण संपन्न अपने परम पिता "भर्ग" के सुपुत्र आर्य हो जाएंगे।

यदि हम भगवान के उपासक होना चाहते हैं, भगवान् के अति निकट होना चाहते हैं, तो हमें भगवान् के गुणों को धारण करना ही होगा,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तभी तो हम भगवान् के निकट तम सखा हो सकेंगे। हमें तो अन्ततः भगवान् ने आत्मीयता प्राप्त करनी: है वेद: के शब्दों में—

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घास्या माहम् ।

स्युष्ट सत्या इहाशिषः ॥

(हे प्रकाश स्वरूप ! जब मैं तू हो जाऊं तू मैं हो जाय तो तेरे इस संसार के वे सब आशीर्वाद सत्य, सफल हो जायं)

हमें ऐसी परम आनन्दमय ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करनी है जिस में पूर्ण अनिन्द्यता हो। हमें भगवान् अपना ऐसा सत् ज्ञान दे और विशुद्ध प्रेम दें और यज्ञ में सत्य और प्रेम की ऐसी सुसंगति हो कि हम सभी में एक अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए सब में मिल कर सब में ऐक्य स्थिर करके बन्धनरहित पूर्ण स्वतन्त्र निजी अनुशासन पर निर्भर रहें अनुशासन सत्यं शिवम् होता है, हमारा व्यवहार सच्चा सरल सीधा और सर्वहितकारी हो। हम कभी कर्त्तव्यच्यु त न होंगे और किसी के अधिकारों पर कदापि स्वत्व न करेंगे। सच्ची नैतिकता सत्यं-शिवम् जीवनचर्या है। उसी में सौंदर्य है उसी में आकर्षण है। वह ज्योतिर्मय मार्ग है। उसमें निरन्तर प्रकाश है नित्य नव जीवन है। हम अपना जीवन व्यतीत करके स्वयं पूर्ण आर्य होकर आर्यत्व का प्रसार करेंगे। हम पवित्र होकर पवित्रता का संचार करेंगे। हम ज्ञानी होकर ज्ञान का प्रसार करें गे तथा प्रेमी होकर प्रेम वितरण करेंगे। हम सत्यं शिवम् के उपासक कभी पराजय नहीं सोचेंगे, सदा विजयी होंगे। विजय-ध्वज लिए ओ३म् की सुरक्षा में निरन्तर प्रगतिशील रहेंगे।

भगवान् सत्यं ज्ञानम् अनंतं ब्रह्म है। हम सत्याचरण द्वारा ज्ञान प्राप्त करके उदारचरित होकर यशस्वी होंगे। हमारे अन्दर ब्रह्मवर्चस् रहेगा और हमारे ओज से न केवल हम ओजस्वी होंगे संसार में तेज और ओज की विपुलशक्ति का विकास करेंगे, सत्य व्यापक, ज्योतिर्मय, परमरस अमर और सर्वतोमहान् परमसत्ता "आपोज्योति रसो ऽमृत ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्। हम ओ३म् के उपासक ओ३म् के आत्मीय, ओ३म के गुण धारण करके ओ३म् स्वरूप स्वयं होंगे। दुर्बलों का त्राण साधुओं की रक्षा हमारा ध्येय होगा। भगवान सर्वरक्षक, व्यापक, ज्योतिकर्म, ज्योतिस्वरूप, जीवनदाता, जीवनरस अमर सब से महान् सच्चिदानन्द है। हम आनन्दमय प्रभु के उपासक आनन्द बरसायेंगे, प्रेम का विकास करेंगे। हम आर्य अपने आर्यत्व में सदा यशस्वी होंगे। आर्य सफलता का केन्द्र है। आर्य श्रेष्ठतम मानव है। वह श्रेष्ठतम कर्म, यज्ञ ही करेगा और सुख बढ़ायेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता के सात श्लोक

[श्रीमान डा० गङ्गाचन्द्र अग्रवाल शास्त्री]

गीता सृष्टि की आदि में आविर्भूत नहीं हुई यह वेद का स्थान नहीं ले सकती। ठीक यह भी माना किन्तु गीता मुझे अतिशय प्रिय है। क्यों? इस लिये कि यह सीधे साधे अन्यत्र सरल शब्दों में मनुष्य के ऐहिक और पारलौकिक कल्याण की शिक्षा देती है। पारलौकिक कल्याण की चर्चा क्या करें; ऐहिक कल्याण में पारलौकिक कल्याण स्वयं निहित है। उस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की छाया है, उसका प्रतिबिम्ब है। जो इस जन्म के सुधारने में अशक्य है, उसका परजन्म सुधारना खपुष्यवत् है। तभी तो मुनिवर कणाद ने अपनी अमर वाणी में धर्म का लक्षण करते हुए बताया—"यतो ऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि स धर्मः (वैशे० १।१।२)--अर्थात् इहलौकिक कल्याण के साथ साथ पारलौकिक कल्याण के साधन का नाम धर्म है। ख्यातनामा भक्तहृदया आंगल महिला डाक्टर ऐनी बेसेण्ट ने भगवद्गीता की शिक्षाओं पर मुग्ध हो कर अपने हृदयोद्गार को इस प्रकार प्रकट किया है:--

Among the priceless teachings that may be found in the great Hindu poem of the Mahabharat, there is none so rare and so precious as this, the Lord's song.

भावार्थ यह है कि महाभारत की बहुमूल्य शिक्षाओं में गीता से बढ़ कर कोई बहुमूल्य शिक्षा नहीं है। भगवद्गीता की विद्वानों ने कई प्रकार से व्याख्यायें की हैं। विद्वत्ता और हृदय की विशुद्धता—ये दो पृथक् वस्तुएं हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जो विद्वान हो उस का हृदय शुद्ध ही हो। बड़े से बड़े विद्वान् में भी भ्रष्ट चरित्रता पाई जाती है। इस के उदाहरण संसार में अनेक पाए जाते हैं। विद्वत्ता का निर्भर कथनरूप में निःसृत होता है और हृदय की सरिता कर्त्तव्यरूप में प्रवाहित होती है। कथन और कर्त्तव्य का भेद लोकसिद्ध है। अतएव इन विद्वानों के विमल व्यक्तित्व के प्रति अपार श्रद्धा रखते हुए मैं यह निःसङ्कोच कहूंगा कि इन विद्वानों ने भगवद्गीता की व्याख्या करने के शुभ मुहूर्त में अपने सद्विचारों, अपने भव्य भावों को अपने हृदय के वातायन से बहिष्कृत करके अपने मस्तिष्क को प्राधान्य दिया था। परिणाम स्वरूप गीता की अमूल्य शिक्षायें साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की क्रीड़ा-स्थली बन गई हैं। मैं तो कहता हूँ कि उनकी व्याख्यायों ने संसार को लाभ पहुंचाने के स्थान पर उसकी अहित साधना अधिक की है। इस से गीता की वास्तविक शिक्षाओं के प्रचार के बदले उसका अवरोध अधिक हुआ है। इसने किंकर्त्तव्य विमूढ़ अर्जुन की भांति जन साधारण को भ्रम और संशय के भारी दलदल में फंसा दिया है। जनता के अङ्गीभूत कुछ एक विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़ कर जन साधारण इतना चेतन नहीं होता कि वह परस्पर विरोधी मन्तव्यों के झञ्झावात के मध्य फंस कर निर्णय के सुनिर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सके। तभी तो गीता ने बताया है कि:—

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

गीत ३-२१

अर्थात् इतर जन श्रेष्ठ लोगों को प्रमाण मान कर उनका अनुकरण किया करते हैं। अस्तु, इन विद्वानों की विविध व्याख्याओं के प्रकार का प्रसंग न छेड़ कर साम्प्रदायिक दृष्टि विन्दु-हीन हो कर गीता की समस्त शिक्षाओं को मैं दो शब्दों में रख सकता हूँ—"अनासक्ति पूर्वक कर्मयोग।" अच्छा अब आइये, सात श्लोकों के प्रकृत विषय पर। ये श्लोक भगभद्गीता के एक श्लोक को छोड़ कर १२ वे अध्याय के अन्तिम सात श्लोक हैं। अन्तिम श्लोक तो इन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सातों का उपसंहार मात्र है। भगवान् को कौन प्रिय है--यही इस अध्याय की जान है। इन श्लोकों में 'प्रिय' शब्द इतनी बार प्रयुक्त हुआ है कि हम इस अध्याय को भक्तियोग नाम द्वादशोऽध्याय के स्थान पर 'प्रिय योगो नाम द्वादशोऽध्यायः' कह सकते हैं, किन्तु प्रीति और भक्ति पर्यायवाची शब्द होने से इस अध्याय का नाम 'भक्ति योग' रखना सर्वथा सार्थक है। इन सात श्लोकों को दृष्टि में रखते हुए इस प्रश्न का कि भगवान् को कौन प्रिय है—यह उत्तर दिया गया है कि भगवान् का वही प्रिय है जो अनासक्ति पूर्वक कर्मयोगानुयायी हो। गीता में स्थान २ पर "संगं त्यक्त्वा" "फलं त्यक्त्वा" प्रयुक्त हुआ है और अन्तोगत्वा गीता का यही अभिप्राय है। इन श्लोकों में अनासक्ति या फल-त्याग का प्रतिपादन विभिन्न शब्दों से किया गया है। उदाहरणार्थ—अद्वेष्टा (द्वेष न करने वाला), मैत्रः (सब से स्नेह करने वाला), करुणः (दयालु), निर्ममः—(ममतारहित) समदुःख सुखः—(सुख दुःख में एक समान), मय्यर्पितमनो बुद्धिः—(परमात्मा में जिस ने बुद्धि समर्पित कर रखी है), न हृष्यति न द्वेष्टि (हर्ष शोक से रहित), न शोचति न कांक्षति (चिन्ता तथा इच्छा से रहित आदि—अस्तु, अनासक्ति पूर्वक कर्म योग गीता के साथ २ भगवान् वेद का वह विशिष्ट सिद्धान्त है जो इसे और मजहबों से पृथक् करता है और जिस पर आचरण करने से मनुष्य मात्र का इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण हो सकता है।

प्रसंग से गीता के वे श्लोक भी उद्धृत कर देते हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकार समदुःख सुखः क्षमी ॥१३॥

किसी प्राणी से द्वेष न करने वाला, सबसे स्नेह करने वाला, दयालु, निर्मम, अहङ्काररहित सुखदुःख में एक समान, तथा क्षमाशील।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

सन्तोषी, निरन्तर, उद्योगी, जितेन्द्रिय, दृढ़ निश्चय वाला, परमात्मा में मन-बुद्धि अर्पण करने वाला, परमात्मभक्त मनुष्य परमात्मा का प्रिय होता है।

यस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

जिस से लोग नहीं घबराते और जो लोक से नहीं घबराता, हर्ष, क्रोध, भय और घबराहट से जो मुक्त है, वह भगवान् का प्यारा है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भ परित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

बेपरवाह, पवित्र, कुशल, उदासीन, पीड़ा रहित, सर्वकार्य्य, परित्यागी जो परमात्मभक्त है वह भगवान् का प्यारा है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

जो न हर्ष करता है, न द्वेष करता है, न चिंता करता है, न इच्छा करता है। शुभ और अशुभ से विरक्त हो कर भक्तिमान् है, वह भगवान् का प्रिय है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः
शीतोष्णसुख दुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

जो शत्रु मित्र के प्रति एक समान, तथा मान, अपमान, शीत, उष्ण, सुख दुःख में एक समान, और असंग।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केन चित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्ति मान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

निन्दस्तुति में एक जैसा, मौनी, सदा सन्तोषी गृहरहित, स्थिरबुद्धि, भक्तिमान है। वह भगवान् का प्यारा है।

[लेखक के अनुरोध से यह लेख प्रकाशित हो रहा है। वेदपथ सम्पादक को गीता में पुनरुक्ति की अनावश्यक भरमार दिखाती है। गीता की हम निन्दा नहीं करते, किन्तु हम लोगों को सब ज्ञानग्रन्थों के मूल ग्रन्थ वेद तक ले जाना चाहते हैं। मद्भक्तः, मे प्रियः आदि वाक्यों के अर्थ जैसे हमने किये हैं यदि न किये जाएं तो संगति लगाना कठिन है। —सम्पादक]

अद्भुत प्रबोध

[प्रबोधानुगामी]

जोवन क्या है ? पचास प्रश्वास का नाम जीवन है। ठीक है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया के बिना जीवन का चिह्न नहीं मिल सकता। प्रथम यारोपीय महायुद्ध के समय कुछ व्यक्ति इस प्रकार क्षतविक्षत हुए कि उन के हाथ पांव कट गए। दर्शन तथा श्रवण शक्ति का नाश हो गया। उनकी वाचा शक्ति भी जाती रही। कृत्रिम उपायों से उन्हें खान पान दिया जाता रहा। विगत (द्वितीय) महायुद्ध के प्रारम्भ से पूर्व वियाना नगर के किसी असुपाल में उन के असुओं की पालना की व्यवस्था थी। क्या वे व्यक्ति जीवित कहला सकते हैं ? श्वास-प्रश्वास वे अनायास लेते थे। हमारे विचार में ऐसे जीवितों तथा मृतकों में कोई विशेष भेद नहीं है।

श्वास-प्रश्वास के साथ क्रिया, चेष्टा, गति का होना जीवन की सत्ता का स्पष्ट प्रतिभास है। क्रिया चेष्टा, गति, प्रवृत्ति किसी न किसी उद्देश्य के अधीन ही होती है। आहार, विहार आदि कोई न कोई हेतु अवश्य प्रवृत्ति का प्रवर्त्तक प्रेरक हुआ करता है। पशु-पक्षी आदि जीव जगत् इसका अकाट्य प्रमाण है।

पशु-पक्षी को ज्ञान है, उस के साथ प्रयत्न है, प्रयत्न के साथ हर्ष शोक भी लगा हो हुआ है। प्रयत्न इच्छा का द्योतक है। पशु को भूख लगी है। उस के लिये वह भोजन प्राप्ति का प्रयत्न करता है। भोजन प्राप्त होने पर उसे प्रसन्नता, प्राप्त न होने पर विषाद होता है। पशुओं के पालने वाले इस बात को भली भांति जानते हैं। पशुओं का एक कार्य्य और भी है। वह है सन्तानोत्पादन। पशु-जीवन की इन दो कार्य्यों पर इतिश्री हो जाती है।

मनुष्य भी तो पशु ही है। उपर्युक्त दोनों कार्य्य मनुष्य भी करता है। यद्यपि आसपास की घटनाओं के कारण पशुओं में भी प्रतिक्रिया होती है, किन्तु मनुष्य में जैसी प्रतिक्रिया होती है, वह उसे पशुश्रेणी से पृथक् कर देती है। पशु प्राकृतिक घटना को स्वाभाविक मान कर असहाय होकर उसके सामने झुक जाता है। मनुष्य डट कर उसका मुकाबला करता है। शीत, उष्ण, वृष्टि को पशु किसी न किसी भांति सहन ही करता है। मनुष्य उसके आघातों को वारण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करने का सफल प्रबन्ध करता है। इस का कारण यह है कि मनुष्य प्रत्येक घटना का विश्लेषण करने का प्रयत्न करता है। मनुष्य की इस प्रवृत्ति ने ही सभ्यता को केवल जन्म ही नहीं दिया, प्रत्युत इसे उत्कृष्ट सीमा तक भी पहुँचाया है।

किन्तु क्या ऐसी प्रवृत्ति सभी मनुष्यों में है? विचारने से प्रतीत होता है कि थोड़े, अत्यन्त थोड़े, मनुष्यों में यह विशिष्ट प्रवृत्ति होती है। इसीके कारण वे अन्य मनुष्यों के शास्ता या शासक बन जाया करते हैं।

जिसने पहले-पहल अग्नि का मन्थन किया, उसने जगत् के जीवन में क्रान्ति कर दी। आज प्रायः सभी मनुष्य अग्नि जलाते हैं। वे इसे एक अत्यन्त साधारण क्रिया मानते हैं, उन्हें इसमें कोई असाधारणता नहीं दीखती। किन्तु अपने विचार-नेत्रों से आज से लगभग दो अरब वर्ष पूर्व के संसार का चित्र देखिए। अग्नि के बिना मनुष्य को कितना कष्ट था। अग्नि के आविष्कार ने उसके साथ समस्त संसार की काया ही पलट दी है। रेल, वायुयान, जलपोत, कल-कारखाने, भोजन, छादन सब अग्नि की कृपा का फल हैं। सभ्यता अग्नि का फल है। सभ्यता को आग्नेय कहना ही अत्यन्त उपयुक्त है।

इसी प्रकार कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं जो जनप्रवृत्ति का प्रवाह ही बदल देती हैं। हमारे सामने प्रतिदिन अनेक घटनाएं होती रहती हैं, किन्तु हममें कितने उनका विचार करते हैं। अग्नि पर धरी जल की केतली का ढकना भाप के बल से खिसक कर गिरते किस ने नहीं देखा, किन्तु कितनों ने इस से वाष्प-अंजन (Steam Engine) बनाने की कल्पना ली।

प्रतिदिन हम मृतकों को श्मशान ले जाते हैं। आज की उतावली सभ्यता के कारण अनेकों की, दुर्घटनावश, मृत्यु हम भी देखते हैं, किन्तु हम सभी बुद्ध या दयानन्द नहीं बन पाए। मृत्यु का दृश्य देख कर राजकुमार सिद्धार्थ भिक्षुराज, तथागत बुद्ध बनता है और अशान्त संसार को शान्ति का सन्देश देता है।

आज से ११२ वर्ष पूर्व की बात है। सौराष्ट्र के मौर्वी राज्य के टंकारा नामक महाग्राम में शिवरात्रि-सम्बन्धी पूजन-अर्चन करते हुए जब सब पूजक सोने का उपक्रम करते हैं, तब एक क्षुद्र चूहा आकर महाशिव के लिये समर्पित नैवेद्य को उच्छिष्ट करने लगता है। प्रतिदिन होने वाली इस साधारण घटना ने, वहां पूजा के लिये विद्यमान। सब के निद्रावश हो जाने पर भी सावधान। एक महान् आत्मा को और अधिक सावधान कर दिया। "त्रिशूलधारी, जगत्संहारी शिव के नैवेद्य को यह क्षुद्र मूषक उच्छिष्ट किये जाता है, यह शिव कैसा?" इस विचार ने चेतन दयालु को जड़पूजा से सदा के लिये विरत कर दिया और उस को जगत् के कल्याण का साधन बना दिया।

चौदह वर्ष के बालक के हृदय में उठे इस शङ्काशूल का उन्मूलन पिता की तर्जना, भर्त्सना न कर सकी। दयालु जी के हृदय में यह बात जम गई कि यह पिंडी शिव नहीं है। इस प्रबोध ने दयालु जी के जीवन चक्र को परिवर्तित कर दिया। इस अद्भुत प्रबोध ने दयालु जी को शुद्धचैतन्य और तत्पश्चात् दयानन्द बनाया। दयानन्द से महर्षि दयानन्द बनाया, जिसने सोते भारत को पुनः जगाया; लुटती, नष्ट होती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

म्रियमाण आर्य्य जाति को नवजीवनामृत पिलाया, विलुप्तप्राय वैदिक धर्म्म का झण्डा फिर से लहराया। संसार के समस्त पाखण्डों के विरुद्ध उसी अकेले ने युद्ध किया।

कौन कह सकता है कि यदि यह घटना न घटती, तो भारत की आज क्या अवस्था होती; वैदिक धर्म की क्या दशा होती; आर्यजाति रहती अथवा नामशेष हो जाती? इस अद्भुत प्रबोध ने सब कुछ बदल दिया। गङ्गा का प्रवाह ही फेर दिया। आज भारत का मस्तक उन्नत है। आर्य्यजाति की ओर अब सब आदर एवं श्रद्धा से देखते हैं।

आज इस प्रबोध का महत्त्व सामान्य जन की समझ में नहीं आ रहा, तो इसका कारण··· ······ जिनका कर्त्तव्य था, उन्होंने ही इसे पूरे रूप से जनता के आगे रखने का पूरा यत्न नहीं किया।

महाधन-शिरोमणि—लेखराम

[सम्पादक]

इस में आज किसी को यह विवाद करने का साहस ही नहीं है कि भारत की काया पलटने में दयानन्द सरस्वती का सब से अधिक हाथ है। इस युग में वह प्रथम महामानव है जिसने यह अनुभव किया कि नाना मत-मतान्तरों के कारण भारत का कल्याण प्रतिहत एवं प्रतिबद्ध है। आज जब भारत स्वतन्त्र हो चुका है, तब भी विभिन्न विचारधारा वालों के कारण संशय बना ही रहता है। मनुष्य के जीवन में धर्म्म का बहुत बड़ा स्थान है। साधारणतया धर्म्म-निरपेक्ष प्रतीत होने वाला मनुष्य भी अपने लिए एक विशिष्ट पद्धति अवश्य रखता है, चाहे वह उपेक्षा की पद्धति ही क्यों न हो। दयानन्द ने मनुष्य के इस स्वभाव को भली-भांति समझ कर भारत के लिए [केवल भारत ही नहीं वरन् सारे संसार के लिए] एक भाषा, एक भाव की भव्य योजना प्रस्तुत की। देश ने उनके सन्देश को पूरी तरह न सुना। हमारा विश्वास है कि यदि उनके सन्देश को देश सुनता तो आज के संकटों का उत्पादक भारत-विभाजन न हो पाता।

विरजानन्द के अनेक शिष्य थे, सैंकड़ों को उन्होंने विद्या दी, किन्तु अपने विशिष्ट उद्देश्य के प्रचार के लिए उन्हों ने दयानन्द को ही चुना। अथवा, यों कह सकते हैं कि दयानन्द ने ही उस दिव्य मानव के भावों को समझा और ग्रहण किया।

महामनुष्यों के विशाल उपादेय उद्देश्य के विविध अंशों को विविध मनुष्य अपनी योग्यता के अनुसार अपने जीवन में ढालने का यत्न किया करते हैं।

विश्व कल्याण के लिए दीक्षित दयानन्द ने सभी उपायों पर प्रकाश डाला और प्रायः सभी का उपक्रम भी किया। उनके जीवन का एक कार्य्य आर्य्यजाति के विच्छिन्न अङ्गों को पुनः जाति शरीर में सन्धान करना भी था—वे अंग चाहे कितने ही समय से पृथक् क्यों न हुए हों। लेखराम को ऋषि के इस कार्य ने बहुत आकृष्ट किया। ऋषि-दर्शन के पश्चात उन्होंने सरकारी नौकरी का त्याग कर दिया और दिन-रात ऋषि के मिशन का प्रचार करने लगे। इस प्रचार-कार्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के निमित्त उन्होंने इतनी लम्बी यात्राएं अंगीकार कीं कि उन्होंने अपना नाम ही 'आर्य्य पथिक' रख लिया।

दयानन्द जिन का भला करने के उपाय किया करते थे, उन्हीं में से एक के हाथों उन्हें विषपान करना पड़ा। आर्य्य-शिरोमणि दयानन्द, के पथ के पथिक 'आर्य्य पथिक' को भी उनमें से एक ने छुरा घोंप कर समाप्त किया पर दिनरात जिन को वेदामृत पिलाने के साधन वे खोजते रहते थे।

लेखराम के ग्रन्थों के पढ़ने पर कई बातें सामने आती है। वे बहुत बड़े अनुसन्धान विद्वान (Research scholar) थे। 'तारीखे दुनिया' 'सबूते तनासुख' आदि विशालकाय ग्रन्थ उनकी अध्ययनशीलता, खोज, एवं सत्य-जिज्ञासा को बोल बोल कर बता रहे हैं। छोटे-बड़े ३३ खण्डन-मण्डनात्मक ग्रन्थों के अतिरिक्त ऋषि दयानन्द के जीवनचरित की सामग्री एकत्र करके एक बहुत बड़ा जीवनचरित-पुस्तक लिख जाना उन की अध्यवसायशीलता का परिचायक है।

लेखराम ने अत्यन्त अल्प समय में, वह भी दिनरात प्रचार-यात्रा में रहते हुए, इतना लेख का कार्य करके अपने नाम [लेख में रमण करने वाला] को सार्थक कर दिया। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त वे साप्ताहिक आर्य्यगज़ट का भी सम्पादन करते थे।

लेखराम के ग्रन्थों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे अप्रिय सत्य कहने में संकोच नहीं करते थे और कि दूसरों के प्रति उनके हृदय में अगाध प्रेम था। इस प्रेम के कारण वे दूसरों को अपना बनाने की धुन में तन की सुध भी भूल जाते थे।

लेखराम सरल प्रकृति, निष्कपट, सत्यवादी एवं मृदुभाषी थे। उनकी वाणी में ओज था किन्तु प्रसाद के साथ। वे छल, कपट के साथ किस भांति भी समझौता करने को तय्यार न होते थे।

६ मार्च १८६७ ई० को एक विश्वासघाती मुसलमान ने, जो उनके पास शुद्ध होने को आया था, छुरा घोंप कर उनकी जीवन लीला समाप्त कर दी। मरते समय उनके अन्तिम शब्द ये थे— 'आर्य्यसमाज से लेख का कार्य्य बन्द न होने पावे।' यह प्रसन्नता की बात है कि उनकी अन्तिम इच्छा का पालन हो रहा है। इसे और अधिक उत्तेजित करने की आवश्यकता है।

सम्पादकीय

स्वतन्त्र किन्तु अशिक्षित भारतः— अंग्रेजों के भारत में राज्यतन्त्र हथियाने से, राज्य की ओर से शिक्षा का प्रबन्ध न होने पर भी इस देश में शिक्षा का प्रचुर प्रचार था। जिस प्रकार अनीति का अवलम्बनकर भारत के वस्त्र-व्यवसाय को कुचक्री अंग्रेज शासकों ने नष्ट किया, वैसे ही भारत से साक्षरता का विनाश करने के लिये यहां की निःशुल्क शिक्षा देने वाली टोलों, चटशालाओं (पाठशालाओं) को बन्द करा दिया। लिखना-पढ़ना एवं गणित इस देश में प्रत्येक स्त्री पुरुष को ग्राम के पाधा (उपाध्याय) सिखा दिया करते थे। अंग्रेजों ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रथम हमारी इस निःशुल्क प्रणाली का संहार किया। जब उन्हें कार्य्यालयों के मसीजीवियों की आवश्यकता पड़ी और इंगलैंड से इस कार्य्य के लिये उन्हें मनुष्य लाना बहुत खर्चीला जचने लगा, तो उन्होंने एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली का उपक्रम किया जिससे भारतीयता का ही विलोप होने लगा। शिक्षा-प्रसार उस समय की सरकार ने अन्य सभ्य सरकारों की भांति अपना कार्य्य घोषित किया, परन्तु इस पर व्यय न तुल्य ही किया। परिणाम यह हुआ कि संसार में सबसे अधिक शिक्षित देश सबसे अधिक अशिक्षित बन गया। भारत के स्वतन्त्र होने पर अशिक्षितता का अभिशाप दूर नहीं हो पाया। क्यों? अंग्रेज़ जाते हुए दाम में ऐसी परिस्थिति देगया है कि जिससे हम अभी तक रक्षा पर व्यय अधिक करने पर बाध्य हैं। शिक्षा पर हमारी केन्द्रीय सरकार केवल चार प्रतिशत ही व्यय का पाती है। अन्य कुछ देशों का शिक्षा पर व्यय इस भांति है—

मिश्र २० प्रतिशत, फ्रांस १२ प्रतिशत, इंग्लैंड १२ प्रतिशत, चीन २५ प्रतिशत, चीन प्रान्त २५ प्रतिशत, चीन ज़िला ३५ प्रतिशत, भारत (केन्द्र तथा देश मिला कर) ४ प्रतिशत, भारत केन्द्रीय शासन ६ प्रतिशत। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत में साक्षरता-प्रसार उतनी सरलता से नहीं हो सकता, जितनी सरलता की हम कल्पना करते हैं। इस कारण सरकार की शिक्षाप्रसार संबन्धी योजनाएं सफल नहीं हो पाती।

शिक्षाप्रसार से सरकार का उपकार

परदेशी सरकारें स्वशासित पर-देशों में शिक्षा-प्रसार से घबराया करती हैं। क्यों? उन्हें भय रहता है कि शिक्षा पाकर वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जाएंगे और हमारा रहना असम्भव कर देंगे। स्वदेशी सरकार को ऐसी कोई चिन्ता या आशंका नहीं हो सकती। भारत के विधान के अनुसार सभी वयस्कों (बालिगों) को मत-दान (छन्दःप्रयोग) का अधिकार प्राप्त है। अथर्ववेद (३।५।६) में मत दाताओं (वोटरों) का एक विशेषण मनीषिणः आया है। मनीषी का अर्थ है जो अपने मन, बुद्धि एवं मनीषा=मन्शा का स्वामी हो, जो प्रत्ययनेय बुद्धि न हो, दूसरे के बहकाने से अपने विचार न बदले। जो बिचारा शिक्षित नहीं है, उसे सत्यासत्य कहकर चतुर मनुष्य अनायास ही बहका लेता है। इस समय देश में कोई ऐसे दल हैं जो केवल राज्य-सत्ता को ही नहीं हथियाना चाहते, वरन् वे उसे किसी अन्य देश का हथियार बनाना चाहते हैं। वे श्रमिक वर्ग को, उन के अशिक्षित होने के कारण, अपने हानि-लाभ से परिचित न होने से, सरलता से बहका लेते हैं, और हड़ताल आदि के द्वारा अव्यवस्था उत्पन्न करने में सफलता कर लेते हैं, जिससे सरकार को पर्य्याप्त व्यग्रता होती है और सो वह देश हितविधायक कार्य्यों की ओर ध्यान नहीं दे पाती। इस समय भारत को एक सुव्यवस्थित सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार की परमावश्यकता है जो शिक्षाप्रसार के बिना पूर्णरूपेण संम्भव नहीं है। भारतीय परम्परा में 'विद्याविहीनः पशुः [विद्या से रहित मनुष्य मनुष्य नहीं, पशु है] का सदा शासन रहा है। पशुओं पर शासन करना गौरव की बात नहीं है, भारतीय राजागर्व से कह सका करते थे—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पति के आदेश से 'नमस्ते' शब्द का व्यवहार हुआ करेगा। 'जमीयत-उल्-उलमा' देहली का मुखपुत्र 'अल्जमीयत' इस पर बौखला उठा है और उसने इस पर अनुचित एवं अयोग्य टिप्पणी करने का दुस्साहस किया है। हम जमीयत से पूछना चाहते हैं कि भारत में आप अरबी नामों का व्यवहार क्यों करते हो? जमीयत यदि भारत भक्त है तो उसे भारतीयता का विरोध त्याग कर भारतीय भाषा, भारतीय भाव एवं भारतीय भूषा के प्रचार में लगना चाहिये। उसे ज्ञात होना चाहिए कि 'नमस्ते' भारत की ही नहीं, संसार की सब से पुरातन संस्कृति का शब्द है; उससे विरोध क्यों?

स्वाध्याय-सन्दोह

'वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म्म है' इस आर्ष आदेश के पालन करने की सुविधा के विचार से ही इस ग्रन्थरत्न की रचना की गई है। इसका पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया था। मांग बराबर थी। उसे पूरा करने के लिए दूसरा संस्करण छपाया है। इसमें कुछ बढ़ाया भी गया है। परिवर्धन होने पर भी मूल्य केवल ६) रखा है। कागज आदि की महंगाई के कारण थोड़ी प्रतियां छपवाई जा रही हैं। अतः शीघ्र अपनी प्रति के लिए निश्चिन्त हो जाइए। प्रतिदिन के स्वाध्याय के लिए इससे बढ़िया पुस्तक आप को इस समय और नहीं मिल सकती। विद्वान् तथा सामान्य, सभी प्रकार के लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। मूल्य ६), डाक व्यय पृथक्।

मांस-मदिरा-निषेध—मूल्य।=), १००प्रति इकट्ठी लेने वाले को =) प्रति के हिसाब से; डाक व्यय पृथक्।

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः—'विश्वानि देव' आदि आठ मन्त्रों की ललित, मनोहारिणी, और मग्न कर देने वाली व्याख्या। मूल्य =)॥, १०० प्रति का १२॥) साढ़े बारह रुपये। मूल्य पेशगी भेजने वाले से डाक महसूल भी नहीं लिया जाता।

नैमित्तिक-वैदिक पाठ—प्रातःकाल से लेकर रात्रि को सोने के समय तक के विविध अवसरों पर पठनीय वेद-मन्त्रों का संग्रह। मन्त्रों के साथ सुन्दर भावार्थ तथा शब्दार्थ। मूल्य।) डाक व्यय पृथक्। एक प्रति मंगाने वाले।-) का टिकट भेजें।

मिलने का पता—अध्यक्ष, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासिवानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मिल्लिकन ८२ वर्ष का बूढ़ा है। कैलीफोर्निया के कला-संस्थान (Institute of Technology) का अध्यक्ष है, नोबल पारितोषिक विजेता है। मिल्लिकन की अपेक्षा किसी भी वैज्ञानिक ने प्रकृति की रचना का अधिक गहन अध्ययन नहीं किया है। सबसे पहले मिल्लिन ने ही इलेक्ट्रोन के सामर्थ्य एवं सूक्ष्मता का निर्धारण किया था। थोड़े दिन हुए उसने भौतिक विज्ञानियों के एक प्रतिष्ठित समुदाय के समक्ष भाषण देते हुए कहा कि जीवन भर के वैज्ञानिक अनुसन्धान ने उसे बतलाया है कि एक दैवी शक्ति (Divinity) है जो मनुष्यों के भाग्य का विधान करती है। उस ने अपने भाषण में कहा—

"हम नहीं जानते कि उस महान् विधाता शिल्पी (Great Architect) के विधान में हम किस भांति उपयुक्त हो सकते हैं और उसने हमारे लिये कितना और क्या करना निर्धारित किया है। किन्तु इतना निश्चित है कि यदि हम अपना निर्धारित कर्त्तव्य पूरा न कर पाएं, तो वह अवश्य ही अकृत ही रहेगा।

"किन्तु किसी न किसी भांति हम उपयुक्त अवश्य हो जाते हैं, अन्यथा हमें अपने उत्तरदायित्व का भान कभी भी न होता। सर्वथा भौतिकवाद (Purely Materialistic Philosophy) तो मेरी समझ में, बेसमझी की पराकाष्ठा है"।

विज्ञानिक शिरोमणि मिल्लिकन के इस विज्ञान-मूलक प्रवचन पर किसी टीका-टिप्पण की आवश्यकता नहीं है। हमें तो केवल इतना कहना है कि जो विज्ञान के नाम से भगवान् की सत्ता का प्रत्याख्यान करते हैं, वे उपर्युक्त उद्धरण के अन्तिम वाक्य को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

पंचपुरी में साहित्यिक गोष्ठी—श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक के प्रदत्त सत्यज्ञान को काशीनागरी प्रचारिणी सभा ने उत्तर भारत में हिन्दी प्रचार का केन्द्र बना रखा है। समय समय पर इस की ओर से साहित्यिक चर्चा योग्य रीति से होती रहती है। अभी १८-२-५१ को उस की ओर से हरद्वार के श्रवणनाथ ज्ञान-मन्दिर में कविवर प्रसाद (जयशङ्कर प्रसाद) का जयन्ती समारोह मनाया गया, जिस में पञ्चपुरी के अनेक गण्यमान्य साहित्यिकों ने भाग लिया। इसका श्रेय श्री ओम्प्रकाश जी विशारद को है। आप एक उत्साही युवक हैं, कार्य्य करने की लगन आप की अत्यन्त प्रशंसनीय है। स्वामी सत्यदेव जी राष्ट्रभाषा के अग्रदूत रहे हैं। उनका निकेतन हिन्दी-प्रचार का केन्द्र बन रहा है, यदि जनता इस में अपेक्षित सहयोग दे तो यह हिन्दी प्रचार का एक विशाल केन्द्र बन सकता है।

नेपाल में नमस्ते—नेपाल के राणा परिवार के साथ प्रजा का जो सशस्त्र संघर्ष चल रहा था भारत सरकार के सौहार्दपूर्ण हस्तक्षेप के फलस्वरूप वह शान्त हो गया है। संविधान-परिषत् की स्थापना से एक अन्तरिम सरकार की स्थापना की गई है, जिस में दस मन्त्री होंगे। उसमें पांच मन्त्री प्रजावर्ग से लिए गए हैं।

पहले सेना में परस्पर तथा अपने से उच्च अधिकारियों को प्रणाम करते समय 'सलाम' शब्द का व्यवहार होता था, अब प्रधान सेना-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पति के आदेश से 'नमस्ते' शब्द का व्यवहार हुआ करेगा। 'जमीयत-उल्-उलमा' देहली का मुखपुत्र 'अलजमीयत' इस पर बौखला उठा है और उसने इस पर अनुचित एवं अयोग्य टिप्पणी करने का दुस्साहस किया है। हम जमीयत से पूछना चाहते हैं कि भारत में आप अरबी नामों का व्यवहार क्यों करते हो? जमीयत यदि भारत भक्त है तो उसे भारतीयता का विरोध त्याग कर भारतीय भाषा, भारतीय भाव एवं भारतीय भूषा के प्रचार में लगना चाहिये। उसे ज्ञात होना चाहिए कि 'नमस्ते' भारत की ही नहीं, संसार की सब से पुरातन संस्कृति का शब्द है; उससे विरोध क्यों?

स्वाध्याय-सन्दोह

'वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म्म है' इस आर्ष आदेश के पालन करने की सुविधा के विचार से ही इस ग्रन्थरत्न की रचना की गई है। इसका पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया था। मांग बराबर थी। उसे पूरा करने के लिए दूसरा संस्करण छपाया है। इसमें कुछ बढ़ाया भी गया है। परिवर्धन होने पर भी मूल्य केवल ६) रखा है। कागज आदि की महंगाई के कारण थोड़ी प्रतियां छपवाई जा रही हैं। अतः शीघ्र अपनी प्रति के लिए निश्चिन्त हो जाइए। प्रतिदिन के स्वाध्याय के लिए इससे बढ़िया पुस्तक आप को इस समय और नहीं मिल सकती। विद्वान् तथा सामान्य, सभी प्रकार के लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। मूल्य ६), डाक व्यय पृथक्।

मांस-मदिरा-निषेध—मूल्य।=), १००प्रति इकट्ठी लेने वाले को =) प्रति के हिसाब से; डाक व्यय पृथक्।

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः—'विश्वानि देव' आदि आठ मन्त्रों की ललित, मनोहारिणी, और मग्न कर देने वाली व्याख्या। मूल्य =)॥, १०० प्रति का १२॥) साढ़े बारह रुपये। मूल्य पेशगी भेजने वाले से डाक महसूल भी नहीं लिया जाता।

नैमित्तिक-वैदिक पाठ—प्रातःकाल से लेकर रात्रि को सोने के समय तक के विविध अवसरों पर पठनीय वेद-मन्त्रों का संग्रह। मन्त्रों के साथ सुन्दर भावार्थ तथा शब्दार्थ। मूल्य।) डाक व्यय पृथक्। एक प्रति मंगाने वाले।-) का टिकट भेजें।

मिलने का पता—अध्यक्ष, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासिवानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छप गया प्रकाशित हो गया

सांख्यदर्शन का इतिहास

जिस ग्रन्थरत्न की इतने काल से प्रतीक्षा हो रही थी, अन्तको वह छपकर आगया। इस ग्रन्थरत्न में सांख्यदर्शन की रचना का काल, रचयिता, तथा पुराने सांख्याचार्यों एवं सांख्य के नवीन संप्रदाय के प्रवर्त्तक ईश्वर कृष्ण तथा अन्य सांख्याचार्यों का प्रामाणिक इतिहास हैं। सप्तसिन्धु कहां हैं? सरस्वती कहां थी। अब कहां है? वर्तमानकाल में मिलने वाला सांख्यदर्शन ही सांख्यविषयक सब से पुराना ग्रन्थ है, इस सांख्यदर्शन के उद्धरण किन किन पुराने ग्रन्थों में मिलते हैं इत्यादि सहस्रों विषयों का निरूपण आप को इस ग्रन्थरत्न में मिलेगा। विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री जी के जीवनसार के अध्ययन का यह सार है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए० पी० एच० डी तथा डा० मंगलदेव शास्त्री एम० ए० डी० फिल ऐसे उद्भट विद्वानों ने इस की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि सांख्यदर्शन के संबन्ध में संसार की अन्य किसी भी भाषा में इतना बड़ा तथा प्रामाणिक ग्रन्थ आप को नहीं मिल सकता। ग्रन्थ की प्रति थोड़ी छपाई हैं। अतः मंगाने में शीघ्रता कीजिए। मूल्य ३०) तीस रुपये। डाकव्यय अतिरिक्त।

क्या आप गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं?

यदि आप का उत्तर हां में है, तो क्या आप उसका अर्थ, उसका गौरव, उसके जप की विधि जानते हैं? इन तथा इन जैसी अन्य आवश्यक बातों जानने के लिए सावित्रीप्रकाश नामक पुस्तक का स्वाध्याय कीजिए। उसके लेखक अध्यात्मविद्या के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ हैं। गायत्री मन्त्र की इतनी उत्तम व्याख्या आपको और कहीं नहीं मिलेगी। अनेक समाचार पत्रों तथा विद्वानों एवं साधकों ने उसकी प्रशंसा की है। इतनी गुणगणाढ्य पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया है, डाक व्यय इसके अतिरिक्त है।

मिलने का पता—

मन्त्री— विरजानन्द वैदिक संस्थान

ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

["Regd. No. E. P. 425. रजि० सं० इ० पो० ४२५

क्या आप आर्यों के परम धर्म का पालन करते हैं ?

ऋषियों का आदेश है—'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' वेद संस्कृत भाषा में हैं। लोग चाहते हुए भी इस कठिनता के कारण उस से लाभ न उठा सकते थे। ऋषि दयानन्द ने सब से पहले इस कठिनता को दूर किया। ऋषि से प्रेरणा पाकर उनके चरण चिन्हों पर चलने वाले श्री स्वामी वेदानन्द ने सर्वसाधारण के लिए वेद को सुलभ कर दिया है। एक दिन के लिए एक मन्त्र के विचारण से ३६६ मन्त्रों का संग्रह 'स्वाध्याय सन्दोह' नामक विशाल ग्रन्थ रच कर उन्होंने सर्वसाधार के लिए वेद का द्वार खोल दिया है। मन्त्रों की व्याख्या वेदमन्त्रों, उपनिषद्वचनों तथा अन्य अनेक ऋषियों के वचनों से पुष्ट की गई है। भाषा सरल, ललित है। साधारण जनता तथा लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने समान रूप से इस की प्रशंसा की है। समाचारपत्रों के सम्पादकों ने इसकी सराहना की है। यह बात सर्वसम्मत है कि संप्रति प्रतिदिन स्वाध्याय करने के लिए इससे उत्कृष्ट ग्रन्थ और कोई नहीं है। इतने विशाल ग्रन्थ का मूल्य केवल छः रुपये ६) है। डाक व्यय इससे पृथक् है। मंगाने की शीघ्रता कीजिए अन्यथा अगले संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह इसका दूसरा संस्करण है।

प्रार्थना करना सीखिए

प्रत्येक आस्तिक को प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। ऋषि ने साधारण जनों की सुविधा के लिए चारों वेदों से केवल आठ मन्त्र स्तुति प्रार्थना-उपासना के लिए संकलित किए हैं। आराधक प्रकार भी स्वामी वेदानन्द ने उनकी भावमयी व्याख्या लिखी है, जिसे पढ़ते समय पाठक तन्मय हो जाता है। आप भी उसे पढ़िये और आनन्द विभोर हूजिए, उसका नाम 'ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासनामन्त्राः' है। मूल्य केवल ढ़ाई आने, डाक व्यय पृथक्।

नैमित्तिक वैदिक पाठ

संकलन कर्ता—श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी तथा व्याख्याकर्ता श्री स्वामी वेदानन्द जी

पुराने आर्य्य प्रत्येक कार्य्य करते हुए भगवान् का स्मरण किया करते थे। उनका यह स्मरण वेद मन्त्रों के द्वारा होता था। श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने प्रत्येक अवसर के उपयोगी ऐसे मन्त्रों का संकलन कर दिया है। वेदों के मार्मिक विद्वान स्वामी वेदानन्द ने उनकी सुललित व्याख्या कर दी है। प्रत्येक आस्तिक वैदिक के पास यह पुस्तिका होनी चाहिए। मूल्य चार आने। डाक व्यय पृथक्।

मिलने का पता:—

मन्त्री, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल,

ज्वालापुर

मुद्रक:—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय दीवान हाल दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान ॥ ओ३म् ॥

वेद-पथ

मासिक

❀ वैदिक आचार-विचार-व्यवहार-प्रसारक ❀

द्वितीय वर्ष — माधव = वैशाख २००८ वि० (१२७ द०) = अप्रैल १९५१ ई० — नवमांक

सम्पादक
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
विरजानन्द वैदिक
संस्थान
ज्वालापुर,
जि० सहारनपुर

कुछ विशेष कारणों से विशेषाङ्क का निकालना स्थगित कर दिया गया है। अनुग्राहक पाठक क्षमा करें।

'वेदपथ' के ग्राहक बढ़ाकर वेदप्रचार में क्रियात्मक सहयोग दें।

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा
५≡)
वी० पी० द्वारा
५।)
एक प्रति ।।)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृ०
१. स्वाध्याय सूक्ति संग्रह	श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज	२३१
२. भारतीय कालन्दर		२३३
३. वेद अपौरुषेय हैं	श्री प्रो० दशरथ श्रोत्रियाचार्य एम० ए० एम० आर० ओ०	२४०
४. सृष्टि की आदिम अवस्था में युवा लोग उत्पन्न हुए	आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी	२४२
५. आर्य समाजिक राष्ट्रिय संस्थाओं की अन्तर्ध्वनि (कविता)	श्री पं० लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति	२४४
६. राम कालीन भारत	श्री आचार्य रामानन्द जी शास्त्री	२४५
७. दिवारोहण	श्री महात्मा विद्यानन्द जी विदेह	२४८
८. आत्मा का स्थान	श्री पं० विश्वनाथ जी	२४९
९ ब्रह्म का स्वरूप	विद्याभास्कर श्री उदयवीर जी शास्त्री	२५०
१०. श्रद्धा	श्रीमान् लालचन्द जी—मेरठ	२५७

वेदपथ मासिक के नियम

१. **वार्षिक शुल्क**—पांच रुपये तीन आने ५≡) अगाऊ आने चाहिए। वी०पी० द्वारा मंगाने पर पांच रुपये आठ आने लगते हैं। विदेशों से साढ़े सात रुपये ७॥) लिया जाता है। एक प्रति का मूल्य ।।) है, वी० पी० से ।।।–) लगते हैं। विदेशों से एक प्रति का मूल्य ।।।)

२. **प्रकाशन तिथि**—अंग्रेजी मास की १५वीं तारीख को भेजा जाता है। पत्र भली भांति देख भाल कर भेजा जाता है, यदि किसी ग्राहक को पत्र न मिले तो उस की सूचना उस महीने की अन्तिम तिथि तक कार्य्यालय में आनी चाहिए।

३. लेख यथा संभव संक्षिप्त एवं कागज़ के एक ओर लिखे हुए आने चाहिए। लेख वेद सम्बन्ध में होने चाहिए। वैयक्तिक कलह सम्बन्धी लेख प्रकाशित नहीं हो सकेगा। लेख में आवश्यक फेरफार का सम्पादक को अधिकार है। लेखों में प्रकाशित विचारों का उत्तरदायित्व लेखक पर है, सम्पादक पर नहीं।

४. लेख 'सम्पादक, वेदपथ' मासिक, वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (ज़ि–सहारनपुर) के नाम आने चाहिए।

५. वार्षिक शुल्क तथा पत्र सम्बन्धी पत्र व्यवस्थापक वेदपथ मासिक, देहली से करना चाहिए।

६. अश्लील विज्ञापन नहीं लिये जाते।

७. पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या, जो आप के नाम के पहले लिखी है, अवश्य लिखिए।

८. नूतन ग्राहक शुल्क भेजते हुए कूपन में लिख दें कि नूतन ग्राहक हैं।

व्यवस्थापक

'वेदपथ' मासिक देहली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ० १।४१।४)

वेद-पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

द्वितीय वर्ष | देहली | माधव = वैशाख २००८ वि० (१२७ द०) = अप्रैल १९५१ ई० | नवमाङ्क

ओ३म्

स्वाध्याय सूक्ति संग्रह

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

१००. युतद्वेषसः समिषा रभेमहि (१।२३।४)
द्वेष त्याग कर हम इच्छापूर्वक उत्तम कार्य्य करें।

१०१. त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः (१।५३।११)
तेरे प्रसाद से अत्यन्त दीर्घ आयु धारण करते हुए हम सुवीर तेरी स्तुति करें।

१०२. नहि ते अन्तः शवसः परीणशे (१।५४।१)
प्रभो ! तेरे सामर्थ्य का अन्त-पार नहीं पाया जा सकता।

१०३. अर्चा शक्राय शकिने शाचीपते (१।५४।२)
हे बुद्धिमन ! शक्तिशाली प्रभु की पूजा कर।

१०४. शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि (१।५४।२)
सब की सुनने वाले भगवान् की पूजा करता हुआ सब भांति स्तुति कर।

१०५. अर्चा दिवे बृहते (१।५४।३)
महान् प्रकाश के लिए पूजा कर।

१०६. व्यस्तुहि, तर्पया काममेषाम्। अथा मनो वसुदेयाय कृष्व (१।५४।९)
विविध प्रकार से फैल, इन की कामना पूरी कर और धन देने के लिये मन बना।

१०७. विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः (१।५५।३)
तेजस्वी सब कामों के लिये पुरोहित = नेता होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१०८. स इद् वने नमस्युभिर्वचस्यते १।५५।४)।
विनम्र भक्तों से वन में उसी की चर्चा होती है।
[अर्थात् एकान्त में भक्त भगवान की ही चर्चा करते हैं।]

१०९. अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय (१।५५।५)
अब तो ज्योतिर्मय भगवान् पर ही श्रद्धा करते हैं।

११०. दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते (१।५५।७)
हे शान्तिरक्षक ! दान के लिए तेरा मन हो।

१११. अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोः (१।५५।८)
तू हाथों में अखुट धन रखता है।

११२. प्रमंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय मतिं भरे (१।५७।१)
मैं पूज्यतम, महान्, महाधनी, सत्यसामर्थ्य वाले भगवान् के प्रति ज्ञान तथा कर्म अर्पण करता हूँ।

११३. अस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण(१।५७।५)
हे भगवन् ! इस स्तोता की कामना सर्वथा पूर्ण कर।

११४. सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः (१।५७।६)
भगवान् ! तू सदा अपने सकल बल को केवल=सुखदाय रखता है।

११५. सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् । (१।५८।७)
प्रयत्न से सेवा करता हूँ [और] रत्न प्राप्त करता हूँ।

११६. त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते (१।५९।१)
सभी जीवनधारी तेरे कारण आनन्द पाते है।

११७. तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय (१।५९।२)
हे वैश्वानर ! विद्वान् लोग तुझ दिव्य ज्योति को आर्य्य ही के लिए प्रकट करते हैं।

११८. आपृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः (१।६०।२)
जगन्निर्माता प्रजापति की सृष्टि में खोज करनी चाहिये।

११९. इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त (१।६१।२)
हृदय तथा मन के द्वारा, सकलैश्वर्य सम्पन्न बुद्धिपति, सनातन भगवान् के लिए, ज्ञानी जन संकल्पों को शोधते हैं।

१२०. सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोपदस्यन्ति दस्म (१।६२।१२
हे संहारक सुन्दर ! धन सदा से ही तेरी मुट्ठी में हैं, वे न क्षीण होते हैं, न नष्ट होते हैं।

१२१. ऋतस्य देवा अनुव्रता गुः (१।६५।२)
ज्ञानी ऋत के नियमों का अनुगमन करते हैं।

१२२. अग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः (१।६५।४)
अग्नि ही पृथिवी के रोमों को चमकाता है।

१२३. भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सचन्तो अमृतमेवैः (१।६८।२)
आचरणों के द्वारा ऋत से समवेत होते हुए सभी देव देवत्व नामक अविनाशी कीर्ति का सेवन करते हैं।

१२४. नभो न रूपं जरिमा मिनाति (१।७१।१०)
अन्धकार की भांति बुढापा रूप=सौंदर्य को नष्ट कर देना है।

१२५. अमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः (१।७२।२)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिश्रमी, सुपथगामी बुद्धिमान् जन अग्नि के सुन्दर परम पद में स्थित होते हैं।

१२६. रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् (१।७२।८)
धन के द्वारों तथा विघ्नों को ऋत के ज्ञाता जानते हैं।

१२७. भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् (१७।३।४)
समस्त जीवन धनों का आधार बना रहा।

१२८. दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः (१।७३।७)
यज्ञ में पूज्यों का यश आकाश तक फैलता है।

१२९. जुषस्व सप्रथस्तमं वचः (१।७५।१)
विस्तृत वचन का सेवन कर।

१३०. वोचेम ब्रह्म सानसि (१।७५।२)
भक्तिसमारोह में हम वेद बोलें।

१३१. सखा सखिभ्य ईड्यः (१।७५।४)
भगवान्-रूपी मित्र जीव रूपी सखाओं का पूज्य है।

१३२. यजा महे सौमनसाय देवान् (१।७६।२)
महान् सौमनस के लिए विद्वानों की संगति कर।

१३३. भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा (१।७६।३)
यज्ञों की निर्दोषता का रक्षक बन।

•••••••

नव वर्ष के उपलक्ष्य में—

भारतीय कालन्दर

(पञ्चाङ्ग)

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव
आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं
सप्त चक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥ ऋग्वेद १।१६४।१२

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने
तस्मिन्नातस्थु भुर्वनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः,
सनादेव न शीर्यते स नाभिः ॥ ऋग्वेद १।१६४।१३

(पञ्चपादम्) ऋतुओं की पांच [1] यह गतियों वाले (द्वादश-आकृतिम्) बारह महीनों के अनुसार बारह रूपों में दिखाई देने वाले (दिवः पितरम्) दिन को प्रकाश होने से उसके मानो पिता स्वरूप संवत्सर को (परे-अर्धे पुरीषिणं आहुः) परले आधे भाग अर्थात् दक्षिणायन में पानी [2]-पैदा करने वाला कहते हैं। (अथ इमे अन्ये) ऋतु=विज्ञान के जानने

× कालं दणाति विभाजयतीति कालन्दरः (समय का विभाग बताने वाला नियम)

१. शिशिर और हेमन्त को एक मान कर पांच ऋतु, गिने जाते हैं:—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, और हेमंत।

२. सूर्य १० आषाढ़ (२३ जून) से लेकर ८ पौष (२२ दिसम्बर) तक विषुवत् रेखा से दक्षिणदिशा की तरफ रहता है, इसी से इस दिशा को "दक्षिणायन" कहते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वाले वैज्ञानिक लोग (उ परे सप्त चक्रे) दूसरी तरफ के सात चक्रों [३] और छः अरों [४] वाले उत्तरायण [५] के छः महीने वाले संवत्सर के समयविभाग में (विचक्षणं अर्पितं आहुः) आंखों वाले प्राणिमात्र [६] में अर्पित कहते हैं।

(तस्मिन् परिवर्तमाने पञ्चअरे चक्रे) उस घूमने वाले पांच अरों अर्थात् पांच ऋतुओं वाले संवत्सर के समय विभाग अथवा कालचक्र में (विश्वा भुवनानि आतस्थुः) समस्त जड़-चेतन अथवा लोक-लोकान्तर अवस्थित बने रहते हैं। (तस्य अक्षः भूरि भारः न तप्यते) उस चक्र का अक्ष केन्द्र बहुत भारी होने पर भी तपने-गरमाने नहीं पाता, बल्कि (सनात् एवसः नाभिः न शीर्यते) सनातन से एकरस घूमती हुई भी वह केन्द्रीय नाभि टूटने फूटने भी नहीं पाती।

जब शिशिर एवं हेमन्त ऋतु को एक में मिला कर पांच गिने जाते हैं, तब ज्योतिष में इन पांच ऋतुओं का सम्मिलित नाम एक "युग" माना जाता है। ऊपर लिखे पांच प्रकार के संवत्सरों के ऋतुविषयक सूक्ष्म विभागों का गणित से शोध पञ्चाङ्ग का मुख्य उद्देश्यसमझा जाता है। एक युग में पड़ने वाले पांच ऋतुओं को ज्योतिष में "अनुवत्सर, इडावत्सर, उद्वत्सर परिवत्सर और संवत्सार" कहा जाता है।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान के जानने वालों का विश्वास है कि ज्योतर्विज्ञान का आदि-प्रवर्तक भगवान् भास्कर अर्थात् सूर्य है। "सूर्य" किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का नाम नहीं, वरन् वही चमचमाता हुआ सूर्य पिण्ड है जिसे, हम प्रति-दिन सवरे उदय और सायंकाल को अस्त होते अपनी आंखों देखा करते हैं। सच तो यह है कि जब से मानव जगत् का आरम्भ हुआ, तभी से देश एवं काल का भी ज्ञान आरम्भ हुआ। सब से पहले मनुष्य ने जब देखा कि उसके सामने गरमी और प्रकाश फैलाने वाला एक चमचमाता हुआ गोला ऊपर को उठ रहा है, उसके ऊपर आते ही सब जगह उजियाला हो जाता है और सब कुछ साफ़ साफ़ दीखने लगता है। इसी प्रकार जब वह गोला नीचे जाते जाते सर्वथा अदृश्य हो जाता है, तब सब जगह काला काला अंधेरा छा जाता और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। आदि मानव ने यह भी देखा कि, जब यह लाल लाल गोला ऊपर निकलने लगता है, तब सब पशुपक्षी आदि प्राणी अपने अपने स्थान से उठ पड़ते हैं; और अपने पेट भरने के उद्योग में लग जाते हैं, और ज्यों ही यह छिपने लगता है, त्यों ही सब प्राणी विश्राम करने के लिए सोने लगते हैं। इस प्रकार मानव को दिन और रात का ज्ञान, हुआ और यह ज्ञान

---

३ दक्षिणायन, उत्तरायण, ऋतु, मास, पक्ष, दिन और रात—ये संवत्ससर-काल के मानो सात चक्र है।

४ बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर एवं हेमन्त—ये छः ऋतुएं ही इस चक्र के मानो छः अरे हैं।

५ ६ पूस (२३ दिसम्बर) से ले कर ६ आषाढ़ (२२ जून) तक सूर्य विषुवत् से उत्तर दिशा में रहता है, उसी से इस दिशा को उत्तरायण कहा जाता है।

६ सूर्य के उत्तरायण में रहने से भूमिदार किसान बोने काटने से निवृत्त हो जाते हैं; इसी से उत्तरायण में कृषकवर्ग को विश्राम करने का पूरा समय मिला रहता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उसे केवल सूर्य पिण्ड को उदय एवं अस्त होते देखते रहने से ही हुआ। इसी भाव से सूर्य को काल-विभाग का आदि प्रवर्तक कहना—सर्व-मान्य सत्य को ही प्रकट करना है। भारतीय आर्य मुनियों ने इस विज्ञान का नाम 'ज्योतिष' सार्थक ही रक्खा है—ज्योति शब्द भी तो सूर्य के प्रकाश का ही दूसरा नाम है। वस्तुतः हमारी इस भूमि का प्रवर्तक भी सवितृ देव के बिना और कोई नहीं—इस तथ्य को वर्तमान युग के वैज्ञानिक भी मुक्त-कण्ठ स्वीकार करते हैं। इसीलिये सूर्य-सिद्धान्त में कहा गया हैं कि ज्योतिष शास्त्र का आदि प्रवर्तक सूर्य [1] है।

भारत में आजकल तीन प्रधान धार्मिक सम्प्रदाय होने से तीन ही प्रकार के कालन्दर अथवा काल-विभाग प्रचलित हैं—ईसाई जगत् ईस्वी कालन्दर को मानकर व्यवहार करता है, मुस्लिम वर्ग हिजरी कालन्दर के अनुसार काम करता है; और हिन्दू जगत् पहले तो सौर मास को काम में लाता था, किन्तु मुसलमानी राज्य-काल में चान्द्र मास का व्यवहार करने लगा। हिजरी कालन्दर वस्तुतः चान्द्रमास के अनुसार ही स्वीकार किया गया था। ईस्वी कालन्दर (सन) का आरम्भ यहूदी राज की आज्ञा से ईसा को सूली होने वाले दिन से होता है। हिजरी सन् मुहम्मद के मक्का से मदीना के लिए हिजरी करने (निर्वासित होने) वाले दिन से गिना जाता

है, और विक्रम संवत् पांचवें गुप्तवंशीय सम्राट 'स्कन्द गुप्त-विक्रमादित्य' के हूणविजय महोत्सव के दिन से चालू हुआ जो आजकल विवादस्पद होने पर भी बराबर चल रहा है।

ईरान के आदिम निवासियों अरबों एवं यहूदियों संवत् का चान्द्रमास के अनुसार व्यवहार हुआ करता था। उस समय के ईसाइयों में भी इसी प्रथा का अनुसरण किया जाता था, और उसी चान्द्रमास के अनुसार काल-गणना मुसलमानों ने ग्रहण की। मुस्लिम राज के प्रभाव में आने पर हिन्दू भारत ने भी उसी को अपनाया। भारतीय नक्षत्र-विज्ञान के अनुसार चन्द्रमा को अपनी कीली पर घूमते हुए इस भूमि का आण्डिक परिभ्रमण करने में २६ दिन ३१ घड़ी (१८ घण्टे) और ५० पल (४४ मिनट) लगते हैं। इस प्रकार चन्द्रमा के बारह बार अथवा बारह महीने भूमि के चारों तरफ घूमने में ३५४ दिन २२ घड़ी (८ घण्टे ४४ मिनट) लग जाते हैं। मुसलमानी चान्द्रमास के अनुसार वर्ष भर का समय भी इतना ही माना जाता है। ईस्वी कालन्दर आजकल सौरमास के अनुसार चल रहा है; किन्तु ईस्वी सन् भी प्रारम्भिक कई शतियों तक चान्द्रमास के अनुसार ही व्यवहार में लाया जाता रहा।

आर्य जाति के वैदिक युगों में सौर मास प्रधान रहा है। कारण यह कि वैदिक वाङ्मय

---

१ शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः। युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलः॥ मध्यमाधिकार श्लोक ६

२ चन्द्र मास दो तरह का माना जाता है:—पहला शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर अमावस तक, और दूसरा कृष्ण पक्ष की पड़वा से लेकर पूर्णमासी तक। इनमें से पहला ही मुख्य एवं वास्तविक होने से माननीय समझा और माना जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में सूर्य को सब से अधिक महत्वपूर्ण नक्षत्र माना गया है। [1] यहां तक कि, सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च [2] महा वाक्य द्वारा परमेश्वर को भी सूर्य एवं सविता [3] के नाम से स्मरण किया गया है। इसी भावना को लेकर आर्य जाति का कालन्दर भी सौर मास के अनुसार चलता रहा जब मुसलमानी राज्यकाल में चान्द्रमास की प्रथा स्वीकार की गई, तब उसे सौरमास के साथ मिलान करना कठिन प्रतीत होने लगा। कारण यह कि चान्द्रमास के अनुपात से वर्ष भर में ३५४ दिन ८ घण्टे और ४८ मिनट का समय लगता है, जब कि सौर मास के अनुपात से एक पूरे वर्ष में ३६५ दिन ६ घण्टे ११ मिनट और १४ सैकण्ड का समय लगता है। इस लेखे के अनुसार सौर कालन्दर से चान्द्रकालन्दर १० दिन २१ घण्टे २३ मिनट और १४ सैकण्ड का अन्तर पड़ जाता है। इस अन्तर को मिटा कर दोनों कालन्दरों को एक रेखा पर लाने के लिए उस समय के गुजराती विद्वान् ज्योतिषी श्री शीलभट्ट तथा महाराष्ट्र के ख्यातनामा गणिताचार्य ने सम्भवतः ऋग्वेद १।२५।८ को ऋग्वेद १।१६४।११ एवं १।१६४।४८ के साथ संकलित जान कर हर चौथे वर्ष एक अधिमास अथवा मलमास की योजना की, और इस प्रकार गणना का मानदण्ड ठीक किया।

भारतीय ऋतुओं का आधार भी सूर्य-मंडल है और इन का विभाग-क्रम भी सूर्य के सम्बन्ध से ही निश्चित किया जाता है। इसी से पता लगता है कि भारत में अतीत काल में सौर मंडल के आधार पर ही कालन्दर (पञ्चाङ्ग) बनाये तथा काम में लाये जाते थे। कारण—चान्द्र मास के अनुसार कालन्दर बनाने-चलाने में ऋतुओं के लिए न तो कोई महीना निश्चित हो सकता है और न ही कोई अवधि निर्धारित की जा सकती है। भारत में सदैव वैशाख (मेष) संक्रान्ति से वर्ष और कार्तिक (तुला) संक्रान्ति से शरद् संवत् का आरम्भ माना गया है। वर्ष उसी को कहते हैं जो वर्षा काल से आरम्भ हो, और शरद् संवत् भी वह ही समझा जाता है जिस का आरम्भ कार्तिक संक्रान्ति से होता है। किन्तु चान्द्रमास से गणना करने पर हमें भी ऋतु-विभाग से अलग हो कर मुसलमानों की भांति हर तीसरे-चौथे साल एक महीना पीछे की तरफ़ सरकना पड़ता और हमारी कालगणना ऋतुओं के साथ कभी भी सङ्गत न रह सकती। हम लोग मुसलमानों के मोहर्रम हर तीसरे साल हिन्दू काल-गणना के अनुसार एक महीना पीछे सरकता हुआ बराबर देखते आ रहे हैं। मोहर्रम घूमता हुआ भी तीन साल तक एक ही महीने में पड़ता है। यही कारण है कि मोहर्रम को किसी भी भारतीय ऋतु के साथ मिलाया नहीं जा सकता।

१२×३=३६ के पश्चात् मोहर्रम फिर अपने पहले महीने में आ पड़ता है। आर्य लोग चान्द्रमास अपना कर भी जो इस गड़बड़झाले में नहीं पड़े और अपने तीजत्योहारों को ऋतुओं के साथ समतल रखने में किसी सीमा तक समर्थ रहे—इस का कारण यह ही है कि आर्य

[1] ऋग्वेद १।११५।४ [2] यजुर्वेद ७।४२ [3] ऋग्वेद ३।६२।१०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ज्योतिर्विदों ने चान्द्रमास में हर तीसरे साल 'मलमास' बढ़ा कर सौर मास के साथ मिलान बनाये रक्खा। इसीलिये आर्यों के वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, श्रावणी, माघी एवं होली त्यौहार निश्चित समयों पर ही पड़ते हैं:—उन्हें मोहर्रम की तरह आगे पीछे सरकना नहीं पड़ता।

ऊपर कहा जा चुका है कि, पहले पछांहीं देशों में भी चान्द्रमास के अनुसार ही कालन्दर बनाए जाते थे और उन्हीं देशों से अरब वालों ने उक्त प्रथा का अनुकरण किया, किन्तु रोम के सम्राट 'ज्यूलयस सीज़र' ने जब सारे यूरोप पर अपनी धाक जमाली तब उसने ईसा की पहली शती में ही सौर कालन्दर चालू कर दिया। इन दिनों सौर वर्ष ३६५ दिन और ६ घण्टों का मानो जाता था—जिससे हर चौथे साल २४ घण्टों का अन्तर पड़ जाया करता। इस अन्तर को मिटाने के लिये ज्यूलियसीज़र ने हर चौथे साल फर्वरी मास में एक दिन बढ़ा कर इन २४ घण्टों को बिलीन करने की आज्ञा दी। इस संशोधन का नाम "जुलियन सुधार" (Julian Reform) प्रसिद्ध हुआ। इस सुधार के प्रचलित हो जाते पर भी एक कमी रह गयी, वह यह कि सौर वर्ष वास्तव में ३६५ दिन ६ घण्टे ११ मिनट और १४ सैकण्ड का होता है। इसलिए इन ११ मिनट १४ सैकण्ड की अधिकता से सौर वर्ष की पूरी गणना में अन्तर रहता ही चला गया। यद्यपि इतने अन्तर का समय कुछ बहुत नहीं था, पर समय पाकर इतना-सा अन्तर भी घण्टों, दिनों और महीनों के बराबर हो जा सकता है। ईस्वी सन् १५८१ में रोम के तत्कालीन पोप ग्रेगरी (Pope Gregory) ने इस उलझन को दूर करने के लिए उस समय के प्रसिद्ध रूमा ज्योतिषियों से परामर्श लिया। पोप ग्रेगरी स्वयं भी इस विषय की अच्छी जानकारी रखता था। तब तक योरोप के सौर वर्ष में लगभग १० दिनों का अन्तर हो चुका था। उसने इसे विलीन करने और भविष्य में ऐसा न होने देने के लिए भी एक नियम निर्धारित किया। उसने घोषणा की कि १४ अक्टोबर सन् १५८२ का बृहस्पतिवार दूसरे दिन को १५ अक्तूबर १५८२ का शुक्रवार मान लिया जाय। इसके अतिरिक्त जूलियन संशोधन के अनुसार हर चौथे साल फर्वरी मास में एक दिन बढ़ा कर २८के स्थान पर २६दिन गिने जाया करें, और साथ ही जो साल पूरे सौ पर विभाजित हो, उसमें का फर्वरी महीना २८ दिन का ही माना जाय, किन्तु जो सन् ४०० पर विभाजित हो उसका फर्वरी भी २६ दिन का रक्खा जाय। इसके अतिरिक्त एक नियम यह भी बनाया गया कि जो सन् ४००० पर विभाजित हो उस का फर्वरी २८ दिन ही रहने दिया जाय।

उन दिनों रोम के पोप का प्रभाव समस्त योरोप पर छाया हुआ था। ईसाइयों में अनेक सम्प्रदाय होने पर भी दो प्रधान सम्प्रदाय देखे जाते हैं—एक रोमन कैथोलिक और दूसरा प्रोटैस्टैण्ट। इन दोनों में पहले सम्प्रदाय के अनुयायी रोम (इटली) स्पेन एवं पुर्तगाल, ऐसे देशों ने तो पोप के उक्त संशोधन को मान लिया और उसी के अनुसार लिखा-पढ़ी करने लगे;

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किन्तु रूस ने इसे नहीं माना। इंग्लएड के सम्राट् हेनरी अष्टम (Henry VIII) की ग्रेगरी पोप से पुरानी अनबन चली आती थी, इससे इंगलैएड में भी उक्त संशोधन का स्वागत न हुआ। फिर भी वहां के रहने वाले कैथोलिक ईसाइयों ने उसे मान लिया और वे भी उसी के अनुसार काम करने लगे। इस प्रकार ईसा की १८वीं शती के अन्त तक इगलिस्तान में दोनों मत और दोनों ही कालन्दर भी चलते रहे। यह अन्ततोगत्वा भारी गड़बड़ का कारण हुआ। बात यह हुई कि दोनों तरह के लोग अपने अपने कारोबार और व्यवहार में दोनों प्रकार की मितियों का प्रयोग करने लगे। एक सम्प्रदाय १८ अक्तूबर (D. C.) लिखता तो दूसरा २१ अक्तूबर (N. S.) लिखा करता। यह खिचड़ी ईस्वी सन् १७५२ तक बराबर पकती रही और दोनों में किसी ने भी दूसरे की सुनना अथवा मानना स्वीकार न किया। अन्त को इङ्गलैएड की पार्लामेंट ने इस गड़बड़ को दूर करने के लिए "ग्रेगेरियन पद्धति" के संशोधन को स्वीकार करके उसी को चालू रखने की घोषणा की, तथा २ सितम्बर सन् १७५२ ईस्वी बुधवार में ११ दिन जोड़ कर उसे मानो १४ सितम्बर बृहस्पतिवार घोषित किया। इस प्रकार ईस्वी सन् १७५२ समूचा योरोप "ग्रेगेरियन पद्धति" का अनुयायी हुआ।

योरोप का पञ्चाङ्ग तो ठीक हो गया और चालू भी हो गया, किन्तु भारत की 'असंगति' बराबर चल रही है और कदाचित् "यावच्चन्द्र-दिवाकरौ" चलती भी रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसलिए यहां पर किसी भारतीय ग्रेगरी की आवश्यकता है। भारतीय सौर वर्ष में भी कई दिनों का अन्तर आ चुका है। इसका संशोधन भी कोई ग्रेगरी जैसा प्रभावशाली भारतीय ही कर सकता है। तिथि-क्षय के लिए अभी कई शतियां शेष हैं, एक हज़ार वर्ष के पश्चात् मास-क्षय हो सकता है। कारण कि, प्रति वर्ष २८ पल एवं ५ विपल (११ मिनट और १४ सैकएड का अन्तर पड़ता है। भारतीय पञ्चाङ्ग में लगभग २२ दिन का अन्तर बताया जाता है। इससे पता चलता है कि भारतीय वर्ष गणना का संशोधन लगभग तीन हज़ार वर्ष से नहीं हुआ। इसी लिए भारतीय ज्योतिष की समस्त योरोप में हंसी उड़ाई जा रही है। कोई तो यह शंख बजाता है कि हिन्दुओं का ज्योतिष चीन, यूनान और कालदिया से आया अथवा लाया गया। गणित किसी चौथे देश से लाया गया है और अक्षर इन्हें सेमेटिक लोगों ने दिये हैं। इन बातों को प्रमाणित करने के लिए इन शंख बजाने वालों का मूल मन्त्र एक ही है, और वह यह कि हिन्दी ज्योतिष के विषय में जितना भी साहित्य पाया जाता है वह सब विदेशों से चुरा चुरा कर अपने रंग में रंग लिया गया है। वेबर(Weber) साहब तो भारतीय ज्योतिष की प्राचीनता को जब किसी तरह भी उड़ा नहीं सके, तब कहते हैं कि हिन्दू चन्द्रनक्षत्र मण्डल का ज्ञान "बेबीलोनिया" से लाये हैं। दूसरे महापुरुष व्हिटनी (Whitney) साहिब जब कोई बात नहीं निकाल सके, तब बेबर के स्वर के स्वर में स्वर मिला कर आत्मतुष्टि करते हुए कहते हैं कि हां, जी, हां भारतीय पण्डितों में इतनी योग्यता कैसे रह सकती है कि वे नक्षत्र-विज्ञान को समझ सकें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्रेगेरियन पद्धति के अनुसार विषुव संक्रान्ति अर्थात् २३ मार्च (पञ्जाबी सौर मिति से १० चैत्र) को होती है, उस दिन मानो दिन-रात समकालिक अर्थात् बराबर होते हैं। ज्यूलियसीज़र ने यह समानता २५ मार्च के दिन स्वीकार की इस हिसाब से योरोप में २३ और २५ मार्च के बीच में दो दन का भेद अथवा अन्तर पड़ता है। इधर भारत के किसी किसी पञ्चाङ्ग में तो २३ मार्च के दिन मेषे भानुः (अर्थात् सौर संक्रान्ति) छपा मिलता है, और उसी में १३ अप्रैल के दिन ॐ मेषेऽर्कः भी छाप दिया जाता है। कहना कठिन है कि इतना बड़ा अन्तर क्यों और कैसे? सूर्य तो वर्ष में केवल एक बार और एक ही दिन किसी एक राशि में संक्रान्त हो सकता है और होता है। तब एक दिन "मेषे भानुः" और उसके २२ दिन बाद वही बात दूसरे शब्दों में "मेषेऽर्कः" का क्या प्रयोजन?—क्या भानु और अर्कः नाम वाले दो अलग अलग सूर्य हैं? भारत के ख्यातनामा ज्योतिषाचार्यों को इस विषय पर सम्मिलित रूप से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है।

चान्द्रमास की गणना भी निःसन्देह अति प्राचीन और वैदिक है[1], किन्तु इसकी तिथियां घटती बढ़ती रहती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें एक और बात भी चक्कर में डालने वाली है, वह यह कि "पूर्णमासी" शब्द के दो अर्थ होते हैं—एक चन्द्रमा की पूर्णता और दूसरे महीने की पूर्णता। पञ्चागों में सर्वत्र देखा जाता है कि पूर्णमासी तक १५ तिथि लिखकर दूसरे दिन प्रतिपदा अर्थात् १ से आरम्भ किया जाता है; और १४ तिथियां देकर अमावस तक एक छलांग लगाकर ३० अङ्क पर पहुँचा दिया जाता है, महीने का वास्तविक आरम्भ पूर्णमासी से अगले दिन पड़ने वाली प्रतिपदा से कर लिया जाता है। इसका परिणाम यह होगा कि आधा चैत्र वर्तमान वर्ष के अन्त में रहेगा और आधा चैत्र अगले वर्ष का प्रारम्भिक भाग बनेगा।

ऐसी कई असुविधाएं हैं जिनके कारण उत्तरप्रदेशीय व्यापारियों के वही खातों, घरेलू संस्कारों और तीजत्यौहार के बिना दूसरे कामों में इनका प्रयोग-उपयोग नहीं के बराबर देखा जाता है। अंग्रेज़ी महीनों के दिन एक बार निश्चित कर दिये गये हैं, इसी लिए सर्वसाधारण इन्हीं को अपने लगे। कारण यही कि शुक्ल कृष्ण तिथियों की भांति अंग्रेज़ी तिथियों में उतार चढ़ाव नहीं होता। चान्द्र मास में यह जानना भी सहज नहीं कि कौनसी तिथि विगत होगई, कौन सी टूट गई और कौन बढ़ गई। तिस पर यह कहना कठिन है कि, आज अमुक तिथि कितने दिन चढ़े तक रहेगी और अगली किस समय लगेगी। प्रत्येक मनुष्य; पोथी पत्रा रखने वालों के पास जाने से रहा और पोथी-पत्रा वालों से पूछे बिना इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता। कई बार पञ्चाङ्गों में देखा गया है कि, एक में पञ्चमी तिथि का क्षय बताया जाता है और किसी दूसरे पचांग में उसी पञ्चमी को पूर्ण मान कर षष्ठी घटा दी गई है।

कई वर्ष हुए काशी निवासी श्री शिवप्रसाद जी गुप्त द्वारा स्थापित एवं संचालित "ज्ञान-

---

१ ऋग्वेद १।१६४।११, ४७

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किन्तु रूस ने इसे नहीं माना। इंग्लएड के सम्राट् हेनरी अष्टम (Henry VIII) की ग्रेगरी पोप से पुरानी अनबन चली आती थी, इससे इंगलैएड में भी उक्त संशोधन का स्वागत न हुआ। फिर भी वहां के रहने वाले कैथोलिक ईसाइयों ने उसे मान लिया और वे भी उसी के अनुसार काम करने लगे। इस प्रकार ईसा की १८वीं शती के अन्त तक इगलिस्तान में दोनों मत और दोनों ही कालन्दर भी चलते रहे। यह अन्ततोगत्वा भारी गड़बड़ का कारण हुआ। बात यह हुई कि दोनों तरह के लोग अपने अपने कारोबार और व्यवहार में दोनों प्रकार की मितियों का प्रयोग करने लगे। एक सम्प्रदाय १८ अक्तूबर (D. C.) लिखता तो दूसरा २१ अक्तूबर (N. S.) लिखा करता। यह खिचड़ी ईस्वी सन् १७५२ तक बराबर पकती रही और दोनों में किसी ने भी दूसरे की सुनना अथवा मानना स्वीकार न किया। अन्त को इङ्गलैएड की पार्लामेएट ने इस गड़बड़ को दूर करने के लिए "ग्रेगेरियन पद्धति" के संशोधन को स्वीकार करके उसी को चालू रखने की घोषणा की, तथा २ सितम्बर सन् १७५२ ईस्वी बुधवार में ११ दिन जोड़ कर उसे मानो १४ सितम्बर बृहस्पतिवार घोषित किया। इस प्रकार ईस्वी सन् १७५२ समूचा योरोप "ग्रेगेरियन पद्धति" का अनुयायी हुआ।

योरोप का पञ्चाङ्ग तो ठीक हो गया और चालू भी हो गया, किन्तु भारत की 'असंगति' बराबर चल रही है और कदाचित् "यावच्चन्द्र-दिवाकरौ" चलती भी रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसलिए यहां पर किसी भारतीय ग्रेगरी की आवश्यकता है। भारतीय सौर वर्ष में भी कई दिनों का अन्तर आ चुका है। इसका संशोधन भी कोई ग्रेगरी जैसा प्रभावशाली भारतीय ही कर सकता है। तिथि-क्षय के लिए अभी कई शतियां शेष हैं, एक हजार वर्ष के पश्चात् मास-क्षय हो सकता है। कारण कि, प्रति वर्ष २८ पल एवं ५ विपल (११ मिनट और १४ सैकएड का अन्तर पड़ता है। भारतीय पञ्चाङ्ग में लगभग २२ दिन का अन्तर बताया जाता है। इससे पता चलता है कि भारतीय वर्ष गणना का संशोधन लगभग तीन हजार वर्ष से नहीं हुआ। इसी लिए भारतीय ज्योतिष की समस्त योरोप में हंसी उड़ाई जा रही है। कोई तो यह शंख बजाता है कि हिन्दुओं का ज्योतिष चीन, यूनान और कालदिया से आया अथवा लाया गया। गणित किसी चौथे देश से लाया गया है और अक्षर इन्हें सेमेटिक लोगों ने दिये हैं। इन बातों को प्रमाणित करने के लिए इन शंख बजाने वालों का मूल मन्त्र एक ही है, और वह यह कि हिन्दी ज्योतिष के विषय में जितना भी साहित्य पाया जाता है वह सब विदेशों से चुरा चुरा कर अपने रंग में रंग लिया गया है। बेवर(Weber) साहब तो भारतीय ज्योतिष की प्राचीनता को जब किसी तरह भी उड़ा नहीं सके, तब कहते हैं कि हिन्दू चन्द्रनक्षत्र मण्डल का ज्ञान "बेबीलोनिया" से लाये हैं। दूसरे महापुरुष व्हिटनी (Whitney) साहिब जब कोई बात नहीं निकाल सके, तब बेवर के स्वर के स्वर में स्वर मिला कर आत्मतुष्टि करते हुए कहते हैं कि हां, जी, हां भारतीय पण्डितों में इतनी योग्यता कैसे रह सकती है कि वे नक्षत्र-विज्ञान को समझ सकें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्रेगेरियन पद्धति के अनुसार विषुव संक्रान्ति अर्थात् २३ मार्च (पञ्जाबी सौर मिति से १० चैत्र) को होती है, उस दिन मानो दिन-रात समकालिक अर्थात् बराबर होते हैं। ज्यूलियसीजर ने यह समानता २५ मार्च के दिन स्वीकार की इस हिसाब से योरोप में २३ और २५ मार्च के बीच में दो दन का भेद अथवा अन्तर पड़ता है। इधर भारत के किसी किसी पञ्चाङ्ग में तो २३ मार्च के दिन मेषे भानुः (अर्थात् सौर संक्रान्ति) छपा मिलता है, और उसी में १३ अप्रैल के दिन ॐ मेषेऽर्कः भी छाप दिया जाता है। कहना कठिन है कि इतना बड़ा अन्तर क्यों और कैसे ? सूर्य तो वर्ष में केवल एक बार और एक ही दिन किसी एक राशि में संक्रान्त हो सकता है और होता है। तब एक दिन "मेषे भानुः" और उसके २२ दिन बाद वही बात दूसरे शब्दों में "मेषेऽर्कः" का क्या प्रयोजन ?— क्या भानु और अर्कः नाम वाले दो अलग अलग सूर्य हैं ? भारत के ख्यातनामा ज्योतिषाचार्यों को इस विषय पर सम्मिलित रूप से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है।

चान्द्रमास की गणना भी निःसन्देह अति प्राचीन और वैदिक है[1], किन्तु इसकी तिथियां घटती बढ़ती रहती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें एक और बात भी चक्कर में डालने वाली है, वह यह कि "पूर्णमासी" शब्द के दो अर्थ होते हैं—एक चन्द्रमा की पूर्णता और दूसरे महीने की पूर्णता। पञ्चागों में सर्वत्र देखा जाता है कि पूर्णमासी तक १५ तिथि लिखकर दूसरे दिन प्रतिपदा अर्थात् १ से आरम्भ किया जाता है; और १४ तिथियां देकर अमावस तक एक छलांग लगाकर ३० अङ्क पर पहुँचा दिया जाता है, महीने का वास्तविक आरम्भ पूर्णमासी से अगले दिन पड़ने वाली प्रतिपदा से कर लिया जाता है। इसका परिणाम यह होगा कि आधा चैत्र वर्तमान वर्ष के अन्त में रहेगा और आधा चैत्र अगले वर्ष का प्रारम्भिक भाग बनेगा।

ऐसी कई असुविधाएं हैं जिनके कारण उत्तरप्रदेशीय व्यापारियों के वही खातों, घरेलू संस्कारों और तीजत्यौहार के बिना दूसरे कामों में इनका प्रयोग-उपयोग नहीं के बराबर देखा जाता है। अंग्रेजी महीनों के दिन एक बार निश्चित कर दिये गये हैं, इसी लिए सर्वसाधारण उन्हीं को अपने लगे। कारण यही कि शुक्ल कृष्ण तिथियों की भांति अंग्रेजी तिथियों में उतार चढ़ाव नहीं होता। चान्द्र मास में यह जानना भी सहज नहीं कि कौनसी तिथि विगत होगई, कौन सी टूट गई और कौन बढ़ गई। तिस पर यह कहना कठिन है कि, आज अमुक तिथि कितने दिन चढ़े तक रहेगी और अगली किस समय लगेगी। प्रत्येक मनुष्य पोथी पत्रा रखने वालों के पास जाने से रहा और पोथी-पत्रा वालों से पूछे बिना इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता। कई बार पञ्चाङ्गों में देखा गया है कि, एक में पञ्चमी तिथि का क्षय बताया जाता है और किसी दूसरे पचांग में उसी पञ्चमी को पूर्ण मान कर षष्ठी घटा दी गई है।

कई वर्ष हुए काशी निवासी श्री शिवप्रसाद जी गुप्त द्वारा स्थापित एवं संचालित "ज्ञान-

1 ऋग्वेद १।१६४।११, ४७

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मण्डल" ने पर्याप्त धन खर्च करके सौर मितियों का निश्चय पूर्वक पंचांग बनवाया था जो कदाचित् इस समय तक भी नियमपूर्वक प्रकाशित होता आ रहा है। इस में सौर महीनों के दिन अंग्रेजी तारीखों की भांति निश्चित संख्या में कर दिये गये थे; किन्तु उनका प्रचार जैसा चाहिए था, अब तक भी, नहीं हो पाया। हम आर्य (हिन्दू) मानो हर बात में कुछ ऐसे रूढ़िवादी हो गये हैं कि पुरानी चलती आ रही किसी भूलभ्रान्ति को न छोड़ कर बराबर घसीटते चलते रहे हैं। आवश्यकता है कि अपने ज्ञान विज्ञान की रक्षा के लिए अपनी भूलों को सुधारने का यत्न करें। अंग्रेज जब चला गया तो अंग्रेजियत भी भारत से विदा होनी चाहिए; और हमें इसी १३ अप्रैल के दिन पड़ने वाली मेष संक्रान्ति (१ वैशाख) से अपने लिखनेपढ़ने में सौर मितियों का ही वर्ताव आरम्भ करना चाहिए।

कौन महीना कितने दिन का होता है, इस का निश्चित ब्योरा इस प्रकार है:—

१.	वैशाख	३१ दिन का
२.	ज्येष्ठ	३१ " "
३.	आषाढ़	३२ " "
४.	सावन	३१ " "
५.	भादों	३१ " "
६.	असौज-कुवांर	३१ " "
७.	कातक	३० " "
८.	मार्ग शीर्ष—मगसर	२९ " "
९.	पोष—पूस	२९ " "
१०.	माघ	३० " "
११.	फागुन	३० " "
१२.	चैत्र—चैत	३० " "

जब वर्षों की गणना चार भागों में समान रूप से विभक्त हो जाय तब फागुन का महीना ३१ दिन का होगा, आगे पीछे ३० दिन का रहेगा।

नीचे लिखा दोहा याद कर लेने से सब की गणना अंगुलियों पर की जा सकती है।

मार्ग पूस उनतीस दिन, का मा फा चै तीस।
आ बत्तीस फा चार पर, शेष मिला इकतीस॥
(का=कातक। मा=माघ। फा=फागुन।
चै=चैत्र। आ=आषाढ़।)

ओ३म् शम्

वेद अपौरुषेय हैं

[श्रीमान् प्रो० श्री दशरथ श्रोत्रियाचार्य जी एम० ए० एम० आर० ओ०]

भारतीय वाङ्मय में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय में, वेद-वाङ्मय का जो स्थान है—वह सर्व विदित है। प्राचीन एवं अर्वाचीन तथा पाश्चात्य एवं पौरस्त्य सभी विद्वान् इस विषय में एकमत हैं कि ऋग्वेद कम-से-कम ज्ञात विश्व का सर्वथा प्राचीनतम पुस्तक है। यद्यपि इस अपूर्व और अद्भुत ग्रन्थ के काल के सम्बन्ध में पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानों में भारी मत-भेद है (स्वयं पौरस्त्य विद्वान भी इस विषय में एकमत नहीं हैं), फिर भी यह बात कि ऋग्वेद इस विश्व का सर्वप्रथम तथा सर्व-प्राचीन ग्रन्थ है सभी को मान्य है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यही एक सर्वमान्यता ऋग्वेद की अपौरुषेयता सिद्ध करने को पर्याप्त है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आज सारा पश्चिम जगत भौतिकवाद से प्रभावित है। डार्विन महोदय का विकासवाद यद्यपि धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है, तथापि वह अभी मर नहीं गया। उनके विकासवाद के पोषक तत्त्वों की वैज्ञानिकता अभी भी सर्व-मान्य है। ईश्वर एवं धर्म के खण्डन के लिए अब भी उसी विकासवाद के तीक्ष्ण तत्त्वों का शस्त्रास्त्र की तरह प्रयोग होना रुक नहीं गया। ऐसी दशा में विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार ही हमें पहले विचार कर लेना चाहिये।

सभी विकासवादी यह मानते हैं कि विकास शनैः शनैः होता है विकास में समय लगता है तथा विकास उत्तरोत्तर होता चलता है। आज का विश्व प्राचीन काल के विश्व से सभी तरह से अधिक विकसित है—विद्या में, बुद्धि में, सभ्यता में और संस्कृति में। आज के विश्व से आगे का विश्व और भी अधिक विकसित होगा। यदि यह ठीक मान लिया जाय (जैसा कि प्रायः लोग मानते भी हैं) तो यह भी मानना पड़ेगा कि आज के विश्व से ऋग्वेद-कालीन विश्व अल्पविकसित रहा होगा (प्राकृतिक विकास का यह सिद्धान्त हम भी मानते हैं, किन्तु थोड़ा अन्य प्रकार से) हां, तो ऋग्वेद-कालीन विश्व की इस अर्धविकसितता तथा ऋग्वेद में प्रतिपादित विषयों की प्रौढ़ता और प्राञ्जलता—इन दोनों में, हमीं क्या, सभी संस्कृतज्ञ विद्वान् घोर विरोध पाते हैं—यह एक महान् आश्चर्य है।

जो लोग प्राकृतिक विकासवाद एवं ईश्वरीय आरम्भवाद में कोई अन्तर न मान कर वेद को पौरुषेय मानते हैं, वे यह भी मानेंगे कि साहित्य और समाज का विकास साथ ही साथ होता है। वे दोनों ही अन्योन्याश्रय नियम द्वारा अवनत और उन्नत होते हैं। दोनों के विकास और ह्रास के इतिहास में भी अनिवार्य समता रहती है। फिर यह कैसे संभव है कि ऋग्वेद-कालीन जगत् के अर्धविकसित पुरुष आधुनिक-तम विश्व की विकसित अवस्था की विधिवत् रूपरेखा अपने साहित्य (ऋग्वेद) में खींच पाये। ऋग्वेद के आधुनिकतम अध्ययन से यह सिद्ध हो चुका है कि उसमें अनुग्रथित समाज-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था आदि आधुनिक काल की अपेक्षा किसी प्रकार भी निम्नकोटि की नहीं। अनुसंधान दिन-प्रति दिन आधुनिक विश्व की दुर्बलताओं और असमर्थताओं का हल वैदिक वाङ्मय में पूर्व से ही बताया हुआ प्रतिपादित करता जाता है। आधुनिक गवेषणाओं ने वेदों को कभी 'गडरियों के गीत' बताने वाले पल्लव-ग्राही पाश्चात्य पण्डितों का मुंह बन्द कर दिया है।

ऋग्वेद में जिस समाज-सभ्यता का वर्णन है, वह आज कल की समाज-सभ्यता से बहुत ऊंची है। यदि समाज और साहित्य का नित्य सम्बन्ध मानें, तो हमें यह भी मानना होगा कि या तो उस समय का समाज ही बहुत ऊंचा था अथवा तत्कालीन समाज से ऋग्वेद के साहित्य का कोई सम्बन्ध नहीं था। पहली बात—अर्थात ऋग्वेद-कालीन समाज सभ्यता अत्यन्त उच्च कोटि की थी—मानने से उनका विकासवाद बिना मौत मर जायगा जो उन्हें भी अभीष्ट न होगा, तथा दूसरी बात—अर्थात् ऋग्वेद वाङ्मय का तत्कालीन मानव समाज से कोई सम्बन्ध नहीं—मानने से उन्हें यह भी मानना ही पड़ेगा कि ऋग्वेद अपौरुषेय है।

जो बात ऋग्वेद के विषय में सत्य हो सकती है वह अन्य वेदों (साम, यजुष और अथर्व) की समकालीनता किंवा कालातीतता सिद्ध होने पर उन सब के विषय में भी निर्विवाद सत्य होगी।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सृष्टि की आदिम अवस्था में युवा लोग उत्पन्न हुए

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री पंचवटी नासिक

भगवान् दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में लिखा कि सृष्टि के प्रारम्भ में लोग युवा उत्पन्न हुए। वृद्ध अथवा बालक क्यों नहीं?—इस का समाधान करते हुए ऋषि ने तर्क यह दिया कि यदि वृद्ध पैदा होते तो आगे सन्तति चलाने में असमर्थ होते और यदि बालक उत्पन्न होते तो उनकी रक्षा के लिए मां-बाप की आवश्यकता पड़ती। ऋषि की बात वास्तव में बहुत ही युक्तियुक्त है, परन्तु लोगों को इस पर विश्वास नहीं पड़ता। वास्तव में ऋषि दयानन्द प्रत्येक बात का निर्णय वेद की शिक्षाओं के आधार पर करते थे। जन-साधारण गूढ़ रहस्यों को समझ नहीं पाता, इस कारण ही वह इस पर विश्वास करने मे आना कानी करता है। ऋषि दयानन्द की बात को जाने दीजिये। दर्शनकार भी तो इस गूढ़ रहस्य के विषय में यही धारणा प्रकारान्तर से रखते हैं। वैशेषिककार यह मानते हैं कि अयोनिज सृष्टि भी होती है। ये अयोनिज सृष्टि के व्यक्ति—वे ऋषि जिन पर वेद प्रकट हुए, और अन्य व्यक्ति जो अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुए माने जाते हैं। इन को मां गर्भ में नहीं धारण करती है—पृथ्वी में इन का शरीर बनता है। इसी लिये पृथ्वी माता और परमात्मा सब का पिता कहा जाता है। आर्यः ईश्वर पुत्रः (निरुक्त) अर्थात् आर्य ईश्वर का पुत्र है—इस में भी यही भावना अन्तर्निहित मालूम पड़ती है। सृष्टि कितने प्रकार की होती है? इस का उल्लेख करते हुए आदि—दार्शनिक कपिल कहते हैं कि यह छः प्रकार की होती है: अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज जरायुज सांसिद्धिक और सांकल्पिक। अण्डे से उत्पन्न होने वाले अण्डज और भूमि में होने वाले उद्भिज्ज तथा झिल्ली से उत्पन्न होने जरायुज कहलाते हैं, खनिज पदार्थ सांसिद्धिक सृष्टि वाले हैं तथा आदिम अमैथुनी सृष्टि सांकल्पिक कही जाती है। इसके सांकल्पिक होने में दो कारण हो सकते हैं—प्रथम तो यह कि यह परमेश्वर के संकल्प अर्थात् सिसृक्षावश से उत्पन्न होती है, अथवा यह प्रत्येक कल्प की आदि में समान ही रूप में होती है अतः इसे सांकल्पिक कहा गया है। धरा की सभी सभ्य जातियां यह मानती हैं कि आदिम सृष्टि संकल्प से होती है। वह संकल्प परमात्मा की सृष्टि रचने की इच्छा है। परन्तु संकल्प का प्रभाव किस पर पड़ा कि वह इस रूप में बन गया, इस पर परस्पर मत भेद हैं। विकासवादी और जड़वादी इस विषय को नहीं मानते, परन्तु उनके वाद अब अपने महत्त्व से हीन होते जा रहे हैं—ज्यों ज्यों दार्शनिक खोजें आगे बढ़ती जा रही हैं। वेद जहां संकल्प को बताता है वहां यह नियम भी साथ २ दिखलाता है कि ऐसी सृष्टि अनिवार्य और सब कल्पों के आदि में होने वाली है। परमेश्वर का संकल्प प्रकृति पर प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में एकसा कार्य करता है और वह सृष्टि को यथा पूर्व बनाता है और याथातथ्य से बनाता है। "यथापूर्वमकल्पयत्"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(ऋ० १।१६०।३) और याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् (य ४०/८) इत्यादि वेदवाक्यों के तात्पर्य यही हैं। मातापिता से यह आदिम व्यक्ति क्यों नहीं उत्पन्न होते? इसका समाधान यह है कि मातापिता उस के पश्चात् की सन्तति सृष्टि को चलाते हैं। यदि सभी उत्पत्ति को मातापिता से वर्तमान की भांति माना जावे, तो अनवस्था दोष बराबर बना रहेगा, और इस प्रकार सृष्टि को भी सदा के लिये विद्यमान मानना पड़ेगा। परन्तु ऐसा दृष्टिगोचर और युक्तियुक्त नहीं है। इस अनवस्था की परिसमाप्ति परमेश्वर प्रकृति और जीव में मानी गई है। जो जिस उपादान से उत्पन्न होता है, उसीमें लय को भी प्राप्त होता है। इस प्रकार शरीर का अन्तिम उपादान पांच तत्व हैं। परम्परा से शरीर इन्हीं में विलीन होते हैं, अतः ये ही उपादान कारण भी हैं। इन में पृथ्वी शरीर का मुख्य कारण है, अतः पृथ्वी से शरीर की उत्पत्ति का सिद्धान्त बहुत ही वैज्ञानिक है। मातेव वा इयं पृथ्वी भूतानि बिभर्त्ति—यह ब्राह्मण वाक्य भी इसी तथ्य का उद्घाटन करता है। पृथ्वी में पञ्च-तत्त्वात्मक शरीरनिर्माणबीज पुष्ट हो कर आदि मनुष्यों के शरीर के रूप में प्रकट होता है। चूंकि ये सब समान अवस्था के होते हैं, अतः इन में परस्पर ज्येष्ठकनिष्ठ का भेद-भाव नहीं होता। काल ही ज्येष्ठता और कनिष्ठता का कारण है। परन्तु जहां पर पूर्व और पहले और और का व्यवहार नहीं, वहां पर समानकालता ही सब की होती है। यह समवयस्कता अगर बच्चे के रूप में सब की होती, तो माता पिता की पालनार्थ आवश्यकता होती और मैथुनी सृष्टि भी आगे एक लम्बे काल तक न चल पाती। वृद्धावस्था के रूप में मानने पर आगे सन्तति-उत्पत्ति में उन की असमर्थता होती। अतः यह ही समीचीन है कि सभी युवा समुत्पन्न हुए, जिससे वे सृष्टि में सन्तति-उत्पत्ति के क्रम को बराबर चला सकें। मातापिता न तो वृद्ध पैदा कर सकते हैं और न युवा ही। वे केवल बालक उत्पन्न कर सकते हैं। चूंकि सृष्टि के आदिम व्यक्ति युवा होने वांछित थे, अतः इन कारणों की आवश्यकता नहीं पड़ी। यहां लोग यह भी कुतर्क कर सकते हैं कि फिर इस सृष्टि में पुरुष ही उत्पन्न हुए अथवा स्त्रियां भी, और यदि दोनों पैदा हुए तो फिर भाई बहन का सम्बन्ध मानना पड़ेगा! इसका समाधान यह है कि यह प्रश्न रजवीर्य के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए से ही सम्बद्ध है। मातृपितृ भावना व्यक्ति कारण के साथ तो यह विचारणा है, समष्टि करण के साथ नहीं। एक स्त्री अथवा गाय किसी पुरुष अथा वृषभ की माता हो सकती है, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रीजाति-मात्र और गो-जाति मात्र उन की माता है। यही बात समष्टि-भूत कारण के विषय में भी समझनी चाहिए। सगोत्रता और सपिण्डता का सम्बन्ध रजवीर्य के सम्बन्ध पर निर्भर है, केवल कारण-सम्बन्ध पर नहीं। एक परमात्मा की सब सन्तान हैं—इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि वे परस्पर स्त्री पुरुष के सम्बन्ध नहीं कर सकते—क्योंकि परस्पर भाई बहन ठहरते हैं। परमात्मा की पितृसंज्ञा अथवा सगोत्रता सपिण्डता रजवीर्य सम्बन्ध आदि के कारण से नहीं बल्कि स्वाभाविक है और निरपेक्ष है। ऋग्वेद ५।६०।५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का यह मन्त्र इस विषय पर प्रकाश डालता है। मन्त्र निम्न प्रकार हैं:—अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधु सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः, अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में सभी बिना ज्येष्ठ कनिष्ठ भाव के, समान-भाई के रूप में पैदा हुए लोग अपने जीवनसंग्राम के विजयार्थ बढ़ते हैं। अजर स्वयम्भू परमेश्वर इन का पिता, और समस्त प्राणोपकारिणी शक्तियों से सम्पन्न उत्तमउत्तम वस्तुओं को देने वाली पृथ्वी इन की माता है।

ओ३म्

आर्यसामाजिक राष्ट्रिय संस्थाओं की अन्तर्ध्वनि

श्रीमान् पं० लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति

दयानन्द की वीर सेना सजाये—कहा था, उसे आज करके दिखायें ॥ टेक॥

हुए भूल से जन्मभूमि के टुकड़े—धनधान्य छूटा, घरों से भी उखड़े।
सहेंगे कहां तक महाघोर दुखड़े—चलो देश भारत अखंडित बनायें ॥ १ ॥

बिछड़ी सहस्रों जो बहनें हमारी—दुष्टों में घिर कर बिलपतीं विचारी।
उधर वे तड़तपी, इधर हम दुखारी—छुड़ा कर वही घर पुराने बसायें ॥ २ ॥

कुनीति से जिन को किसी ने उभारा, कुटिल छल कपट को बना कर सहारा,
कहें दम्भ से देश भारत हमारा—उन्हें हम सुनीति से नीचा दिखायें ॥ ३ ॥

निजू स्वार्थ पर धर्म का सिर लगाते जो लोगों से इस भांति धन लूट खाते।
पृथक् दल बना देश गौरव घटाते—उठो देश द्रोही दलों को मिटायें ॥ ४ ॥

यह घोड़ा स्वराजी जो लंगड़ा रहा है, सुगम मार्ग पर भी अड़ा जा रहा है,
प्रबल शक्ति होते डरा जा रहा है—कशा से इसे चाल सीधी चलायें ॥ ५ ॥

कहें भारती यह तिरंगा हमारा—तिरंगा बना देश-भर का दुलारा,
तिरंगा रहे राष्ट्र का ध्वज हमारा—तनिक शोध इसमें तनिक हम करायें ॥ ६ ॥

जो जाति के नामों से झंडा बनाया, रंगों का फिर अर्थ गुण से मिलाया,
चरखा हटा, चक्र झंडे पै आया—उसे ओ३म् का रूप देकर दिखायें ॥ ७ ॥

बढ़ो 'नाथ' से शक्ति-वरदान पाकर, रसातल से पाखंड चलता बना कर,
ऋषिवर की आज्ञा सफल कर दिखाकर—सकल विश्वको वेद-धर्मी बनायें ॥ ८ ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रामकालीन भारत

[श्रीमान् आचार्य रामानन्द शास्त्री जी]

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम को हुए आज ६ लाख वर्ष हो गये । यह साधारण अवधि नहीं हैं, इतने दिनों में इस वसुन्धरा में न जाने कितने उत्थान और पतन हुए; इनका वर्णन कौन करे, अनुमान करना भी कठिन है। तथापि हमारे पास आदि कवि वाल्मीकि द्वारा लिखित रामायण है, इससे हम उस समय के भारत से अवश्य परिचित होंगे। रामायण देखने से विदित होता है कि वह हमारा उन्नत समय था । हमारा देश प्रत्येक दृष्टिकोण से समृद्ध था। आप इस समय के उन्नत से उन्नत राष्ट्र को लें तथा रामायण कालीन भारत को लें, तो तुलना की दृष्टि से भारत का पलड़ा भारी ही रहेगा।

यूरोपियन विद्वान् जब रामराज्य की विशेषता देखते हैं, तो उसे काल्पनिक (Utopia) कह कर टाल देते हैं । लेकिन प्रश्न यह है कि अगर वह काल्पनिक ही है, तो सर्वप्रथम इन विचारों का सृजन भारत में हुआ कि नहीं ? अथवा इस समय जितने दार्शनिक, राजनैतिक एवं सामाजिक विचार रखे जाते हैं, उनकी चर्चा रामायण में है कि नहीं ? योरोप के सर्व प्रथम दार्शनिक का नाम थेलिज़ (Theles) है। इस का समय आज से २५०० वर्ष पुराना कहा जाता है।थेलिज से लेकर कार्ल मार्क्स (Karl Marx) तक जितने विचारक हुए, जिन्होंने प्रपिक दृष्टि से सोचा, उनके सम्पूर्ण सिद्धान्त विभिन्न रूपों में रामायण के विभिन्न स्थानों में रूपान्तर से नहीं मिलते हैं क्या ? प्लेटो, रूसो आदि की राष्ट्रिय व्यवस्था देखिये एवं रामराज पर दृष्टि डालिये। मुनि कहते हैं:—

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयोऽरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः॥

(बालकाण्डे)

अर्थात् सारी प्रजा प्रसन्न आनन्दित, सन्तुष्ट पुष्ट तथा धर्मभीरु थी। किसी को रोग तथा दुर्भिक्ष का भय नहीं था। × × × ×

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्
द्रष्टुमशक्यं अयोध्यायां नाविद्वान् न यार्धार्मिकः

अर्थात्—कामी, कंजू और क्रूरजन कहीं देखने को नहीं मिलते थे। राज्य में ऐसे भी आदमी नहीं मिलते थे जो अविद्वान तथा अधार्मिक हों। इतना ही नहीं आगे और पढ़िये:—

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्
न चास्य वृद्धा बाला नो प्रेतकार्याणि कुर्वते।

अर्थात्—राज्य में चोर का नाम नहीं था किसी को अहितक विषय छू भी नहीं गया था। अरे, अधिक क्या कहा जाय, बूढ़ों के समक्ष नवयुवकों की मृत्यु भी नहीं होती थी ! क्या इससे भी सुन्दर राज्य कहीं हो सकता है ?

इस समय चर्चा होती है कि सत्ताहीन (Anarchism) राज्य का सृजन किया जाय, जिसमें प्रजा अपनी नैतिकता से ही बिना किसी बाधा से न्यायपूर्वक निवास करे। राम के समय इस पर विचार किया गया है। जब राम वन को चले गये तो प्रश्न उठा कि कोई राजगद्दी पर बैठे कि बिना राजा के ही प्रजा पर ही राज्य छोड़ दिया जाय, तो मन्त्रियों ने कहा—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"राजा से हीन राज्य में खेती की उन्नति नहीं होगी (व्यक्ति से महान् सुधार नहीं हो सकता) पुत्र पिता के अनुशासन में नहीं रहेगा, राज्य में धन नहीं रह सकता है, न कोई पारिवारिक व्यवस्था ही रह सकती है।

× × × × ×

नाराजके जनपदे तूद्यानानि समागताः
सायाह्ने क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभूषिता ॥

अर्थात्—राष्ट्र में राजा (शासक) की व्यवस्था नहीं रहेगी, तो सायंकाल नगर की स्त्रियां आभूषण धारण कर उद्यान (Park) में टहलने नहीं जायंगी। राजसत्ताहीन राष्ट्र में धनिकों का धन सुरक्षित नहीं रहेगा, लोग यत्र-तत्र अपनी चीजों को रख कर रात को नहीं सोयेंगे।

मत्स्यन्याय प्रचलित हो जायगा। परस्पर लड़ाई होगी, बलवान् मनुष्य दुर्बल को नष्ट कर देगा। क्योंकि शासक ही इसकी रक्षा करते हैं। जिस तरह शरीर में नेत्र है, उसी प्रकार राष्ट्र संचालन के लिये शासन (Government) नेत्र है। अन्यथा नेत्रहीन मनुष्य के समान राजाहीन राष्ट्र गर्त में पड़ेगा। (अयोध्या काण्ड)

रामायण को देखने से विदित होता है कि उस समय भौतिक उन्नति भी परम सीमा पर पहुँची थी। राज्य की ओर जनता-कार्य-विभाग (P. W. D.) था। जिसमें इञ्जियनर एवं ओवरसियर रहा करते थे, जिस समय भरत राम को लाने बन को चले तो उनके साथ सेना भी चली तो उसके लिये मार्ग-निर्माण तथा जगह जगह भोजन पानी का भी प्रबन्ध होना चाहिये, इस लिये पहले P. W. D. विभाग लगाया गया—

अथभूमिप्रदेशज्ञाः सूत्र कर्मविशादाः,
स्वकर्माभिरताः शूराः खनका यान्त्रिकास्तथा ॥
कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषा यन्त्रकोविदाः,
तथा वर्धकि मश्चैव मार्गिणां वृक्षतक्षकाः ॥
सूपकाराः सुधाकारा वेशचर्मवृतस्तथा,
समर्था येच द्रष्टारः पुरतश्च प्रतस्थिरे ॥

अर्थात्—भूमिप्रदेशज्ञ (Geologists) सूत्र कर्मविशारद (Engineer), खनक, थवई एवं मार्ग के वृक्ष काटने वाले बेलदार भी चले। इतना ही नहीं—

भोजन बनाने वाले, मार्ग के पुल आदि की मरम्मत करने के लिए चूना बनाने वाले (सुधाकाराः) भी भेजे गये।

सेना जा रही है कहीं कोई शत्रु विघ्न न डाले इस से गुप्तचर (द्रष्टारः) C. I. D. भी भेजे गये। युद्ध के सामान ठीक करने वाले धनुर्वाण और ढाल बनाने वाले भी भेजे गये।

(अयोध्या काण्ड)

रामायणकालीन भारत में बड़ी चीजों को उठाने के लिये किरान (Crane) का भी प्रयोग किया जाता था।

हस्तिमात्रान् महाकायान् पाषाणाश्च महाबलान्
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च।

अर्थात्—हाथी के समान बड़े २ पत्थरों को पर्वत से तोड़ कर यन्त्रों (Crane) के द्वारा दोया जाता था।

रामायण से यह भी विदित होता है कि उस समय केन्द्रीय (Central) शक्ति सबों का संरक्षण करती थी।

प्रान्तों को प्रचुर अंश में स्वतन्त्रता मिली थी। बालि ने राम से कहा कि आप हमारे इस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हुई भी इस दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मार्ग का प्रदर्शन करती है।

ज्ञानी दार्शनिकों ने इस बात का विवेचन किया है कि मोक्ष को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय आत्मज्ञान अथवा ब्रह्म का साक्षात्कार है। 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'। (य० ३१।१८)। उस प्रकाशस्वरूप चेतन तत्त्व का, जो जड़ प्रकृति से परे है, साक्षात्कार कर लेने पर ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, इसके लिये और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। पर आत्मज्ञान कैसे हो? यही तो मालूम करना है। क्या शास्त्र में यह पढ़ लेने से कि एक आत्मतत्त्व ऐसा है जो प्रकृति से परे है, उसका साक्षात्कार हो सकता है? वस्तुतः शब्दमात्र से जान लेना, आत्मा का प्रत्यक्षदर्शन नहीं है। उपनिषद् में एक प्रसंग आया है कि एक बार नारद ब्रह्मज्ञानी सनत्कुमार के समीप जाकर ब्रह्म की जिज्ञासा करने लगे, बोले कि महाराज! ब्रह्मज्ञान का उपदेश कीजिये। सनत्कुमार ने पूछा—आपने अभी तक क्या क्या पढ़ा व जाना है? नारद ने उत्तर दिया, महाराज! मैं ऋग् यजुः साम और अथर्व चारों वेद पढ़ चुका हूँ। इस के अतिरिक्त श्राद्धकल्प गणित शास्त्र वर्षा आदि शास्त्र, खनिज शास्त्र, तर्क शास्त्र और नीति शास्त्र आदि का भी मैं ने अध्ययन किया है, इतना ही नहीं, अधिभौतिक विज्ञान, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पविद्या तथा संगीत एवं शिल्प आदि में भी पारंगत हूं। सनत्कुमार तब विनोद में कहने लगे--क्या तुम मुझसे पढ़ने आये हो, या मुझे पढ़ाने? नारद बोले, महाराज! मैंने यह सब शब्दमात्र में ही पढ़ा है, आत्म-साक्षात्कार आज तक भी मुझे नहीं हो सका। आत्मज्ञान का उपाय बताइये। यह प्रसङ्ग छान्दोग्य उपनिषद् का है। सनत्कुमार के द्वारा वहां आत्मज्ञान के जो उपाय बताये गये, यहां उनका संकेत अनावश्यक होगा, इस प्रसंग से इतना ही समझना है कि शब्द मात्रज्ञान, आत्म ज्ञान नहीं है। कितना भी शास्त्र पढ़ लिया जाय, इतने से आत्म या ब्रह्म का प्रत्यक्षदर्शन होना नहीं। यह ऐसी ही बात है, जैसे एक व्यक्ति किसी के बतला देने पर यह जान लेता है कि दूध में से मक्खन निकलता है, केवल इतना जान लेना, दूध में से मक्खन निकाल नहीं सकता, जब तक कि उस की पूर्ण प्रक्रिया का पालन न किया जाय। इसी प्रकार आत्मसाक्षात्कार के लिये भी मार्ग है।

शास्त्रों में आत्मज्ञान के लिये अनेक उपायों का उल्लेख किया गया है। योगदर्शन में प्रतिपादित प्रक्रियाएं इसी लिये हैं। उपनिषदों में अनेक उपासनाओं का उल्लेख है। ये विविध उपाय भिन्न भिन्न अधिकारियों के विचार से बताये गये हैं, परन्तु इन सबका समन्वय एक ही मुख्य उपाय—ब्रह्मनाम स्मरण—में हो जाता है। प्रस्तुत उपनिषद् के प्रारम्भ में ही परमात्मा का मुख्य नाम 'ओम्' बताया गया है। योग दर्शन में निम्नलिखित तीन सूत्रों के द्वारा इस अर्थ का स्पष्ट वर्णन किया गया है

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

तस्य वाचकः प्रणवः

तज्जप स्तदर्थ भावनम्।

त्रिविध दुःख, कर्म तथा कर्मफलों से जो सर्वथा रहित है, वही चेतन-स्वरूप ईश्वर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहाता है। उस चेतनतत्व को वर्णन करने के लिये उस का वाचक जो संकेत निर्धारित किया गया है, वह 'प्रणव' है। 'ओम्' का ही अपर पर्याय 'प्रणव' है। 'ओ३म्' का जप और उसके अर्थ—ब्रह्म के स्वरूप की भावना, यही ब्रह्म साक्षात्कार का एकमात्र उपाय है। यद्यपि यह उपाय साधारण रूप में यहां बता दिया गया, परन्तु इसके अनुष्ठान की एक विशेष प्रक्रिया है। यदि उस रूप में इसका अभ्यास किया जाय, तो अवश्य लाभ होने की संभावना है, और आत्मज्ञान के मार्ग पर प्रशस्त उन्नति की जा सकती है। भक्त जिज्ञासुओं के लिये हम उस प्रक्रिया का निर्देश किये देते हैं, हम यत्न करेंगे कि शब्दों द्वारा उसे समझा सकें।

इस अभ्यास के लिये उत्तम समय प्रातः काल चार पांच बजे है, वैसे प्रातःकाल या सायंकाल किसी भी समय अभ्यास कीजिये। किसी भी रोग या शारीरिक कष्ट की अवस्था में अथवा अधिक कब्ज़ होने पर यह अभ्यास न करना चाहिये। जब आप स्वस्थ व प्रसन्नचित्त होकर अभ्यास के लिये बैठें, तो प्रथम तीन चार प्राणायाम अवश्य कर लेने चाहियें, बैठने के लिये भी धीरे २ किसी एक आसन का ही अभ्यास कीजिये। इसके लिये स्वस्तिकासन अथवा सिद्धासन में से कोई एक अधिक ठीक है। कमर झुकनी न चाहिये, छाती उभरी रहे, गर्दन सीधी रहनी चाहिये, इससे प्राणायाम में सुविधा रहती है और प्राण-गति ठीक रहती है। तीन चार प्राणायाम के अनन्तर जब प्राणगति सम हो जाय, तब आप कल्पना कीजिये कि आपके श्वास [श्वास वह प्राण है, जो बाहर की वायु नासिका-रन्ध्र द्वारा अन्दर को भरी जाय] के साथ हृदयदेश से 'ओं' की ध्वनि उठ कर मस्तिष्क अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंच रही है। श्वास के अनन्तर जब आप प्रश्वास [प्रश्वास वह है- जो अन्दर की वायु नासिका रन्ध्र द्वारा बाहर को निकलती जाय] लेते हैं, उस के साथ साथ 'म्' की ध्वनि ब्रह्मरंध्र से चल कर नासिका के अग्रभाग तक आती हुई कल्पना कीजिये। हृदय से चल कर ब्रह्मरन्ध्र तक और वहां से नासाग्र तक एक मार्ग प्राण का कल्पना कर लिया गया है, उसीके अनुसार श्वास के साथ 'ओ' और प्रश्वास के साथ 'म्' ध्वनि की कल्पना करनी चाहिये। कल्पना का अभिप्राय यही है कि 'ओम्' का वाणी से उच्चारण नहीं होना चाहिये, प्रत्युत वाणी का किञ्चित् भी व्यापार नहीं होना चाहिये, इस प्रक्रिया में थोड़ा भी वाणी का व्यापार होने से मन को विषयान्तर में जाने की अधिक सम्भावना हो जायगी। इस अभ्यास के समय अन्तःकरण से 'ओम्' के अर्थ की भावना करनी चाहिये। भावना का अर्थ है—विषयान्तर से अन्तःकरण को हटा कर पुनः पुनः 'ओम्' के अर्थ में हो लगाना। इसके लिये हमें 'ओम्' का अर्थ समझ लेने की आवश्यकता है।

वैसे तो साधारण रूप में हम कह सकते हैं कि 'ओम्' परमात्मा का मुख्य नाम है, प्रस्तुत उपनिषद् के प्रारम्भ में ही इस का निर्देश किया गया है, पर इतने मात्र से कार्य न चलेगा, हमें जप के समय केवल यह भावना नहीं करनी है कि 'ओम्' परमात्मा का नाम है। हमें भावना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तो उस स्वरूप की करनी है जिस के बोध के लिये हमने उसका नाम 'ओम्' रक्खा है। अभिप्राय यह है, कि हमने परमात्मा के अपने वास्तविक स्वरूप की भावना करनी है। परमात्मा का वह कौन-सा स्वरूप है, अब इसीको पकड़ना है,

यद्यपि परमात्मा को मानने और जानने वाले विद्वानों ने उसको अनन्त स्वरूप कहा है, चाहे इसमें वास्तविकता भी हो, परन्तु हमारा काम इससे चलेगा नहीं; कारण यह है कि अनन्त स्वरूपों की भावना में चित्त के स्थिर होने के बजाय चञ्चलता की ओर ही उस को बढ़ावा मिल सकता है, इसलिये ऐसे अवसर पर उसके किसी एक ही स्वरूप की भावना अधिक उपयुक्त रहती है। इस मार्ग के अभ्यासियों ने बताया है कि परमात्मा का वह स्वरूप चेतन, प्रकाशमय व आनन्द है। फलतः उपर्युक्त रीति पर 'ओम्' का जप करते समय अभ्यासी को उसके अर्थ, प्रकाश व आनन्द की भावना करनी चाहिये। अभिप्राय यह है कि अभ्यासी अपने सब ओर प्रकाश ही प्रकाश की कल्पना करे, यह समझे कि उसके चारों ओर ऊपर नीचे अनन्त आकाश तीव्र तेजःपुञ्ज से भरा हुआ है, तथा इस प्रकार चारों ओर आनन्द ही आनन्द भरा हुआ है। यदि इस के अतिरिक्त अन्य किसी विषय की कल्पना या भान अन्तःकरण में उठने लगे, तो तत्काल बलात् उसको रोक देवे, और उस प्रकाश व आनन्द की ही भावना में लीन रहने का यत्न करे। इस प्रकार अभ्यास करते रहने से कुछ काल के अनन्तर अपने हृदय में एक तीव्र आनन्दोल्लास का ज्वार उठ खड़ा होता है, यह जितना भी लम्बा किया जा सके उतना ही अभ्यासी आत्मदर्शन के समीप पहुँचता जाता है। यदि प्रतिदिन न्यून से न्यून एक घण्टा इस प्रकार अभ्यास किया जाय, तो चार छः मास में ही इसका फल अनुभव किया जा सकता है। इसमें न्यून या अधिक समय का लगना अपने अन्तःकरण की शुद्धि अर्थात् भाव-शुद्धि और यम नियम आदि के पालन पर निर्भर करता है।

इस प्रकार 'ओम्' के जप और उसके अर्थ की भावना खाली गप्पबाजी नहीं है, प्रत्युत इस का कुछ वैज्ञानिक आधार भी है, पिछली पंक्तियों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि जीवन-काल में आत्मा तीन ही अवस्थाओं को लगातार भोगता या अनुभव करता है, और चौथी अवस्था की प्राप्ति उस का ध्येय होता है। पहली तीन अवस्था जागरित, स्वप्न और सुषुप्ति बताई गई हैं। परमात्मा के मुख्य नाम 'ओम्' का भी जब विश्लेषण किया जाता है, तब वहां भी तीन मात्रा दृष्टिगोचर होती हैं। आत्मा की तीन अवस्थाओं को 'ओम्' की तीन मात्राओं में समावेश कर दीजिए, 'ओम्' की अ, उ, म्, इन तीन मात्राओं में से 'अ' जागरित स्थान, 'उ' स्वप्न-स्थान और 'म्' सुषुप्त स्थान समझना चाहिये। इनके यथासंख्य वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ नाम उपनिषद् में प्रथम बताये गये हैं, और इस नामकरण का कारण भी वहां प्रसंगवश प्रदर्शित कर दिया गया है।

अब आत्मा अपनी तीनों अवस्थाओं से बाहर कहीं जा नहीं सकता, और वे तीनों 'ओम्' की अकार, उकार, मकार मात्राओं में पूर्ण रूप से समाविष्ट हैं। इस प्रकार आत्मा अपनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पूर्ण स्थिति को 'ओम्' की इन मात्राओं में अन्तर्हित कर देता है, इसका परिणाम होता है चतुर्थ अवस्था की प्राप्ति उस अवस्था में 'ओम्' मात्राओं में विभक्त नहीं, तब वह पूर्ण एक तथा अमात्र होता है, आत्मा भी उस स्थिति में अपनी तीन प्रथम अवस्थाओं का त्याग कर चुका होता है। अतिदीर्घ काल पर्यन्त वह निरन्तर चतुर्थ अवस्था का ही उपभोग करता है, अर्थात् मोक्षानन्द का अनुभव करता है। आत्मा की अवस्थाओं और 'ओम्' की मात्राओं के सामञ्जस्य के आधार पर ही उपर्युक्त 'ओम्' जप की प्रक्रिया का उद्भावन हुआ है। प्रस्तुत उपनिषद् में इस प्रसंग को निम्नलिखित रीति पर प्रदर्शित किया गया है—

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारो ऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ ८ ॥

जागरित स्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राराप्ते-रादिमत्वाद्वा आप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षा दुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं भवति ॥१०॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपी-तेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैतं एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

आठवीं कण्डिका के प्रथम वाक्यांश में ब्रह्म-साक्षात्कार के उपाय का संकेत किया गया है। वह वाक्यांश है—'सोऽयमात्माऽध्यक्षरम्', इस में 'उपासीत' क्रिया का अध्याहार समझना चाहिये। वह यह आत्मा जिसकी लोक में तीन अवस्था निरन्तर बताई गई हैं, तथा चौथी अवस्था जिस का ध्येय है, उस ध्येय की प्राप्ति के लिये—अक्षर को आधार बनाकर [अक्षर मधिकृत्य इति-अध्यक्षरम्] उपासना करे। वह अक्षर क्या है?—इसका निर्देश अगले पद से किया गया है—'ओङ्कारः', वह अक्षर 'ओङ्कार' है। अर्थात् 'ओङ्कार' को आधार या लक्ष्य मान कर ब्रह्म की उपासना करे। परन्तु इस प्रकार 'ओम्' की उपासना या जप का आधार किस रूप में माना जायगा, इसका स्पष्ट संकेत अगले पद से किया गया है। पद है—'अधिमात्रम्' यह पद क्रियाविशेषण है। 'मात्रा अधिकृत्य इति अधिमात्रम्'। 'ओम्' की मात्राओं को आधार बना कर ही ओम् के जप द्वारा ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये। तीसरी से पांचवीं कण्डिका तक 'पाद' शब्द आत्मा की 'अवस्था' के लिये प्रयुक्त हुआ है। वे अवस्था तीन बताई गई हैं—जागरित, स्वप्न और सुषुप्ति। उन 'पाद' अर्थात् अवस्थाओं का समन्वय 'ओम्' की मात्राओं से किया गया है—'पादा मात्रा मात्राश्च पादाः'। उपासक को चाहिये, वह आत्मा की [अपनी] अवस्थाओं को 'ओम्' की मात्राओं में यथा-संख्य अन्तर्हित कर दे। वह धारणा करे मैं अपनी सब अवस्थाओं को ले कर 'ओम्' की मात्राओं में समा गया हूं। महर्षि श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास के प्रारम्भिक भाग में यम-नियम की व्याख्या करते हुए 'ईश्वरप्रणिधान' के प्रसंग में लिखा है—'ओ३म्' इस एक परमात्मा के नाम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

घरेलू विवाद में क्यों हस्तक्षेप करते हैं ? उसका उत्तर भगवान राम ने दिया:—

"यह भूमि अयोध्यास्थ शासक (इक्ष्वाकु) के अधीन है। पर्वत (Mine) वन (Forest Department) मृग (पशु) पक्षि और मनुष्यों के निग्रह और अनुग्रह का भी अधिकार उसी को है। (ज्ञात होता है फांसी आदि की आज्ञा केन्द्रीय शक्ति के अधीन थी।) नीतिशास्त्रवेत्ता परम धार्मिक भरत जी इस समय शासक है, उन्हीं की आज्ञा से मैं धर्महीन राजाओं का दमन करता हूँ। तथा च्युत लोगों को पुनः सत्य मार्ग पर लाता हूँ। (किष्किन्धाकाण्ड)

रामायण के समय कुत्ते भी पाले जाते थे, भरत जी अपने ननिहाल से चले, तो उनको अनेक वस्तुएंदी गईं। साथ में कुत्ते भी दिए गए। वे ऐसे कुत्ते थे जो बाघ से भी लड़ सकते थे।

अन्तः पुरेऽतिसंवृद्धान् व्याघ्र वीर्य्य बलोपमान्
दंष्ट्रायुक्तान् महकायान्शुनश्चोपायनं ददौ।

अर्थात् घर में पले हुए, सिंह के समान बलपराक्रम वाले, दाढ़ों से युद्ध करने वाले कुत्ते भी दिए गए।

वाल्मीकाय रामायण के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उस समय मुर्दे भी गाड़े जाते थे, किन्तु यह प्रथा उन्हीं लोगों में थी जो राक्षस कहलाते थे। विराध कहता है:—

हतोऽहं पुरुष व्याघ्र शक्र तुल्यबलेन वै,
अवटे चापि मां राम, निक्षिप्य कुशली व्रज।
रक्षसां गतसत्वानामेष धर्मः सनातनः × × ×

अर्थात्—हे राम, मेरे मरने पर मुझे फेंक कर चले जाइयेगा, राक्षसों का यही सनातन धर्म है।

रामायण के समय भौतिक विचारधारा का भी प्रचार होता था। एपीक्यूरस एवं कार्ल-मार्क्स आदि कम्युनिष्टों का आदि गुरु रावण कहता है।

भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं पिबभीरु रमस्वच
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानिच

उपरोक्त श्लोक का ही शाब्दिक अनुवाद Eat, drink and be marry अर्थात खावो, पीवो मौज करो) है। उपरोक्त वाक्य रावण ने सीता से इसलिए कहा था कि वह भगवान् राम को 'तलाक' देकर हमें वरण करे।

उस समय पुरुष बहुत स्त्रियां भी रखते थे, किन्तु समाज में एक पत्नी वाले का ही आदर था।

या गति सर्व भूतानां स्वाध्यायात्त पसरच वा।
भूमिदास्याहिताग्नेश्चएक पत्नीव्रतस्य चा।

स्त्रियां भी वेद पढ़ती थीं। सीता की संध्या करने की भी चर्चा की गयी है। पर्दा का नाम नहीं था। जनकपुर से आने पर भगवान् राम के जलूस के साथ सीता भी थीं। राक्षस भी वेद पढ़ते थे। हनुमान् जब लंका में गए तो अंगसहितवेदपाठकों को भी देखा, जगह २ हवन कुण्ड भी पाए गए। भाई २ में प्रीति थी। लोग सदाचारी थे प्रजा में शान्ति थी। सब लोग प्रसन्न रहते थे। किसी को अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि कोई का भी भय नहीं था। प्रजा में कलह नहीं था। व्याघ्र और बकरे एक साथ पानी पीते थे। इसका कारण मर्यादा पुरुषोत्तम, भगवान् का उदात्त, विचार. आरम्भ, उत्साह, क्षात्रतेज तथा ऋषितुल्य तपस्या थी।। तभी तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

आज भी हम रामराज्य का स्वप्न देखते हैं:—

नित्यमूला नित्यफलास्तरज स्तत्र पुष्पिताः
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः
स्वकर्मसु प्रवर्त्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः.
आसन् प्रजा धर्म परा रामे शासति नानृताः ॥

राम के शासनकाल में वृक्षों के मूल तथा फल सदा स्थिर रहते थे, फूल भी सदा लगते थे। इच्छानुसार वृष्टि होती थी, वायु सदा सुहावना था। सभी अपने अपने कार्यों में लगे रहते थे और अपने कर्तव्यपालन से संतुष्ट रहते थे। सभी प्रजाएं धार्मिक थीं, कोई मिथ्यावादी न था।

दिवारोहण

श्रीमान् महात्मा विद्यानन्द विदेह जी

पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ (अ० ४.१४.३)

(१) (अहं) मैं (पृथिव्याः पृष्ठात्) पृथिवी की पृष्ठ से (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष पर (आ अरुहं) चढ़ा, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (दिवं) द्यौ पर (आ अरुहं) चढ़ा।

(२) (अहं) मैं (नाकस्य दिवः पृष्ठात्) स्वर्गिय द्यौ की पृष्ठ से (स्वः ज्योतिः) अजस्र ज्योति को (अगां) प्राप्त हुआ।

नाभि के नीचे पृथिवि लोक है, जिस में मलेन्द्रिय तथा जननेन्द्रिय हैं। यह अपावन निकृष्ट लोक है। इस लोक का जीवन मल, मूत्र रज और वीर्य के स्खलन का अपावन जीवन था। विवेकोदय हुआ और पृथिवी लोक से मुझे ग्लानि हो गई। (अहं) मैं (पृथिव्याः पृष्ठात्) पृथिवी की पृष्ठ [नाभि] से ऊपर चढ़ कर (अन्तरिक्षं आ अरुहं) अन्तरिक्ष पर चढ़ गया। पृथिवी को त्याग कर मैं अन्तरिक्ष में आया।

पृथिवी से ऊपर अन्तरिक्ष [अन्तः+इक्ष] है। जिस के अन्तः [अन्दर] ईक्षण [दर्शन, साक्षात्कार] होता है, उसे अन्तरिक्ष कहते हैं। अन्तः करण ही अन्तरिक्ष है। अन्तरिक्ष [अन्तः करण] आत्मा का अधिष्ठान है, यहीं आत्म-दर्शन होता है, यहीं आत्म-दर्शन होने पर ब्रह्म-साक्षात्कार होता है। आत्मदर्शन और ब्रह्म-साक्षात्कार होने पर मुझ में आत्म-दीप्ति और ब्रह्म-तेज का उदय हुआ।

उदीयमान होकर मैं (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (दिवं आ अरुहं) द्यौ लोक पर चढ़ गया। जहां दिव्य नक्षत्र जगमगाते हैं वह द्यौ लोक है। स्कन्धों [कन्धों] से ऊपर द्यौ लोक है, जिस में ब्रह्माण्ड, बुद्धि, नेत्र, श्रोत्र, नासिका, मुख, कण्ठ, आदि नक्षत्र सुशोभित हैं। उदीयमान अन्तरिक्ष की रश्मियों से मेरा द्यौ देदीप्यमान हो गया। मेरे द्यौ के समस्त नक्षत्र जगमगा उठे। ब्रह्माण्ड ब्रह्मप्रज्ञा से आलोकित हो गया। बुद्धि दिव्य मेधा से दमक उठी। नेत्र दिव्य दृष्टि से, श्रोत्र दिव्य नाद से, नासिका दिव्य प्राण से, मुख दिव्य तेज से, ओष्ठ दिव्य स्मित [मुस्कान] से, जिह्वा दिव्य रसन से, कण्ठ

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिव्य अभिस्वरण से, ग्रीवा दिव्य गर्व से दिव्यातिदिव्य हो गये।

आत्मरश्मियां दिवाक्षों [द्यौ के अक्षों, नक्षत्रों] से निःसरण करती हुई ज्योतिर्मय परम व्योम में व्याप रही हैं। (नाकस्य दिवः पृष्ठात) स्वर्गिम द्यौ की पृष्ठ से ऊपर प्रखरित होकर (अहं) मैं (स्वः ज्योतिः अगां) अजस्र ज्योति में प्रविष्ट हो गया हूँ। अब मैं असीम ज्योतिर्व्योम में विहार कर रहा हूँ। मैं सीमातीत हो गया हूं !!

———

आत्मा का स्थान

(समालोचना)

['वेदपथ' के गत कई अङ्कों में सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल के अध्यक्ष विद्वद्वर श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी की गवेषणापूर्ण लेखमाला शरीर में आत्मा के स्थान विषय में प्रकाशित होती रही है। यह विषय तनिक विवादास्पद है। अतः स्वामी जी ने लेख समाप्त करते हुए इस पर विद्वानों को विचार करने का निमन्त्रण दिया। उनका निमन्त्रण स्वीकार करके प्रमाणसागर श्री पं० विश्वनाथ जी आर्य्योपदेशक ने छोटासा लेख भेजा है। हम विद्वानों से अनुरोध करते हैं कि वे अपने विचार इस विषय पर प्रकट करने की कृपा करें। विचार से सिद्धान्त का परिष्कार होता है, आशा है अन्य विद्वान् भी इसपर विचार लिख भेजने की कृपा करेंगे।
[सम्पादक]

कई वर्ष हुए मैंने आर्य पत्र में इस विषय पर लिख कर यह सिद्ध किया था कि आत्मा का हृदय में निवास है, और वह हृदय शिर में, मस्तिष्क में है। पूज्य स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी ने जो प्रमाण उपस्थित किये हैं उनमें से वह प्रमाण जिनमें हृदय का शिर में होना स्पष्ट है, दे दिये थे। परन्तु आपने आत्मा के दो स्थान सिद्ध किये हैं। संसार दशा में नीचे (छाती के) वाले हृदय में और परमार्थ दशा में ऊपर (सिर के) सिर वाले हृदय में। पूज्य स्वामी जी की अगाध विद्या के सम्मुख अपने को अकिञ्चन जानते हुए भी यह कहने का साहस करता हूं कि आपका पक्ष युक्त नहीं है। आत्मा का स्थान केवल सिर में मस्तिष्क है। छाती वाले हृदय में कदापि नहीं।

(१) प्रत्येक अवस्था में आत्मा की स्थिति वहां होनी चाहिये जहां से यह सारे शरीर पर अधिकार प्राप्त कर सके। वह केवल मस्तिष्क है जिससे निकल कर ज्ञानतन्तु सारे शरीर में फैले हुए हैं, जिनके द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होने वाली वेदना को यह अनुभव करता है और सब इन्द्रियों से चेष्टा करता है। छाती के हृदय का केवल एक ही कार्य रक्त का संचार है, इसमें रह कर आत्मा क्या करेगा ?

एक प्रश्न हो सकता है कि फिर इसका नाम हृदय क्यों रखा गया ? इसका कारण यही हो सकता है कि मस्तिष्क में होने वाले भय, शोक, हर्ष, उत्साह आदि के वेग का सब से अधिक प्रभाव इस रक्तवाहक हृदय पर ही पड़ता है जिससे इसकी गति मन्द वा तीव्र हो जाती है। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगता है कि यह वेग इस हृदय के भीतर उत्पन्न हो रहे हैं।

(२) संसार दशा में भी आत्मा में विज्ञान और आनन्द की अवस्था देखी जाती है, अतः इस दशा में भी इसका मस्तिष्क के साथ सम्बन्ध होना आवश्यक है।

(३) स्वामी जी ने जो प्रमाण उपस्थित किये हैं उनमें कुछ एक में तो हृदय का मस्तिष्क के साथ सम्बन्ध स्पष्ट है, जिसका अर्थ आपने भी ऐसा ही किया है। परन्तु

शतञ्चैका हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।

हृदय की १०१ नाड़ियां हैं जिनमें से एक ऊपर सिर को निकली है। यह छान्दोग्य और कठ का वचन आपने देकर सिद्ध किया है कि आत्मा नीचे छाती वाले हृदय से निकल कर ऊपर सिर वाले हृदय में पहुँचता है। यहां पर नाड़ी शब्द के अर्थ में आप से भूल रह गई है। वास्तव में यह नाड़ियां छाती के हृदय से निकलने वाला रक्तवाहक नहीं, प्रत्युत मस्तिष्क से निकलने वाले ज्ञानतन्तु ही हैं। देखिये,

ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्याहुर्नाड्यः कण्ठा द्विनिः सृताः।

सर्वदर्शनसिद्धान्तसंग्रह ६।५६

कण्ठ से निकलने वाली नाड़ियां ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों रूप हैं। यह मस्तिष्क से निकलने वाले ज्ञानतन्तु ही वेदना और चेष्टा दोनों का कारण होने से ज्ञान और कर्म दोनों के साधक हैं।

उपनिषत् के पाठ में "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति" उसके द्वारा आत्मा ऊपर जाकर अमृत को प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि यह नाड़ी आत्मा को अमर बनाने वाली है। अर्थात् जीवन मुक्त आत्मा इस नाड़ी के द्वारा अपने को शरीर से पृथक् करता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि नीचे के हृदय से ऊपर सिर वाले हृदय में आत्मा इस नाड़ी के द्वारा पहुंचता है। आशा है पूज्य स्वामी जी इस प्रसङ्ग पर पुनः विचार करने की कृपा करेंगे।

ब्रह्म का स्वरूप

[*विद्याभास्कर श्री उदयवीर शास्त्री जी*]

जीवात्मा की चार अवस्थाओं का वर्णन किया गया। इनमें चौथी अवस्था मोक्ष है, जो ब्रह्म अथवा तद्रूप आनन्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं। अब प्रश्न होता है कि यह जीवात्मा चतुर्थ अवस्था को किन उपायों से प्राप्त कर सकता है। मुख्यतया उपनिषदों का प्रयोजन यही है कि उनके बताये मार्ग पर आचरण करते हुए हम ब्रह्मानन्द अथवा मोक्ष को प्राप्त कर सकें। सभी मान्य उपनिषदों में यह माण्डूक्य उपनिषद् कलेवर में अतिलघु होती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का अर्थ विचार कर नित्य-प्रति जप किया करे। अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे।" आत्मा के 'पाद' [अवस्था] और 'ओम्' की मात्राओं के समन्वय में, आत्मा की अपने आप को परमात्मा में समर्पण कर देने की भावना का ही संकेत किया गया है। 'ओम्' की वे तीन मात्रा कौन सी हैं? कण्डिका के अन्तिम पदों में इसका निर्देश है—'अकार उकारो मकार इति'। अ, उ और म् ये तीन 'ओम्' की मात्रा हैं।

अगली तीन कण्डिकाओं [९—११] में, आत्मा की तीनों अवस्था और 'ओम्' की मात्राओं के समन्य का कारण निर्दिष्ट किया गया है, साथ ही उपासना के साक्षात् ज्ञान के फल का निर्देश भी कर दिया गया है। एक एक कण्डिका में यथा संख्य एक एक अवस्था व मात्रा का उल्लेख है। जागरित अवस्था 'अ' रूप है। कोई भी आत्मा शरीर के सम्बद्ध होकर सर्व प्रथम जब आंखें खोलता है, यह उसकी जागरित अवस्था है, यह प्रथम अवस्था है, 'अ' भी 'ओम्' में प्रथम अक्षर है। इस अवस्था में आत्मा का नाम वैश्वानर' होता है। इस नामकरण का कारण प्रथम स्पष्ट कर दियागया है। अनादि काल से अनन्तकाल तक नानाविध अनेक शरीरों के साथ इस आत्मा का सम्पर्क बना ही रहता है, इस प्रकार इन सब में यह प्राप्त अथवा व्याप्त रहता है। 'अ' भी सब वर्णों में व्याप्त रहता है। प्रत्येक वर्ण के स्पष्ट उच्चारण के लिये 'अ' का सम्बन्ध अपेक्षित है। क, ख, ग, आदि सब ध्वनियों में 'अ' व्याप्त रहता है। इन समानताओं के कारण आत्मा की जागरित प्रथम अवस्था को अकार रूप बताया गया है। जो उपासक इस उपासना के रहस्य को साक्षात् जान लेता है, वह सब शुभ कामनाओं को प्राप्त कर लेता है, और समाज में 'आदि' अर्थात् श्रेष्ठ समझा जाता है।

आत्मा की द्वितीय अवस्था स्वप्न है। जागरित के अनन्तर आने से ही इसकी संख्या दूसरी है, वर्णमाला में 'उ' भी 'अ' के अनन्तर ही आता है। अथवा यह कहना चाहिये कि 'उ' वर्ण 'ओम्' में अकार और मकार दोनों के मध्य में स्थित है, स्वप्न अवस्था भी जागरित तथा सुषुप्ति के मध्य में रहती है, इस समानता से स्वप्न अवस्था को 'उ' का रूप मान लिया गया है। इसमें आत्मा को 'तैजस' नाम से कहा गया है, जो व्यक्ति उपासना के इस रहस्य का साक्षात् कर लेता है, वह ज्ञान की वृद्धि करने वाला होता है, सब के लिये समान होता है, अर्थात् किसी व्यक्ति का भी उसके प्रति शत्रुभाव नहीं रहता, एवं उसके कुल में ब्रह्मज्ञानी सन्तान जन्म लेती है।

तृतीय अवस्था सुषुप्ति बताई गई है। इस अवस्था का भोग करते समय जागरित और स्वप्न दोनों अवस्था मानों इसमें समा सी जाती हैं। लोक में निरन्तर अनुभूत होने वाली अवस्थाओं में यह अन्तिम है, 'ओम्' में 'मकार' भी अन्तिम अक्षर है, अन्तिम होने से यह अवस्था, शेष अवस्थाओं को नाप सी लेती है। किसी भी वस्तु का छोर आने पर उसकी इयत्ता का पता लगा जाना स्वाभाविक है, सुषुप्ति भी अवस्थाओं का छोर है। इन समानताओं के कारण सुषुप्ति अवस्था को 'म्' का रूप बताया गया है। इस तृतीय अवस्था में आत्मा को 'प्राज्ञ' नाम से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहा है, जो उपासक के इस रहस्य का साक्षात् कर लेता है, वह सब कुछ जान लेता है, और परमात्मा में लीन होकर आनन्द का उपयोग करता है।

इस प्रकार 'ओम्' की तीन मात्राओं में आत्मा की तीन अवस्थाओं का सामञ्जस्य स्पष्ट किया गया। इन अवस्थाओं में आत्मा के जो विशेष नाम दिये गये हैं, वे परमात्मा के भी नाम हैं, और वे 'ओम्' की तीन मात्राओं में छिपे हुए समझे गये हैं, महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश की प्रारम्भिक पंक्तियों में 'ओम्' की मात्राओं से इन नामों का संकेत स्पष्ट किया है। इस से परमात्मा के मुख्य नाम 'ओम्' का और आत्मा की अवस्थाओं का पारस्परिक समन्वय पूर्ण हो जाता है। तथा आत्मा के परमात्मा में अपने आप को समर्पण कर देने की भावना का स्पष्टीकरण होता है। इन कण्डिकाओं में उपासना-ज्ञान के फलों का निर्देश अर्थवाद ही समझना चाहिये।

उपनिषद् की अन्तिम कण्डिका में चतुर्थ अवस्था का निर्देश किया गया है, वह अवस्था मोक्ष, ब्रह्म अथवा आनन्द ही कही जा सकती है। वहां मात्रा और पाद की समाप्ति हो जाती है। उस समय जागरित स्वप्न या सुषुप्ति कोई व्यवहार नहीं रहता, सब भौतिक प्रपञ्च का शमन हो जाता है, वह अवस्था प्रत्येक के लिये कल्याणकारी है। उस अवस्था में कोई भी अन्य विषय वासना अथवा लौकिक सुख दुःख राग द्वेषादि नहीं सताते, वहां केवल एक ब्रह्मानन्द का निरन्तर आस्वादन रहता है, कण्डिका में इन्हीं अर्थों को—'अमात्रः, अव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः, शिवः, अद्वैतः, इन पदों के द्वारा स्पष्ट किया गया है, यह पूर्ण 'ओङ्कार' है। 'ओम्' के अर्थ का स्वरूप है। जो इस तत्त्व का साक्षात् कर लेता है, वह परब्रह्म में लीन हो कर उस अलौकिक आनन्द का उपयोग करता है।

उपसंहार—मात्राओं को आधार बनाकर 'ओम्' की उपासना ही चतुर्थ अवस्था की प्राप्ति का साधन यहां स्पष्ट किया गया। उपासना के समय 'अ' और 'उ' को हम एक साथ जोड़ लेते हैं, क्योंकि जागरित और स्वप्न अवस्थाओं में अत्यधिक समानता है, 'ओ' तथा 'म्' इन दो ही मात्राओं को श्वास और प्रश्वास की गति के साथ चलने दिया जाता है। 'ओम्' के उपर्युक्त अर्थ की निरन्तर भावना को स्थिर बनाये रखने के लिये बराबर यत्नशील रहना आवश्यक है। इसके अनुसार माण्डूक्य उपनिषद् की बारह कण्डिकाओं के अर्थ के अनुसार अनुक्रम व्यवस्था निम्नप्रकार समझनी चाहिये।

कण्डिका	विषय
१	ब्रह्म का स्वरूप।
२—५	आत्मा की अवस्थाओं का वर्णन।
६—७	चतुर्थ अवस्था, अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप का विशद वर्णन।
८—११	मोक्ष प्राप्ति के साधन-'ओम्' उपासना का वर्णन।
१२.	उपसंहार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्रद्धा

[श्रीमान् लालचन्द्र जी मेरठ]

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥
यजु० १९।२० ॥

व्रत से, नियमपालन से, दीक्षा, दृढ़ संकल्प की प्राप्ति होती है। दृढ़ संकल्प से प्रतिष्ठा मिलती है, उत्साह बढ़ता है, शक्ति का अनुभव होता है। शक्ति सम्पन्न उत्साह तथा साहस-युक्त मानव में, श्रद्धा सत्य धारण करने की तीव्र इच्छा प्रकट होती है। श्रद्धा से सत्य प्राप्त किया जाता है।

श्रद्धा का उदय सत्य को धारण करने की रुचि से होता है। सत्य का साक्षात्, सत्य का सम्यक दर्शन श्रद्धा के उदय होने पर होता है। सत्य धारण करने की तीव्र इच्छा हुए बिना सत्य प्रकट नहीं होता। श्रद्धा, बुद्धि की वह अवस्था है जिस में सत्य धारण करने की शक्ति उत्पन्न हो चुकी है।

ऐसी बुद्धि को मेधा भी कहते हैं। व्रत, दीक्षा, दक्षित्व और श्रद्धा ये चारों सत्य के दर्शन के पहले की साधना हैं। श्रद्धा हृदय में बहती है और इन साधनों द्वारा प्रकट होती है। पवित्र हृदय में ही श्रद्धा प्रतिष्ठित है। आस्तिक भावना में श्रद्धा है।

नियम पालन से संकल्प शक्ति उत्पन्न होती है। दृढ़संकल्प से प्रतिष्ठा होती है, उत्साह बढ़ता है, पश्चात निश्चल बुद्धि तथा अटल विश्वास में श्रद्धा की उत्पत्ति है। श्रद्धा बुद्धि की वह अवस्था है जब साधक का निश्चय पक्का हो जाता है और उसे साधन में दृढ़ता होती है भ्रान्ति नहीं रहती और वह सन्देह रहित होकर पूरी शक्ति और लगन से सत्य की प्राप्ति में तत्पर होता है। श्रद्धा सत्य के साक्षात् से पहले की स्थिति है। सत्य में दृढ़ विश्वास और पूर्ण निश्चय को श्रद्धा कह सकते हैं।

श्रद्धा होने पर सत्य की प्राप्ति निकट से निकट हो जाती है। उत्साहित होकर सत्य के साक्षात् करने के लिए जो अविरत साधन में मग्न हो जाना है, वह श्रद्धा है। ऐसी ही तत्परता से सत्य स्पष्ट होता है। श्रद्धा से अमृत की प्राप्ति होती है। श्रद्धा से अमर तत्व का साक्षात् होता है। श्रद्धा से अपना आप जाना जाता है। श्रद्धा से मनुष्य का पुरुषार्थ बढ़ता है। श्रद्धा से सभी कर्तव्य पूरे होते हैं। श्रद्धा से ही मनुष्य के अन्दर ज्योति प्रकाशित होती है। श्रद्धा से ही तेज प्रदीप्त होता है। श्रद्धा से ही यज्ञ सफल होता है। श्रद्धा से ही सर्वहित के कार्यों में सफलता प्राप्त होती है। श्रद्धा से यश मिलता है, श्रद्धा से प्रेरित होकर ही वीर-पुरुष आत्मोत्सर्ग करते हैं। श्रद्धा से ही आपस का संगठन होकर सब की उन्नति होती है। श्रद्धा हृदय का परम पवित्र भाव है। श्रद्धा से हृदय में बल होता है, श्रद्धा से ही आपस का संगठन होकर सब की अबाध उन्नति होती है। श्रद्धा से प्रेरित होकर ही वीर अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं। श्रद्धा से सभी यन्त्र सफल और सुफल होते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फल है। उस परम आनन्द में उस भूमा सुख में कभी कभी नहीं होती। वह अद्भुत अनुभव प्राप्त होता है भक्त अपना सुख सब में फैलाता है। सब को भगवान् के परम पुनीत प्रेम के रस का स्वाद चखाता है और जहां स्वयं आनन्द मग्न प्रभु-आज्ञा में रत रहता है वहाँ सभी को प्रभु भक्त बनने का यत्न करता है। श्रद्धालु भक्त ने विशुद्ध प्रेम द्वारा भगवान को पाया है और वह विशुद्ध प्रेम ही सब में विकसित करता है। प्रेम करने में श्रद्धालु भक्त कभी कुपत नहीं हुआ करता। श्रद्धालु भक्त ही यजमान है वह याज्ञिक है। उस ने भगवान् के विश्व यज्ञ को समझा है और अपना जीवन यज्ञमय बनाया है। श्रद्धा में अनुपम शक्ति, असीम बल, और अद्भुत प्रभाव है। श्रद्धा का जीवन ही प्रभावशाली जीवन है।

श्रद्धा में विनय है, अवसाद नहीं। श्रद्धा में आत्म सम्मान है, अभिमान नहीं। श्रद्धा जीवन की पूर्णता का परम सहायक जीवन तत्व है। हमें श्रद्धा को प्रातः, सूर्य उदय में, मध्यान्ह में सूर्यास्त में तथा सोने से पहले सदा ही अपने साथ अनुभव करते हुए अपनी भावना, विचार, वचन तथा कर्म प्रेममय प्रभु को निवेदन करने चाहियें। अपितु जीवन में जो निश्चिन्तता है वह प्रभु से विमुख रहने में कहां? भगवान सब ओर हैं सभी दिशाओं में हैं। हम उन से विमुख हो ही नहीं सकते। भगवान् में आस्तिक बुद्धि न रखना भगवान् को भूल जाना है, भगवान् से विमुख होना है। यद्यपि हम भगवान् को भूल जाते हैं लोक सेवा रूपी उन का भजन हम छोड़ देते हैं परन्तु भगवान् हमें कभी नहीं तजते, भगवान् सदा अपने अनन्त उपकार हम पर किये ही जाते हैं। हम सदा श्रद्धा से और नम्र-भाव से भगवान् के आगे अतने आप को अर्पित करते रहें उसी में जीवन की सफलता है।

स्वाध्याय-सन्दोह

'वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म्म है' इस आर्ष आदेश के पालन करने की सुविधा के विचार से ही इस ग्रन्थरत्न की रचना की गई है। इसका पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया था। मांग बराबर थी। उसे पूरा करने के लिए दूसरा संस्करण छपाया है। इसमें कुछ बढ़ाया भी गया है। परिवर्धन होने पर भी मूल्य केवल ६) रखा है। कागज आदि की महंगाई के कारण थोड़ी प्रतियां छपवाई जा रही हैं। अतः शीघ्र अपनी प्रति के लिए निश्चिन्त हो जाइए। प्रतिदिन के स्वाध्याय के लिए इससे बढ़िया पुस्तक आप को इस समय और नहीं मिल सकती। विद्वान् तथा सामान्य, सभी प्रकार के लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। मूल्य ६), डाक व्यय पृथक्।

मांस-मदिरा-निषेध—मूल्य।=), १००प्रति इकट्ठी लेने वाले को =) प्रति के हिसाब से; डाक व्यय पृथक्।

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः—'विश्वानि देव' आदि आठ मन्त्रों की ललित, मनोहारिणी, और मग्न कर देने वाली व्याख्या। मूल्य =)॥, १०० प्रति का १२॥) साढ़े बारह रुपये। मूल्य पेशगी भेजने वाले से डाक महसूल भी नहीं लिया जाता।

नैमित्तिक-वैदिक पाठ—प्रातःकाल से लेकर रात्रि को सोने के समय तक के विविध अवसरों पर पठनीय वेद-मन्त्रों का संग्रह। मन्त्रों के साथ सुन्दर भावार्थ तथा शब्दार्थ। मूल्य ।) डाक व्यय पृथक्। एक प्रति मंगाने वाले ।-) का टिकट भेजें।

मिलने का पता—अध्यक्ष, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासिवानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छप गया　　　　　　　　　　　　　प्रकाशित हो गया

सांख्यदर्शन का इतिहास

जिस ग्रन्थरत्न की इतने काल से प्रतीक्षा हो रही थी, अन्तको वह छपकर आगया। इस ग्रन्थरत्न में सांख्यदर्शन की रचना का काल, रचयिता, तथा पुराने सांख्याचर्य्यों एवं सांख्य के नवीन संप्रदाय के प्रवर्त्तक ईश्वर कृष्ण तथा अन्य सांख्याचार्य्यों का प्रामाणिक इतिहास हैं। सप्तसिन्ध कहां हैं ? सरस्वती कहां थी। अब कहां है ? वर्तमानकाल में मिलने वाला सांख्य दर्शन ही सांख्यविषयक सब से पुराना ग्रन्थ है, इस सांख्यदर्शन के उद्धरण किन किन पुराने ग्रन्थों में मिलते हैं इत्यादि सहस्रों विषयों का निरूपण आप को इस ग्रन्थरत्न में मिलेगा। विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री जी के जीवनसार के अध्ययन का यह सार है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए० पी० एच० डी तथा डा० मंगलदेव शास्त्री एम० ए० डी० फिल ऐसे उद्भट विद्वानों ने इस की भूरि भूरि प्रशंसा की हैं।

हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि सांख्यदर्शन के संबन्ध में संसार की अन्य किसी भी भाषा में इतना बड़ा तथा प्रामाणिक ग्रन्थ आप को नहीं मिल सकता। ग्रन्थ की प्रति थोड़ी छपाई हैं। अतः मंगाने में शीघ्रता कीजिए। मूल्य ३०) तीस रुपये। डाकव्यय अतिरिक्त।

::::::::::::::::

क्या आप गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं ?

यदि आप का उत्तर हाँ में है, तो क्या आप उसका अर्थ, उसका गौरव, उसके जप की विधि जानते हैं ? इन तथा इन जैसी अन्य आवश्यक बातों जानने के लिए सावित्रीप्रकाश नामक पुस्तक का स्वाध्याय कीजिए। उसके लेखक अध्यात्मविद्या के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ हैं। गायत्री मन्त्र की इतनी उत्तम व्याख्या आपको और कहीं नहीं मिलेगी। अनेक समाचार पत्रों तथा विद्वानों एवं साधकों ने उसकी प्रशंसा की है। इतनी गुणगणाढ्य पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया है, डाक व्यय इसके अतिरिक्त है।

मिलने का पता—

मन्त्री— विरजानन्द वैदिक संस्थान

ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

["Regd. No. E. P. 425, रजि० सं० इ० पी० ४२५

क्या आप आर्यों के परम धर्म का पालन करते हैं ?

ऋषियों का आदेश है—'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' वेद संस्कृत भाषा में हैं। लोग चाहते हुए भी इस कठिनता के कारण उस से लाभ न उठा सकते थे। ऋषि दयानन्द ने सब से पहले इस कठिनता को दूर किया। ऋषि से प्रेरणा पाकर उनके चरण चिन्हों पर चलने वाले श्री स्वामी वेदानन्द ने सर्वसाधारण के लिए वेद को सुलभ कर दिया है। एक दिन के लिए एक मन्त्र के विचारण से ३६६ मन्त्रों का संग्रह 'स्वाध्याय सन्दोह' नामक विशाल ग्रन्थ रच कर उन्होंने सर्वसाधारख के लिए वेद का द्वार खोल दिया है। मन्त्रों की व्याख्या वेदमन्त्रों, उपनिषद्वचनों तथा अन्य अनेक ऋषियों के वचनों से पुष्ट की गई है। भाषा सरल, ललित है। साधारण जनता तथा लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने समान रूप से इस की प्रशंसा की है। समाचारपत्रों के सम्पादकों ने इसकी सराहना की है। यह बात सर्वसम्मत है कि संप्रति प्रतिदिन स्वाध्याय करने के लिए इससे उत्कृष्ट ग्रन्थ और कोई नहीं है। इतने विशाल ग्रन्थ का मूल्य केवल छः रुपये ६) है। डाक व्यय इससे पृथक् है। मंगाने की शीघ्रता कीजिए अन्यथा अगले संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह इसका दूसरा संस्करण है।

प्रार्थना करना सीखिए

प्रत्येक आस्तिक को प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। ऋषि ने साधारण जनों की सुविधा के लिए चारों वेदों से केवल आठ मन्त्र स्तुति प्रार्थना-उपासना के लिए संकलित किए हैं। आराधक प्रकार श्री स्वामी वेदानन्द ने उनकी भावमयी व्याख्या लिखी है, जिसे पढ़ते समय पाठक तन्मय हो जाता है। आप भी उसे पढ़िये और आनन्द विभोर हूजिए, उसका नाम 'ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासनामन्त्राः' है। मूल्य केवल ढ़ाई आने, डाक व्यय पृथक्।

नैमित्तिक वैदिक पाठ

संकलन कर्ता—श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी तथा व्याख्याकर्ता श्री स्वामी वेदानन्द जी

पुराने आर्य्य प्रत्येक कार्य्य करते हुए भगवान् का स्मरण किया करते थे। उनका यह स्मरण वेद मन्त्रों के द्वारा होता था। श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने प्रत्येक अवसर के उपयोगी ऐसे मन्त्रों का संकलन कर दिया है। वेदों के मार्मिक विद्वान् स्वामी वेदानन्द ने उनकी सुललित व्याख्या कर दी है। प्रत्येक आस्तिक वैदिक के पास यह पुस्तिका होनी चाहिए। मूल्य चार आने। डाक व्यय पृथक्।

मिलने का पता:—

मन्त्री, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल,

ज्वालापुर

मुद्रक.—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय दीवान हाल दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

॥ ओ३म् ॥

वेद-पथ

मासिक

वैदिक आचार-विचार-व्यवहार-प्रसारक

द्वितीय वर्ष { शुक्र=ज्येष्ठ २००८ वि० (१२७ द०)=मई १९५१ ई० } दशमांक

सम्पादक
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
विरजानन्द वैदिक संस्थान
ज्वालापुर,
जि० सहारनपुर

क्या आपने अपना कर्त्तव्य वेद प्रचार के विषय में पालन किया है? 'वेदपथ' के ग्राहक बढ़ाना वेद प्रचार का सब से सरल साधन है।

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा
५≡)
वी० पी० द्वारा
५।।)
एक प्रति ।।)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

१. स्वाध्याय सूक्ति संग्रह	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	
२. स्वधा	विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री जी	२६१
३. महात्मा राम	श्री पं० श्रुतिकान्त शास्त्री जी, एम० ए०, वेदतीर्थ	२६३
४. नव वर्ष दिवस	श्री पं० भीमसेन शास्त्री	२६५
५. सदाचार	श्री म० लालचन्द जी	२६६
६. भारत के विषय में यूरोपियनों के प्रचारित स्टन्ट	इतिहास का विद्यार्थी	२६८
		२.३
आत्म नरीक्षण		२७६

वेदपथ मासिक के नियम

१. वार्षिक शुल्क—पांच रुपये तीन आने ५≡) अगाऊ आने चाहिएं। वी०पी० द्वारा मंगाने पर पांच रुपये नौ आने लगते हैं। विदेशों से साढ़े सात रुपये ७॥) लिया जाता है। एक प्रति का मूल्य ॥) है, वी० पी० से ॥।–) लगते हैं। विदेशों से एक प्रति का मूल्य ॥।)

२. प्रकाशन तिथि—अंग्रेजी मास की १५वीं तारीख को भेजा जाता है। पत्र भली भांति देख भाल कर भेजा जाता है, यदि किसी ग्राहक को पत्र न मिले तो उसकी सूचना उस महीने की अन्तिम तिथि तक कार्यालय में आनी चाहिए।

३. लेख यथा संभव संक्षिप्त एवं कागज़ के एक ओर लिखे हुए आने चाहिएं। लेख वेद सम्बन्ध में होने चाहिएं। वैयक्तिक कलह सम्बन्धी लेख प्रकाशित नहीं हो सकेगा। लेख में आवश्यक फेरफार का सम्पादक को अधिकार है। लेख में प्रकाशित विचारों का उत्तरदायित्व लेखक पर है, सम्पादक पर नहीं।

४. लेख, 'सम्पादक, वेद-पथ' मासिक वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (ज़ि० सहारनपुर) के नाम आने चाहिएं।

५. वार्षिक शुल्क तथा पत्र-सम्बन्धी पत्र व्यवस्थापक वेद-पथ मासिक, देहली से करना चाहिए।

६. अश्लील विज्ञापन नहीं लिये जाते।

७. पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या, जो आपके नाम के पहले लिखी है, अवश्य लिखिए।

८. नूतन ग्राहक शुल्क भेजते हुए कूपन में लिख दें कि नूतन ग्राहक हैं।

व्यवस्थापक
'वेदपथ' मासिक देहली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ० १।४१।४)

वेद-पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

देहली

द्वितीय वर्ष } शुक्र=ज्येष्ठ २००८ वि० (१२७ द०)= मई १९५१ ई० { दशमाङ्क

ओ३म्

स्वाध्याय सूक्ति संग्रह

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

१३४. अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध (ऋ० ७।१७।१)
हे नेतः ! ज्ञानिन् । उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित हो ।

१३५. उत देवाँ उशत आवहेह (ऋ० ७।१७।१)
और कमनीय देवों को यहां ले आ । अथवा कामनावाले सद्गुणाभिलाषियों को यहां ले आ ।

१३६. स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः (ऋ० ७।१७।२)
हे प्रत्युत्पन्न प्रज्ञ ! यज्ञों को उत्तमता से कर ।

१३७. वंस्व विश्वा वार्य्याणि प्रचेतः (ऋ० ७।१७।३)
हे महाबुद्धिमन् । सब वरणीय पदार्थों का समादर कर ।

१३८. सत्या भवन्त्वाशिषों नो अद्य (ऋ० ७।१७।३)
आज हमारी इच्छाएँ सफल हों ।

१३९. इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा (ऋ० ७।१७।४)
भगवान गहरों को सुपार=आसानी से पार होने योग्य कर देता है ।

१४०. सखा सखायमतरद्विषूचोः (ऋ० ७।१७।६)
मित्र मित्र को संकट से बचाता है ।

१४१. मर्तां एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र (ऋ० ७।१७।१८)
जो मनुष्यों को पाप प्रशंसक बनाता है, हे राजन् ! उस पर तीक्ष्ण वज्र का प्रहार कर ।

१४२. दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयुः (ऋ० ७।१८।२५)
सेवासंयुक्त क्षात्र शक्ति दुर्णाश्य एवं जीर्ण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न होने वाली होती है।

१४३. भायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैः (ऋ० ७।१।१७)
कुटिल रहित उत्तम साधनों से हमारी रक्षा एवं पालना कर।

१४४. तव प्रियासः सूरिषु स्याम (ऋ० ७।१६।७)
तेरे ज्ञानियों में हम प्रिय होवें।

१४५. प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः (ऋ० ७।१६।८)
हे मघवन्! पूजितधनवन्! हम मनुष्य तेरे सखा और प्रिय होकर तेरे अभीष्ट शरण में ही मस्त रहें।

१४६. नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था (ऋ० ७।१६।६)
उत्तमवचनों के प्रशंसक एवं उपदेशक उत्तम उक्तियों की प्रशंसा करते हैं।

१४७. ब्रह्म जूतस्तन्वा वावृधस्व (ऋ० ७।१६।११)
ज्ञान से प्रदीप्त होता हुआ शरीर से बढ़।

१४८. उग्रोजज्ञे वीर्य्याय स्वधावान् (ऋ० ७।२०।१)
स्वशक्ति वाला विरोधनिवारण के लिए उग्र होता है।

१४९. माता न इन्द्र एनसो महश्चित् (ऋ० ७।२०।२)
भगवान हमें महान् से महान पाप से भी बचाता है।

१५०. वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिः (ऋ० ७।२०।१०)
स्तोता के लिए तेरी शक्ति वसुमयी हो।

१५१. मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः (ऋ० ७।२१।५)
शिश्नोदरपरायण=भोगविलासासक्त लोग हमारे यज्ञ को भी प्राप्त न हों।

१५२. सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम (ऋ० ७।२१।६)
हे भगवन्! हम सब दिन तेरे सखा बने रहें।

१५३. सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि (ऋ० ७।२२।५)
प्रभो! तेरे स्वीकीर्तियुक्त (अनुपमेय) नाम

को सदा विशेष रूप से कहता रहूँ।

१५४. श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेः (ऋ० ७।२२।४)
प्रभो! भूयो भूयः पानकर्त्ता दृढ़ भावना वाले की प्रकार सुन।

१५५. बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् (ऋ० ७।२२।४)
उपासक ज्ञानी की मनीषा=मन्शा को समझ।

१५६. अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि (ऋ० ७।२२।६)
हमारे लिए तेरे सख्य सुखदायी हों।

१५७. इन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ (ऋ० ७।२३।१)
हे सर्वोत्तम मनुष्य! जीवन संग्राम में भगवान् की पूजा कर।

१५८. एवा न इन्द्र वार्य्यस्य पूर्धि (ऋ० ७।२४।६)
हे प्रभो! इस प्रकार हमारी कामना की पूर्ति कर।

१५९. मा ते मनो विश्वद्र्यग् विचारीत् (ऋ० ७।२५।१)
तेरा मन इधर उधर (सब ओर) न भटके।

१६०. सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा (ऋ० ७।२५।५)
हे वीर! वृत्रों को (आत्माच्छादक पापों को) सदा सरलता से विनाश्य बना।

१६१. न सोम इन्द्रमसुतो ममाद (ऋ० ७।२६।१)
बिनकूटा सोम इन्द्र आत्मा को मस्त नहीं करता।

१६२. ना ब्रह्माणः मघवानः सुतासः (ऋ० ७।२६।१)
और न ही वेद रहित कूटे सोम आत्मा को आनन्दित करते हैं।
अर्थात् ज्ञान और कर्म दोनों का सहयोग ही आत्मा का कल्याण कारक है।

१६३. एको विभक्ता तरणिर्मघोनाम् (ऋ० ७।२६।४)
वही तारक (भगवान) ही अकेला धनों का विभाग कर्त्ता है।

१६४. आ ते मनो ववृत्याम मघाय (ऋ० ७।२७।५)
पूजित धन के लिए सब प्रकार से तेरे मन को घेरें।

१६५. विश्वे चिद्धि त्वा हवन्ते मर्त्ताः (ऋ० ७।२८।१)
सभी मनुष्य तुझे ही पुकारते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वधा

[विद्याभास्कर श्रीमान् पं० उदयवीर शास्त्री जी]

[१]

वेद में 'स्वधा' पद अनेक स्थलों में आया है, और यह संभव है, भिन्न दृष्टियों के आधार पर उसके अर्थ में जहां तहां भेद हो, पर इस लेख-प्रसंग में आधिभौतिक दृष्टि से इस विषय में प्रकाश डालने का यत्न किया जायगा, उन सब ऋचाओं की व्याख्या करने का विचार है, जिन में 'स्वधा' पद का प्रयोग हुआ है, और जिनसे उसके वास्तविक स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम ऋग्वेद के 'अस्य वामीय' सूक्त की एक ऋचा प्रस्तुत की जाती है—

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न-
निचिक्युरन्यम् ॥ [१ । १६४ । ३८]

[अमर्त्यः] वह अमर्त्य (जीव-चेतन) [स्वधया] स्वधा से (प्रकृति से) [गृभीतः] गृहीत सम्बद्ध हुआ [मर्त्येन] विनाशी तत्त्व समूह (बुद्धि, अहंकार, एकादश इन्द्रिय तथा पञ्च तन्मात्र घटित सूक्ष्म शरीर) के साथ [अपाङ् प्राङ्] ऊंच नीच लोकों में [एति] जाता है। यद्यपि [ता] वे दोनों (जीव चेतन तथा स्वधा) [शश्वन्तौ] निरन्तर रहने वाले हैं, [विषूचीनौ] एक दूसरे से सम्बद्ध, [वियन्तौ] अनन्त काल तक इसी प्रकार चले जाते हैं। [अन्यं] इनमें से एक को (दृश्यमान कार्य जगत् के रूप में स्वधा को) [निचिक्युः] अच्छी तरह देखा जाता है, [अन्यं] दूसरे (चेतन आत्मा) को [न] नहीं [निचिक्युः] देखा जाता।

प्रस्तुत ऋचा के व्याख्यान के समय गोल कोष्ठकों में उन अधिक पदों को रख दिया है, जिनसे अर्थ की अधिक सपष्टता में सहायता मिली है। यह एक माना हुआ सिद्धान्त है, कि जीव-चेतन अपने भोगों के लिये प्रकृति में प्रविष्ट होता है। उपनिषद् में कहा है 'जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' । परमात्मा ने जो इस संसार का विस्तार किया है, वह इसी लिये है, कि जीवात्मा इसमें प्रविष्ट हो कर अपने उचित भोगों को प्राप्त कर सके। इस प्रकार वह जीव-चेतन, प्रकृति से गृहीत अर्थात् सम्बद्ध है। इस सम्बन्ध की पुष्टि के लिये कुछ विनाशी तत्त्व, सर्ग-काल में सदा जीव-चेतन के साथ रहते हैं। इनकी संख्या शास्त्र में अठारह बतलाई गई है, इन्हीं से घटित हो कर सूक्ष्मशरीर का निर्माण होता है। जब तक किसी को आत्मज्ञान न हो जाय, सूक्ष्म शरीर के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध रहना अनिवार्य है इसी के साथ वह सदा नीच ऊंच योनियों में जाता आता है। स्वधा और अमर्त्य दोनों अनादि अनन्त हैं, इसलिये दोनों का सम्बन्ध भी अनादि अनन्त है। ऐसे सम्बन्ध का यह अभिप्राय नहीं, कि ये सदा ऐसी सम्बद्ध स्थिति में ही रहते हैं। इस अनिश आवर्त्तमान चक्र में कभी कभी ये परस्पर असम्बद्ध भी रह जाते हैं। यह जीवात्मा की मोक्ष अवस्था कही जाती है, परन्तु कालान्तर में फिर उसी पूर्वास्थिति में आजाते हैं। इनका सदा सम्बन्ध इसी लिये कहा गया है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है, कि इनके इस क्रम का कभी अन्त नहीं होता। ये निरन्तर इसी क्रम में चलते ही चले जाते हैं [वियन्तौ]। कोई भी स्थिति, इनके इस संबन्ध को सदा के लये तोड़ नहीं सकती। यह सम्भव है, कि इस लम्बे मार्ग के बीच में ऐसे अवकाश [प्रलय, मुक्ति आदि] आवें, जब जीव-चेतन प्रकृति के सम्पर्क में आकर भोगों को न भोगे। यह अवकाश पर्याप्त लम्बा भी हो सकता है, परन्तु इस अनादि अनन्त यात्रा की दृष्टि में वह नगण्य सा ही है। तथा कालान्तर में फिर भी उनको अपनी उसी पूर्वस्थिति में आना ही होता है। इसीसिये यह प्रकृति-पुरुष सम्बन्ध अनादि अनन्त कहा गया है।

इन दोनों तत्त्वों में से स्वधा अर्थात् प्रकृति की इस दृश्यमान विभूति को अच्छी तरह देखा, भोगा और जाना जाता है। परन्तु अपने आप को अर्थात् चेतन तत्त्व को इतनी स्पष्टता से हम नहीं जान पाते। हमारे जो ज्ञान के बाह्य साधन हैं, वे वस्तुतः प्रकृति के कार्यों के ही जानने में पर्यवसित हो जाते हैं, और साधारणतया संसार इसी के अनुसार चलता रहता है। विरले ही धीर पुरुष ऐसे पाये जाते हैं, प्रत्यगात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करें। उपनिषद् में कहा है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात्
पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुर् अमृतत्वमिच्छन्
॥ कठ ॥

परमात्मा ने इन्द्रियों को बाहर की ओर फैलाया है। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण ये हमारी ज्ञानेन्द्रियां बाहर की ओर खिंचे हुए विषयों का ही ग्रहण करती हैं, क्योंकि इनकी गति बाहर को ही है, अन्तरात्मा की ओर नहीं। कदाचित् कोई एकाध धीर पुरुष ऐसा निकलता है, अमृत की अभिलाषा रखता हुआ, अपनी इन्द्रियों की बाह्य प्रवृत्ति पर नियन्त्रण करता है, सांसारिक विषयों में निरत होने से अपने आप को बचाता है, और तब अन्तरात्मा का साक्षात् दर्शन करता है। इसी लिये श्रुति में कहा गया है—'अन्यं निचिक्युः, अन्यं न निचिक्युः' इन दोनों में से एक को अर्थात् कार्य रूप में परिणत हुई प्रकृति [स्वधा] को सरलता से जान लिया जाता है, और दूसरे जीवात्म चेतन को इतनी सुविधा या सरलता के साथ हम नहीं जान पाते। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व का अनुभव करता है, कभी भी यह कोई नहीं जानता या कहता, कि 'मैं नहीं हूं' फिर भी वास्तविक रूप से अपने विषय में यह अजान व अबोध ही रहता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि सर्गकाल की यह साधारण सांसारिक स्थिति बतलाई गई है, क्योंकि प्रप्रकृति के वास्तविक कारण रूप को जानना भी उतना ही कठिन है, जितना कि आत्मा को। प्रकृति के ये कार्य, हमारे सन्मुख अवश्य हैं, और प्राकृतिक साधनों के आधार पर हम उन्हीं के देखते जानते तथा उन्हीं में रमे रहते हैं। इस दौड़ के वेग में स्वयं अपने आप [आत्म-तत्त्व] की ओर हम नहीं मुड़ पाते। इसी भावना को ऋचा के चतुर्थ चरण में स्पष्ट किया गया है।

उक्त वर्णन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि प्रस्तुत ऋचा में 'स्वधा' पद का प्रयोग उसी मूल तत्त्व के लिये हुआ है, जिसका यह सब जगत् विकार है, तथा जिससे बद्ध होकर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

[स्वधया गृभीतः] पुरुष, विविध योनियों में संचरण करता है। उसी मूल तत्त्व को सांख्य में प्रकृति कहा गया है। सांख्य का यह भी एक परम सिद्धान्त है, कि नित्य चेतन शुद्ध आत्मा प्रकृति के साथ सम्पर्क होने से ही बन्धन में आता है। अर्थात् जीवात्मा की वह अवस्था जब वह प्रकृति के सम्पर्क में रह कर भोगों को भोगता है, 'बन्ध' कही जाती है।

महात्मा राम

[श्रीमान् पं० श्रुतिकान्त शास्त्री जी एम० ए० वेदतीर्थ]

किसी भी देश के उन साधारण लोगों की बात छोड़िए जो किसी विशिष्ट व्यक्ति में ईश्वरत्व-भावना करने को सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। असाधारण-विचार-शील, लोगों की बात लीजिए। वे किसी भी, कैसे भी, विशिष्ट व्यक्ति को ईश्वर नहीं मानते, राम को भी ईश्वर नहीं मानते, किन्तु ईश्वर को राम मानते हैं—सब नहीं, कुछ। कबीरदास जी निराकार ईश्वर के उपासक थे, किन्तु उनका ईश्वर 'राम' था। 'राम' उनका स्वामी था, वे 'राम' की 'बहुरिया' थे। स्वामी रामतीर्थ अद्वैत-वादी सिद्ध पुरुष होकर भी 'राम बादशाह' के कायल थे। महात्मा गांधी पूर्ण निराकार ईश्वर के उपासक होकर भी 'रघुपति राघव राजा राम' की धुन में मग्न रहा करते थे। ऐसे ऐसे निराकार-ईश्वरोपासक महा पुरुषों ने भी जो ईश्वर के लिए 'राम' नाम को पसन्द किया। इससे राम शब्द में कुछ जादू समझना चाहिये। इसे भी जाने दीजिये। यही कहिए कि राम ईश्वर नहीं थे, ईश्वर भी नहीं है। तो भी श्रीराम का महत्त्व न्यून नहीं होता। श्री राम का रामायणोक्त चरित भारत में और भारत से बाहर भी वासियों शताब्दियों से प्राकृत-संस्कृत सब लोगों के लिये समानरूप से श्रद्धास्पद चला आ रहा है। क्यों? वे बड़े वीर थे, इसलिये। स्यात्। किन्तु वीर और भी बड़े-बड़े हुए हैं। भारत में ही, महाभारत संग्राम के 'हीरो' अर्जुन में ही कहीं अधिक वीरता थी। दोनों की थोड़ी तुलना कीजिए। श्री राम ने बाल्य काल में ताड़का प्रभृति प्रबल राक्षसों का वध किया। अर्जुन ने द्रोणाचार्य के लिये पञ्चाल नरेश तक को परास्त कर डाला था। श्रीराम ने मिथिला पुरी में सीता स्वयम्वर में लोकोत्तर पराक्रम दिखलाया। अर्जुन ने भी द्रौपदी-स्वयम्वर में वैसा ही किया। यदि कहा जाए—द्रौपदी स्वयंवर में जो अद्भुत कौशल अर्जुन ने दिखलाया वह कर्ण भी दिखला सकता था। सत्य। किन्तु, सीता-स्वयम्वर में जो कुछ श्री राम ने करके दिखलाया, वही लक्ष्मण भी तो कर सकता था। श्री राम ने वनवास-काल में खर दूषण-प्रभृति नाना महा-पराक्रमियों का संहार किया। अर्जुन ने तो हिमालय पर तपस्या करते समय स्वयं पशुपति को परास्त कर दिया था। और विराट नगर में गोहरण-काल में भीष्म, दुर्योधन आदि सब महावीरों को भाग दिया था। श्री राम ने रावण को मारा। भारत संग्राम में अर्जुन ने भी जिन योद्धाओं को परास्त किया वे रावण से कम बली और युद्ध विद्या-विशारद नहीं थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसके अतिरिक्त, अर्जुन के जैसे आश्चर्यजनक बाणों का वर्णन मिलता है वैसे श्री राम के बाणों का नहीं। इससे स्पष्ट है कि यदि श्रीराम की श्रद्धेयता केवल वीरता पर आश्रित होती तो अर्जुन का मान श्री राम से अधिक होना चाहिये था। यदि यह भी कहा जा सकता है कि श्री राम ने माता-पिता की प्रसन्नता के लिये राज्य त्याग दिया था। यह गुण अर्जुन में भी पाया जाता है। उसने बड़े भाई का मान रखते हुए वनवास स्वीकार किया था। जो व्यक्ति माता-पिता के तुल्य बड़े भाई का आदर करे, वह वास्तव में हमारे और भी अधिक आदर-सम्मान का भाजन है। फिर श्रीराम ने केवल चौदह वर्ष का ही वनवास भोगा था, अर्जुन ने भी तेरह वर्ष का। केवल एक वर्ष का अंतर है। एक वर्ष के अज्ञातवास की कठिनाई उस कमी को भी पूरा कर देती है। फिर अर्जुन ने एक बार और भी तो वनवास भोगा था। निष्कर्ष यह कि वीरता, राज्यत्याग, वनवासभोग इन गुणों के कारण यदि श्री राम को लोक-पूज्य माना जाये तो अर्जुन को भी मानना चाहिये था। परन्तु ऐसा नहीं है। अतः श्री राम की लोक-पूज्यता का हेतु कोई अन्य ही होना चाहिये। श्री हरदयाल प्रभृति कुछ विद्वद्-धुरन्धरों की सम्मति में श्री राम की लोक-पूज्यता का कारण है जाति-सेवा। उन्होंने रावण को परास्त करके दक्षिण की ओर से आर्य-सभ्यता के शुभचिन्तकों को निश्चिन्त कर दिया था। इस कल्पना में अपूर्वता और मनोग्रहिता है। परन्तु आर्य सभ्यता में मानव-जीवन में चरित्र की ही प्रधानता है, इस तथ्य को दृष्टि में रखकर अनुमान करना पड़ता है कि श्री राम की लोक-पूज्यता में उक्त सभी कारणों के साथ, विशेष कारण उनका चरित्र-बल है जिसकी अनेक सूक्ष्म बातों में से अब केवल तीन–चार स्मरण रह गई है। वाल्मीकीय रामायण के आदिकाण्ड के आरम्भिक स्थल से भी इसी अनुमान की पुष्टि होती है। अतः कहना चाहिये कि श्री राम अपने चरित्र बल से ही मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये, और इसी लिये मैं उनको लोक-पूज्य महात्मा समझता हूँ।

——

नव वर्ष दिवस

[श्रीमान् पं० भीमसेन शास्त्री उपाध्याय, नयापुर, कोटा, राजस्थान]

हमारा सभ्यमय समाज आज भी १ जनवरी को नव वर्ष दिवस की बधाइयां (New year's Day Greetings) देने में अपनी कृतकृत्यता समझ रहा है पर यह बड़ी भूल भरी बात है। दो अरब वर्ष पुरानी हमारी आर्य जाति का, हमारे जगद्गुरु भारतव देश का, १ जनवरी सेप्रारम्भ होने वाले ऊटपटांग वर्ष से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं। यदि कोई ऊपरी सम्बन्ध है तो वह दासता का सम्बन्ध है। राज-नीतिक दासता कुछ कुछ दूर होने पर भी, उस की जननी मानसिक दासता आज भी बनी हुई है, जिसने हमें संसार भर के लिये दयापात्र, उपहा-सास्पद व अवमाननीय बना रखा है। कैसी विस्मयावह स्थिति है कि यूरोप अमेरिका के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विचारवान् जन सुख, शान्ति के लिये भारतवर्ष की ओर आशाभरी दृष्टि से निहारते हैं, और हमारे नेता सुख, शान्ति, समृद्धि के लिये आंखें मूंद कर पश्चिम के पीछे दौड़ रहे हैं और सो

ने जनता

भ

को शिक्षित करके मत-दान का अधिकार दिया है, पर हमारे नेतृ वर्ग को गर्व है कि उन ने एकपदे ही वयस्क अबोध, अशिक्षित स्त्री पुरुष मात्र को मतदान का अधिकार दे दिया है। एक अबोध बच्चे के हाथ में खेलने को संखिया की पुड़िया अथवा १५ कारतूस भरी बढ़िया राइफल देना कितना अनर्थकारक हो सकता है। वह मित्रों, घर वालों और अपना भी वध कर सकता है। संखिया जैसी उत्कृष्ट औषध का सदुपयोग वैद्य ही कर सकता है और राइफल से दुष्टों का विनाश तथा सत्पुरुषों की रक्षा जैसे पवित्र कार्य को समझदार मनुष्य कर सकता है। अबोध बालक के हाथ में ऐसी वस्तुओं को सौंपने वाला जड़मूर्ख के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता तो हमारे अधिकार-दान-गर्वित प्राज्ञंमय नेताओं की स्थिति क्या उस महामानव से तनिक भी भिन्न है। निश्चित ही अच्छी बातों का भी अस्थाने उपयोग हमारे देश को दुःखोदधि में डुबा रहा है और फिर १ जनवरी के नववर्ष जैसी अवैज्ञानिक रूढ़ि को तो पश्चिम भी कुछ काल में छोड़ेगा ही इस रूढ़ि पालन से अपने को कृतार्थ मानना निरी नासमझी है।

वस्तुतः मेष संक्रान्ति (और चान्द्रपक्ष में चैत्र शुक्ला प्रतिपदा) ही नववर्ष दिवस है। इस में प्रमाण—

१. सृष्टि के प्रथम दिन मेष संक्रान्ति, चैत्र शुक्ला प्रतिपदा थी। अतः सौर वर्ष का आरम्भ मेष संक्रान्ति से, चान्द्र का चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से तथा सप्ताह का रविवार से मानना सर्वथा समुचित है।

२. प्राचीनतम ज्योतिष-सिद्धान्त-ग्रन्थ, सूर्य सिद्धान्त, भी मेष संक्रान्ति से वर्ष का प्रारम्भ बताता है।

३. हमारे प्राचीन ग्रन्थों में देवों के दिवस का आरम्भ वस्तुतः मानव वर्षारम्भ ही है, और वह यही दिन है।

४. सायन मेष संक्रान्ति को दिनरात सम-प्रमाण होते हैं।

५. सारे ऋतुओं का राजा बसन्त ऋतु है, और बसन्त ऋतु का मध्य, सर्व श्रेष्ठ काल सायन मेष संक्रान्ति है। यह वर्ष का सब से सुहावना समय है।

६. गोधूम, चत्र, यवादि सस्य दृष्टि से भी बसन्त सर्वाधिक हर्ष का अवसर है।

७. हमारा देश ही नहीं, यूरोपादि भी, सारा ही संसार बसन्त को ही सर्वश्रेष्ठ समझता है।

८. ईरान को नववर्ष दिवस (नौरोज) भी सायन मेष संक्रान्ति ही है।

९. यूरोपीय तिथि पत्र भी कभी मार्च से ही आरम्भ होता था।

१०. ईसाई अंगरेज़ सरकार ने भी आर्थिक वर्ष १ जनवरी से न मान कर १ अप्रैल से (सायन मेष संक्रान्ति से समीपतम पहली तारीख से) माना था।

११. भारतीय राष्ट्र का अधिकांश भाग ग्रामों में बसता है। और यह भारतीय राष्ट्र चैत्र शुक्ला प्रतिपदा तथा मेष संक्रान्ति को वर्षारम्भ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मानता व मनाता है। शिक्षित वर्ग का राष्ट्र की उचित परम्पराओं से अपने को विच्छिन्न करना और नई दासतामूलक परम्पराओं का अपनाना बुद्धि शुन्यता से भिन्न नहीं। शिक्षित वर्ग को राष्ट्र से विच्छिन्न विदेशी सरकार ने किया था। हमें वह भूल तुरन्त सुधार लेनी चाहिये। बुद्धि जीवी समाज की देश से विभन्नता राष्ट्र के लिये घातक है। यदि ग्रामीण जनता का बुद्धि जीवी समाज से प्रेम नहीं, उन पर पूर्ण विश्वास नहीं तो उस राष्ट्र में बल भी नहीं।

१२. अपनी संस्कृति को अपनाकर ही राष्ट्र बलवान बना करता है।

विस्तार भय से हम ने संक्षेप से काम लिया है। प्रमाणों के जिज्ञासु सं० २००७ चैत्र (१९५० अप्रैल) के वेद पथ में पृ० ३६४-३६६ पर हमारा लेख देखें।

आजकल हमारे ज्योतिषी निरयण गणना को अपनाए हुए हैं। सायन गणना ही पृथिवी की ऋतुओं को यथावत् बनाती है। इस विषय में १९५१ फर्वरी के वेद पथ में हमारा लेख देखें (मकर संक्रान्ति शीर्षक) हमें नववर्ष दिवस सौर पक्ष में सायन मेष संक्रन्ति को तथा चान्द्र पक्ष में चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को ही मनाना चाहिये।

यही नववर्ष दिवस राष्ट्र को बलवान बनाएगा। १ जनवरी को मनाना राष्ट्र का विभाजक है।

[यह लेख पिछले अंक के लिए आया था। सम्पादक को विलम्ब से प्राप्त हुआ अत: उस अङ्क में न छप सका। लेखक महोदय ने एक अत्यन्त आवश्यक विषय की ओर राष्ट्र तथा राष्ट्र के कर्णधारों का ध्यान आकृष्ट किया है। इस विषय में प्रबल आन्दोलन करने की आवश्यकता है। —सम्पादक]

सदाचार

[श्रीमान् म० लालचन्द्र जी, भूतपूर्व अंडर सेक्रेटरी, पंजाब]

सत्येनोर्ध्वस्तपति (अथर्व—१०-८-१९)
मनुष्य सत्य से ऊंचा होकर उठाता है।

सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म (तै० उप० ब्रह्मवल्हती)
परमातमा सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप और अन्नत है।

ब्रह्मणेनाम सत्यम् ,, (छान्दोग्य उप० ८।३।४ ,,)
परमात्मा का नाम सत्य है।

सत्यं एवैषां भूतानां मधुन (वृहदारण्यक उप०-२।५।१२)
सत्य सारे प्राणियों का मधु है।

सत्यं ब्रह्म, दैवासत्यमेवोपासते ,, वृहदारण्यक (उप० ५।५।१ ,,)
सत्य परमात्मा है देव जन सत्य स्वरूप भगवान् को ही आराधते हैं।

सत्यात् न प्रमदितव्यम (तैत्तिरीय उप० १।१।१ ,,
सत्य में प्रमाद न करना।

सम्मूलो वा एष परिशुष्यति यो अनृतमभिवदति ,,
यह जड़ समेत सूख जाता है जो मिथ्या बोलता है।

सत्यं वद (तै० उप० ११।१)
सत्य बोल

सत्य का आचरण ही सदाचार है, सदाचार में ऋत और सत्य का अवलम्बन है अनृत और असत्य की अवहेलना है, न केवल अवहेलना,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋत और असत्य का ध्यान तक भी नहीं। सदाचारी मनुष्य ऋत और सत्य का मूर्त उदाहरण है। वह तो संस्कृति का प्रतीक सत्यमूर्ति है, वह मूर्तिमान सत्य है।

सदाचार में ऋजुता, सरलता और साधुता का समावेश है। सदाचारी ही दक्ष है उसी का जीवन सुन्दर है। सदाचारी का जीवन यज्ञमय है। यज्ञ भावना दिव्य है। यज्ञ भावना सदाचार का मूल भी है और मध्य भी। यज्ञिय जीवन सत्य और प्रेमका, ज्ञान और प्रेम जीवन है। सदाचार की पराकाष्टा यज्ञ में ही हुई है। सत्कर्म यज्ञ से ही पैदा होता है और यज्ञ में ही उस की पूर्णता है। सर्व श्रेष्ठ कर्म, वह कर्म जिससे सभी प्राणियों का परम हित हो, यज्ञ कहा जाता है। यज्ञ काम धेनु है। यज्ञ से सभी कामनाएं पूर्ण होती हैं। यज्ञ सत्य है, और सत्य यज्ञ है। ज्ञान और प्रेम का संगति करण यज्ञ है। सदाचार यज्ञ की भित्ति है और यज्ञ में ही सदाचार की परख है। यज्ञिय जीवन ही भगवत जीवन है, वही अर्पित जीवन है सदाचार में ही यज्ञ की सफलता है। यज्ञ में सत्यं शिवं सुन्दरम भगवान् का साक्षात है। और प्रभु की देखरेख में जीवन चर्चा है और वह दिनेचर्या भगवान को अर्पित है। भगवान् यज्ञ पुरुष है। जिसे अर्पण होने का चाव है उस साधक से भगवान् प्रसन्न होते हैं क्योंकि वह यज्ञ करता है भगवान् यज्ञ अनुष्ठान से प्रसन्न होते हैं, और सभी जनों पर जो यज्ञ में सम्मिलित होते हैं भगवान् सुखों की वर्षा करते हैं। भगवान् कृपण नहीं है, वह सुख के देने में संकोचता नहीं करते, संकोच नहीं करते। वह अपने उपासकों पर परम सुख विशुद्ध प्रेम, और परम आनन्द की वर्षा करते हैं भगवान् के भक्तों के हृदयों में अमृत, प्रेम और आनन्द का स्रोत फूट निकलता है भगवान् के सच्चे भक्त ऐश्वर्यवान बुद्धिमान, संपन्न, दक्ष, स्वशक्त तथा नम्र देखे गए हैं। भगवान् के उपासक में भगवान् का गुण देखा करते हैं। वह भगवान् का भक्त ही क्या हुआ जिस में भगवान् के गुण न आ सकें भगवान् के भक्त सदा प्रसन्न रहते हैं क्योंकि भगवान् सच्चिदानन्द है। भगवान् सत्यं, शिवं, शाश्वतम् हैं, भगवान् अपने आनन्द रूप में सदाचारी मनुष्य के हृदय में सदा प्रकाशते हैं। सत्य के आचरण में असीम बल है, अतुल शक्ति है। सत्य शाश्वत है, अविनाशी है, सदाचारी मनुष्य निश्चल, स्थिर और दृढ़ होता है। सदाचारी मनुष्य के भाव उज्ज्वल और उदान्त होते हैं उसकी जीवन-चर्या में व्यापकता भासती है। उसके कार्य व्यापक प्रभाव रखते हैं। सदाचारी मनुष्य से ही समाज का हित होता है, सदाचारी मनुष्य का ही जीवन यज्ञिय होता है।

चरित्र जीवन निर्माणात्मक होता है। संसार में जब जब सर्वहित की कामना से क्रान्ति हुई है, तो उसी युग में निर्माण कार्य भी विपुल हुए हैं। आज समाज में परिग्रह की वासना है। लोभ प्रबल है। साधन पवित्र नहीं रहे और न ही ध्येय शुद्ध है। किसी न किसी प्रकार धनोपार्जन कर लेना ही मानव जीवन का उद्देश्य रह गया है। आदर्श की तो बहुत कठिनाई है। सात्विक शुद्ध भावना वाले सरल चित्त साधुओं का तो अभाव सा ही है। आजकल छल कपट करने वाला ही दक्ष है जो किसी न किसी प्रकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपना काम निकाल ले, वह ही चतुर है। सच्चे साधन की ओर ध्यान नहीं, कर्मण्यता की कमी है, बिना पुरुषार्थ के धन आ जाय, ऐसी प्रबल लालसा है। आजकल सदाचार की मृत्यु नहीं तो सदाचार को सन्निपात हो कर अधरंग सा हो ही गया है। सदाचार की नितांत कमी है। भद्रभाव का उद्गम सदाचारी मनुष्य के हृदय में ही होता है। सदाचार की कमी के कारण अश्लील स्वार्थी वासनाओं से मानव हृदय गन्दा सा और सकीर्ण दीख रहा है। आत्म-विश्वास की भी कमी है, परस्पर का विश्वास भी इसी लिए घटता जा रहा है। आपस में संदेह है, संशय है। प्रायः लोग एक दूसरे को धोखा देते हैं। सीधे सात्विक वृत्ति के लोग ठगे जा रहे हैं और चतुर लोग गाल बजाते देखे जाते हैं। यह सब क्यों? सदाचार की कमी के कारण।

एक क्रान्ति की आवश्यकता है जिससे दुराचारी लोगों के दिल हिलें और सदाचार की पुनः प्रतिष्ठा हो। वह क्रान्ति सत्य, प्रेम और अहिंसा पर अवलंबित हो तो उसका प्रभाव चिरस्थायी होगा। आज आवश्यक है कि सदाचारी सात्विक जन सुसंगठित होकर रहें और स्वार्थी असुर लोगों के दाव पेचों को समझें। जो सत्य का आश्रय ले चुका और प्रेम को जो व्यवहार में लाता है वह जगत् में दुखी और चिंतित क्यों हो? केवल भला होना, सच्चा होना पर्याप्त नहीं। सच्चे सरल लोग जिनका जीवन नैतिक है जो अपनी नागरिक जिम्मेदारी समझते हैं और दिनचर्या में आपस के व्यवहार में सत्य और प्रेम निभाते हैं उन्हें भली प्रकार सुसंगठित होकर रहना चाहिये। विभाजन से यही तो एक अमर शिक्षा मिली है कि सज्जनों का संगठन अनिवार्य है। सज्जनों का संगठन ही आर्यसमाज है। प्रत्येक आर्य समाजी आर्य होना चाहिये। आर्य है ही पूर्ण विकसित मानव, वह मनुष्य जिसमें भगवान् के गुण दीखते हों क्योंकि आर्य, अर्थ 'भगवान् का पुत्र' है। आर्य अमृत पुत्र है। आर्य के लिए सदाचारी होना परम अवश्यक है। आर्य अवश्य अन्तर्यामी सर्वव्यापक हृदय विहारी परम प्रभु का सच्चा उपासक है। आर्य परमात्मा के निकटतम है। सदाचारी तो आर्य को होना ही होगा क्योंकि आर्य अमृत पुत्र है। परमात्मा के साथ सम्बन्ध मनुष्य को सदाचारी बनाए रखने में परम सहायक है। परमात्मा का उपासक अवश्य सदाचारी है। ढोंगी धर्म-ध्वजी परमात्मा का उपासक नहीं हो सकता चाहे वह नित्य प्रतिदिन अग्नि होत्र क्यों न करता हो तथा दान भी करता हो। सदाचारी मनुष्य ही शुद्ध कमाई के रहस्य को जानता है। सदाचारी कभी चोर बाजारी नहीं करेगा वह उचित नफा लेकर अपना व्योपार करेगा, व्यापार में सच्चा रहेगा। उसकी वाणी में निरन्तर सत्य रहेगा और वह सदा अपना तथा अन्य लोगों का मगल ही सोचेगा और मंगल ही करेगा।

सदाचारी रहे बिना कोई मनुष्य अपने अन्दर मंगल भावना धारण नहीं कर सकता। सदाचारी लोग जगत् के छल कपट और दुराग्रह से ऊब कर क्रान्ति किया करते हैं। ऋषि दयानन्द एक महान् क्रान्तिकारी था। भारत का जीवन स्तर भी नीचा है और आज

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कल नैतिक स्तर बहुत ही गिर चुका है। क्रान्ति की आवश्यकता है। सत्य की रक्षा सदाचारी ईश्वर भक्तों द्वारा ही संभव है। भगवत् भक्तों को अवश्य ही संगठित होकर पूरे अनुशासन में आर्य मर्यादाओं को पालते हुए आर्यत्व का प्रसार करना चाहिये। आजकल सुअवसर है। अपना राज्य है, सदाचारी, भगवान् के भक्त, सज्जन मनुष्यों का उदासीन रहना अब घातक है। विशुद्ध मन वाले और शिव संकल्प वाले सज्जन मनुष्य ही अपने आत्म बल और सदाचार की अपार शक्ति के सहारे संसार में क्रान्ति लाने में समर्थ होंगे। सदाचारी लोगों का दायित्व है कि वे अपने व्यवहार से, मेल जोल से, परस्पर स्नेह से, सदाचार और नैतिक जीवन फैलावें, जिस से सब का परमहित होगा।

भ्रष्टाचार, दुराचार, अत्याचार, अनाचार इतना बढ़ गया है कि साधु का तो जीवन ही संकट में हो गया है। साधु लोग ठगे जाते हैं उनकी सरलता से चतुर लोग अपना उल्लू सीधा करते हैं। हमें स्वयं इसका कटु अनुभव हो चुका है। तो क्या फूट, छल, कपट, दम्भ को बढ़ने दिया जाय? हमारा सुझाव यह है कि इस विकट स्थिति में साधु लोगों को संगठित होकर कार्य करना चाहिये। संगठन में निरन्तर अजेय शक्ति है। संगठन में श्री, विजय, विभूति, सम्पदा, शोभा, आदि सभी दिव्य शक्तियें हैं। दुराचारी तो संगठित हैं। और भले लोग भोले भाले अलग २ रह कर अपने आपको लुटवाया जाए, यह अवस्था कब तक चलेगी? इस अप्राकृतिक स्थिति को तो बदलना ही होगा।

एक व्यापक क्रान्ति की आवश्यकता है जो सत्य, प्रेम और अहिंसा पर अवलम्बित हो, जो पराजय को ध्यान तक में भी न लाए और बढ़ती ही चली जाए। एक ऐसी पावक, पवित्र करने वाली ज्वाला की आवश्यकता है जिस में मोह, ममता, राग द्वेष, दम्भ, दुराचार, पाखंड, सभी धर्म ध्वजियों के गढ़ भस्मसात् हो जायें और धर्म में सच्चा जनतन्त्र उभरे जनता को सुसंस्कृत बनाना होगा, जनता में सुशिक्षा फैलानी होगी। जनता का जीवन स्तर ऊँचा करना होगा और साथ ही नैतिक जीवन का प्रसार करना होगा। यह सब काम कौन करे? यह पवित्र काम आर्यसमाज को अपने हाथ में बिना विलम्ब के लेना चाहिये और सुयश प्राप्त करना चाहिये। जनता चोरबाज़ारी, फूट और कपट से दुखी है। जनता के पास खाने को भोजन नहीं, पहनने को वस्त्र नहीं रहने को घर नहीं। जनता को स्वराज्य में बहुत सी आशाएं थीं. अब वस्तु-स्थिति जानकर जनता किं कर्त्तव्य विमूढ़ सी है। आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि राष्ट्र में पुनः ऐसी जागृति और क्रान्ति लाए कि जनता का जीवन स्तर उन्नत हो और पूर्णतया नैतिक हो।

आवश्यकता इस बात की है कि आपस का व्यवहार शुद्ध हो, बर्ताव निष्कपट हो और लोग प्रतिज्ञा को निभाना पुनः सीखें। अभी हमें यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि एक युवक को एक मोटे कपड़े की पोटली मिली जिस में लगभग दो हजार रुपये की चांदी थी और उसने अपने आठ घंटे व्यय करके असली मालिक को ढूंढ कर वह पोटली उसे मान्य-व्यक्तियों के सामने देदी। हमारे दुख का भी कोई अन्त न रहा था जब कि एक दिन मालूम हुआ कि एक युवक ने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक युवती को तेजाब का भीगा कपड़ा लगा कर उसकी सलवार जलादी और उस बेचारी को अन्य लोगों ने सहायता करके उसके घर उसे पहुंचाया था। आर्यसमाज क्या भ्रष्टाचार को सुधारने का यत्न नहीं करता? क्या यह शिथिलत्य, अकर्मण्यता, और उदासीनता आर्य-समाज के लिए कलंक नहीं? आर्यसमाज को अपना दायित्व समझना चाहिये और बहुत शीघ्र इस ओर संगठत कार्य आरंभ कर देना चाहिये। युवक युवतियें सिनेमा में तो चले जाते हैं और टिकट के पैसे भी व्यय करते हैं किंतु आर्य-समाज के सत्संग में नहीं आते। और तो क्या, आर्यसमाजी, स्वयं आर्य, बहुत ही कम संख्या में हैं और उनका भी अपने बालकों पर कुछ प्रभाव नहीं। ऐसी स्थिति कब तक चलती रहेगी? क्रान्ति की आवश्यकता है, और वह धर्म की क्रान्ति और ऋत सत्य की क्रान्ति आर्यसमाज को ही लानी चाहिये। 'आर्य' है ही वह मनुष्य जिस में पूर्ण सदाचार हो, क्योंकि आर्य अमृत पुत्र है। हर एक कार्य में अपने परम पिता परमात्मा के दिव्य गुण दीखने चाहियें।

क्रान्ति अवश्य लानी चाहिये। जब जब क्रान्ति हुई समाज का संशोधन हुआ, तो उस युग में निर्माण कार्य भी विपुल हुए हैं। साहित्य कला, आदि सभी अगों पर सार्वजनिक क्रान्ति का प्रभाव हुआ है। क्रान्ति शान्ति पूर्वक हो उसमें नवजीवन सब को मिले, यह काम आर्यसमाज के नेताओं का है। आर्य समाज में नैतिक जीवन की शिक्षा और सुसंस्कार न मिले तो और कहां मिलेंगे? आर्यसमाज के कार्य में उदासीनता और अकर्मण्यता खटकती है। एक ऐसा प्रबल आन्दोलन होना चाहिये जिसमें पुनः मानवता अपने असली रूप में चमके और दानवता दबे। आसुरी भावों का साम्राज्य सा दीखता है इसे परास्त करने के लिये सात्विक जनों को संगठित होना ही होगा। यह काम आर्यसमाज को बिना विलंब के अपने हाथ में लेना ही चाहिये।

मनुष्यों के हृदयों में सर्वहित का संकल्प दृढ़ हो इसके लिए विशिष्ट आचरण की, ऐसे आचार, व्यवहार की, नितांत आवश्यकता रहती है जिस में सब प्रेम सूत्र में ओत प्रोत हुए सहयोग करते हुए आगे बढ़ें।

भारत के विषय में यूरोपियनों के प्रचारित स्टन्ट

[इतिहास का विद्यार्थी]

आर्यों के स्वातन्त्र्य सूर्य्य के अस्त होने के पश्चात पराधीनता तमिस्रा में भारतीय राजनैतिक आकाश में नाना धूमकेतुओं का आविर्भाव हुआ। इन सब में आंगल धूमकेतु सबसे अधिक दुःखदायी सिद्ध हुआ। भारतीय भोली प्रजा में धूमकेतुओं के सम्बन्ध में नाना अलीक प्रवाद प्रचलित हैं। उन सब का अभिप्राय एक ही है कि उन का आविर्भाव बहुत भयङ्कर अमङ्गल एवं अकल्याण का कारण हुआ करता है। इस में कदाचित सत्यता की मात्रा का अभाव ही है। किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि राजनैतिक धूमकेतु के आविर्भाव का फल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अमङ्गल के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं। यदि कुछ कल्याण दृष्टि गोचर होते भी हैं तो वे आने वाले महान् अमङ्गल एवं कटु अकल्याण के लाने वाले होते हैं।

हम इस समय गौरी, दास, खिलजी, लोधी, पठान, मुग़ल आदि धूमकेतुओं के द्वारा हुए अनिष्टों की चर्चा नहीं करते, केवल अंग्रेज़ी धूमकेतु के द्वारा अनर्थ परम्परा में से कुछ एक का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न करते हैं।

अंग्रेज़ जब यहां के शासक हुए तो उन्हें अनुभव हुआ कि जिन पर हम शासन करने लगे हैं, वे सभ्यता, ज्ञान, दर्शन, कला आदि में हमारी अपेक्षा अधिक उन्नत हैं, तथा इसी कारण इनमें आत्म गौरव की मात्रा भी बहुत अधिक है।

यह एक अबाध्य सत्य है कि जब तक किसी व्यक्ति या जाति में अपने गौरव एवं उस के हेतु का यथार्थ ज्ञान विद्यमान है, तब तक उसके पतन का साधन प्रस्तुत करना यदि असम्भव नहीं तो अतिकठिन अवश्य है। इसके लिए चतुर कूट-नीतिनिपुण अंग्रेज़ ने भारतीयों के मस्तिष्क से इस गौरव गरिमा की गाथा के गुह्य एवं गम्भीर संस्कारों के संहार का उपाय निकाल डाला। और वह था भारत में प्रचलित संस्कृत आदि की शिक्षा का लोप करके उस के स्थान में पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार। इस में उन को अतिशीघ्र कल्पनातीत सफलता प्राप्त हुई।

यह सर्वविदित है कि सरकारी चाकरी का मोह बहुत प्रबल होता है। एक तो उसमें अपेक्षा कृत आय अधिक होती है, दूसरा जन समाज में मान भी प्रचुर होता है इस कारण भारत के युवक एक दम अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करने को लढक पड़े। इनमें से अनेकों ने अपने पूर्वजों के धर्म को तिलाञ्जलि दी, कईयों ने अपनी भाषा को त्यागा। भूषा तो प्रायः सभी ने बदली। किसी देश का देशत्व वहां के भाव, भाषा एवं भूषा पर निर्भर होता है। इन तीनों की अनायास हत्या होने लगी।

इस प्रकार अपने को सफल होता देख शासकों ने कई प्रकार के स्टन्ट चलाए। उन में से कुछ एक की चर्चा यहां करते हैं:—

(१) आर्य्यों का यह विश्वास रहा कि हम सदा से इस देश में रहते आए हैं। सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक यही हमारा मूल देश रहा है। इसी कारण आर्य्यों की अपनी इस मातृ भूमि के साथ अनिर्वचनीय प्रीति एवं भक्ति है। शासकों ने मिथ्या, निराधार काल्पनिक इतिहास घड़ कर हमारे युवकों को पढ़ना आरम्भ किया कि आर्य्य भारत में बाहर से आए। यद्यपि वे यह भी लिखते हैं कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में एक भी ऐसा वाक्य नहीं मिलता जिस से सिद्ध होना तो क्या ध्वनित भी हो सके कि आर्य्य बाहर से आए, तथापि फिर भी इतिहास में पढ़ाया गया [दुर्भाग्य से स्वतन्त्र होने पर भी वही प्रमाणहीन बात आज भी दोहरायी जा रही है] कि भारतीय बाहर से आए।

इस बात के प्रचार करने का एक बहुत बड़ा प्रयोजन था। आर्य्य बाहर से आकर यदि भारत पर अपना अधिकार जताते हैं तो हमारा भी उतना ही अधिकार है। इस प्रकार देश के प्रति ममत्व की भावना शिथिल कराके स्वतन्त्रता की भावना का नाश करना था।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(२) आर्य्य लोग अपने आचार व्यवहार की शुद्धि के कारण अंग्रेज़ों से पूर्ववर्त्ती भारत के शासकों तथा उनके सजातीयों के हृदयों में अपने उत्कर्ष का सिक्का जमाने में उतने सफल हुए थे कि वे लोग अपने को आर्य्यों से हीन समझने लग गये थे। अंग्रेज़ों ने अनुभव किया कि आर्य्य उन के साथ भी वैसा व्यवहार कर रहे हैं। इस के प्रतीकार के लिए उन्होंने यह उपचार प्रचारित किया कि आर्य्यों के पूर्वज न केवल मांसाहारी अपितु गो मांसाहारी एवं शराबी थे। सदाचार भी उन में शिथिल था। एक मिथ्या-प्रवाद को अनेक वार अनेक मुखों एवं अनेक स्थानों से दोहराया जाता है तो वह सत्य से भी प्रबल भासने लगता है। अपनी शिक्षा दीक्षा से विहीन भारतीयों ने इस महामिथ्या को परम सत्य मान लिया और पुनः इन दुर्व्यसनों में फंस गए और अपने अन्दर उत्कर्ष की भावना का नाश ही न कर बैठे, प्रत्युत अपने को हीन भी समझने लगे।

(३) आर्य्य जाति अपने को बहुत पुरातन मानती हैं। लगभग दो अरब वर्षों से अपनी सत्ता स्वीकारती है। प्रतिदिन संकल्प में इस बात को दोहराता हैं। यह एक सीधी सादी सी बात है कि जितनी घटनाएं प्राचीन होती जाती है। इतिहास में वर्णनप्रसंग में उनका स्थान अल्प होता जाता है। और एक ऐसी अवस्था आती है कि अत्यन्त प्रसिद्ध एवं विप्लवकारी घटनाओं का भी केवल नाम कीर्तन मात्र होने लगता है। जो जातियां अपनी सत्ता केवल पांच छः सहस्र वर्षों से मानती हैं, उनके इतिहासों को देखने से हमारे कथन की सत्यता अनायास सिद्ध होती है। किन्तु इस नैसर्गिक नियम के विरुद्ध प्रचार यह किया गया कि आर्य्य लोग इतिहास लिखना नहीं जानते थे। जो जाति लाखों करोड़ों वर्षों पूर्व की घटनाओं के इतिवृत्त को सुरक्षित रखती चली आ रही है। जिस के इतिहास ग्रन्थों की गणना सैंकड़ों नहीं हज़ारों की संख्या को भी लांघनी है, उस पर इतिहासांकनकला की अनभिज्ञता का कलंक लगाना शरारत नहीं तो क्या है? दूर की बात जाने दीजिए काश्मीर के प्रसिद्ध इतिहासग्रन्थ राजतरङ्गिणी में अपने आधारभूत सैंकड़ों ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। यदि आर्य इतिहास लिखना नहीं जानते थे तो राजतरङ्गिणी तथा उस के आधार भूत ग्रन्थ एवं नीलमतपुराण आदि ग्रन्थ क्या विदेशियों अनार्य्यों के लिखे हुए हैं। बौद्धों के मञ्जुश्रीमूल कल्प, जैनों के अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ इस मिथ्या प्रवाद का प्रबल निराकरण हैं। लाखों ग्रन्थों के विरोधियों द्वारा अग्निसात् कर दिये जाने पर भी इतिहास सम्बन्धी इतने ग्रन्थ बच रहे हैं जो इस प्रवाद को मिथ्या सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं।

(४) एक प्रवाद यह प्रचारित किया गया कि आर्यों में जातीयता भावना Nationalism नहीं था। इस प्रवाद के प्रचार करने का प्रयोजन यह सिद्ध करना था कि आर्यों में जाति पाँति के कारण सदा फूट रही और यह अपने को एक जाति कभी न मान सके। इस प्रवाद को सुन कर क्रोध एवं क्षोभ होता है, जो आर्य्य मानव समाज को मानव शरीर से उपमा देकर समाज का वैज्ञानिक संगठन करने में कृत कार्य्य हुए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उन के सम्बन्ध में यह कहना कि वे जातीय भावना से शून्य थे कितना अनर्थकारी प्रलाप है। दुर्जनतोषन्याय से इस प्रवाद को सत्य भी मान लिया जाए तो भी हमें लज्जित होने का कोई हेतु नहीं दीखता। निस्सन्देह जातीयता सम्बन्धी वर्तमान भावना योरुप की उपज है। इस का कुफल आज की विश्व व्यापक अशान्ति के रूप में प्रकट हो रहा है। योरुपीय जातीयता भावना एक देश को दूसरे देश का वैरी बनाती है। आर्य तो एक मानव जाति मानते थे और बहुत गर्व से कहा करते थे—

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम् ।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

यह अपना है, यह पराया है। यह विचार-धारा संकीर्ण हृदय वालों की होती है। विशाल हृदय सज्जन विश्व-संसार को अपना परिवार स्वीकार करते हैं। आर्यों की इस विशाल-हृदयता का प्रमाण जानना हो तो पारसियों से पूछो, मलाबार में बसने वाले यहूदियों से पूछो। जब इन लोगों का अपने देश में रहना दूभर कर दिया गया, तो भारत ने इन को अपने सन्तान की भांति गले लगाया और इन को अपने ही प्रकार से पूजोपचार करने का स्वातन्त्र्यमय अधिकार दिया। यदि भारत में नीच, तुच्छ जातीयता की भावना होती, तो आज पारसियों का नाम भी न मिलता।

अर्थात् हम गर्व से स्वीकार करते हैं कि हम में यह क्षुद्र भावना न थी। हां, यदि यह कहो कि हम में एकता न थी तो यह मिथ्या प्रवाद है। हमारी एकता तो आज भी, अनेक प्रकार के प्रहारों के होने पर भी, बनी हुई है। और इसी के कारण समय समय देश तथा जाति की रक्षा के लिए सब ने मिल कर बलि दी है।

(५) बार बार यह घोषित किया गया कि पूर्व और विशेषतः भारत गणतन्त्र के भावों से अपरिचित है, यह इस की मनोभूमि के अनुकूल नहीं है। वेद में राज्याभिषेक सम्बन्धी मन्त्र में तो जानराज्य=जनतन्त्र=गणतन्त्र शब्द विद्यमान है। उसमें चुनाव की बातें भी हैं [इस के लिए स्वामी वेदानन्द तीर्थ की लिखी "राष्ट्र-रक्षा के वैदिक साधन" नामक पुस्तक देखनी चाहिये।] सिकन्दर का युद्ध कई गणतन्त्री राज्यों से हुआ। जिस देश ने पंचायत राज्य को जन्म दिया, पल्लवित किया, उस देश के वासियों के सम्बन्ध में यह कहना कि वे गणतन्त्र से अपरिचित थे परले दरजे का झूठ नहीं तो और क्या है ? आज तो पौरस्य एवं पाश्चात्य सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि भारत ही गणतन्त्र राज्य पद्धति का आविष्कारक है।

(६) एक बहुत बड़ा प्रबल आरोप हम पर यह लगाया जाता है कि हम अपने धर्म का अन्यों में कभी भी प्रचार नहीं करते रहे। और तो और श्री गांधी जी तक इस मिथ्या धारणा के शिकार रहे। जवाहर लाल नेहरू जैसे विद्वान् इतिहास लेखक भी इस भ्रम में फसे हैं। आनंद की बात यह है कि यही ऐतिहासिक मन्य लोग यह भी कहते हैं कि भारतीयों ने हूणों, शकों, यूचियों, कुशानों, यूनानियों प्रभृति विदेशियों को अपने में ऐसा मिलाया कि आज उनका भेद जाना ही नहीं जा सकता। जो जाति अपने प्रचारक सीरिया तक ही नहीं, सुदूर, ब्रिटेन तक भेजती रही है, [सभी ऐतिहासिक मानते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं कि ब्रिटेन में ईसाइयत के प्रवेश से पूर्व बौद्ध-मत एवं भारतीय पौरोहित्य पद्धति का प्राधान्य था।] ब्रह्मा, जावा, समात्रा, स्याम, अनाम, बाली चीन, जापान, आदि में जो अपने प्रचारक भेजती रही और आज तो इस के भी अकाट्य एवं पुष्ट प्रमाण मिल चुके हैं कि अमरीका तक में हमारे देश से प्रचारक जाते थे, उस के सम्बन्ध में यह कहना कि वह परदेशों में स्वधर्म्म का प्रचार नहीं करती थी। घृणास्पद झूठ है। बात यह है कि आर्य्यों को उन के पुनः प्रवर्तित शुद्धि-आन्दोलन से दूर रखने के लिए यह महामिथ्या गप्प हांकी गई।

(७) इसी के साथ ही यह भी प्रचारित किया गया कि आर्य्य सारे संसार से अलग थलग रहते थे। वे संसार में घटित होने वाली राजनैतिक घटनाओं से असंयुक्त रहा करते थे। जो जाति, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं संसार में धर्म्म प्रचार के निमित्त प्रचारक भेजती है, वह कैसे संसार से अलग थलग रहती है। हसन हुसैन की सहायता के लिए करबला में अपने सैनिक भेजने वाली जाति पर यह दोषारोप किसी दूषित मनोवृत्ति का परिचायक है।

(८) एक और बड़ा आरोप हम पर यह लगाया जाता है कि हम सदा आकाश की उड़ान लेते रहे हैं। हम ने लौकिक उन्नति की बात का विचार कभी नहीं किया। इसी लिए हमारे हां दर्शनों की भरमार तो है किन्तु विज्ञान का निशान भी नहीं है। ऐसा कहने वाले केवल अपने अज्ञान का निशान देते हैं। वैशेषिक दर्शन के कर्त्ता महामुनि कणाद का प्रसिद्ध सूत्र है— यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्म्मः=धर्म्म उस को कहते हैं जिस से लौकिक उन्नति एवं मोक्ष की प्राप्ति हो। इस सूत्र के होते आर्य्यों को लौकिक उन्नति से उपेक्षा करने का उपालम्भ देना अविचारशीलता का परिचय देना है। इस का पूर्ण समाधान पुनः कभी दिया जाएगा।

हम ने संक्षेप में योरुपियनों द्वारा प्रचारित मुख्य मुख्य स्टन्टों का उल्लेख कर दिया है। आवश्यकता इस बात की है कि जनता को इस प्रकार के मिथ्या प्रवादों से सावधान किया जाए।

आत्म नरीक्षण

यो वै ते विद्यादरणी, याभ्यां निर्मथ्यते वसु।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥
अथर्व १०। ८। २०

अर्थः— (यः वै ते अरणी विद्यात्) जो भी मनुष्य इन ज्ञान-कर्म अथवा उनके साधन मन एवं देह की दोनों अरणियों के वैज्ञानिक स्वरूप को जानकर समझ लेता है, (याभ्यां वसु निर्मथ्यते) जिनके द्वारा आत्मदेव की इस वसु नामक वास भूमि-जीवन जगत्-का मन्थन किया जाता है, (स विद्वान् ज्येष्ठ मन्येत) वह मनुष्य विद्वान् एवं सबसे मान्यता प्राप्त करता है, और (सः महत् ब्राह्मणं विद्यात) वही मान्य होकर महान् ज्ञान के सार तत्व आत्मदेव को यथार्थ रूप से जान जाता है। अपने विचारों, अपने कामों और अपने देनिक जीवन का नित्य निरन्तर निरीक्षण करना अथवा एकान्त में कुछ समय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लगाकर अपनी आलोचना करना आत्म सुधार तथा जीवन विकास के लिये जीवन शास्त्र का यह एक उच्चतम नियम-सूत्र है। हम लोगों में यह एक बहुत बड़ी कमी-कमजोरी है कि हम अपने जीवन की आलोचना करना चाहते ही नहीं, करना जानते नहीं अथवा ऐसा करने का अपने में साहस नहीं पाते। इसके विपरीत यदि कोई हमारा शुभ चाहने वाला मित्र खरे शब्दों में आलोचना न करके मित्र भाव से भी हमारी किसी कमी की ओर संकेत करने लगे तो, हम उसे भी सहन करना नहीं चाहते या कर ही नहीं सकते।

हमारी इस परम पुनीत भारत भूमि का जीवन शास्त्र कुछ ऐसे वातावरण में से होकर यात्रा करता आ रहा है कि उसके निश्चित उद्देश्य भी सन्दिग्ध से प्रतीत होने लगते हैं। यहां कर्मणा वर्णः वयसा आश्रमः का जो एक संगठित एवं असन्दिग्ध राष्ट्रीय जीवन क्रम विकसित होता आ रहा था, आज उसे भी छिन्न भिन्न हुए शतियाँ बीत रही हैं। आज उसके पवित्र आसन पर आपापन्थी जनो का अधिकार है, और वास्तविक धर्म, कर्म भी उन्हीं के हाथों हाट बाजार में लेवा बेची की दल दल में फंसा हुआ व्यापारिक धर्माचार्यों का खिलौना बन रहा है। हम में से कदाचित् ही कोई ऐसा हो, कि जिसने दिन रात में एक दो घड़ी भर का समय निवर्त (Reserve) कर रक्खा हो कि, उस समय एकान्त में बैठकर अपनी जीवनचर्या, दिनचर्या एवं अपने सहकारियों के दिन भर में किये गये कामों पर सिंहावलोकन करने का नियम बना रक्खा हो।

इस समय तो माया देवी का प्रत्येक पुजारी पैसा और प्रतिष्ठा के पीछे आंधी की सी तेजी से दौड़ता चला जा रहा है। चोर बाजारी, घूंसखोरी, उतार चढ़ाव, छल कपट और धोखा धड़ी आदि जो भी साधन, सहारा तथा मार्ग मिलें, उसे किसी से भी संकोच नहीं,—वह इन दोनों के लिये जीता-मरता, उठता-बैठता, चलता-फिरता, सोता-जागता, और खाता-पीता हुआ भी जलती आग में से निकलने को तैयार देखा जाता है। गिरावट और पतन की कोई ऐसी सीमा नहीं रही, जिसकी दूरी अथवा गहराई का पता लगाना कदाचित् सम्भावना से भी बाहर हो चुका है। सत्य एवं मिथ्या के बीच किसी सीमाबन्दी के लिये कुछ भी अन्तर नहीं रह गया। स्वामी श्री विवेकानन्द के शब्दों में कहना चाहें तो, कह सकते हैं कि, "हिन्दु जाति को अपने पूर्वकालीन आदर्श तक पहुंचाने के लिए अब किसी ऐसे शङ्कर (डाक्टर) की आवश्यकता आपड़ी है कि, इस की नये सिरे से चीर फाड़ करके कायाकल्प करने में समर्थ हो। इस समय तो ऐसा लगता है कि, प्राचीन कर्म परायण आर्यजाति में किन्हीं घातक-संक्रामक कीटाणुओं की भारी सेना इसके आत्म-जीवन पर छाकर प्रतिक्रिया के लिए नरक के रास्ते पर चला रही है। इसने मानो पूर्व काल में अपने ऊँचे आदर्श का जो, मानदण्डनिदर्श (Record) स्थापित किया था, अब उसे सर्वथा मिटा कर उसके विपरीत निदर्श प्रस्तुत करने का मानों बीड़ा उठा लिया है"[1]।

जब हम अपने जीवन और अपनी वर्तमान् अवस्था अथवा व्यवसाय पर आलोचनात्मक विचार करने लगते हैं; और पूरे अवधान

१. विवेकानन्द व्याख्यान माला भाग २ से उद्धृत।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(तवजोह) के साथ उस अटल नियम को खोज निकालने में दत्त चित्त होते हैं जो कि, हमारे जीवन-जगत् का सच्चा सञ्चालक और जिस पर जीवन गति निर्भर है;——तभी हम इस योग्य हो सकते हैं कि, अपनी जीवन शक्तियों का समुचित उपयोग कर सकें। यदि हम अपने जीवन में उन अज्ञात एवं गुप्त प्रवृत्तियों की अनेक खानों को खोज निकालने में समर्थ हो सकें, तो हमें मानवता की अनेक सच्चाइयों का उन्हीं खानों से पता मिल सकता है, जिन्हें हम इस से पहले जानते भी नहीं थे।

इस प्रकार जब हमें मानवता की वास्तविक रेखाओं, पगडण्डियों का पता मिल जाय तो हम अपनी कमियों को पूरा करने के लिए ज्यों २ अपने आचरण में परिवर्तन करते जायेंगे, त्यों २ हम देखेंगे कि, हमारे साथ सम्पर्क रखने वाली प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्राणी में हमारे प्रति सच्चा परिवर्तन होने लगा है। इसलिए उचित यही है कि, हम अपने में निरीक्षण-विश्लेषण करने की भावना को जागरित करें। इस से हमें अपनी कमियों-कमजोरियों का ज्ञान मिलता रहेगा और साथ साथ हम उन्हें पूरा भी करते रह सकेंगे। हम जानते हैं और जानने की सच्ची चाह रखने वाला साधन भी जानना चाहें तो सफलता के साथ जान और समझ भी सकते हैं कि, कोई भी विचार चाहे जितना भला अथवा बुरा क्यों न हो एक बार मन में प्रवेश पाजाने के पश्चात् सरलता से दूर नहीं किया जा सकता और वह वह अपना प्रभाव डाले बिना छोड़ता भी नहीं। उस का असर हमारे जीवन पर, हमारे चरित्र पर, हमारी परिस्थितियों पर, यहां तक कि हमारी संगति में आने वाले प्रत्येक प्राणी पर भी अवश्य होता है और फूलने फलने लगता है।

यूनान का इतिहास पढ़ने वाले जानते हैं कि, 'पैथागारस' और उसके प्रचारक शिष्य अपनी अपनी मण्डली के अनुयाइयों में सदैव प्रचार किया करते थे कि, 'हमें तब तक सोना भी नहीं चाहिये जब तक कि हम दिन भर में किये गये अपने कामों पर आलोचनात्मक विचार न करलें। हम कहां २ गये, किन २ लोगों से किस किस विषय पर बातचीत की, उन बातों में कितनी गिरावट और सत्यता थी। कौन २ काम किये उनमें से कौन २ हमारे जीवन के विकास में वाधा डालने वाले हुए और कौन २ सहायक सिद्ध हुए' १।

चीन के ऋषि कन्फ्यूशस का कथन था 'कि कोई भी मनुष्य जो अपने जीवन-कार्य की आलोचना नहीं करता वह आत्मसुधार और जीवन के विकास में कभी भी आगे नहीं बढ़ सकता। जीवन की छोटी से छोटी यात्रा में भी उसके अन्तिम पड़ाव तक पहुंचने के लिये यात्रा का मार्ग जानते-समझते एवं देखते हुए ही पूरा करना पड़ता है' २।

मेरे दिवंगत मित्र एवं साथी स्वामी धीरानन्द जी एम० ए० के वे शब्द मुझे अब तक भी नहीं भूले और कभी भूलेंगे भी नहीं। वे कहा करते थे कि भगवान् ने हमें दो आंखें दीं दोनों के मुख बाहर कर दिये। यदि एक का मुख भीतर की कर दिया जाता, तो प्रत्येक मनुष्य दूसरों के धब्बे, अवगुण, कलङ्क देखने के साथ साथ अपने अन्दर भी देख लिया करता कि, वह स्वयं कहां तक दूध से धुला हुआ स्वच्छ, सुन्दर अथवा निष्कलङ्क है।

ओ३म् शान्त

१ Pythagorus in History of the Greece Vol by grotis.
२ डुकी वार्ताओ—गुजराती पृ० १८२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छप गया   प्रकाशित हो गया

सांख्यदर्शन का इतिहास

जिस ग्रन्थरत्न की इतने काल से प्रतीक्षा हो रही थी, अन्तको वह छपकर आगया। इस ग्रन्थरत्न में सांख्यदर्शन की रचना का काल, रचयिता, तथा पुराने सांख्याचार्यों एवं सांख्य के नवीन संप्रदाय के प्रवर्त्तक ईश्वर कृष्ण तथा अन्य सांख्याचार्यों का प्रामाणिक इतिहास है। सप्तसिन्ध कहां हैं? सरस्वती कहां थी। अब कहां है? वर्तमानकाल में मिलने वाला सांख्य दर्शन ही सांख्यविषयक सब से पुराना ग्रन्थ है, इस सांख्यदर्शन के उद्धरण किन किन पुराने ग्रन्थों में मिलते हैं इत्यादि सहस्रों विषयों का निरूपण आप को इस ग्रन्थरत्न में मिलेगा। विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री जी के जीवनसार के अध्ययन का यह सार है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए० पी० एच० डी तथा डा० मंगलदेव शास्त्री एम० ए० डी० फिल ऐसे उद्भट विद्वानों ने इस की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि सांख्यदर्शन के संबन्ध में संसार की अन्य किसी भी भाषा में इतना बड़ा तथा प्रामाणिक ग्रन्थ आप को नहीं मिल सकता। ग्रन्थ की प्रति थोड़ी छपाई हैं। अतः मंगाने में शीघ्रता कीजिए। मूल्य ३०) तीस रुपये। डाकव्यय अतिरिक्त।

क्या आप गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं?

यदि आप का उत्तर हाँ में है, तो क्या आप उसका अर्थ, उसका गौरव, उसके जप की विधि जानते हैं? इन तथा इन जैसी अन्य आवश्यक बातों जानने के लिए *सावित्रीप्रकाश* नामक पुस्तक का स्वाध्याय कीजिए। उसके लेखक अध्यात्मविद्या के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ हैं। गायत्री मन्त्र की इतनी उत्तम व्याख्या आपको और कहीं नहीं मिलेगी। अनेक समाचार पत्रों तथा विद्वानों एवं साधकों ने उसकी प्रशंसा की है। इतनी गुणगणाढ्य पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया है, डाक व्यय इसके अतिरिक्त है।

मिलने का पता—

मन्त्री— विरजानन्द वैदिक संस्थान

ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

["Regd. No. E. P. 425, रजि० सं० इ० पी० ४२५

क्या आप आर्यों के परम धर्म का पालन करते हैं ?

ऋषियों का आदेश है—'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' वेद संस्कृत भाषा में हैं। लोग चाहते हुए भी इस कठिनता के कारण उस से लाभ न उठा सकते थे। ऋषि दयानन्द ने सब से पहले इस कठिनता को दूर किया। ऋषि से प्रेरणा पाकर उनके चरण चिन्हों पर चलने वाले श्री स्वामी वेदानन्द ने सर्वसाधारण के लिए वेद को सुलभ कर दिया है। एक दिन के लिए एक मन्त्र के विचारण से ३६६ मन्त्रों का संग्रह 'स्वाध्याय सन्दोह' नामक विशाल ग्रन्थ रच कर उन्होंने सर्वसाधारण के लिए वेद का द्वार खोल दिया है। मन्त्रों की व्याख्या वेदमन्त्रों, उपनिषद्वचनों तथा अन्य अनेक ऋषियों के वचनों से पुष्ट की गई है। भाषा सरल, ललित है। साधारण जनता तथा लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने समान रूप से इस की प्रशंसा की है। समाचारपत्रों के सम्पादकों ने इसकी सराहना की है। यह बात सर्वसम्मत है कि संप्रति प्रतिदिन स्वाध्याय करने के लिए इससे उत्कृष्ट ग्रन्थ और कोई नहीं है। इतने विशाल ग्रन्थ का मूल्य केवल छः रुपये ६) है। डाक व्यय इससे पृथक् है। मंगाने की शीघ्रता कीजिए अन्यथा अगले संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह इसका दूसरा संस्करण है।

प्रार्थना करना सीखिए

प्रत्येक आस्तिक को प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। ऋषि ने साधारण जनों की सुविधा के लिए चारों वेदों से केवल आठ मन्त्र स्तुति प्रार्थना-उपासना के लिए संकलित किए हैं। आराधक प्रकार श्री स्वामी वेदानन्द ने उनकी भावमयी व्याख्या लिखी है, जिसे पढ़ते समय पाठक तन्मय हो जाता है। आप भी उसे पढ़िये और आनन्द विभोर हूजिए, उसका नाम 'ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासनामन्त्राः' है। मूल्य केवल ढ़ाई आने, डाक व्यय पृथक्।

नैमित्तिक वैदिक पाठ

संकलन कर्ता—श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी तथा व्याख्याकर्ता श्री स्वामी वेदानन्द जी

पुराने आर्य्य प्रत्येक कार्य्य करते हुए भगवान् का स्मरण किया करते थे। उनका यह स्मरण वेद मन्त्रों के द्वारा होता था। श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने प्रत्येक अवसर के उपयोगी ऐसे मन्त्रों का संकलन कर दिया है। वेदों के मार्मिक विद्वान् स्वामी वेदानन्द ने उनकी सुललित व्याख्या कर दी है। प्रत्येक आस्तिक वैदिक के पास यह पुस्तिका होनी चाहिए। मूल्य चार आने। डाक व्यय पृथक्।

मिलने का पता:—

मन्त्री, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल,

ज्वा ला पु र

मुद्रक—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय दीवाने हाल दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान

॥ ओ३म् ॥

वेद-पथ

मासिक

❀ वैदिक आचार-विचार-व्यवहार-प्रसारक ❀

द्वितीय वर्ष — शुचि=आषाढ़ २००८ वि० (१२७ द०)=जून १९५१ ई० — एकादशांक

सम्पादक
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
विरजानन्द वैदिक
संस्थान
ज्वालापुर,
जि० सहारनपुर

क्या आपने अपना कर्त्तव्य वेद प्रचार के विषय में पालन किया है? 'वेदपथ' के ग्राहक बढ़ाना वेद प्रचार का सब से सरल साधन है।

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा
५=)
वी० पी० द्वारा
५॥)
एक प्रति ॥)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृ०
१. स्वाध्याय सूक्ति संग्रह		२७६
२. यज्ञ	श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रतानन्द सरस्वती जी	२८१
३. स्वधा (२)	श्रीमान् विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री जी	२८६
४. क्या जीव सच्चित् रूप है ?	श्रीमान् पं० विश्वनाथ जी आर्य्योपदेशक	२९४
५. शान्ति लाभ का उपाय	श्रीमान् प० प्रियदर्शन वेदाध्यायी सिद्धान्तभूषण	२९७
६. सदाचार (२)	श्रीमान् रा० सा० लालचन्द्र जी	२९९

वेदपथ मासिक के नियम

१. वार्षिक शुल्क—पांच रुपये तीन आने ५≡) अगाऊ आने चाहिएं। बी०पी० द्वारा मंगाने पर पांच रुपये नौ आने लगते हैं। विदेशों से साढ़े सात रुपये ७॥) लिया जाता है। एक प्रति का मूल्य ॥) है, बी० पी० से ॥|–) लगते हैं। विदेशों से एक प्रति का मूल्य ॥|)

२. प्रकाशन तिथि—अंग्रेजी मास की १५वीं तारीख को भेजा जाता है। पत्र भली भांति देख भाल कर भेजा जाता है, यदि किसी ग्राहक को पत्र न मिले तो उसकी सूचना उस महीने की अन्तिम तिथि तक कार्यालय में आनी चाहिए।

३. लेख यथा संभव संक्षिप्त एवं कागज़ के एक ओर लिखे हुए आने चाहिएं। लेख वेद सम्बन्ध में होने चाहिएं। वैयक्तिक कलह सम्बन्धी लेख प्रकाशित नहीं हो सकेगा। लेख में आवश्यक फेरफार का सम्पादक को अधिकार है। लेख में प्रकाशित विचारों का उत्तरदायित्व लेखक पर है, सम्पादक पर नहीं।

४. लेख, 'सम्पादक, वेद-पथ' मासिक वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (ज़ि० सहारनपुर) के नाम आने चाहिएं।

५. वार्षिक शुल्क तथा पत्र-सम्बन्धी पत्र व्यवस्थापक वेद-पथ मासिक, देहली से करना चाहिए।

६. अश्लील विज्ञापन नहीं लिये जाते।

७. पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या, जो आपके नाम के पहले लिखी है, अवश्य लिखिए।

८. नूतन ग्राहक शुल्क भेजते हुए कूपन में लिख दें कि नूतन ग्राहक हैं।

व्यवस्थापक
'वेदपथ' मासिक देहली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ० १।४१।४)

वेद-पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

देहली

द्वितीय वर्ष } शुचि = आषाढ़ २००८ वि० (१२७ द०) = जून १९५१ ई० { एकादशाङ्क

ओ३म्

स्वाध्याय सूक्ति संग्रह

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

—आतिथ्ययस्मै चकृमा सुदाव्ने (ऋ० १।७६।३)

इस उत्तम दाता का हम आतिथ्य करें।

—द्युम्नैरभि प्रणोनुमः (ऋ० १।७८।१-५)

तेज, यश, अन्न आदि के द्वारा हम उत्तम सत्कार करते हैं।

—अस्मे धेहि जातवेद से महि श्रवः (ऋ० १।७९।१)

इस ज्ञानी को महान् यश दे।

—मार्डीकं धेहि जीवसे (ऋ० १।७९।९)

जीने के लिये सुखसाधन को धार।

—भरस्व सुम्नयुर्गिरः (ऋ० १ ७९।१०)

कल्याण का अभिलाषी तू वेदवाणियों का पोषण कर।

—अस्माक मिद्वृधे भव (ऋ० १।७९।११)

हमारी वृद्धि ही का कारण बन।

—ब्रह्म चकार वर्धनम् (ऋ० १।८०।१)

ज्ञान वृद्धि करना है।

—सुन्वते भूरि ते वसु (ऋ० १।८१।२)

तेरा विशाल धन परोपकारी के लिए है।

—न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यते (ऋ० १।८१।५)

भगवान् ! तेरे समान न था, न है और न होगा।

—भक्षीय तव राधसः (ऋ० १।८१।९)

तेरी आराधक वस्तु का उपभोग मैं करूँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—उभया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर (ऋ० १।८१।७)

धन सब ओर से ला, किन्तु उस धन को दोनों हाथों से व्यय कर।

—सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि (ऋ० १।८२।३

हे भगवान! तुझ अत्यन्त सुन्दर को हम प्रणाम करते है।

—स्तुतो याहि वशाँ अनु (ऋ० १।८२।३)

हम तेरी स्तुती करते हैं त हमारी कामनाओं के अनुकूल चल।

—सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः (ऋ० १।८३।१)

हे इन्द्र। मनुष्य तेरी रक्षाओं एवं कृपाओं के द्वारा अत्यन्त सुरक्षित एवं अनुगृहीत है।

—पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते (ऋ० १।८३।३)

परोपकारी यजमान के लिये कल्याणकारिणी शक्ति बढ़ती है।

—ज्येष्ठं नमस्यता सहः (ऋ० १।८४।५)

ज्येष्ठ शक्ति को नमस्कार करे।

—शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् (१।८४।१०)

धन और स्वराज्य के साथ तू सुहाता है।

—मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः (ऋ० १।८५।१)

रगड़ खाने वाले वीर जीवन संग्रामों में मस्त रहते हैं।

—त उक्षितासो महिमान माशत (ऋ० १।८५।२)

वे उक्षित (सींचे हुए) महत्त्व को प्राप्त करते हैं।

—अधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः (ऋ० १।८५।२)

देशभक्त (मातृभक्त) शोभाओं पर, संपत्तियों पर अधिकार रखते हैं।

—सूरं चित्सुस्रुवुरिषः (ऋ० १।८६।५)

विद्वान् ही को अन्न आदि जाते हैं।

—विध्यता विद्युतारक्षः (ऋ० १।८६।९)

राक्षस को बिजली से बींधो।

—ज्योतिष्कर्त्ता यदुश्मसि (ऋ० १।८६।१०)

जिस को हम चाहते हैं, उस प्रकाश को करो।

—स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः (ऋ० १।८७।३)

आन्दोलन कारी स्वयं महत्त्व की प्रशंसा करते हैं।

—सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् (ऋ० १।८९।३)

सुभग ज्ञान धारी हमारा कल्याण करे।

—त्वं रजिष्ठामनु नेषि पन्थाम् (ऋ० १।९१।१)

तू सरलतम मार्ग से ले चलता है।

—दे वेषु रत्नमभजन्त धीराः (ऋ० १।९१।१)

ज्ञानी जन निष्कामों में रत्न बांटते हैं।

—न रिष्यते त्वावतः सखा (ऋ० १।९१।८)

तेरे जैसे का मित्र हानि नहीं उठाता।

—सोम त्वं नो वृधे भव (ऋ० १।९१।१०)

शान्ति। तू हमारी वृद्धि का हेतु हो।

—सुमित्रः सोम नो भव (ऋ० १।९१।१२)

शान्तिदातः तू हमारा उत्तम मित्र बन

—सोम नि पाह्यंहसः (ऋ० १।९१।१२)

शान्तिदातः। तू पाप से बचा।

—सखा सुशेव एधि नः (ऋ० १।९१।१५)

तू हमारा अत्यन्त कल्याण कारी मित्र बन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यज्ञ

श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रतानन्द सरस्वती जी

[१]

[इस लेख के लेखक बहुश्रुत महासंन्यासी हैं। वेदपथ के पाठकों एवं समस्त आर्य जगत् के मान्य नेता हैं। इस समय वेदमन्त्र पढ़ कर अग्नि में घृतादि की आहुति देने का नाम बृहद्-यज्ञ, वेदपरायण यज्ञ प्रचलित हुआ। वेदपथ के सम्पादक ने उसे व्यवस्थित रूप देने के लिए एक पद्धति भी छपवाई थी। अधिक विचार करने पर इस प्रकार के यज्ञों की शास्त्रीयता एवं यौक्तिकता में सन्देह होने लगा। कई विद्वानों के सम्मुख अपने विचार रखे। अनेकों को अपने विचारों से सहमत पाया। श्री स्वामी जी के लेख में उस विषय की विस्तृत विवेचना है। विद्वानों एवं याज्ञिकों से प्रार्थना है कि वे अपने अपने विचार भेजें, वेदपथ उनको प्रकाशित करने का यत्न करेगा। लेख वैयक्तिक चर्चा से शून्य होने चाहिएं। —सम्पादक]

यज्ञ वैदिक धर्म में विशेष कर्म है। इस विषय पर वैदिक धर्म में अनेक ग्रन्थ लिखे मिलते हैं। आर्य इतिहास में यज्ञ विषयक अनेक लेख उपलब्ध हैं। इस लिये यज्ञ रूप कर्म होना ही चाहिये। यह निश्चय ही है इस में संदेह का स्थान नहीं है।

अन्य सम्प्रदायों को छोड़ कर इस लेख में विशेष रूप से आर्य समाजियों के यज्ञ विषयक विचारों पर ही विचार करना है। इस लिये यह लेख आर्यसमाज विषयक ही समझना चाहिये। पाठक इस का स्मरण रखें।

आर्यसमाज आरम्भ काल से यज्ञ कर्म का पोषक रहा है और उस समय सामान्य रूप से आर्यसमाज के उत्सवों के आरम्भ में यज्ञ किया जाता था जैसा कि अब भी किया जाता है। उस के अतिरिक्त संस्कारों के अवसर पर भी अब की भांति यज्ञ होता था। पर्वों में भी यज्ञ किया जाता था। किन्तु कुछ वर्षों से इन अवसरों के अतिरिक्त यज्ञ का करना विशेष रूप से आरम्भ हो गया है। और इस समय यज्ञ विषयक प्रवृत्ति भी अधिक पाई जाती है। अनेक आर्यसमाजें और गृहस्थ यज्ञ करवाते हैं इन यज्ञों का नाम इस समय वेदपारायण यज्ञ कहा जाता है। कहीं २ एक वेद अर्थात् ऋग्वेद द्वारा यज्ञ होता है। कहीं २ यजुर्वेद से यज्ञ किया जाता है। किसी २ यज्ञ में सामवेद का पाठ किया जाता है और किसी २ में अथर्ववेद पढ़ा जाता है। और कहीं २ चारों वेदों का पाठ भी होता है। इसी के कारण जिस वेद का पाठ हो उसी नाम से यज्ञ कहा जाता है। यथा ऋग्वेद पारायण यज्ञ, यजुर्वेद पारायण यज्ञ, सामवेद पारायण यज्ञ, अथर्ववेद पारायण यज्ञ और चतुर्वेद पारायण यज्ञ।

इन यज्ञों पर व्यय भी पर्याप्त होना स्वाभाविक है। और यजमान अपनी श्रद्धा से अपनी शक्ति अनुसार व्यय करता है। यह स्वाभाविक बात है।

यह तो पता नहीं इन यज्ञों की प्रथा आर्य-समाज में प्रथम किसने चलाई ? और न ही उसका नाम जानने से कुछ लाभ ही है। हां,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह कहा जा सकता है, जिस किसी ने यह प्रथा आरम्भ की, वह मीमांसक न था। उस ने जो कुछ किया अथवा जो कुछ इस समय हो रहा है। उस की पुष्टि न तो ब्राह्मण ग्रन्थ करते हैं और न ही श्रौतसूत्र करते हैं और न ही ऋषि दयानन्द जो का इस प्रकार का कोई लेख है तो भी इस समय आर्यसमाज में यज्ञों की बाढ़ सी है। इन यज्ञों की कोई नियत विधि भी नहीं है। जिस के मन में जैसा आता है, वह वैसा ही कर लेता है। यही इस की विधि है।

आर्यसमाज में मीमांसा दर्शन के जानने वाले भी अनेक हैं। जैसे—स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती, पण्डित ईश्वरचन्द्र जी, पण्डित जयदेव जी मीमांसक आदि। इस विषय में उन के विचार क्या हैं। उन्होंने कभी लेख द्वारा वा वचन द्वारा प्रगट नहीं किये हैं। स्वामी वेदानन्द जो के मुख से कई बार सुना है। गृह्य सूत्रों के कर्मों के लिये आर्यसमाज में संस्कार विधि है किन्तु श्रौत सूत्रों के स्थान पर कुछ नहीं है, इस लिये आर्यसमाज में श्रौत यज्ञों का स्वरूप भी निर्धारित होना चाहिये।

इस में संदेह नहीं है। इस समय वेद पारायण यज्ञ ही श्रौत यज्ञों के स्थान पर आर्य समाज में प्रचलित हैं। और उनकी विधि निर्धारित न होने से इस समय धांधली है। जिस का निवारण होना आवश्यक है।

प्रथम महर्षि दयानन्द जी के लेखों को देखना चाहिये, वह क्या लिखते हैं ?

सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ३ में निम्न पाठ है—

अग्नि होत्र सायं प्रातः दो ही काल में करो.........सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त से पूर्व अग्नि होत्र करने का समय है।.........अग्नि होत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़ कर एक २ आहुति देवो। और जो अधिक आहुति देना हो, तो विश्वानि देव.......इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्र से आहुति देवो......

प्रश्न—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक २ आहुति का कितना २ परिमाण है।

उत्तर—प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और छः छः माशे घृतादि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये, और जो इस से अधिक करे, तो बहुत अच्छा है। इस लिये आर्यवर, शिरोमणि, महाशय, ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे, लोग बहुत सा होम करते और कराते थे।

यह सारा लेख देवयज्ञ विषयक ही है। इस लिये यह श्रौत यज्ञ के लिये प्रमाण नहीं है। और देव यज्ञ करना ही चाहिये। इस में यजमान के लिये सोलह आहुति देने का नियम है। अधिक जितनी चाहे, दे किन्तु यह देव यज्ञ ही होगा, श्रौत यज्ञ नहीं होगा।

संस्कार विधि के आरम्भ में ही यज्ञ कुण्ड का परिमाण लिखा है। वहां पाठ है।

जो लक्ष आहुति करनी हो, तो चार हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में एक हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहे.........

चाहे घृत की हजार आहुति देनी हों, तथापि सवा हाथ से न्यून चौड़ा, गहिरा, सम चौरस और चतुर्थांश नीचे से बनावे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस लेख में एक लाख वा एक हजार आहुति देने का निर्देश है, किन्तु यह नहीं लिखा, यह आहुतियां किन मन्त्रों से दी जावेंगी। इस यज्ञ का क्या नाम है और इस की विशेष विधि क्या है? न लिखने का मुख्य कारण यही है। यह पुस्तक संस्कारों के लिये है, और संस्कारों के समय जो हवन होता है उस की विधि इस में लिखी हुई है। और यदि संस्कारों के यज्ञों पर ध्यान दें, तो किसी में भी लाख वा हजार आहुति नहीं हैं। इस लिये यह लेख किसी और यज्ञ के लिये हो है। किन्तु यहां उसका नामादि कुछ नहीं लिखा है। जब तक वह न हो, उस समय तक इस पुस्तक से वह यज्ञ न होगा। हां, इस से संस्कार उसी प्रकार कराये जाएंगे जैसा कि इस में लिखा है।

इन दो पुस्तकों के अतिरिक्त तीसरी पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका है। जिसमें महर्षि ने अनेक विषयों पर प्रकाश डाला है। उस में भी देखना चाहिये श्रौत यज्ञ विषयक कुछ लिखा है वा नहीं। यदि नहीं लिखा, तब तो स्वयं ही कोई मर्यादा बनानी होगी। यदि लिखा है, तो उसे आधार मान कर विधि बनानी होगी।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के प्रतिज्ञा विषय में निम्न पाठ है। संस्कृत पाठ न देकर केवल भाषा पाठ लिखता हूँ।

"इस वेद भाषा में शब्द और उनके अर्थ द्वारा कर्म कांड का वर्णन करेंगे। परंतु लोगों को कर्म कांड में प्रयुक्त किये हुए वेद मंत्रों में जहां जहां जो जो कर्म अग्नि होम से ले के अश्वमेध के अन्त पर्यन्त करने चाहिये उनका वर्णन यहां विस्तार से नहीं किया जायगा। पूर्व पक्ष—क्यों

सिद्धांत। क्योंकि उनके अनुष्ठान का यथार्थ विनियोग ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण, पूर्व मीमांसा, श्रौत और गृह्य सूत्रादिकों में कहा हुआ है। उसी को फिर कहने से पिसे को पीसने के समतुल्य, अल्पज्ञ पुरुषों के लेख के समान इस भाष्य में भी दोष आसकता है। इसलिये जो कर्म कांड वेदानुकूल युक्ति प्रमाणादि सिद्ध है, उसी को मानना योग्य है। अन्य को नहीं।"

इस लेख से यह सिद्ध है। यज्ञादि कर्म कांड में ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण, मीमांसा दर्शन श्रौत सूत्र प्रमाण हैं। उनमें जिस यज्ञ में जिन मन्त्रों का विनियोग लिखा है। उस पक्ष में वह मंत्र पढ़ने चाहिये।

किस यज्ञ में कौन से मंत्र पढ़े जाते हैं यह तो पीछे लिखूँगा। प्रथम यह लिखता हूँ। यज्ञ के अर्थ केवल अग्नि में आहुति देना ही नहीं हैं। महर्षि ने वेद भाष्य करते समय यज्ञ शब्द के अनेक अर्थ किये हैं। यथा

१। सम्पूजनीयः प्रजा रक्षण निमितो विद्या प्रचारार्थो गृहाश्रमः। ८।२२
२। व्यापकः परमेश्वरः। २२।३३
३। सर्वैः पूजनीयो जगदीश्वरः। २३।६२
४। संगन्तव्यः संग्रामादि व्यवहारः। ३३।६ य
५। अग्निष्टोमादि विज्ञानमयो व्यवहारोवा। ३४।४
६। संगतः संसगः। १।१८।७ ऋग्वेद
७। संगत्या सिद्धः शिलपाख्यः। १।१०७।१
८। संगन्तुमर्हो ब्रह्मचर्याख्यः। १।१५६।१
९। राज धर्माख्यः। १।१७३।११

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१०। राजधर्म शिल्पकार्य संगत्पुन्नतः। १।१७७।४
११। अध्यापनोपदे शाख्यः। ४।३४।३
१२। अनुष्ठातुमर्हों व्यवहारः। ४।५८।६
१३। सत्संगत्यादि स्वरुपः। ६।४८।४
१४। सद्विधाव्यवहार वर्धको व्यवहारः। ६।४०।४
१५। राजपालनीयो व्यवहारः। ७।३४।१७
१६। विज्ञानमयः संगन्तुमर्हः। ७।४३।२
१७। अच्छे प्रकार करने योग्य यतिधर्म। ८।६।११ (२५६ विधि)
१८। गमन योग्य मार्गम्। १।३४।६
१९। धनादि संगमकम्। १।१८८।७
२०। राग द्वेष रहितं न्यायदयामयम्। ३।१।२२
२१। सत्संगाख्यं व्यवहारम्। ३।१।४
२२। सर्वं सह व्यवहारम्। ३।८।८
२३। अध्यपनाध्यापनादिकम्। ४।३३।३
२४। विद्या वृद्धि करं व्यवहारम्। ४।३४।६
२५। सर्वेषां सुख जनकं राजधर्मम्। युज ९।१
२६। यात्राख्यम्, संगामाख्यम्, हवनाख्यम् वा ३३।३३

यज्ञेन

२७। ब्रह्मचर्याधाचरणेन, धर्मेणेश्वराज्ञा पालनेन, धर्मेण विद्याभ्यासेन, शिष्टाचरितेन प्रत्यक्ष विषयेण, शब्द प्रमाणाभ्यासेन वा। ६।२१
२८। सर्व पदार्थ रसवर्धकेन कर्मणा। १८।९
२९। शमदयादि प्रक्तेन योगाभ्यासेन। १८।११
३०। पशु पालन विधिना। १८।२६

यज्ञे

३१। विद्वानों के सत्कार शिल्प विद्या और शुभ गुणों के दान में। १२।५।३। अथर्व। (१७५ विधि

इन प्रमाणों से यह तो सिद्ध ही है। कि यज्ञ शब्द के अर्थ केवल अग्नि में आहुति देना नहीं शिल्प, राज्यधर्म, विद्या पढ़ाना, उपदेश करना गृहस्थ धर्म, ईश्वर पूजा, सत्संग, सज्जनों की सेवा योगाभ्यास, संग्राम आदि अनेक अर्थ हैं। क्योंकि 'यज' धातु देव पूजा संगति करण दान अर्थक होने से भिन्न २ प्रकरणों में भिन्न भिन्नार्थ होना स्वाभाविक ही है।

ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ शब्द के अनेक अर्थ लिखे हैं। उनमें से कुछ लिखता हूँ।

(१) यज्ञो वै महिमा। शत ६।३।१।१८
(२) यज्ञो वा अर्यमा। तै० २।३।५।४
(३) यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म। श। १।७।१।५
(४) ब्रह्म हि यज्ञः। श० ५।३,२।४
(५) ब्रह्म वै यज्ञः। ए० ७।२२
(६) यज्ञः प्रजापतिः। श० ११।६।३।६
(७) यज्ञ उवै प्रजापतिः। छौ० १०।१।१३।१।
(८) प्रजापतिर्यज्ञः। ए० २।१७
(९) प्रजापतिर्वै यज्ञः। गो० ३।२।१८
(१०) विष्णुर्यज्ञः। गो० ३।१।१२। तै० ३,३।७।६
(११) यो वै विष्णुः स यज्ञः। श० ५।२।३।६
(१२) यज्ञो विष्णुः। ता० १३।३।२
(१३) रस वै यज्ञो पदग्निः। श०। २।१।४।१६
(१४) अग्नि वैंयज्ञः। तां ११.३
(१५) वाग्वि यज्ञः। श० १।५।२।७
(१६) वाग्वै यज्ञः। ऐ। ५।२४
(१७) अयंवै यज्ञो पोऽयं पवते। ऐ० ५।३३। श० १।६।२।२८
(१८) अयंवात्र यज्ञो पोऽयं पवते। जै० उ०। ३।१६।१
(१९) पुरुषो वै यज्ञस्तस्य शिर एव हविर्धानि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मुखमाहवनीय उदरं सदो… । कौ० १७।७

(२०) पुरुषो वै यज्ञः । श० १।३।२।१॥ तै० ३, ८।२३,१॥ गो० पू० १।३९

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ शब्द के अनेक अर्थ किये हैं। यज्ञ के अर्थ केवल आहुति देना ही नहीं है !

ब्राह्मणों के पश्चात् गीता अध्याय ४ में भी यज्ञ अनेक प्रकार का लिखा है यथाः—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्य् ब्रह्म कर्म समाधिना । २४
दैवेमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति । २५
श्रोत्रादीनीद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति । २६
सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्म संयम् योगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते । २७
द्रव्य यज्ञास्तपोयज्ञा योग यज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्चतपः संशित व्रताः २८
प्राणायानागतीरुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः २९
अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे अपानं तथापरे ।
अपरे नियताहाराः प्राणाणेसु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञ विदो यज्ञ क्षपित कल्याणाः । ३०
यज्ञ शिष्टामृत भुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायंलोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतो अन्यःकुरु सत्तम् ।३१

भावार्थ । अर्पण क्रिया, हवि, अग्नि हवनकर्ता में ब्रह्म भावना होने से ब्रह्म को ही प्राप्त होता है।

कोई देवता भावना से करते हैं और कोई यज्ञ से ही यज्ञ करते हैं।

कोई कान, आंख आदि इन्द्रियों को संयम अग्नि में और कोई गन्ध रूप आदि विषयों को इन्द्रिय अग्नि में होम करते हैं।

कोई २ इन्द्रिय, प्राणादि की क्रियाओं को आत्मा संयम रूप अग्नि में ही हवन करते हैं।

कोई २ यति द्रव्य रूप, तप रूप, योग रूप, ज्ञान रूप, स्वाध्याय रूप यज्ञ करते हैं।

प्राणायाम की गति को रोक कर कोई प्राण में अपान और कोई अपान में प्राण का हवन करते हैं।

कोई मिताहारी होकर प्राणों में प्राण का होम करते हैं ये सब ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। क्यों कि इन्होंने यज्ञ से पाप का नाश किया है।

यज्ञ शेष भोजी सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं यज्ञ न करने वालों का जब यह लोक ही नहीं बनता तो परलोक क्या बनेगा।

इस प्रकार गीता में अनेक प्रकार का यज्ञ लिखा है। इसमें द्रव्य रूप आहुति देना भी एक है, इस प्रकार यज्ञ शब्द के अनेक अर्थ होने से यज्ञ शब्द केवल हवन करके मानना ठीक नहीं है। हवन रूप यज्ञ उपनिषदों में अदृढ़ शब्द से कहा गया है, और इस कर्म को अवर कर्म लिखा है यह निश्चित सिद्धान्त है।

आगे यह लिखा जायगा, यज्ञ शब्द के जहां हवन रूप यज्ञ ही अर्थ है, वहां भी यह ब्रह्म पारायण यज्ञ नहीं हैं। जो इस समय आर्यसमाज में प्रचलित है।

वैदिक धर्म में कल्प के दो भेद हैं। गृह्य श्रौत। और गृह सम्बन्धी विवाहादि संस्कार हैं। और श्रौत दर्शपौर्णमास आदि श्रौत यज्ञ हैं। गृह्य कर्मों के लिये गृह्य सूत्र हैं। और उनके स्थान पर महर्षि दयानन्द जी ने संस्कार विधि लिखी। ऋषि ने संस्कार विधि में आश्वलायन,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाराकार गोभिल और शौनक गृह्य सूत्रों का उल्लेख किया है। श्रौत यज्ञों के लिये आश्वलायन, कात्यायन आदि श्रौत सूत्र हैं जिस प्रकार उत्तर मीमांसा (वेदांत) उपनिषदों की व्यवस्था करता है। उसी प्रकार पूर्वमीमांसा ब्राह्मण ग्रंथों की व्यवस्था करता है। इसलिये यह दर्शन यज्ञ विषयक ही है।

ऋषि दयानन्द जी ने इनके स्थान पर कोई पुस्तक नहीं लिखी है। ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में यही लिख दिया, कर्म कांड विषय में ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण, श्रौत सूत्र और मीमांसा दर्शन ही प्रमाण हैं। इनके अनुसार ही यज्ञ करने चाहियें।

इनमें अनेक प्रकार के यज्ञ हैं। किस यज्ञ की क्या विधि है उसमें कौन २ मन्त्र पढ़े जाते हैं इत्यादि बातें इन ग्रंथों में लिखी हैं। इसी कारण सामान्य रूप से कहा जाता है ब्राह्मण ग्रंथ विधि विधायक हैं और मन्त्र पढ़े जाते हैं।

इस लेख में उन सब का लिखना तो असंभव है कुछ यज्ञों के नाम मात्र लिखता हूँ। और वेदों में से केवल यजुर्वेद के विषय में ही लिखूंगा। इनमें यज्ञों के नाम कात्यायन श्रौत सूत्र के आधार पर ही लिखे जाएंगे।

(१) दर्श पौर्णमास

(२) चातुर्मास्य यज्ञ। यह चार यज्ञ, चार २ मास पश्चात् किये जाते हैं। तीन नियम से एसे है और चौथा तीसरे के पीछे करना होता है। इनके नाम यह हैं।

(क) वैश्वादेवा फाल्गुण पौर्णमासी को किया जाता है।

(ख) वरुण प्रघास। आसाढ़ पौर्णमासी को किया जाता है।

(ग) साकमेध। कार्तिक पौर्णमासी को किया जाता है।

(घ) शुनासीर। तीसरे के पश्चात् किया जाता है।

(३) सोम याग

(४) ज्योति सोम

(५) वाजपेय

(६) राजसूय

(७) सौत्रामणि

(८) अश्वमेध

(९) पुरुष मेध॥ आदि अनेक यज्ञ हैं।

अहीन, सत्र

१—१२ दिन का यज्ञ अहीन कहलाता है १२ वा १२ से अधिक दिन का यज्ञ सत्र कहा जाता है १२ दिन का यज्ञ अहीन और सत्र माना जाता है जैसा कि व्यास जी ने लिखा है।

द्वादशाहवदुभय विधं बादरायणोऽतः।

एक दिन में किये जाने वाले यज्ञों के कुछ नाम यह हैं।

(१) भूः यज्ञ

(२) ज्योतिः यज्ञ

(३) गोः यज्ञ

(४) आयु यज्ञ

(५) अभिजित् यज्ञ

(६) विश्वजित् यज्ञ

(७) सर्वजित् यज्ञ

(८) ज्योतिः साहस्र

(९) सर्व ज्योतिः साहस्र

(१०) श्येन

(११) व्रात्य स्तोम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(१२) अग्निष्टुत्
(१३) इन्द्र स्तुत्
(१४) सूर्य स्तुत्
(१५) वैश्वदेव स्तुत्

यह जो यज्ञ हैं, इनमें पढ़े जाने वाले मन्त्र भी भिन्न है। अर्थात् सब यज्ञों को जैसे विधि पृथक् है वैसे पढ़े जाने वाले मन्त्र भी पृथक् २ हैं। और सब के मन्त्र नियत हैं। पूरा वेद किसी यज्ञ में भी नहीं पढ़ा जाता है। उस यज्ञ का जो उद्देश्य होता है प्राय: उसी उद्देश्य को कहने वाले मन्त्र उस यज्ञ में पढ़े जाते हैं। इसी कारण ऋषियों ने यज्ञों के नाम नियुक्त करके उन की विधियां, उनमें पढ़े जाने वाले मन्त्र भी नियत कर दिये हैं। यह ठीक है। कुछ क्रियाओं में परस्पर कहीं २ भेद है किन्तु प्रत्येक शाखा में अपनी २ शाखानुसार क्रियाएं नियत हो हैं।

आगे यह लिख देता हूँ। यजर्वेद के किस किस अध्याय से कौन २ सा यज्ञ किया जाता है। ताकि पाठक जानलें।

अध्याय	मन्त्र	यज्ञ
१	१—३१	दर्श पौर्णमा
२	१—३४	दर्श पौर्णमा
३	१—८	अग्न्याधान
	९—१०	अग्नि होम
	११—३६	उपस्थान। बृहद्रपस्थान
	३७—४३	तल्लुकोपस्थान
	४४—६३	चातुर्मास्य
४	१—३७	अग्निहोम, सामान्यप्रकरण
५	१—४३	सोम प्रकरण
६	१—३७	,, ,,

७	१—३४	प्रातः सवन (ग्रह प्रकरण)
	३५—४०	माध्यन्दिनसवन ,,
	४१—४८	दक्षिणा
८	१—३२	तृतीय सवन
	३३—३७	षोडशी पात्र
	३८—४०	द्वादशाहपास
	४१—६३	गवामयन
९	१—३४	वाजपेय
	३५—४०	राजसूय
१०	१—३०	अभिसेकादि
	३१—३४	सौभामणियाग
		५ चितियां
११	१—८३	अग्निचयन
१२	१—११७	ऊखा धारणादि
१३	१—५८	पुष्कर पारणाधुपधान। प्रथमा-चिति
१४	१—३१	द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ चिति मंत्र
१५	१—६५	पञ्चम चिति
१६	१—६६	रुद्राध्याय्
१७	१—९९	चित्यपरिषकादि
१८	१—७७	वसोर्धाराादि
१९	१—९५	सौभामाणी
२०	१—९०	,, आभिषेकादि
२१	१—६१	याज्यादि

अध्याय	मन्त्र	अश्वमेध यज्ञ
२२	१—३४	अश्वमेध
२३	१—६५	,,
२४	१—४०	,,
२५	१—४७	आश्वमेध अग्निष्टोम
२६	१—२६	अश्वमेध अग्निष्टोम परिशेष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२७ १—४५ पञ्चचिति परिशेष

२८ १—४६ सौत्रामणि ,,

२९ १—६० अश्वमेध ,,

पुरुषमेध

३० १—२२ पुरुषमेध

३१ १—२२ ,,

३२ १—१६ सर्वमेध

३३ १—५५ ,,

५६—६७ ब्रह्मयज्ञ

३४ १—५८ ,,

३५ १—२२ पितृमेध

३६ १—२४ शांति प्रकरण

३७ १—२१ महावीर निर्माण (मिट्टी का एक विशेष पात्र)

३८ १—२८ ,,

३९ १—१३ प्रायश्चित

४० १—१७ आत्म ज्ञान

शतपथ ब्राह्मण और कात्यायन श्रौत सूत्र आदि में यजुर्वेद के मन्त्रों का विनियोग इसी प्रकार लिखा है। किसी ने भी सारे यजुर्वेद के मन्त्रों का पाठ नहीं लिखा है।

इन यज्ञों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, निषाद-पति आदि भेद से यजमान भिन्न माने हैं। जैसा कि राजसूय अश्वमेध करने में राजा का ही अधिकार है अन्य का नहीं।

महर्षि दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है। कर्मकांड मे वेद मन्त्रों का वही विनियोग है। जो शतपथादि में लिखा है। और उन्होंने भाष्य करते समय कर्म कांड की कोई बात नहीं लिखी। इसलिये आर्य समाजियों को यज्ञ करते समय शतपथादि का ही आश्रय लेना होगा। इस समय आर्यसमाजों में अथवा आर्य कहलाने वाले विद्वानों द्वारा जो यज्ञ होते हैं, वह किसी ब्राह्मण वा श्रौत सूत्र के आधार पर नहीं हैं। इसलिये उनकी पुष्टि करनी कठिन ही नहीं असम्भव है इस कारण आर्य विद्वानों का कर्त्तव्य है। इस विषय पर विचार करने के निश्चित मत बना कर उस का ही आश्रय करें।

अब रहा ब्रह्म पारायण यज्ञ। पारायण शब्द का अर्थ वेद का पाठ करना होता है। अर्थात् आरम्भ से अन्त तक वेद का पाठ करना, जैसा कि शौनक जी ने लिखा है।

तान्पारणे शाकले शैशिरीये
वंदति शिसानखिलेषु विप्राः
पास्तान् गृह्वद चैवाप्यधीते
स नाक पृष्ठं भजतेह शाश्वत्॥

अनुवाकानुक्रमणी

इस लिये वेद पारायण प्रेमियों को स्वयं वेद का पाठ करना चाहिये। इस नाम से वृहद यज्ञ न रचने चाहिऐं। क्योंकि उन का यह कार्य विधि हीन है। और विधि हीन से पुण्य न हो कर पाप ही होता है। जैसाकि गीता के अध्याय १६ में लिखा है।

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्॥२३
तस्माच्छास्त्र प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥२४

जो शास्त्र विधि त्याग कर मन मानी करने लगता है। उसे न सिद्धि मिलती है, न सुख मिलता है और न उत्तम गति ही प्राप्त होती है।

इस लिये कर्त्तव्य का निश्चय करने के लिये शास्त्र ही प्रमाण है। और शास्त्रों में जो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कुछ कहा है उसको समझ कर उस के अनुसार ही इस लोक में कर्म करना उचित है

इस वाक्य के अनुसार सब सज्जनों को शास्त्र विधि अनुसार ही यज्ञ रचाने चाहिये।

आशा है पुरोहित, ऋषिवर और यजमान इस बात पर विचार करेंगे और आर्यसमाज के विद्वान् इन वृहद् यज्ञों की विधि शास्त्र विधि अनुसार निर्धारित करेंगे यदि ऐसा न हुआ तो अंधाधुन्ध का मार्ग बढ़ेगा जिन्हों ने पढ़ने में अभ्यास नहीं किया है, वही यज्ञ मार्ग प्रदर्शक होकर समाज और जनता में भ्रमोत्पन्न करेंगे। उस समय वेद, शास्त्र और दयानन्द का नाम बदनाम होगा और वैदिक धर्म की मर्यादा का लोप होकर अवैदिक क्रियाएं वैदिक नाम से होने लगेंगी। तब कोई सुधारक इनके विरुद्ध भी उठेगा।

स्वधा (२)

[विद्याभास्कर श्रीमान् पं० उदयवीर शास्त्री जी]

वेद में 'स्वधा' पद प्रकृति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इस आधार पर ऋग्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या 'वेदपथ' के पिछले अंक में प्रकाशित हो चुकी है। नासदीय सूक्त की दो ऋचाओं की व्याख्या यह प्रस्तुत की जाती है। इस सूक्त में मुख्यतया प्रलयकाल की स्थिति और आदि सर्ग का वर्णन है। इस सूक्त की दूसरी और पांचवीं दो ऋचाओं में 'स्वधा' पद का प्रयोग हुआ है।

प्रथम ऋचा में बताया गया है, कि प्रलय अवस्था में सब कुछ 'असत्'—शशशृंग के समान अत्यन्त तुच्छ या अभाव रूप नहीं हो जाता, उसकी कुछ न कुछ सत्ता अवश्य रहती है, पर वह ऐसी सत्ता नहीं रहती, जैसी सर्गकाल में देखी जाती है। इस लिये सर्गकाल-सदृश सत्ता का उस समय में न होना, स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। जब ऋचा में कहा है, कि उस समय 'सत्' नहीं था, तब वह कैसा 'सत्' नहीं था। इसी का विवरण आगे के पदों से किया गया है। सर्गकाल के पृथिवी आदि लोक लोकान्तर, विस्तृत व्यवहार्य आकाश, भोक्ता आत्मा, उसके आरक्त तथा सुखादि उपभोग के साधन बुद्धि देह आदि, तथा गंभीर समुद्र यह सब उस समय में न थे। यह 'नो सत् आसीत्' का ही व्याख्यान है। अर्थात् प्रलय में पदार्थों की सर्गकाल जैसी सत्ता न थी। अभिप्राय यह है, कि ऋचा में 'सत्' पद, व्यक्त जगत् के लिये प्रयुक्त हुआ है। चौथी ऋचा में भी 'सत्' पद का प्रयोग 'व्यक्त' के लिये हुआ है। इस लिये जो व्याख्याकार यहां 'असत्' और 'सत्' का निषेध किये जाने से आपाततः सदसद्विलक्षण तत्त्व की खोज करना चाहते हैं, वह व्यर्थ है, क्योंकि ऐसी व्याख्या स्वतः ऋचाओं के पूर्वापर प्रसंग के विरुद्ध है।

प्रलय वर्णन के इसी प्रसंग को प्रवृत्त रखते हुए द्वितीय ऋचा में बताया गया है, कि उस समय किस प्रकार की सत्ता थी, वहां लिखा है—

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्याद्धान्यन्न परः किं चनास ॥

न उस समय मृत्यु थी, न अमृत था, रात्रि और दिन का कोई चिन्ह भी न था। केवल स्वधा के साथ एक निर्दोष चेतन सत्ता अवस्थित थी, जिस से उत्कृष्ट और कोई नहीं, अर्थात् जो सर्वोत्कृष्ट चेतन सत्ता है।

दूसरी ऋचा के इस शब्दार्थ को स्पष्ट करने के लिये जीव-चेतन की तत्कालीन स्थिति को समझ लेना आवश्यक होगा। प्रथम ऋचा की व्याख्या में कहा गया है, कि प्रलयकाल में 'भोक्ता आत्मा' भी न था। इस कथन का यह अभिप्राय कदापि न समझना चाहिये, कि ऋचा के द्वारा उस समय आत्मा के अस्तित्व का निषेध किया जा रहा है, क्योंकि आत्मा अर्थात् जीव-चेतन नित्य अविनाशी तत्त्व है। उसके अस्तित्व का निषेध किसी अवस्था में नहीं किया जा सकता। इस लिये प्रलय काल में केवल उस की भोक्तृत्व अवस्था का निषेध किया गया है। उस समय जीव-चेतन का अस्तित्व निर्बोध होते हुए भी, वह भोक्ता नहीं होता। द्वितीय ऋचा में उस की इसी स्थिति को स्पष्ट किया है, प्रलयकाल में 'अमृत' अर्थात् जीव-चेतन भोक्ता रूप में न था। जब 'अमृत' भोक्ता न था, तब मृत्यु कैसे होगी, क्योंकि जन्म मरण आदि, भोक्ता जीव चेतन के साथ ही होते हैं। ऋचा में 'मृत्यु' पद जन्म आदि का भी उपलक्षण है।

उस समय रात्रि और दिन का चिन्ह भी कोई न था। देखना चाहिये, दिन और रात का चिन्ह क्या होता है? यह स्पष्ट है, कि दिन और रात के चिन्ह सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि हैं। इसलिये ऋचा के उक्त पदों का केवल इतना अर्थ नहीं है, कि प्रलय काल में दिन और रात भी न थे, प्रत्युत यह अर्थ होगा, कि सर्ग काल के जिन पदार्थों के कारण, काल के दिन रात आदि विभाग सिद्ध किये जाते हैं, वे पदार्थ सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि प्रलय-काल में न थे। क्योंकि दिन और रात के प्रकेत वे ही हैं, उन्हीं के कारण दिन और रात अस्तित्व में आते हैं। जब दिन रात के कारण ही न थे, तब दिन रात के होने की संभावना ही कहां? इस प्रकार सर्ग काल से विपरीत दशा का ही उस समय में वर्णन किया गया है।

प्रलयकाल की अवस्था का वर्णन करने के लिये, सर्ग काल के विपरीत, अर्थात् सर्ग काल की प्रत्येक वस्तु का उस समय अभाव वर्णन करके ही, उसके स्वरूप का आभास दिया जा सकता था। मनुस्मृति के एक प्रारम्भिक श्लोक में भी प्रलय कालिक अवस्था का वर्णन इसी रूप में किया गया है! वहां लिखा है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥[१।५]

यह सब जगत् प्रलय काल में अप्रज्ञात अलक्षण अर्थात् सब प्रकार के आन्तर बाह्य चिन्हों से रहित, कल्पना से परे, अज्ञेय चारों ओर से सोया हुआ सा अपने कारण रूप में लीन पड़ा था!

तब क्या यह समझना चाहिये, कि प्रलय काल में किसी वस्तु का अस्तित्व था ही नहीं? ऋचा उत्तर देती है, कि ऐसा कथन युक्त नहीं, कि उस समय किसी वस्तु का अस्तित्व ही न

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

था ! इसीलिये इस सूक्त के सब से पहला पद है- 'न असत् आसीत्' अर्थात् प्रलय काल में सब कुछ असत् ही न था। तब वहां किसका अस्तित्व था ? ऋचा कहती है। स्वधा के साथ एक निर्दोष चेतन तत्त्व अवस्थित था, जो सब से उत्कृष्ट है, सब से महान है। उससे उत्कृष्ट अथवा महान और कोई तत्त्व नहीं।

इस प्रसंग में 'स्वधा' पद से जगत् के मूल उपादान प्रकृति का ग्रहण किया गया है। जिसका अस्तित्व उस सर्वोत्कृष्ट एवं महान चेतन सत्ता से सर्वथा पृथक् है ! ऋचा के पदों का सन्निवेश भी इसी भाव को स्पष्ट करता है ! 'स्वधा' पद के साथ तृतीया विभक्ति का प्रयोग इस बात का साधक है, कि उस महान चेतन के साथ स्वधा भी अपना पृथक् अस्तित्व रखती है, और उसकी तुलना में अप्रधान है, अपकृष्ट है ! इस प्रकार एक क्रिया के साथ दो पदार्थों का समान सम्बन्ध होने पर अप्रधान (पदार्थ) में तृतीया विभक्ति हो जाती है ! इससे उन पदार्थों का 'दो होना' सिद्ध होता है, इससे यह भी निश्चित होता है, कि उन दोनों पदार्थों में से एक मुख्य [प्रधान] अथवा उत्कृष्ट है, और दूसरा जिसके साथ तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है—अमुख्य [अप्रधान] अथवा अपकृष्ट है। यह स्पष्ट है, कि इन दोनों तत्त्वों में चेतन उत्कृष्ट, तथा स्वधा-अचेतन प्रकृति अपकृष्ट है। क्योंकि चेतन, अचेतन प्रकृति पर नियन्त्रण करती है, तथा अचेतन प्रकृति उससे नियन्त्रित होती है।

आचार्य सायण तथा उसके अनुयायी आधुनिक व्याख्याकारों ने 'स्वधा' पद का-माया अविद्या अथवा चेतन की शक्ति या सामर्थ्य-अर्थ किया है, माया या अविद्या का जो स्वरूप, शांकर मतानुयायी वेदान्तियों ने प्रदर्शित किया है, सायण 'स्वधा' पद का अर्थ वही माया समझता है। इस समय इसके सूक्ष्म विवेचन में जाना अनावश्यक है, परन्तु इतना लिख देना उपयुक्त होगा, कि उक्त विद्वानों ने माया का जो स्वरूप स्वीकार किया है, वह उस उत्कृष्ट चेतन सत्ता का स्वरूप नहीं कहा जा सकता, इस लिये मूल में ही दो तत्त्वों का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसके सम्बन्ध में निष्फल वाग्विजृम्भण भले ही किया जाता रहे उससे वास्तविकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव 'माया' आदि पदों को इस प्रकार के प्रसंगों में 'प्रकृति' का पर्याय ही समझना चाहिये। उसी सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका प्रकृति का 'स्वधा' पद से यहां निर्देश किया गया है।

लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक ने गीता रहस्य के 'अध्यात्म' प्रकरण में स्वधा' पद का 'शक्ति' अर्थ किया है। यदि वह शक्ति, चेतन का ही स्वरूप है, और तिलक महोदय को यही अभिमत है, तो प्रस्तुत ऋचा में जिस पद-विन्यास के द्वारा 'स्वधा' का निर्देश किया गया है, वह समंजस नहीं रहता, और अगली ऋचाओं में प्रतिपादित अर्थ के साथ भी इसका सामंजस्य नहीं होपाता। यदि 'शक्ति' चेतन का स्वरूप नहीं है, तथा उससे भिन्न कोई सत्ता है, तो हम उसी स्थान पर आ जाते हैं, जहां यह कहा जा सकता है, कि 'प्रकृति' को ही उस चेतन सत्ता की शक्ति या सामर्थ्य के रूप में वर्णन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया गया है। अन्य आचार्यों ने भी जहां इस प्रकार के वर्णन किये हैं, उन सब को इसी भावना में अन्तर्निहित समझना चाहिये। एक सम्राट् की शक्ति अथवा सामर्थ्य उस को भूमि, उस की सेना, उसका कोष और उसके जनपद सब ही कहे जा सकते हैं, वह उन पर नियन्त्रण करता है, और वे सब उस से नियन्त्रित होते हैं। निस्सन्देह वे सब उस की शक्ति है, परन्तु यह भी सर्वथा निश्चित है, कि वे सब सम्राट् का स्वरूप नहीं हैं। उनकी सत्ता अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, और सम्राट से भिन्न है। एक से दूसरे का नियन्त्रण होने के कारण, उनमें उत्कर्ष और अपकर्ष का भाव हो सकता है। ठीक इसी प्रकार चेतन और अचेतन सत्ता के सम्बन्ध में समझना चाहिये।

लोकमान्य तिलक ने इस ऋचा में 'परः' पद का अर्थ 'इसके परे' किया है, अर्थात् चेतन के परे और कुछ भी न था। वस्तुतः चेतन के साथ 'परः' पद का यह अर्थ ठीक नहीं जंचता। क्योंकि वह चेतन सर्वत्र एक रस व्याप्त है, कोई भी देश उसका भेदक या व्यवच्छेदक नहीं कहा जा सकता, तब उसमें परे और उरे का प्रश्न ही नहीं उठता। इस लिये 'परः' पद का अर्थ यहां 'उत्कृष्ट' होना चाहिये। यदि तिलक महोदय का अभिप्राय यही हो तो कोई दोष नहीं।

प्रस्तुत ऋचा के विवेचन से यह परिणाम निकलता है, कि प्रलयकाल में दो सत्ता थीं, एक सर्वोत्कृष्ट चेतन सत्ता और दूसरी स्वधा अर्थात अचेतन सत्ता प्रकृति। यहां यह विचारणीय है, कि प्रलयकाल में जीव-चेतन की सत्ता का उल्लेख नहीं किया गया। प्रलयकाल की अवस्था के वर्णन में जहां सर्गकाल की प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व का निषेध किया है, वहां जीव-चेतन के भोक्तृत्व का भी निषेध किया गया है; परन्तु जहां प्रलयकाल में अविनाशी तत्त्वों के अस्तित्व का उल्लेख है, वहां जीव-चेतन के उल्लेख की उपेक्षा की गई है। इसका क्या कारण है? प्रतीत होता है, अविनाशी तत्त्वों की अपनी स्थिति ही इसका कारण हो। इनकी स्थिति पर जब विचार करते हैं, तो एक विशेषता सन्मुख आती है, वह यह, कि सर्वोत्कृष्ट चेतन सत्ता का जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के लिये सदा ही उपयोग हो रहा है। इसी प्रकार अचेतन सत्ता भी सर्गकाल में अपने शरीर से जगत् को उत्पन्न करती और प्रलयकाल में इसे अपने शरीर में लीन किये रहती है। इस प्रकार अचेतन सत्ता भी सदा अपने किसी न किसी कार्य में तत्पर रहती है, परन्तु जीवात्मा के सम्बन्ध में यह स्थिति नहीं देखी जाती। उनकी कार्योपयुक्तता सर्गकाल में ही रहती है। प्रलयकाल में ये सब प्रसुप्त के समान पड़े रहते हैं। संभवतः इसी विशेषता के कारण प्रलयकाल में परमात्म-चेतन तथा अचेतन स्वधा [प्रकृति] के अस्तित्व के साथ, जीव-चेतनों के अस्तित्व का उल्लेख नहीं किया गया। यद्यपि वह भी अविनाशी व नित्य तत्त्व हैं।

नासदीय सूक्त की पञ्चम ऋचा में भी 'स्वधा' पद का प्रयोग हुआ है। ऋचा इस प्रकार है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा
अधः स्विदासी३दुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन्
स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥

इन का जाल सहसा फैल गया, वह पहले मध्य में स्थित था, अथवा नीचे, अथवा ऊपर, यह बात नहीं कही जा सकती। प्रेरणा के आधारभूत मूल तत्त्व थे, और ये महान लोक लोकान्तर थे। स्वधा अपकृष्ट, और नियन्ता उत्कृष्ट।

प्रस्तुत ऋचा का यह शब्दार्थ है। आदि काल में जब सर्ग होने लगता है, तब उसमें कितना समय लग जाता है, अथवा उसका क्या क्रम होता है, इसी अर्थ को ऋचा से स्पष्ट किया है। सर्वोत्कृष्ट चेतन की प्रेरणा के अनन्तर सहसा सम्पूर्ण लोक लोकान्तर अपनी स्थिति में आ जाते हैं। पहले मध्य लोक बने, अथवा अधोलोक, अथवा ऊर्ध्वलोक, इस बात को नहीं कहा जा सकता। वह इतना अल्पकाल होता है, कि उसमें—कौन से लोक पहले बने और कौन से पीछे—यह वर्णन किया जाना अशक्य है। प्रकृति [=स्वधा] के अनन्तानन्त मूलतत्त्वों में, चेतन की प्रेरणा से सर्गोन्मुख प्रवृत्ति होते ही, अखिल लोक-लोकान्तर प्रकाश में आजाते हैं। वस्तु स्थिति यही है, कि या तो वे मूल कारण होते हैं, या बस ये महान् लोक लोकांतर इन के बीच का कोई क्रमिक विकास अशक्य कथन है, क्योंकि उसका अस्तित्व ही कल्पनातीत है। इसी बात को ऋचा के मूल पदों से यों कहा है—'रेतोधा आसन् महिमान आसन्।'

यहां 'रेतः' पद का अर्थ है—परमात्म चेतन का [जगद्रचनार्थ] संकल्प-रूप प्रथम कारण। प्रस्तुत सूक्त की चतुर्थ ऋचा में भी इस पद का प्रयोग उक्त अर्थ में ही हुआ है। इस चेतन-संकल्परूप प्रथम कारण का प्रभाव मूल तत्त्वों पर पड़ता है, तभी उनकी सर्गोन्मुख प्रवृत्ति होती है। इसी लिये ऋचा में प्रकृति के उन मूल तत्त्वों को 'रेतोधा' पद से कहा गया है, क्योंकि चेतन के उस संकल्प को वे ही धारण करते हैं, अर्थात् उस संकल्प से प्रभावित होते हैं। ऋचा में 'महिमानः' पद, कार्यरूप इन दृश्यमान महान लोक लोकान्तरों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार आदि सर्ग के रचना काल को बताने के लिये यह बहुत ही सुन्दर और स्पष्ट शब्दों में वर्णन हुआ है—या तो चेतन प्रेरणा के आधार भूत सूक्ष्म मूल तत्त्व थे, या बस ये महान् लोक लोकान्तर हो गये।

ऋचा के अन्तिम चरण में, सर्गकाल के वर्णन का मानो उपसंहार करते हुए चेतन और अचेतन की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट कहा है-स्वधा अर्थात् अचेतन प्रकृति अपकृष्ट है, नीची है। तथा उसका नियन्ता चेतन उत्कृष्ट है, ऊंचा है, चेतन की प्रेरणा के बिना, क्योंकि अचेतन प्रकृति कुछ कर नहीं सकती, इसी लिये चेतन को उत्कृष्ट कहा गया है। यह ऊंचनीच भाव, चेतन-अचेतन अथवा नियन्ता और नियम्य भाव पर ही अवलम्बित है, दैशिक अपेक्षा पर नहीं। यद्यपि प्रकृति, जगत् का मूल उपादान होने से इसका मुख्य साधन है, फिर भी चेतन की इस उत्कृष्टता के कारण, पहली ऋचा में चेतन संकल्प को ही जगत् का मुख्य कारण कहा गया है। और इसी आधार पर अनेक स्थलों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर औपचारिक रूप से, चेतन को जगत् का मूल कारण बता दिया गया है। ऐसे वर्णनों में इस मौलिक आधार का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। अन्यथा अनायास ही अर्थ का अनर्थ लिया जाता जाता है।

द्वितीय ऋचा में तथा यहां भी लोकमान्य तिलक ने 'स्वधा' पद का अर्थ 'शक्ति' किया है। यदि वह शक्ति, ब्रह्म का अपना ही रूप है, तब ब्रह्म को उत्कृष्ट और शक्ति को निकृष्ट बताना सर्वथा असंगत होगा। क्योंकि वे एक ही वस्तु के दो नाम हैं, वही वस्तु स्वयं अपनी अपेक्षा से उत्कृष्ट और अपकृष्ट नहीं कही जा सकती। इन का अस्तित्व भेद पर ही आधारित होना संभव है। इस लिये निश्चित् होता है, कि 'स्वधा' पद का प्रयोग, अचेतन प्रकृति के लिये है, जो जगत् का मूल उपादान है।

क्या जीव सच्चित् रूप ही है?

[श्रीमान् पं० विश्वनाथ जी आर्योपदेशक]

परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। इसका प्राचीन शास्त्रों में वर्णन आया है और बहुत प्रसिद्ध है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी सत्यार्थ प्रकाश में प्रभु के १०० नामों में इस का उल्लेख किया है। इसे सम्मुख रख कर बहुत से आर्य विद्वान् यह व्याख्या किया करते हैं कि प्रकृति केवल सत्स्वरूप है, जीवात्मा सचित और ईश्वर सचिचदानन्द स्वरूप है।

जहां तक मैंने विचार किया है यह व्याख्या मनोरञ्जक तो है परन्तु यथार्थ नहीं। क्योंकि जीवात्मा को केवल सचित मानना, दूसरे शब्दों में इस में आनन्द न मानना इस गुण से रहित मानना न शास्त्र सम्मत है न युक्ति सङ्गत। यहां पर केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती के वचनों का प्रमाण पर्याप्त समझा है, क्योंकि इसके भीतर सब शास्त्रों का प्रमाण निहत है। सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ७ पृ० १३२

(१) "ईश्वर के नित्य ज्ञान, आनन्द अनन्त बल आदि गुण हैं और जीव के

इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यत्मनो लिङ्गमिति। न्याय सू० १-१०

प्राणायान निमेषोन्मेष मनो गतीन्द्रियान्तर विकारः सुख दुःखेच्छा दीषौ प्रयत्नश्चात्मनो लिङ्गनि। वैशेषिक सू० ३-२-४

(इच्छा) पदार्थों की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहचानना यह तुल्य हैं पर प्राण अपान निमेष उन्मेष (मन) निश्चय स्मरण और अहंकार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों का चलाना (अन्त विकार) भिन्न भिन्न क्षुधातृषा हर्ष शोकादि युक्त होना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। उन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी क्योंकि वह स्थूल नहीं है।"

इस प्रमाण में ईश्वर के आनन्द और जीव के आनन्द गुण को एक तुल्य स्वीकार किया है।

(२) पृष्ठ १२६ "(प्रश्न) ब्रह्म के सत् चित्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आनन्द और जीव के अस्ति भाति प्रिय रूप से एकता होती है फिर क्यों खण्डन करते हो (उत्तर) किञ्चित साधर्म्य मिलने से एकता नहीं हो सकती । (पृथिवी जल मनुष्य का दृष्टान्त देकर) वैसे परमेश्वर अनन्त ज्ञान आनन्द बल क्रिया निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीव से और जीव के अल्प ज्ञान, अल्प बल, अल्प स्वरूप सब भ्रान्तित्व और परिच्छन्नतादि गुण, ब्रह्म से भिन्न होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं ।" यहां पर ईश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप और जीव के अस्ति भाति प्रिय रूप में साधर्म्य माना है ।

(३) समुल्लास ३ पृ० ३६ न्याय सूत्र १-१० का अर्थ जिसमें (इच्छा) राग (द्वेष) वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ सुख दुःख (ज्ञान) जानना गुण हों वह जीवात्मा है। यहां पर सुख भी जीवात्मा का गुण माना गया है । यद्यपि सूत्र में यह आत्मा के लिंग चिह्न कहे हैं परन्तु वै० १-१-६ में

रूप रस गन्ध स्पर्शाः संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोग विभागौ परत्वा परत्वे बुद्धयः सुख दुःखे इच्छा द्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः । रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाण पृथकत्व संयोग विभाग परत्व अपरत्व बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न गुण हैं। इन में जीव के ६ चिह्न गुणों में उल्लिखित हुए हैं अतः ऋषि का यह आत्मा के गुण लिखना ठीक ही है।

(४) आर्य समाज के कुछ एक महान् विद्वानों तथा नेताओं ने भी जीव के दो गुण ज्ञान और प्रयत्न ही बताये हैं। जहां यह विचार महर्षि दयानन्द, के लेख के विरुद्ध है वहां इस के लिये कोई शास्त्र प्रमाण भी उपस्थित नहीं किया गया । यदि पृथिवी के गन्ध गुण के समान यह परिणाम निकाला है तो कणाद मुनि ने "व्यवस्थितः पृथिव्या गन्धः २।२।२ के समान जीवात्मा के वस्तुतः इन ही दो गुणों के प्रतिपादनार्थ कोई सूत्र क्यों नहीं लिखा । वैशेषिक दर्शन १-२-१६ में गुण का लक्षण "द्रव्याश्रयी" भी किया है तो यदि इच्छा द्वेष सुख दुःख जीव के गुण नहीं तो अन्य किस द्रव्य के हैं कि जिस से जीवात्मा में आगये। अतः यह केवल कपोल कल्पना है ।

(५) कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि ज्ञान और प्रयत्न जीव के स्वाभाविक गुण हैं और इच्छादि नैमित्तिक यह भी ठीक नहीं। यदि नैमित्तिक का अर्थ यह है कि यह किसी अन्य पदार्थ के मेल से उत्पन्न होते हैं तो उसका नाम बतलाया जावे । वास्तव में इच्छा द्वेष और दुःख जीव से भिन्न किसी अन्य द्रव्य के गुण नहीं हैं और यदि यह कहा जावे कि यह गुण अन्य द्रव्य से नहीं आते। परन्तु जीवात्मा में इन की अभिव्यक्ति किसी निमित्त ही से होती है तो ज्ञान और प्रयत्न के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहा जा सकता है। ज्ञेय के निमित्त के बिना ज्ञान और प्रयोजन के निमित्त के बिना जीवात्मा में प्रयत्न की अभिव्यक्ति भी नहीं देखी जाती।

(६) कुछ विद्वान् कहते हैं कि जीव का गुण सुख तो है आनन्द नहीं । परन्तु उपर्युक्त लेखानुसार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जीव के गुण सुख का अर्थ आनन्द किया है अतः यह धारणा भी निर्मूल है।

[श्रीमान् पं० विश्वनाथ जी का स्वाध्याय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बहुत विस्तृत है । ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का उन्हें अच्छा अभ्यास है । फिर भी वे मनुष्य हैं । हमें ऐसा लगता है कि आप को यहां ऋषि के लेख समझने में थोड़ी सी चूक हो गई । प्रमाण (१) में 'यह तुल्य हैं' वाक्य खण्ड से आप को भ्रांति हुई हैं। पण्डित जी ने इस से समझा है कि इच्छादि छः गुण आत्मा तथा परमात्मा में तुल्य । वास्तव में इस वाक्य का अर्थ है कि इच्छादि आत्मा के छः गुण न्याय तथा वैशेषिक में तुल्य है । हमारे इस कथन की पुष्टि 'परन्तु वैशेषिक में' इस वाक्य से होती है, क्योंकि वैशेषिक में प्राणायान आदि के साथ सुख दुःखादि गुणों का उल्लेख भी है। ऋषि ने जिस प्रकार न्याय तथा वैशेषिक के सूत्र के पदों को बन्धनी में रख कर व्याख्या की है, वैशेषिक में आए 'सुख दुःख' आदि की नहीं की, क्यों कि न्याय सूत्र की व्याख्या में वह हो चुकी है। हमारे पक्ष में एक युक्ति और भी है। ऋषि ने न्याय सूत्र की व्याख्या में "(द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा, वैर............ (दुःख, विलाप, अप्रसन्नता" लिखा है । यदि पण्डित जी की बात मानी जाए तो परमात्मा में विलाप तथा वैर भी मानना पड़ेगा। विलाप असमर्थता का द्योतक है। ऋषि परमात्मा को सर्वशक्तिमान् मानते हैं। ऋषि के मत में परमात्मा किसी का भी वैरी नहीं है जैसा कि ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में मित्र शब्द की व्याख्या के प्रसङ्ग में लिखा है—"किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है। इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता ।" इससे स्पष्ट सिद्ध है कि परमात्मा में वैर है ही नहीं, क्योंकि वह किसी का शत्रु नहीं, प्रत्युत सब का निश्चित मित्र है।

सार यह है कि 'ये तुल्य हैं' वाक्य खण्ड का अर्थ वही है जो हमने बताया है कि इच्छादि गुण जीव के न्याय वैशेषिक में तुल्य है न कि जीवात्मा तथा परमात्मा में।

पण्डित जी का भ्रांति का एक और प्रमाण भी है। प्रमाण २ को वे ध्यान से पढ़ने का कष्ट करते तो उन्हें स्पष्ट हो जाता कि ऋषि जीव में आनन्द स्वाभाविक नहीं मानते । देखिए "जैसे परमेश्वर के अनन्त ज्ञान, आनन्द............" लिखते हैं किन्तु जीव के गुणों का उल्लेख करते हुए आनन्द का उल्लेख नहीं करते।

आप के दिए तीसरे प्रमाण में सुख का अर्थ आनन्द न होकर सुख ही हुआ है, अतः उसपर विचारने की आवश्यकता नहीं है।

अब रहा आप के दिए प्रथम प्रमाण में सुख शब्द का अर्थ आनन्द लिखित होना उपर्युक्त युक्तियों के आधार पर गौण ही मानना चाहिये।

अन्य आर्य्य विद्वानों से प्रार्थना है कि वे अपने विचार इस विषय पर भेजने की कृपा करें। सम्पादक]

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शान्ति लाभ का उपाय

[श्रीमान् प० प्रियदर्शन जी वेदाध्यायी सिद्धान्तभूषण]

परमेश्वर प्राप्ति की इच्छा प्रत्येक आस्तिक व्यक्ति में विद्यमान है, परन्तु परमेश्वर प्राप्ति के लिये जो त्याग और तपस्या की आवश्यकता है उसे करने के लिये कोई तैयार नहीं। अन्न भोजन की इच्छा प्रत्येक देहधारी व्यक्ति में वर्तमान है, किन्तु उसकी प्राप्ति के कारण तक पहुँचने के लिये विरले मिलेंगे। लोग शान्ति चाहते हैं परतु जीवन में शान्ति किस प्रकार प्राप्त हो सकती है उस के लिये कोई प्रयत्न नहीं करेंगे। सर्वत्र यही क्रम चला आ रहा है।

शान्ति का वास्तविक स्वरूप क्या है, उसे जान कर संसार के अधिक-संख्यक व्यक्तियों ने केवल शान्ति शान्ति करके संसार भर में कोलाहल मचा रखा है। और दिन प्रतिदिन शान्ति एवं अशान्ति के नवीन से नवीन सिद्धान्तों का प्रचार किया जा रहा है।

एक पक्ष ऐसा है जो संसारिक वस्तु मात्र के लाभ में ही शान्ति मानता है। यथा पाश्चात्य जगत्। अमेरिका में धन की, प्रासाद की, दैहिक आराम की कमी नहीं है। और आज की दुनियां में सर्व प्रथम शान्ति शान्ति करके चिल्लाने वाला अमेरिका है। केवल यही नहीं संसार में शान्ति की स्थापना करने के लिये समग्र संसार को 'आणविक बम' वर्षा का भय भी दिखाया जा रहा है। बम वर्षा कर शान्ति लाने वाले व्यक्तियों ने अपने देश तथा समग्र संसार को अशान्ति का बारुदखाना बना रखा है। महल वालों को महल ने शान्ति नहीं दी धनवान को धन ने आराम नहीं दिया, विलास एवं व्यसनों ने भी शान्ति नहीं दी भोग प्रिय स्वार्थ पर विश्व फिर भी फेर में पड़ा है, कि उसे शान्ति मिलेगी। पाश्चात्य जगत के किसी भी नर नारी से पूछिये "क्या तुम्हें शान्ति मिली है" वे निर्विवाद कहेंगे शान्ति नहीं मिली, शान्ति की आवश्यकता है।

उधर तो राजस वृत्ति की वृद्धि से जनित पार्थिव भोगों ने सब को मदान्ध कर रखा है। और इधर प्राच्य में देखिये, शान्ति का स्वरूप भारतीयों ने कैसा समझा है। वर्तमान भारतीयों ने शान्ति को पार्थिव सम्पद् एवं अपार्थिव सम्पद् दोनों की प्राप्ति में देखा है। धन भी चाहिये, विलास भोग का साधन भी चाहिये, और आध्यात्म ज्ञान तथा ईश्वर दर्शन चाहिये। भारत वासी जहां यह मानते थे कि अध्यात्म ज्ञान ही प्रधान सम्पद् है, उसकी प्राप्ति ही शान्ति है वहां भोग साधना को भी साथ रखते थे। प्राच्य के विचारानुसार आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक फल दोनों साथ रहें तो शान्ति होती है। इस लिये असाधु उपाय से धनोपार्जन करने वाले धनवान व्यक्ति के घर में अब कोई साधु महात्मा जाते हैं तो वह धनवान व्यक्ति आत्मगर्व से आपे में समाते नहीं। वही उनकी शान्ति है। धन हो तो घर में साधु आ जावेंगे, पण्डित आजावेंगे, और हजूर हजूर करते रहेंगे, यह भी एक प्रकार की शान्ति है। क्योंकि वास्तव में शान्ति क्या है यह उन्हें परिज्ञात

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं है। चाहे किसी ने साधु सन्यासी को दान दिया हो, चाहे जीर्ण मन्दिर मरम्मत कराया अथवा नवीन मन्दिर बनाया हो, चाहे धन स्फीति के कारण किसी की अलमभी में स्वर्णा-क्षरों से अंकित सजिल्द नाना-देशीय पुस्तकें हों- उनसे पूछिये-कहेंगे, "मुझे शान्ति नहीं मिली।

शान्ति तो कोई सरकार पदार्थ नहीं कि लड्डू की तरह हाथ आजावेगा। वह तो अनुभूति का विषय है। लोगों ने शान्ति को हाथ का लड्डू समझ लिया हैं इस लिये उस की प्राप्ति नहीं हो रही है।

एतद्देशीय कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो बाह्याडम्बर द्वारा शान्ति पिपासु व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। जब नाना प्रकार के मनमुग्धकारी बचनों से सरल विश्वासी व्यक्तियों को वे अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं तो स्वयं "सर्वेषामपि गुरूणां गुरुः" अर्थात् भगवान का अवतार बनकर शान्ति का नवीन मार्ग दिखाना आरम्भ कर देते हैं। यदि ऐसे गुरु का विशेष खोज लिया जाये तो आप देखेंगे शान्ति उनके पास भी नहीं है वहां केवल ढोंग ही ढोंग है। अपने आप को बड़ा प्रचार करने वाले व्यक्ति अपने बड़प्पन की खोज करेंगे या शान्ति की ? अपने आप का प्रचार करेंगे अथवा परमेश्वर का ? शान्ति को प्राप्त किये हुए व्यक्ति बोलते नहीं। क्या जलपान करने वाला व्यक्ति पान करते समय यह कहता है ? क्या समाधिस्थ व्यक्ति बाह्येन्द्रियों को मुक्त रख कर विषय सुख का स्वाद ले सकते हैं ? बोल सकते हैं ? कदापि नहीं। शान्ति किसी को दी नहीं जा सकता, शान्ति का तो स्वयं लाभ किया जाता है। शान्ति जनित आनंद का अनुभव ही किया जाता है, जो चाहे उसे वह पा सकता है।

इस शान्ति को प्राप्त करने के लिये भगवान् कृष्ण ने गीता में बार बार उस के उपायों का उपदेश दिया है। भगवान् कृष्ण ने गीता का उद्गान कर किसी को शान्ति नहीं दी है, किन्तु उन्होंने गीता का उद्गान कर शान्ति प्राप्त करने का उपाय बतलाया है।

गीता के उद्देश्य को न समझ कर, लोगों ने समझ लिया है कि गीता पाठ से शान्ति मिलेगी। इस धारणा के वश में आकर अज्ञानी जन मृत व्यक्ति के कानों में गीता सुनाते हैं। आश्चर्य है इस अन्ध विश्वास पर ! शान्ति को प्राप्त करने के लिये श्री कृष्ण ने उपदेश दिया है—"निर्ममो निरहंकारः स शान्ति मधिर्मधिच्छति" (२।७१)। ममत्व बोध रहित एवं अहंकार शून्य व्यक्ति को ही शान्ति मिलती है।

समग्र संसार आज भोग में उन्मत्त है। "संसार हमारा है", "हम संसार में शान्ति लावेंगे" इस प्रकार के वातावरण से भूमण्डल आज ग्रसित है। सर्वत्र ममता और अहंकार का साम्राज्य है। मनुष्य क्षण भर के लिये भी नहीं विचारता कि यह नाशवान जगत् मेरा नहीं है। सदा एक ही बुद्धि सर्वत्र कर्म्म कर रही है। "यह हमारा है", "मैं ने किया", "मैं ने खिलाया" "यदि मैं नहीं होता तो न मालूम क्या हो जाता या हो जावेगा। इस प्रकार की बुद्धि ने मनुष्य समाज को अहंकारी बना डाला है। इस के परिणाम स्वरूप समग्र संसार में अशान्ति है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस अशान्ति के घन अन्धकार में मनुष्य सुख की खोज में लगे हुए हैं।

असुख का मूल अशान्त होना है, उसे दूर करने का प्रयत्न न करके सुख का अन्वेषण हो रहा है।

"अशान्तस्य कुतः सुखम्" (गीता २।६६) अशान्त व्यक्ति को सुख कहां? उक्त उपदेश को लोगों ने भुला दिया है। सुख का मूल शान्ति, शान्ति का मूल ममत्व हीनता एवं निरहंकार। हे मानव! यदि तू शान्ति तथा सुख चाहता है तो ममत्व हीन बनो, निरहंकारी बन।

सदाचार

[श्रीमान् बा० लालचन्द जी]

सदाचार पर ही यज्ञ क्रिया निर्भर है। यज्ञ में सर्वहित के कार्यों को सबको मिलकर ऐक्य भावना से करना होता है। बिना सदाचार के आपस का मेल तथा मिलकर कार्य करना तक सम्भव नहीं। नैतिक जीवन तो समाज में उन्नत होने के लिये नितांत आवश्यक है। नागरिकता की उच्च अवस्था तभी होगा जब लोगों के जीवन का नैतिक स्तर संदेह से ऊपर होगा। आपस का सदभाव तभी स्थिर और दृढ़ होता है जब जीवन में पवित्रता हो। पवित्र जीवन में ही प्रेम का विकास होता हैं। यज्ञ भावना सदाचार से उन्नत होती है और यज्ञ भावना से सदाचार उन्नत होता है। सत्य, प्रेम और यज्ञ, ये एक दूसरे के पोषक भाव है। इनके विपरीत स्वार्थ के विचार आपस का मेल खो देते हैं। वे आसुरी भाव हैं, अभिमान, घृणा, ईर्ष्या, और द्वेष। असुर लोगों में आपस में संदेह हुआ करता है। जीवन में दंभ और दिखावा होता है। असुर लोग समाज के शत्रु हैं दिव्य जनों को, आर्यजनों को संगठित होकर रजतम गुण प्रधान स्वार्थों असुर लोगों पर विजय पाने के लिये अपना संगठन सुदृढ़ करना ही चाहिये। केवल साधु होने से, स्वयं भले होने से, संसार में जीवन भार रूप हो जाता है ऐसा साध्य मनुष्य पग पग पर चतुर लोगों द्वारा ठगा जाता है। उसकी सरलता उसके लिये अभिशाप हो जाती है। सरलता तभी वरदान बनी रह सकेगी जब सरल लोग आपस में अपने सम्बन्ध स्थिर और दृढ़ करके सुसंगठित होंगे। आर्य समाज को पुनः संगठित होकर आर्यत्व का प्रसार करना होगा, वरना सार्वभौम संस्कृति होने की क्षमता रखती हुई भी वैदिक संस्कृति का उद्धार बहुत ही कठिन हो जायगा। मनोरथों से काम नहीं चला करता, कठोर सतत पुरुषार्थ से ही सफलता प्राप्त होती है।

बिना ध्येय के कोई भी कार्य लग्न से, पूरी तत्परता से नहीं होता। राष्ट्रोन्नति, सार्वजनिक विकास, सबकी उन्नति की महत्वाकांक्षा, मनुष्य के अन्दर उदारता को, परस्पर हित के लिये आत्मोत्सर्ग तथ्य आत्मत्याग को प्रोत्साहन देते है। उदारता के स्थिर और चिरकाल तक बनी रहने के लिये सत्याचरण अत्यन्त आव-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्यक है। सदाचार बिना तो उन्नति केवल स्वप्न मात्र है। चरित्रवान मनुष्य ही संसार में यशस्वी और कीर्तिमान हुए हैं। चरित्र निर्माण में सबसे बड़ा भाग सत्य का है। बिना सत्य के, प्रेम स्थिर नहीं रहता, सत्य अनुष्ठान से ही जीवन का व्यवहार पवित्र और सरल बनता है। सदाचार सफलता की कुंजी है।

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः।
तेषांवः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्यामये चसूरयः॥
ऋ ७।६६।१३॥

जो सत्य के ही पक्ष पाती सत्य की रक्षा करने के लिए ही जिनका जावन और उद्योग है जो सर्वदा सत्य को ही बढ़ाने, स्थापन करने और बचाने में लगे रहते हैं, जो अतिशय घोर रूप धारण कर असत्य से द्वेष करते और उसके सर्व विनाश के लिए अतिशय घोर रूप से प्रयत्न करते हैं अर्थात् जो सवदैव और सर्व अवस्थाओं में सत्य के पक्षपाती सत्य के लिए मरने तक तैय्यार और असत्य के घोर विद्वेषी हैं उन की सुखकारी शरण में हम सब होवें और जो विद्वान् हैं वे भी उनकी छाया में निवास करें॥

ऋतावाना निषेदतुः साम्राज्याय सुक्रतु।
धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः॥ ऋ ८।२५।८॥

नियम पालन करने वाले, सत्य के अनुसार चलने वाले क्षत्रिय प्रथम क्षात्र तेज प्राप्त करते हैं और उत्तम कर्म करते हुए साम्राज्य के लिये यत्न करते हैं।

सत्याचरण से परस्पर विश्वास, स्नेह और सौहार्द के भाव उदय होकर दृढ़ होते हैं मनुष्य के अन्दर उद्देश्य पूर्ति के लिए तन, मन, धन लगाने की उत्कट कामना होती है, जो उन्हें अपने ध्येय की पूर्ति के लिये उत्साह से भर देती है। उनका साहस कम नहीं होने देती, इस प्रकार यज्ञ भावना में सदाचार पनपता है और सदाचार में ही यज्ञ भावना की पूर्ति है। यज्ञ भावना जब क्रियात्मक रूप धारण करती है जब यज्ञ की प्रक्रिया आरम्भ होती है, जब मनुष्य मिलकर सर्वोदय की योजना को पूरा करने में तत्पर होते हैं तो आपस में अवश्य सदभावना तथा निष्कपटता स्थिर और दृढ़ होती है और विशुद्ध प्रेम का स्रोत प्रत्येक के रूपमें फूट निकलता है परिणाम होता है सब का अभ्युदय, सब की वृद्धि तथा दिव्यता का विकास। सदाचार पर यज्ञ अवलम्बित है और यज्ञ के अनुष्ठान से सत्य बढ़ता है। सदाचार बिना यज्ञ की पूर्ति असम्भव है यज्ञ में ही सदाचार की परख तथा सदाचार का पूर्ण विकास। है विकसित सत्य जीवन को मधुर और सुन्दर बनाता है।

जीवन का सौन्दर्य और माधुर्य सदाचार में निहित है। सदाचारी विश्वास पात्र होता है, उसपर सन्देह नहीं होता, उसे स्वयं भी संशय नहीं सताता सदाचारी एक निष्ठा से पूरी लगन से पुरुषार्थ में जुटा रहता है और सदा सफल होता है। सफलता की भित्ति सदाचार है। सदाचार में ही नैतिक जीवन तथा नागरिक जीवन सुफल होता है।

सदभावना में निर्माणात्मक शक्ति निहित है जो यज्ञ में व्यक्त होती है। सदभावना से और परस्पर के प्रेम से ही यज्ञ पूर्ति हो सकता है। सब पर निर्भर रहकर जो निर्माण कार्य होता है वह कल्याणकारी होता है और कल्याण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के मार्ग पर चलता हुआ पथिक अपना ध्येय जो सुन्दरम् भगवान है उसे अपने कार्यों में सौन्दर्य लाने तथा तत्परता से परस्पर हित निभाने से, मनुष्य साक्षात करता है। शुभ्र ज्योति हृदय में जगमग करती है और सदाचारी मनुष्य अपने मार्ग में प्रकाश अनुभव करता हुआ निस्संकोच आगे बढ़ता जाता है। सदाचार में अनुपम प्रमाण है जीवन ज्योति है। जीवन में प्रकाश रहने से मनुष्य अवश्य अपने उद्देश्य को सुगमता से प्राप्त कर लेता है। ध्येय प्राप्ति के लिए सदाचार परम आवश्यक है। सदाचारी की जीवनचर्या सुनियमित होती है।

ऋत और सत्य जब भगवान् के संकल्प से प्रेरित हुए तो सकल सृष्टि की उत्पत्ति आरम्भ हुई। जो मनुष्य निर्माण कला सीखना चाहता है उसे ऋत और सत्य का अवलम्बन करना ही होगा। ऋत और सत्य जीवन=यात्रा में ज्योति स्तम्भ हैं। ऋत और सत्य को दिनचर्या में पालन करता हुआ मनुष्य कभी भी पराजित नहीं होता। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, सत्य के प्रकाश में नहीं टिक सकते। सद्भावना, सत्य विचार, सत्य संकल्प, और सत्यनिष्ठा, ये सत् कर्म के आधार स्तम्भ हैं। सत्कर्म ही प्रशस्तकर्म है वही यज्ञ है। इसलिये यज्ञ में निर्माण क्रिया को अवश्य प्रोत्साहन मिलता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं। संसार का इतिहास स्वयं इस सिद्धांत का साक्षी है। इसके विपरीत असत जीवन में विनाश निहित है, मनुष्य के अन्दर अन्धेरा रहने लगता है, सन्देह और अविश्वास, कार्य क्षमता का अभाव, तथा परवशता बढ़ती है। असत् गामी मनुष्य पराए अधीन हो जाता है। अपना स्वत्व खो देता है और पराधीन रहता हुआ आचार भ्रष्ट, कायर और भीरु हो जाता है। जीवन में सत्य में ही अदम्य शक्ति है असत में तो निरंतर ह्रास और अन्ततः नाश है। असत में मृत्यु का भय है सत्य में निर्भयता तथा अमरत्व है। सत्य में जीवन है, असत् में मृत्यु है। सत्य भगवान है, वह शिव और सुन्दर है, असत में अनाचार, अत्याचार और दुराचार का फंसाव है। सत् में सदाचार और सर्वमङ्गल और सर्वोदय है। सत् में ज्ञान है, असत में मोह है। सत में ज्योति है, असत में तमस है। तमोगुण तो है ही मूर्तिमान असत। सत अविनाशी है असत बदलता रहता है, असत का नाश है, सत सदा शाश्वत एक रस है। भगवान सत्यं शिवम और सुन्दरम है। सत्य में ही शिव भाव स्थिर रहता है और जिसमें सद्भावना और शिव संकल्प स्थिर है वह अवश्य सुन्दर कार्य करता हुआ सुन्दर है। भगवान पूर्ण है, सदा एक रस परम कल्याण मय है इसलिये परम सुन्दर है, असत में स्वार्थ उभरता है। स्वार्थ में आपस में संदेह वैमनस्य और वैर विरोध ही बढ़ता है। स्वार्थ में कोई किसी दूसरे की उन्नति देख ही नहीं सकता। आजकल स्वार्थ का बोल बाला है इसीलिए समाज में पदों की लोलुपता है अधिकारों की की कामना है और कर्तव्य की अवहेलना है, यही समाज की बढ़ती हुई क्षति का मुख्य कारण है। यदि लोग केवल शुभ कार्य ही करें और वे कार्य भी स्वार्थ रहित होकर लोक कल्याण की भावना से करें, तो यह जीवन पुन्य जीवन हो और हमारा राष्ट्र पुन्य धाम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हो। सदाचारी ही कर्तव्य शील और धर्मशील होता है। सदाचारी पवित्र और दृढ़ प्रतिज्ञ, आचारवान और विश्वासी होता है। सदाचारी में आत्मविश्वास होता है और वह अन्य लोगों में भी विश्वास करता है उसमें सन्देह और संशय नहीं होते। सदाचारी निर्भ्रान्त अपना कर्तव्य पालन किये जाता है। सदाचार सफलता की कुंजी है। सदाचारी के सम्पर्क से अन्य लोगों के जीवन भी पवित्र होते हैं। आपस में विश्वास बढ़ता है।

परस्पर विश्वास में अभ्युदय निहित है। स्वार्थ से विश्वास का ह्रास होता है, संशय बढ़ता है और सच तो यह है, कि यदि स्वार्थ को स्वतन्त्र रूप से मनुष्य स्वयं ही व्यक्तिगत तथा जातीय हितों को दृष्टि में रखकर नियंत्रित न करे, तो अकेला स्वार्थ ही, व्यक्तियों, जातियों और राष्ट्रों तक में कलह, विग्रह बढ़ाकर महायुद्ध करवाता है और मनुष्यों के नाश का कारण बनता है। समाज तथा राष्ट्र की रक्षा और अबाध उन्नति के लिये स्वार्थ और लोभ पर नियंत्रण करना ही होगा। व्यक्तिगत स्वार्थ समष्टि के हितों को न दबा सके ऐसी शासन पद्धति बनानी ही पड़ती है। स्वार्थ के कारण विरोध तो अवश्य ही उत्पन्न हो जाता है। स्वार्थ में सहयोग का तो स्वप्न तक नहीं आने पाता। हां, विनाश होने पर पछतावा अवश्य होता है।

वैसे तो स्वार्थ में सद्भावना का अभाव होने के कारण अन्ततोगत्वा स्वार्थ स्वयं अपनी ही हानि करता है। प्राकृत नियम जिन्हें ऋत कहते हैं अटल हैं। सच्ची स्थिर उन्नति, लक्ष्मी और शोभा तो सत्य में ही सम्भव है स्वार्थ में कभी स्थायी अभ्युदय नहीं हुआ। स्वार्थ क्षणिक आलकसी, चका चौंद सी दिखाकर मनुष्य को मूढ़ बनाकर उससे अनर्थ करवाता है। स्वार्थ का मूल, विकृत काम है, वह काम जिसमें विकार आ चुका है, स्वार्थ में परिणत होता है। इसके विपरीत जब कामना शुभ हो और शिव संकल्प में परिपक्व हो जाय फिर तो मनुष्य का प्रेम ही श्रेय हो जाता है। स्वार्थका, कामका, संस्कार करो उसमें से विकार धो धोकर निकाल दो, फिर वासना नहीं उत्पन्न होगी, लालसा नहीं बढ़ेगी, फिर सर्वोदय होगा सर्वमङ्गल होगा, मनुष्य में दृढ़ संकल्प होगा जो निर्माणात्मक क्रिया का मूल रूप है और परम कल्याण-प्रद है।

संस्कार किये बिना काम हानिकर है। सुसंस्कृत होने पर वही काम परम हितकर है। सत्य से काम का संस्कार किया जाता है। ऋत परम पावन है। ऋत भावना के आते ही काम शिव हो जाता है। सत्यकाम मनुष्य अवश्य शिवकाम होता है और उसके संकल्प में कभी निजीहित नहीं रहता वह सर्वहित में निजीहित निहित है, इस जीवन रहस्य को जान जाता है। सुसंस्कृत अवश्य प्राभव सदाचारी होता है। संस्कृति कभी असत व्यवहार में नहीं टिकती। जब से भारत में असत व्यवहार होने लगे संस्कृति भी लोपसी हो गई और केवल हमारे शास्त्रों के पन्नों में ही लिखी रह गई। आर्य संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए ऋत की, ऋतुता की जीवन चर्या परम आवश्यक है। सदाचार और संस्कृति का अटूट संबंध है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सभ्यता दिखावे के लिए भी हो सकती है। शिष्ट व्यवहार में अन्दर कपट भी संभव है किन्तु सुसंस्कृत मानव अवश्य छल कपट से अलग होना ही चाहिये। सुसंस्कृत मानव में समाज की उन्नति सुरक्षित है सुसंस्कृत मानव में शिष्टाचार भी होता है और सदाचार भी। सदाचार के बिना ऊपरी शिष्टाचार में क्या धरा है। सदाचार के बिना शिष्टाचार थोथा है उसका कुछ मूल्य नहीं। सुसंस्कृत सदाचारी मानव ही सर्वहित के कार्य कर सकता है। संस्कृति का आधार सदाचार ही है।

कामना बिना कोई क्रिया हो ही नहीं सकती, पर कामना सर्व हित की, यज्ञमयी होनी चाहिये। ऐसी कामना सदाचार के बिना असंभव है। जब कामना का संग लालसा, वासना, विलासिता आदि से हो जाता है तो कामना, कामना नहीं रहती, वह तृष्णा हो जाती है उसमें ईर्ष्या घृणा आदि दोष आजाते हैं। ईर्ष्या के होने से अवश्य द्वेष बढ़ता है। कोई दूसरे की उन्नति नहीं सहता अपनी उन्नति ही भाती है पराई उन्नति से हृदय में शूल चुभने लगते हैं और उसे गिराने को ही जी चाहता है। ऐसी अवस्था शोचनीय है। सत्संग और स्वाध्याय द्वारा इस महारोग का उपचार करना चाहिये।

—

स्वाध्याय-सन्दोह

'वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है' इस आर्ष आदेश के पालन करने की सुविधा के विचार से ही इस ग्रन्थरत्न की रचना की गई है। इसका पहला संस्करण हाथों हाथ बिक गया था। मांग बराबर थी। उसे पूरा करने के लिए दूसरा संस्करण छपाया है। इसमें कुछ बढ़ाया भी गया है। परिवर्तन होने पर भी मूल्य केवल ६) रखा है। कागज आदि की महंगाई के कारण थोड़ी प्रतियां छपवाई जा रही हैं। अतः शीघ्र अपनी प्रति के लिए निश्चिन्त हो जाइए। प्रतिदिन के स्वाध्याय के लिए इससे बढ़िया पुस्तक आप को इस समय और नहीं मिल सकती। विद्वान् तथा सामान्य, सभी प्रकार के लोगों ने इसकी प्रशंसा की है। मूल्य ६), डाक व्यय पृथक्।

मांस-मदिरा-निषेध—मूल्य ।=), १०० प्रति इकट्ठी लेने वाले को =) प्रति के हिसाब से; डाक व्यय पृथक्।

ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः—'विश्वानि देव' आदि आठ मन्त्रों की सहित, मनोहारिणी, और मग्न कर देने वाली व्याख्या। मूल्य =)॥, १०० प्रति का १२॥) साढ़े बारह रुपये। मूल्य पेशगी भेजने वाले से डाक महसूल भी नहीं लिया जाता।

नैमित्तिक-वैदिक पाठ—प्रातःकाल से लेकर रात्रि को सोने के समय तक के विविध अवसरों पर पठनीय वेद-मन्त्रों का संग्रह। मन्त्रों के साथ सुन्दर भावार्थ तथा शब्दार्थ। मूल्य ।) डाक व्यय पृथक्। एक प्रति मंगाने वाले ।‑) का टिकट भेजें।

मिलने का पता—अध्यक्ष, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासिवानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

["Regd. No. E. P. 425. रजि० सं० इ० पी० ४२५

क्या आप आर्यों के परम धर्म का पालन करते हैं ?

ऋषियों का आदेश है—'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' वेद संस्कृत भाषा में हैं। लोग चाहते हुए भी इस कठिनता के कारण उस से लाभ न उठा सकते थे। ऋषि दयानन्द ने सब से पहले इस कठिनता को दूर किया। ऋषि से प्रेरणा पाकर उनके चरण चिन्हों पर चलने वाले श्री स्वामी वेदानन्द ने सर्वसाधारण के लिए वेद को सुलभ कर दिया है। एक दिन के लिए एक मन्त्र के विचारण से ३६६ मन्त्रों का संग्रह 'स्वाध्याय सन्दोह' नामक विशाल ग्रन्थ रच कर उन्होंने सर्वसाधारण के लिए वेद का द्वार खोल दिया है। मन्त्रों की व्याख्या वेदमन्त्रों, उपनिषद्वचनों तथा अन्य अनेक ऋषियों के वचनों से पुष्ट की गई है। भाषा सरल, ललित है। साधारण जनता तथा लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने समान रूप से इस की प्रशंसा की है। समाचारपत्रों के सम्पादकों ने इसकी सराहना की है। यह बात सर्वसम्मत है कि संप्रति प्रतिदिन स्वाध्याय करने के लिए इससे उत्कृष्ट ग्रन्थ और कोई नहीं है। इतने विशाल ग्रन्थ का मूल्य केवल छः रुपये ६) है। डाक व्यय इससे पृथक् है। मंगाने की शीघ्रता कीजिए अन्यथा अगले संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह इसका दूसरा संस्करण है।

प्रार्थना करना सीखिए

प्रत्येक आस्तिक को प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। ऋषि ने साधारण जनों की सुविधा के लिए चारों वेदों से केवल आठ मन्त्र स्तुति प्रार्थना-उपासना के लिए संकलित किए हैं। आराधक प्रकार श्री स्वामी वेदानन्द ने उनकी भावमयी व्याख्या लिखी है, जिसे पढ़ते समय पाठक तन्मय हो जाता है। आप भी उसे पढ़िये और आनन्द विभोर हूजिए, उसका नाम 'ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासनामन्त्राः' है। मूल्य केवल ढ़ाई आने, डाक व्यय पृथक्।

नैमित्तिक वैदिक पाठ

संकलन कर्ता—श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी तथा व्याख्याकर्ता श्री स्वामी वेदानन्द जी

पुराने आर्य्य प्रत्येक कार्य्य करते हुए भगवान् का स्मरण किया करते थे। उनका यह स्मरण वेद मन्त्रों के द्वारा होता था। श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने प्रत्येक अवसर के उपयोगी ऐसे मन्त्रों का संकलन कर दिया है। वेदों के मार्मिक विद्वान् स्वामी वेदानन्द ने उनकी सुललित व्याख्या कर दी है। प्रत्येक आस्तिक वैदिक के पास यह पुस्तिका होनी चाहिए। मूल्य चार आने। डाक व्यय पृथक्। मिलने का पताः—

मन्त्री, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल,

ज्वा ला पु र

मुद्रक—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय दीवान हाल दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द वैदिक शोध संस्थान ॥ ओ३म् ॥

वेद पथ

मासिक

❀ वैदिक आचार-विचार-व्यवहार-प्रसारक ❀

द्वितीय वर्ष | नभः=श्रावण २००८ वि० (१२७ द०)=जुलाई १९५१ ई० | द्वादशांक

सम्पादक
स्वामी वेदानन्द
अध्यक्ष,
विरजानन्द वैदिक संस्थान
ज्वालापुर,
जि० सहारनपुर

वार्षिक मूल्य
मनी आर्डर द्वारा
५॥)
वी० पी० द्वारा
५॥-)
एक प्रति ॥)

आप का चन्दा समाप्त है। डाकखाने के नये नियम के अनुसार वी० पी० का दर बढ़ गया है। मनी-आर्डर द्वारा वार्षिक मूल्य ५॥) पांच रुपये आठ आने भेजिए।

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

विषयानुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृ०
१. स्वाध्याय सूक्ति संग्रह		३०३
२. भारत की एक लिपि	श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती जी	३०५
३. स्वधा (३)	श्रीमान् विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री जी	३०८
४. "..........इदम् न मम ."	ब्र० श्री भूषण चैतन्य शास्त्री साहित्याचार्य	३१३
५. क्या जीव सच्चित के साथ आनन्द रूप भी है ?	श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती	३१५
६. अदीनाः स्याम शरदः शतम्	श्री पं० लोकनाथ विद्यावाचस्पति	३१७
७. मसाई जाति के प्रदेश में	ब्र० कान्ताकुमारी	३१९
८. मनोविज्ञान में प्राचीन भारत का उत्कर्ष	मनोविज्ञान का एक विद्यार्थी	३२५
९. साहित्य-समीक्षा		३२५
१० सम्पादकीय		३२५

वेदपथ मासिक के नियम

१. वार्षिक शुल्क—पांच रुपये तीन आने ५।।) अगाऊ आने चाहिए। वी०पी० द्वारा मंगाने पर पांच रुपये ।।।-) आने लगते हैं। विदेशों से साढ़े सात रुपये ७।।) लिया जाता है। एक प्रति का मूल्य ।।) है, वी० पी० से ।।।-) लगते हैं। विदेशों से एक प्रति का मूल्य ।।।)

२. प्रकाशन तिथि—अंग्रेजी मास की १५वीं तारीख को भेजा जाता है। पत्र भली भांति देख भाल कर भेजा जाता है, यदि किसी ग्राहक को पत्र न मिले तो उसकी सूचना उस महीने की अन्तिम तिथि तक कार्यालय में आनी चाहिए।

३. लेख यथा संभव संक्षिप्त एवं कागज़ के एक ओर लिखे हुए आने चाहिएं। लेख वेद सम्बन्ध में होने चाहिएं। वैयक्तिक कलह सम्बन्धी लेख प्रकाशित नहीं हो सकेगा। लेख में आवश्यक फेरफार का सम्पादक को अधिकार है। लेख में प्रकाशित विचारों का उत्तरदायित्व लेखक पर है, सम्पादक पर नहीं।

४. लेख, 'सम्पादक, वेद-पथ' मासिक वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (ज़ि० सहारनपुर) के नाम आने चाहिएं।

५. वार्षिक शुल्क तथा पत्र-सम्बन्धी पत्र व्यवस्थापक वेद-पथ मासिक, देहली से करना चाहिए।

६. अश्लील विज्ञापन नहीं लिये जाते।

७. पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या, जो आपके नाम के पहले लिखी है, अवश्य लिखिए।

८. नूतन ग्राहक शुल्क भेजते हुए कूपन में लिख दें कि नूतन ग्राहक हैं।

व्यवस्थापक
'वेदपथ' मासिक देहली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

ओ३म् । सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ (ऋ० १।४१।४)

वेद-पथ

मासिक

ओ३म् । अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि विस्रुतिर्दिवः ॥ ऋ० १।४६।११ ॥

सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि-वानप्रस्थ मण्डल (हरद्वार) का मुखपत्र

देहली

द्वितीय वर्ष } नभः = श्रावण २००८ वि० (१२७ द०) = जुलाई १९५१ ई० { द्वादशाङ्क

ओ३म्

स्वाध्याय सूक्तिसंग्रहः

[स्वामी वेदानन्द सरस्वती]

१९८ वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः (ऋ० ९।१।३)

सब से अधिक सेवा करने वाला बन, इस से सब से बड़ा दोषघातक होकर तू पूजनीयतम बनेगा।

१९९ अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिम् (ऋ० ९।१।४)

महान् निष्काम महात्माओं की पद्धति पर चल।

२०० तव प्रशस्तयो महीः (ऋ० ९।२।८)

तेरी प्रशस्तियां बहुत बड़ी हैं।

२०१ तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् (ऋ० ९.२।६)

तेरी क्रिया और तेरी प्रीतियों से युक्त होकर हम निरन्तर सूर्य को देखें [अर्थात स्वस्थ जीवन बिताएं]

२०२ देवेषु देव ईयते (ऋ० ९।२।४)

देव देवों में ही जाता है।

२०३ हार्दि चोदय (ऋ० ९।८।२)

हृदय की भावना को प्रेर।

२०४ जहि विश्वा अपद्विषः (ऋ० ९।८।७)

सम्पूर्ण द्वेष भावनाओं को मार दे।

२०५ इन्दो सखायमा विश (ऋ० ९।८।७)

हे इन्दो। ऐश्वर्य संपन्न ! मित्र में आविष्ट हो।

Dr. Vivek Arya

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२०६ वृष्टिं दिवः परिस्रव (ऋ० ६।८।८)
द्यौ से वृष्टि बरसा (दिव्य वर्षा कर)

२०७ सुवानो याति कविक्रतुः (ऋ० ६।६।१)
क्रान्त दर्शियों के से ज्ञान कर्म वाला मनुष्य प्रेरणा करता जाता है।

२०८ प्रत्नवद्रोचया रुचः (ऋ० ६।६।८)
पुरानी कान्तियों को चमका (पुरानी प्रीतियों को जगा।)

२०९ सोमासो राये अक्रमुः (ऋ० ६।१०।१)
शांतियां ऐश्वर्य्य के लिये आक्रमण करती हैं (शान्ति से ऐश्वर्य्य की वृद्धि होती है)

२१० सूरा अण्वं वितन्वते (ऋ० ६।१०।५)
ज्ञानी सूक्ष्म का विस्तार करते हैं।

२११ सूरः पश्यति चक्षसा (ऋ० ६।१०।८)
ज्ञानी ही आंख से देखता है (अथवा ज्ञानी ही प्रत्यक्ष देखता है।]

२१२ सोमाय गाथमर्चत (ऋ० ६।११।४)
सोम=शान्ति दाता को गाथा से पूजो।

२१३ नमसेदुप सीदत (ऋ० ६।११।६)
नम्रता से [बड़ों के] पास बैठो।

२१४ इन्दुमिन्द्रे दधातन (ऋ० ६।११।६)
इन्दु=ऐश्वर्य्य को, सोम को, आनन्द को इन्द्र में डालो।

२१५ सोमो यः सुक्रतुः कविः (ऋ० ६।१२।४)
सोम वह है जो क्रान्तदर्शी उत्तम कर्म्मकारी है।

२१६ प्र वाचमिन्दुरिष्यति (ऋ० ६।१२।६)
इन्दु=सोम वाणी को उत्तम प्रेरणा देता है

२१७ योनावृतस्य सीदत (ऋ० ६।१३।६)
सच्चाई के ठिकाने (आधार) पर बैठो।

२१८ सुवीरो अभिशस्तिपाः (ऋ० ६।२३।५)
पाप से बचाने वाला ही सुवीर है।

२१९ धर्म्मणा वायुमा विश (ऋ० ६।२५।२)
धारण शक्ति के द्वारा प्राण में आविष्ट हो।

२२० सं देवैः शोभते वृषा (ऋ० ६।२८।३)
वृषा=सुखवर्षक देवों के साथ सुहाता है।

२२१ सर्प्ति मृजन्ति वेधसः (ऋ० ६।२६।२)
ज्ञानी घोड़े को शुद्ध करते हैं (निर्माण-कुशल Experts in Construction घोड़े समान जीव को शुद्ध करते हैं, मनुष्य बनाते हैं)

२२२ द्यु मन्तं शुष्ममा भर (ऋ० ६।२६।६)
तेजस्वी शक्ति को पुष्ट कर, धारण कर

२२३ सुनोत मधुमत्तमं सोमम् (६।३०।६)
अत्यन्त मधुर सोम तय्यार करो

२२४ रयिं कृण्वन्ति चेतनम् (ऋ० ६।३१।१)
धन को चेतन (चेतनोपयोगी) बनाते हैं।

२२५ भवा वाजस्य संगथे (ऋ० ६।३१।४)
ज्ञान की उत्तम गति में रह

२२६ इन्दो सखित्वमुश्मसि (ऋ० ६।३१।६)
इन्दो। हम मैत्री चाहते हैं।

२२७ क्रत्वे दक्षाय नो हिनु (ऋ० ६।३६।३)
हमें कर्म्म और दक्षता के लिये प्रेर।

२२८ इन्द्राय सिच्यते मधु (ऋ० ६।३६।५)
आनन्द जीव के लिये सींचा जाता है।

२२९ ध्रुवे सदसि सीदति (ऋ० ६।४०।२)
वह ध्रुव स्थान में रहता है।

२३० सोम रास्व सुवीर्य्यम् (ऋ० ६।४३।६)
हे सोम ! सुवीर्य्य दे

२३१ वि नो राये दुरो वृधि (ऋ० ६।४५।३)
ऐश्वर्य्य के लिये हमें द्वार खोल दे।

२३२ इन्दुर्देवेषु पत्यते (ऋ० ६।४५।४)
इन्दु देवों में स्वामित्व करता है।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारत की एक लिपि

[श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रतानन्द सरस्वती]

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत की राज-भाषा अतएव मुख्य भाषा अंग्रेजी थी और वह उस लिपि में लिखी जाती थी, जिस में योरुप की सब भाषाएं लिखी जाती हैं। अब भारत की भाषा आर्य भाषा (हिन्दी) है। यह सत्य है, इस की उन्नति के लिये १५ वर्ष अवधि रखी गई है। और यह आशा ही रखनी चाहिये, कि १५ वर्ष में हिन्दी को वही स्थान प्राप्त हो जाएगा, जो स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेजी को प्राप्त था।

आर्य भाषा (हिन्दी) के साथ साथ भारत में प्रान्तीय भाषाएं भी प्रचलत रहेंगी। इस लिए इस के साथ साथ प्रान्तीय भाषाओं की भी उन्नति होगी। इस समय भारत वर्ष में जो भाषाएं बोली जाती हैं जिन की लिपि भी है, उन का व्यौरा निम्न प्रकार है।

क्रम सं०	नाम भाषा	नाम लिपि	जिस प्रान्त में वह प्रचलित है
१	कशमीरी	शारदा	कशमीर
२	पंजाबी	गुरुमुखी देवनागरी	पंजाब के अमृतसर, जालंधर, लुध्याना, फीरोजपुर के जिले, गुरुदासपुर, होशियारपुर का कुछ भाग, पैप्सु का पटियाला, भटिण्डा, संगरूर, फतेहगढ़ जिले। (यह ध्यान रहे इन जिलों में भी हिन्दी भाषी पर्याप्त संख्या में हैं)
३	आर्य भाषा (हिन्दी)	देवनागरी	राजस्थान उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश का हिन्दी भाग (जबलपुर आदि), मध्य भारत, जम्मू, पंजाब के गुड़गावां, हिसार, करनाल, रोहतक, अम्बाला, शिमला, कांगड़ा और होशियारपुर, गुरदासपुर का भाग। पैप्सु के महेन्द्रगढ़, जींद तथा कंडे घाट का प्रान्त, अजमेर, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, भोपाल, बिलासपुर, विंध्य प्रदेश।
४	उड़िया	उड़िया	उत्कल (उड़ीसा)
५	गुजराती	गुजराती	मुम्बई प्रदेश का गुजरात प्रान्त, सौराष्ट्र, कच्छ
६	मराठी	देवनागरी	मुम्बई प्रदेश का मराठी भाग, मध्य प्रदेश का नागपुर आदि मराठी भाग, हैदराबाद राज्य का मराठी भाग।
७	बंग भाषा	बंगाली	बंगाल, त्रिपुरा, मणिपुर।
८	आसामी	बंगाली (कुछ वर्ण भिन्न हैं)	आसाम प्रान्त।
६	तेलगू	तेलगू	आंध्र प्रदेश, हैदराबाद का तेलगू भाग।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१०	तामिल	तामिल	तामिल नाड प्रान्त, तथा ट्रावनकोर का कुछ भाग।
११	कन्नडी	कन्नडी	कर्णाटक प्रान्त, मैसूर राज्य, मुम्बई प्रदेश के दक्षिण के हुवली आदि जिले, हैदराबाद के गुलबर्गा आदि जिले।
१२	मलयालम	मलयालम	केरल, (ट्रावनकोर कोचीन राज्य), मद्रास प्रान्त का कुछ भाग।

१९५० की जनगणना में इनकी जनगणना निम्न प्रकार दी है: यह अंक दर्ष बोध १९५०, ५१ के अनुसार हैं।

१	आसाम	८५१००००
२	उत्कल (उड़ीसा)	१४४१००००
३	बंगाल	२४३२००००
४	मद्रास	५४२६००००
५	मुम्बई	३२६८००००
६	पंजाब	१२६१००००
७	बिहार	३९४२००००
८	मध्य प्रदेश	२०९२००००
९	उत्तर प्रदेश	६१६२००००
१०	हैदराबाद राज्य	१७६६००००
११	राजस्थान	१४६६००००
१२	ट्रावनकोर, कोचीन	८५८००००
१३	मैसूर	८०७००००
१४	मध्य भारत	७८७००००
१५	सौराष्ट्र	३९६००००
१६	पटियाला, पंजाब राज्य	३३२००००
१७	जम्मू कशमीर	४३७००००
१८	विंध्य प्रदेश	३८८००००
१९	दिल्ली	१५१००००
२०	भोपाल	८५००००
२१	अजमेर	७३००००
२२	त्रिपुरा	५८००००
२३	मणिपुर	५४००००
२४	हिमाचल प्रदेश	१०८००००
२५	कूर्ग	१७००००
२६	विलासपुर	१३००००
२७	कच्छ	५५००००

इन में बिहार उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, राजस्थान, अजमेर, भोपाल, विंध्य प्रदेश, दिल्ली, विलासपुर, हिमाचल प्रदेश पूरे के पूरे आर्य भाषी हैं और इनकी लिपि देवनागरी ही है। इन के अतिरिक्त मध्य प्रदेश की भाषा मराठी और आर्य भाषा दोनों हैं किन्तु लिपि देवनागरी ही है, क्योंकि मराठी भाषा देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती है। इन की गणना १५ करोड़ सताईस लाख के लगभग हो जाती है। यदि पंजाब का दो तिहाई भाग, जम्मू कश्मीर का आधा भाग, पटियाला पंजाब राज्य संघ का तिहाई भाग भी इस में मिला दिया जाय, तो इन की संख्या १ करोड़ साठ लाख होने से यह संख्या सतरह करोड़ हो जायगी। उस समय भारत की जनगणना ३५ करोड़ थी अब ३६ करोड़ है। जिस अनुपात से जनगणना बढ़ी है, उसी अनुपात से आर्य भाषा भाषी भी बढ़े ही होंगे। इस लिये आधा भारत आर्य भाषा भाषी और देवनागरी लिपि लिखने वाला है।

जैसा कि मैंने पूर्व लिखा है, मराठी भाषा की लिपि भी देवनागरी ही है, यदि मुम्बई प्रांत के मराठी भाषा भाषियों की संख्या १ करोड़

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मान कर इस में जोड़ें तो यह संख्या १८ करोड़ हो जाती है। इस प्रकार भारत वर्ष में देवनागरी लिपि सब से अधिक अर्थात आधे भारत वासी देवनागरी लिपि का व्यवहार करते हैं। इस में सन्देह नहीं है।

इस अवस्था में भारतवासियों को इस पर विचार करना चाहिये, कि क्यों न अखिल भारत वर्ष की एक ही लिपि हो।

भारत वर्ष में बंगाली, गुजराती, गुरुमुखी, तेलगू, कन्नडी, तामिल, उड़िया आदि जितनी लिपियां हैं, उन सब का आधार देवनागरी लिपि ही है। उन का वर्ण क्रम देवनागरी जैसा ही है। उन का उच्चारण भी देवनागरी के समान है। यह ठीक है कि उन में किसी २ लिपि में वर्ण न्यून हैं किन्तु जो हैं वह सब देवनागरी के सदृश ही हैं। इस कारण देवनागरी मुख्य है।

अखिल भारत की संस्कृति एक है। इस का मुख्य धर्म ग्रंथ वेद है, उसके पश्चात् ब्राह्मण दर्शन, स्मृतियां तथा पुराण हैं। इन के साथ २ भिन्न २ सम्प्रदायों के धर्म ग्रंथ हैं, उनमें अनेक प्रांतीय भाषायों में हैं किन्तु विचार धारा संस्कृत से ही ली गई है। इस कारण भी देवनागरी लिपि का महत्व है।

यह निर्विवाद है कि बङ्गला, गुजराती, मराठी आदि भाषायें उन्नत हैं, उन में प्रत्येक विषय का साहित्य है यह सब कुछ होने पर भी वह प्रांतीय भाषायें ही हैं अखिल भारतीय नहीं हैं। जब आर्य भाषा अखिल भारत की है, तो इस में साहित्य भी बढ़ेगा। इस का प्रचार भी अधिक होगा।

इस कारण भारतीयों को इस समय लिपि पर विचार करना चाहिये, मेरे विचार में भारतीयों को देव नागरी लिपि ही भारत की लिपि मान लेनी चाहिये। जिस प्रकार मराठी भाषी नेताओं ने किसी समय विचार करके अपनी मोड़ी लिपि छोड़ कर देव नागरी लिपि में मराठी भाषा लिखनी आरंभ की थी। उसी प्रकार इस समय विभिन्न प्रांत वासियों को अपनी प्रांतीय भाषायें देव नागरी लिपि में ही लिखनी चाहिये।

योरुप में भाषायें अनेक हैं यथा अंग्रेजी, जर्मन, फ्रैंच, रशियन आदि। यह सब भिन्न २ होते हुए भी एक ही लिपि अर्थात् रोमन लिपि में ही लिखी जाती है उसी प्रकार भारत के प्रांतों की भिन्न २ भाषायें भी एक ही देव नागरी लिपि में लिखी जानी चाहिये।

देवनागरी लिपि सर्व गुण सम्पन्न है, इस में यह योग्यता है, जो लिखना चाहो लिख लो। इसके अतिरिक्त प्रांतीय भाषाओं में तत्सम वा तद्भवरूप से ७० प्रतिशतक शब्द संस्कृत के हैं और वही शब्द उससे भी अधिक मात्रा में आर्य भाषा में हैं। इसलिये लिखने में कोई कठिनाई न होगी।

इस से भारत की एकता में विशेष सहायता मिलेगी। इस समय यदि कोई व्यक्ति अपने प्रांत से भिन्न प्रांत की भाषा सीखनी चाहता है, तो उसे प्रथम वर्णमाला सीखनी होती है, वर्णमाला सीख कर ही भाषा सीखने में प्रवृत हो सकता है। उस प्रांत की लिपि सीखे बिना भाषा सीखना कठिन है। एक लिपि होने से लिपि विषयक कठिनाई सर्वथा न होगी, जिस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकार मराठी सीखने में नहीं होती। इस से भाषा सीखनी सुगम हो जायगी लिपि भेद से जो भिन्नता हो गई है वह सब मिट जायगी उदाहरण के लिये पंजाबी की जो ज्ञानी आदि परीक्षायें थीं, उस के परीक्षार्थी वह परीक्षा उरदू, देवनागरी, गुरुमुखी लिपि में से जिस में चाहें दे सकते थे। उस समय सिखों में से भी अनेक गुरुमुखी पढ़ कर ज्ञानी परीक्षा में उतीर्ण हुआ करते थे। लिपि और देवनागरी भी होने से आर्य युवक अधिक पढ़ते थे। अब पंजाबी के लिये गुरुमुखी लिपि का नियम होने से उस की गति मन्द हो गई है मेरी सम्मति में अब समय आ गया है। जब भारत वर्ष की एक ही लिपि हो, ताकि एक लिपि से सब प्रांतों में काम हो सकें, जिस भांति योरुप में है।

आशा है, सज्जन इस पर ध्यान देंगे और भारत की एक लिपि बनाने में उद्यमशील होंगे।

स्वधा (३)

[विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री]

प्रथम तीन ऋचाओं के व्याख्यान में यह स्पष्ट करने का यत्न किया गया है, कि वेद के इन स्थलों में 'स्वधा' पद का प्रयोग प्रकृति के लिये हुआ है। प्रारम्भ में ही यह सन्देह प्रकट किया गया है, कि संभव है, वेद में स्वधा पद के अनेक अर्थ हों, पर इस लेख में आधिभौतिक दृष्टि से इस विषय प्रर प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। यथासंभव सन्देह की निवृत्ति और प्रकृत अर्थ की पुष्टि के लिये स्वधा पद के उन अर्थों का निर्देश करना यहां उपयुक्त होगा, जो वैदिक निघण्टु में प्रतिपादित किये गये हैं। एक स्थल [१।१२।६७] पर इस पद का अर्थ उदक और दूसरे स्थल [२।७।१७] पर अन्न किया गया है। यदि इन दोनों अर्थों को मिला दिया जाय, तो स्वधा पद का अर्थ-अन्न पानी-होता है। संसार में प्राणी की मुख्य भोग्य वस्तु इतनी ही है। 'खाना-पीना' इतने ही पर संसार चल रहा है। और जो भी कुछ है, सब इसी बिन्दु पर केन्द्रित हैं, इसी के चारों ओर चक्कर लगा रहा है।

इसी आधार पर तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय, तो यह स्पष्ट भान होगा, कि स्वधा पद के 'प्रकृति' अर्थ की गहराई इसी में अन्तर्निहित है। संसार के मूल में दार्शनिक ऋषियों ने तीन तत्त्वों का अस्तित्व बतलाया है - ईश्वर, जीव और प्रकृति। ईश्वर सबका नियन्ता, जीव, भोक्ता और प्रकृति भोग्य है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है—'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्'। [भोक्ता, भोग्य तथा प्रेरिता को मानने से यह ब्रह्म तीन प्रकार का कहा जाता है] इस त्रिविध वस्तु तत्त्व में प्रकृति को भोग्य कहा है। भोग्य वस्तु ही तो अन्न है। जब स्वधा पद का अर्थ अन्न किया जाता है, तब उसका वास्तविक आधार स्वधा पद के प्रकृति अर्थ में निहित है। मैत्रायणी उपनिषद् में तो प्रकृति को सीधा 'अन्न' पद से ही निर्दिष्ट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया गया है। उसे चेतन भोक्ता का अन्न कहा गया है। 'पुरुषश्चेता प्रधानान्तः स्थः स एव भोक्ता प्राकृतमन्नं भुँक्त इति।' चेतन भोक्ता पुरुष, प्रकृति से प्रभावित हुआ प्रकृति रूप अन्न का ही उपभोग करता है। आगे और लिखा है - 'त्रिगुणं भोज्यं भोक्ता पुरुषः' सत्त्व रजस् तमस् रूप प्रकृति भोज्य-अन्न है, और पुरुष उसका भोक्ता है। आगे स्पष्ट कर दिया है, वह प्रकृति रूप अन्न क्या है? लिखता है—'प्राकृतमन्नं त्रिगुणभेदपरिणामत्वान्महदाद्यं विशेषान्तम्।' महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि से लगाकर स्थूल भूत पर्यन्त सब प्रकृति कार्य जीवात्मा का अन्न है। स्वधा के अन्न अर्थ का आधार यही है अभिप्राय यह है, कि निघण्टु में स्वधा पद का जल अथवा अन्न अर्थ, स्वधा पद के 'प्रकृति' अर्थ को विरोधी नहीं, प्रत्युत पोषक हैं।

स्वधा पद का कतिपय प्रसंगों में किन्हीं विशेष होम्य द्रव्यों के लिये भी प्रयोग होता है। स्वाहा पद की तुलना में किन्हीं विशेष कृत्यों के लिये यह पद प्रयुक्त होता है। पाणिनि ने एक सूत्र [२ ३।१६] में अन्य अनेक पदों के साथ इन दो पदों का एकत्र ग्रन्थन किया है। इन पदों के योग में चतुर्थी बिभक्ति का प्रयोग करने का विधान है। जहां अग्नि में घृत आदि की आहुति दी जाती है, वहां 'स्वाहा' पद का प्रयोग होता है, जैसे—'अग्नये स्वाहा'। परन्तु जब पायस पुरोडाश अथवा अन्य कोई शाकल्य पितृ जनों के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं, तब 'स्वधा' पद का प्रयोग किया जाता है। जैसे—'स्वधा पितृभ्यः'। ऐसे प्रयोगों में भी यह भावना ध्वनित होती है, कि 'स्वधा' पद अन्न की ओर ही संकेत कर रहा है। आत्मा का मुख्य भोग्य या भोज्य अन्न प्रकृति ही है, क्यों कि यह सब प्रकार के भोगों का मूल आधार हैं। इसी स्वारस्य पर प्रकृत्यर्थक स्वधा पद का साधारण अन्न अर्थ में भी प्रयोग किया गया है। इन अर्थों में वस्तुतः विरोधी भावना कोई नहीं है।

निघण्टु में एक स्थल (३।३०।१) पर द्विवचनान्त 'स्वधा' पद का अर्थात् 'स्वधे' इस पद का प्रयोग द्यावा पृथिवी के लिये बताया गया है। वस्तुतः ये द्यावा पृथिवी प्रकृति का ही विकार होने से समस्त प्रकृति का उपलक्षण हैं। यदि गंभीरता से देखा जाय, तो समस्त विश्व का ही इस में समावेश हो जाता है। जो कुछ प्राकृत जगत है, वह द्यावापृथिवी से अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता, वह सब इतना ही है। इसलिये द्विवचनान्त स्वधा पद से द्यावापृथिवी का निर्देश, इस पद के मूल अर्थ प्रकृति की ओर ही संकेत करता है।

स्वधा पद का निर्वचन भी उसके 'प्रकृति' अर्थ का ही द्योतक है। 'स्वस्मिन् धीयत इति स्वधा' जो अपने में ही रहे या धारण की जाये, वह स्वधा है। अभिप्राय यह है, कि जो मूल तत्त्व है, जिसका अन्य कोई मूल नहीं, और वह सबका मूल है। यदि उसका भी कोई मूल होता, तो वह उसी अपने मूल कारण में रहती अथवा धारण की जाती। परन्तु प्रकृति ऐसी नहीं है, इसलिये वही 'स्वधा' है। इस सब से हमने यही प्रकट करना चाहा है, कि स्वधा पद के आपाततः प्रतीयमान अर्थान्तरों का निर्देश, प्रकृति रूप अर्थ में अन्तर्भुक्त हो जाता है। उस से किसी को यह सन्देह नहीं होना चाहिये, कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वधा पद के 'प्रकृति' रूप अर्थ का उनसे कुछ विरोध है। अब कुछ अन्य ऋचाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, जिनमें स्वधा पद का प्रयोग उक्त अर्थ के लिये किया गया प्रतीत होता है। एक ऋचा है-

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन॥
(ऋ० ५।३४।१)

इस ऋचा में स्वधा के तीन विशेषण पद हैं, अजरा स्वर्वती तथा अमिता, यदि यहां स्वधा पद का साधारण पायस आदि अन्न ही अर्थ समझा जाय, तो इन विशेषणों का उस में सामञ्जस्य नहीं हो पाता। इसलिये सब अन्न एवं भोगों का मूल, प्रकृति ही इस पद का अर्थ समझना चाहिये, यह प्रकृति 'अजरा' है, जरा से बुढ़ापे से रहित, वह परिणामिनी होती हुई भी अनादि अनन्त है, इसलिये उस पर 'जरा' का कभी प्रभाव नहीं होता। उस के विकार परिणामशील होने से परिवर्त्तित होते रहते हैं, पर मूल उपादान प्रकृति का अस्तित्व सदा बना ही रहता है, फिर वह 'स्वर्वती' है, स्वर् सुख का नाम है, संसार में जो कुछ अनुकूल वेदना अथवा अनुभूति है, वे सब सुख का रूप हैं। इसके समान ही संसार में प्रतिकूल अनुभूतियों का भी अस्तित्व है, उस को दुःख कहा जाता है। अनुभूति करने वाले आत्मा अथवा जीवात्मा की एक और स्थिति भी संसार में देखी जाती है, उस समय न वह अनुकूल अनुभूति करता है, न प्रतिकूल, अर्थात् सुख अथवा दुःख इन दोनों ही का अनुभव वह उस समय नहीं करता होता, इस स्थिति का नाम मोह है। ऋचा में 'स्वर्' पद, जो सुख का पर्याय है, वह अपनी साथी अन्य अवस्थाओं का भी उपलक्षण है। इस प्रकार सुख, दुःख और मोह इन तीन स्थितियों का अस्तित्व प्रकृति की ओर से ही संकेत करता है। प्रकृति का यही स्वरूप है, इन्हीं के ऊपर नाम सत्त्व रजस् तमस् हैं। इन प्राकृत गुणों से प्रभावित हो कर ही आत्मा इन अवस्थाओं अथवा भावों की अनुभूति किया करता है। इस प्रकार स्वधा, स्वर्वती अथवा सुखवती अर्थात् सुख दुःख मोहात्मिका है। स्वधा का तीसरा विशेषण है 'अमिता'। जिस की इयत्ता को नापा न जासके। सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों अथवा अणुओं के रूप में रहती हुई भी प्रकृति अनन्त है। कोई ऐसा स्थल नहीं, कोई ऐसा अवकाश नहीं, जहां प्रकृति का कुछ न कुछ कार्य विद्यमान न हो। जहां तक हम अपनी दृष्टि शक्ति को दौड़ा सकते हैं, तथा मनश्चक्षुओं से भी कल्पना व विचार के घोड़े पर सवार हो कर अनन्तानन्त प्रदेशों तक पहुँच पाते हैं, सर्वत्र प्रकृति के कार्यों का अस्तित्व दिखाई देता है। इस प्रकार अजरा, स्वर्वती और अमिता ये तीनों विशेषण 'स्वधा' के स्वरूप को स्पष्ट कर देते हैं, तथा इस पद के प्रकृति रूप अर्थ में किसी प्रकार के सन्देह का अवकाश नहीं रहता।

ऋचा में स्वधा पद 'अन्वीयते' क्रियापद के कर्त्तृ रूप में प्रयुक्त हुआ है, इस क्रिया पद का अर्थ है अनुगमन करना। स्वधा अनुगमन करती है। किस का? 'अजातशत्रुम्' अजातशत्रु का, यह अजातशत्रु कौन है? जिसका कोई शत्रु अर्थात् विरोधी कभी न हुआ हो। यह चेतन तत्त्व है, चेतन से यहां आत्मा और परमात्मा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दोनों का ग्रहण किया जाना योग्य है। यह स्वधा परमात्मा का अनुगमन करती है, परमात्मा इस का प्रेरयिता व नियन्ता है, उसके नियन्त्रण में ही यह अपने कार्य किया करती है, उस नियन्त्रण का यह उल्लंघन नहीं कर सकती, इस लिये यह कहना उचित ही है, कि यह परमात्म चेतन का अनुगमन करती है। यह जीवात्मा का भी अनुगमन करती है क्योंकि यह उसका भोग्य है, उस के लिये समस्त भोगों को प्रस्तुत करती है। दर्शनों में कहा गया है, कि प्रकृति का अस्तित्व परार्थ है, अर्थात् दूसरे के लिये है, वह दूसरा जीवात्म-चेतन ही है जिस के लिये प्रकृति का यह विचित्र एवं विविध विस्तार है। इस रूप में प्रकृति, जीवात्म-चेतन का भी अनुगमन करती है, इस प्रकार 'स्वधा अजातशत्रु' अन्वीयते' प्रकृति चेतन तत्त्व का अनुगमन करती है, यह ऋचा का वर्णन बहुत ही महत्त्वपूर्ण हुआ है।

चेतन तत्त्व को 'अजातशत्रु' क्यों कहा गया ? क्योंकि इसका शातयिता इसको विकृत करने वाला, अपने स्वरूप से रूपान्तर में परिवर्तित कर देने वाला कोई भी अन्य तत्त्व अस्तित्व में आज तक नहीं आया, और न आगे ही इस की कोई सम्भावना की जा सकती है। चेतन की तुलना में अथवा चेतन के साथ जो दूसरा अचेतन तत्त्व है, वह तो सदा चेतन का अनुगमन ही करता है, वह उसका विरोध क्या करेगा। फिर इनकी स्थिति पारस्परिक सहयोग की ही स्पष्ट होती है, तब इनके आपसी विरोध की आशंका का भी अवकाश नहीं रहता। यदि इन का पारस्परिक सहयोग न हो, तो सृष्टि रचना अशक्य एवं असंभव है। ऐसी स्थिति में चेतन के लिये अजात शत्रु पद का प्रयोग, उस की वास्तविक स्थिति को बहुत सुन्दर रूप में उपस्थित करता है।

ऋचा में 'अजात शत्रु' का एक विशेषण पद और है, 'दस्मम्'। इस पद का मूल धातु 'दसु' है, जिसका अर्थ है, 'उपक्षय' अर्थात् किसी वस्तु को विकार अथवा परिवर्त्तन की ओर अग्रसर करना, सर्वथा विनाश की ओर नहीं। इसी भाव को प्रकट करने के लिये अर्थ-निर्देश में 'क्षय' के साथ 'उप' उपसर्ग लगा हुआ है। वास्तविक रूप में किसी भी वस्तु का सर्वथा विनाश नहीं होता, यद्यपि आपाततः यही जाना और व्यवहार किया जाता है, कि रूपान्तरित वस्तु विनष्ट हो गई है। उस व्यवहार को पूरा निभाने के लिये हम पदों का भी वैसा ही प्रयोग करते हैं। परन्तु ऋचा में वास्तविक स्थिति का ही उल्लेख हुआ है। अभिप्राय यह, कि वह अजात शत्रु ऐसा है, जो किसी तत्त्व को विकार अथवा परिवर्तन की ओर अग्रसर होने के लिये प्रेरित करता है। परमात्मा समस्त विश्व का और जीवात्मा इस रूप में देह मात्र का प्रेरक बताया गया है। इस प्रकार 'दस्मम्' पद का निर्वचन होगा—'दस्यति उपक्षिणोति इति दस्मः तम्' जो किसी तत्त्व को परिवर्त्तन की ओर प्रेरित करता है। इस रूप में ऋचा के पूर्वार्ध का संक्षिप्त अर्थ होगा—'प्रकृति अपने प्रेरक चेतन तत्त्व का अनुगमन किया करती है।'

संसार की स्थिति के इस आधार को मान कर उत्तरार्ध के द्वारा ऋचा मानव मात्र को उपदेश देती है—'सुनोतन, पचत, ब्रह्मवाहसे पुरुष्टाय पुतरं दधातन'। हे मनुष्यो ! 'सुनोतन'—

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभिषव करो, उत्पादन करो, अर्थात् अनुष्ठान करो शुभ कर्मों का, 'पचत' फिर उनका उपभोग करो। जीवात्मा के द्वारा जो कर्म अनुष्ठित किये जाते हैं, उन्हीं के फलों का वह उपभोग किया करता है। यह जीवात्मा के लिये संसार गति का उपदेश है। पर लक्ष्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। कमाओ और खाओ में ही आत्मा की स्थिति का वास्तविक अवसान नहीं है। इस लिये ऋचा के अन्तिम भाग में अन्तिम लक्ष्य का उपदेश किया गया है। 'ब्रह्म वाहसे' समस्त विश्व का वहन करने वाले अर्थात् अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड के नियन्ता, तथा 'पुरुष्टुताय' सब के द्वारा स्तुति किये जाते हुए, परमात्मा की प्राप्ति के लिये 'पुतरं' प्रतर को 'दधातन' धारण करो। अभिप्राय यह है, समस्त प्राणी जगत् जिस के रसवन में सदा तत्पर रहता है, उस सकल जगन्नियन्ता परमात्मा तक पहुंचने के लिये 'प्रतर' को प्राप्त करो।

यह 'प्रतर' क्या है? 'प्रतरन्ति अनेन इति प्रतरम्' जिस के द्वारा पार उतरा जाय। संसार रूपी अगाध अनन्त सागर से पार उतरने के लिये यह कौन सी नौका है, जिस का यहां 'प्रतर' पद से निर्देश किया गया है? यह नौका है—विवेक अर्थात् आत्म ज्ञान, जैसा विशाल गंभीर सागर है, उससे पार होने के लिये वैसी ही यह दृढ़ नौका है। वेद, वैदिक संस्कृति अथवा आर्य संस्कृति में इस भावना की ओर कभी बल नहीं दिया गया, कि संसार केवल दुःख मय है, यह सर्वथा त्याज्य एवं हेय है। अथवा ऐसा भी नहीं है, कि सब कुछ संसार ही है। इसके परे कोई अस्तित्व नहीं। वैदिक आर्यों की प्रवृत्ति सदा कमठता की ओर रही है, उन्होंने कर्त्तव्य कर्मों के अनुष्ठान में आलस्य नहीं किया, प्रकृति का उपभोग किया, पर स्वामी बन कर, वे कभी प्रकृति के दास नहीं बने, जब बने तब वैदिक मार्ग का परित्याग किया। कर्मों के अनुष्ठान और उपभोग के साथ उन्होंने अपना लक्ष्य सदा अध्यात्म रक्खा। केवल प्रकृति का दास बन जाने पर सुख शान्ति की अन्वेषणा निराशामात्र है। प्रकृति की सर्वथा अवहेलना कर केवल अध्यात्म संभव नहीं। इस लिये प्रकृति पर स्वामित्व की भावना रखते हुए, अध्यात्म की ओर प्रगतिशील होना ही मानव का परम लक्ष्य है।

इस सब विवेचना के आधार पर प्रस्तुत ऋचा का संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार होगा—[अजरा] परिणामिनी होने पर भी प्रवाह से नित्य [अमिता] अनन्तानन्त परमाणु रूप में होने के कारण सर्वत्रव्याप्त [स्ववर्ती] सुख दुःख मोहात्मिका [स्वधा] प्रकृति, [दस्मम] परिवर्तन की ओर जड़ प्रकृति को प्रेरणा करने वाले [अजात शत्रुम] चेतन तत्त्व का [अन्वीयते] अनुगमन करती रहती है। अतएव हे मनुष्यो! [सुनोतन] कर्मों का अनुष्ठान करो, [पचत] कर्मफलों का उपभोग करो, और [ब्रह्म वाह से] सकल जगत् के नियन्ता [पुरुष्टुताय] सब के द्वारा की जाने वाली स्तुतियों के पात्र परमात्मा की प्राप्ति के लिये [प्रतरं] विवेक आत्म ज्ञान का [दधातन] सम्पादन करो। प्रकृति अपने नियन्ता का अनुगमन करती है, आत्मा को चाहिये, वह प्रकृति का दास हो कर उसी में न फंसा रहे, अपने स्वरूप को पहिचाने और अपने लक्ष्य को प्राप्त करे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"...........इदम् न मम ।"

[ले० ब्र० श्री भूषण चैतन्य शास्त्री, साहित्याचार्य लुधियाना]

ओ३म् अयंत इध्म आत्मा जातवेद स्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदम् न मम ॥

अर्थः—हे (जातवेदः)=जातानि वेद= संसार के सब पदार्थों को जो जानता है,= जातानि वा एनं विदुः=संसार के यावत्पदार्थ जिस परमात्मा को सदा प्राप्त रहते हैं=जाते २ विद्यते इति वा=जो सर्वाग्रणी परमात्मा प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में सदा विद्यमान रहता है, जातवित्तो वा जातधनः=जातं वित्तं यस्मात् सः= जिस परमात्मा से आत्मिक, भौतिक आदि समस्त उत्तम धन उत्पन्न होते हैं=जातविद्यो वा जात प्रज्ञानः=स्वभाव से जिस पर परमात्मा का ज्ञान विद्या रहती है या जो स्वभाव से उत्तम ज्ञान है, एवं विधा हे अग्ने ! (अयम् आत्मा) यह मेरा आत्मा, मन तथा देह (ते) तेरा (इध्मः) ईन्धन=समिधा, तेरी सत्ता को द्योतिक करता है (तेन) इस समिधा से (इध्यस्व) अतिशय प्रकाशित हो जा (वर्द्धस्व च) और बढ़ (अस्मान च) और तेरे यज्ञ कार्य में सदा रत चराचर के प्राणी मात्र को (इत्‌द) अवश्य ही (प्रजया) प्रजादि से (वर्धय) बढ़ा (पशुभिः) पशुवों से (ब्रह्म-वर्चसेन) बड़ी कान्ति से (अन्नाद्येन) अन्नादि से (सम् धम) अच्छे प्रकार से बढ़ा (स्वाहा) यह हमारी पवित्र वाणी, हवि रूपी विमल वाणी सुहुत हो, सार्थक हो ।

एक बार एक खञ्ज अपने जीवन में कुछ एक वस्तुओं की न्यूनता के कारण अपने परिवार के अन्य भाई बहिनों के खेलने का स्वामी नहीं बन सका था। पिता आदि इतर सम्बन्धियों का ध्यान भी उस पर उतना नहीं रहता था जितना अन्य सन्तानों पर। यद्यपि उस की चिर स्नेह मयीजननी उसको नियमित रूप से यथा समय गृह-उद्यान के एक निर्जन छोर में शक्ति तथा समझ के अनुसार निजकर्त्तव्य से प्रेरित हो कर सदा बैठा जाती थी ? और निरन्तर उसका ध्यान भी रखती थी । फिर भी प्रायः सदा वह निराश रहता था। किन्तु मातृ स्नेह के कारण उसका हृदय कभी कभी आशा की पावन धारा से भर जाता था । इस लिये वह मरना नहीं चाहता था । मृत्यु से डरता था। सुनील गगन के अन्त हीन छोर पर्यन्त अनिमिष नेत्रों से चिर शांति की खोज में तन्मय रहा करता था। कभी कभी बन्धु बान्धवों की अपने प्रति उपेक्षा पर विचार करता हुआ गाढ़ अन्धकाराच्छन्न नीरव रात्रि की चिता-अग्नि के समान हृदय स्थित विरह अग्नि से खूब सतंप्त होकर कुछ काल के लिये निस्तेज भी हो जाता था। आत्म हत्या करने को उद्यत हो जाता था। क्योंकि आन्तरिक प्रेरणा की ज्योतिः से प्रायः वंचित रहता था। संसार के दारुण विरह-दावानल से तिल-तिल जलने लगता था। परन्तु मातृ-स्नेह में जीवन ज्योति के दर्शन करने से मरना भी नहीं चाहता था । और इससे दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रहने की प्रबल इच्छा उसमें उत्पन्न हो जाती थी। संसार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मरना नहीं चाहता है तो मैं क्यों मरूं ? मरुभूमि में भी कुछ न कुछ उद्भिद् जीवित रहता है। जीवन का कुछ उद्देश्य अवश्य होगा। तभी तो। तो मैं भी क्यों न स्नेह-ममता-अबहुल इस संसार में जीवित रहूं ? जिस प्रकार की कुछ वस्तु को पाकर उद्भिद् मरुभूमि में जीवित रहता है। मुझे भी निष्ठुर जग में जीवित रहने के लिये किसी यथार्थ आवश्यकीय वस्तु की खोज करना चाहिए। इस प्रकार के विचार-समुद्र में जब कभी वह अपने को छोड़ दिया जाता था। तब उसको प्रकाश-मार्ग दृष्टिगोचर होने लगा। तथा आनन्द से विभोर हो उठता था। ऐसी अवस्था में एक दिन वह सम्मुखस्थित गृह-उद्यान के एक जवापुष्प से पूछने लगा ओ मुक्त जावा ? तू मुझे बता इस सायं वेला में, जब कि कुछ समय के पश्चात् निशा अपने तमोमय अंचल से प्राणि जगत् को निस्तब्ध कर देगी, तब तू विषण्ण न होकर हंस हंस कर जननी के चरणों में कैसा स्थान पाएगा ? दिन भर माया वृत्त के बन्धन में रह कर भी तू हंसता रहता है। तेरे सारे जीवन को रोदन-हीन पाता हूं। ओ मूक पुष्प ! तुझसे ही आज यथार्थ शिक्षा मिली है। मैं आज से उस अग्नि स्वरूप जननी के आश्रम में जाऊंगा। मुझे भी उसकी बन्दना से क्रन्दनहीन जीवन प्राप्त होगा। जननी को मैं भी पुकारता हूँ। सत्य अटल नियम से सदा व्यवस्थित रखने वाली विश्व यज्ञ की संचालिका अग्नि स्वरूप हे जननी ! मेरा जीवन भी अपने पवित्र प्रकाश स्पर्श से विकसित पुष्प के सदृश पवित्र बना दे। जिस प्रकार भानु के उदय से कन्टकवन में भी पुष्प अस्फूट शब्द द्वारा खिल खिल कर हंस उठते हैं। पुष्पों की स्वर्गीय चमक से वनवीथी दमक उठती है। ठीक उसी भांति मेरे अन्दर तेरी शक्ति के स्फूरण से दुःखी संसार अपना दुःख भूल कर चिर आनन्द लाभ करें। ओ शक्तिदायिनी ! मुझे भी शक्ति दे। ताकि मैं सुख के सदृश दुःख के साथ भी हेलया संग्राम कर सकूँ। उस रण भूमि में भी विजयी बन सकूँ। मुझे चिरआनन्दमय बना दे। ओ आनन्दमयी जननी ! तेरे अङ्क में जिसको स्थान मिला है उसको चिन्ता किस बात की ? मेरी आत्मा भी तेरे विशाल-सब कल्याण कारी यज्ञ की एक समिधा है। इसके अपवित्र रहते तेरे यज्ञकार्य में उपयुक्त न होने पर इसका यथार्थ उपयोग कैसा होगा ? चिर विकसित लाभकारी सुगन्ध पुष्प के सदृश मेरे आत्मा को भी चिर-आनन्द-मय बना दे। सुख दुःख में, आपद् विपद् में, उत्थान पतन में एक रस मय जीवन बना दे। मैं पवित्र जीवन को पाकर तेरे विश्व-कल्याण यज्ञ का एक सामान्य तो बन जाऊं। तेरी आज्ञा के अनुकूल रहने वाले मुझको खूब बढ़ा। सत् विद्या से, उत्तमधन से, विमल यश से, और परोपकारमय जीवन से मुझे खूब बढ़ा दे। मेरी बढ़ोतरी में विश्व कल्याण निहित हो। राष्ट्र की अप्रतिहत सुख सम्पदा का आह्वान हो। प्रजाओं में द्वेष भावना मिट कर मैत्री भावना की वृद्धि हो। समाज के पुष्कल हितकारी पशु गौ, अश्व आदि के हम शुभ चिन्तक बनें। मानवता की रक्षा के लिये हम दीर्घ जीवन के लिये प्राप्त करें। मानव मात्र का कल्याण हो। हम सबों की पृथकता तो कुछ है ही नहीं। यदि है तो ऐसे अकल्याण पथकत्व का नाश हो। हे विश्व-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कुटुम्बिनी चिरजननी ! हम सब नर नारी तुझ एक मात्र जननी की ही सन्तान हैं। हम में भ्रातृत्व तथा भगिनीत्व का विमल ज्ञानोदय हो। हम सब तेरे विश्वयज्ञ के समिधा-समुच्चय हैं। एक ही अग्नि के आहुत वस्तु हम में से पृथकत्व ज्ञान का तिरोभाव हो। निर्द्वन्द सुख सम्पद् प्राप्त करने वाले ज्ञान का मानवहृद् आकाश में आविर्भाव हो। मानव मात्र को अपनी मानवीय मर्यादा का ज्ञान हो। हे अग्नि स्वरूप जननी तुझे भूल कर, अहंभाव के मतवाले बन कर, हम सुख के स्थान पर दुःख के भागी बन जाते हैं। तेरे विश्वयज्ञ के नाना साधन, स्त्री, पुत्र, परिवार, धन, सम्पत्ति, विद्या, यश, प्रतिष्ठा आदि सब उत्तमोत्तम पदार्थ आज तुझको ही समर्पण है। हे अग्नि...."इदम् न मम"

क्या जीव सच्चित् के साथ आनन्द रूप भी है ?

(आलोचना)

[श्रीमान् स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती जी]

[वेदपथ के गतांक में श्री पं० विश्वनाथ जी का एक लेख प्रकाशित हुआ था जिस में उन्होंने जीव में आनन्द गुण को स्वाभाविक सिद्ध करने का यत्न किया है। वैदिक विद्वान् जीव को सच्चित् मानते हैं। सम्पादक की प्रार्थना पर श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने लेख भेजने की कृपा की है। हमारी इच्छा है कि इस विषय पर पूर्ण संवाद होना चाहिये। अतः विद्वानों से अनुरोध है कि वे पक्ष तथा विपक्ष में अपने अपने विचार भेजने की कृपा करें। वेद में लिखा है—'न ऋते त्वदमृता माद्यन्ते (ऋ०) तेरे बिना मुक्त जन आनन्द नहीं पाते। यदि जीव में आनन्द गुण स्वभाव से है तो इस वेदवचन की क्या गति होगी ? यह भी विचारने का विषय है।—

(सम्पादक)

पण्डित विश्वनाथ जी ने वेदपथ में एक लेख लिखा है जिस का कुछ पाठ इस प्रकार है।

"बहुत से आर्य विद्वान् यह व्याख्या किया करते हैं, कि प्रकृति केवल सत्स्वरूप है, जीवात्मा सच्चित और ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है।

यह व्याख्या मनोरञ्जक तो है, परन्तु यथार्थ नहीं। क्योंकि जीवात्मा को केवल सच्चित् मानना दूसरे शब्दों में इस में आनन्द न मानना रस गुण से रहित मानना न शास्त्र सम्मत है, न युक्ति संगत।

इस प्रमाण में ईश्वर के आनन्द और जीव के आनन्द गुण को एक तुल्य स्वीकार किया है।

ब्रह्म के सत् चित आनन्द और जीव के अस्ति भांति प्रिय रूप से एकता होती है।

आर्यसमाज के कुछ एक महान् विद्वानों तथा नेताओं ने भी जीवात्मा के दो गुण ज्ञान और प्रयत्न ही बताए हैं। जहां यह विचार महर्षि दयानन्द के लेख के विरुद्ध है वहां इसके लिये शास्त्र प्रमाण भी उपस्थित नहीं किया गया।" (वेदपथ वर्ष २ अंक ११ पृष्ठ २६४) विचार।

जिन विद्वानों ने जीव के गुण सच्चित ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिखे हैं। उनका भाव यह है:—

सत्, चित्, आनन्द इन तीन में चित् ज्ञान नाम से, आनन्द सुख नाम से गुणों में लिखा हुआ है सत् कोई गुण ही नहीं है। इस कारण उन विद्वानों ने गुणों की दृष्टि से नहीं लिखा, केवल इन तीनों को ध्यान में रख कर उन का यह लिखना कि प्रकृति सत् है जीवात्मा सचित है, और परमात्मा सच्चिदानन्द है ठीक ही है।

इस विषय में पण्डित जी को प्रकृति विषयक तो कोई आपत्ति नहीं है, जीव विषयक आपत्ति है। वह जीव में सुख नाम से आनन्द गुण मानते हैं चिंतनीय यह है क्या जीव आनंद रूप है। रूप का भाव है जिस में आनंद सर्वदा रहे, जैसे परमात्मा आनंद रूप है, यह बात सब के अनुभव सिद्ध है और इस में प्रमाण भी है कि जीव में जैसे सुख गुण है वैसे दु:ख भी है। यदि आप सुख युक्त होने से सुख रूप कहोगे, तब दु:ख युक्त होने से उसे दु:ख रूप भी मानना होगा। आशा नहीं पण्डित जी ऐसा मानें। अतः विद्वानों का जीव को सच्चित् लिखना ठीक ही है। और पण्डित जी का जीव को सुख रूप मानना ठीक नहीं।

नवीन वेदांति सच्चिदानंद के पर्याय शब्द अस्ति भाति, प्रिय लिखते और मानते हैं, वह जीव के विशेष भाग अंतः करण वा अविद्या विशेषण को छोड़ कर चेतन भाग को ब्रह्मरूप मानते हैं। अतः उनका उदाहरण देना ठीक नहीं। भाषा ग्रंथों में उन का लेख है।

अस्ति भाति प्रिय सिंधु में नाम रूप जंजाल।
लख, तिंह आत्म रूप निज, होयत्तकाल निहाल॥

×२४ गुण

रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि सुख, दुःख इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार धर्म, अधर्म और शब्द।

पण्डित जी ने वैशेषिक सूत्र में लिखे गुण लिखे हैं, जो 'च' से लिये जाते हैं, वह छोड़ दिये हैं।

इन २४ गुणों में से जीवात्मा में १४ गुण माने आते हैं।

संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, बुद्धि (ज्ञान) सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, संस्कार, धम, अधर्म। यह प्राचीन मत है, क्योंकि वह जीवात्मा को विभू मानते हैं। किन्तु महर्षि दयानंद जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है—

"प्रश्न! जीव शरीर से भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न।

उत्तर। परिच्छिन्न।" (समुल्लास ७)

परिच्छिन्न होने से देश कृत परत्व, अपरत्व दो गुण और मान कर जीवात्मा में १६ गुण हैं। यह मानना होगा।

इस प्रकार जीव में सुख तो है, किन्तु जीव का सुख नित्य न होने से उसे सुख रूप नहीं कहते। महर्षि जी ने भी ईश्वर के लिये 'नित्य ज्ञान, आनंद' शब्द का प्रयोग किया है। जीव में सुख मान कर उस में सुख को नित्य नहीं माना।

पण्डित जी ने जो यह परिणाम निकाला है 'इस प्रमाण से ईश्वर के आनंद और जीव के आनंद गुण तो तुल्य स्वीकार किया है" यह परिणाम ठीक नहीं है। आनंद तुल्य होने पर भी नित्य, अनित्य का भेद है। जीव का आनंद

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनित्य है, इस लिये दोनों का आनन्द सम नहीं है। ऐसा ही पण्डित जी को मानना चाहिये।

उपनिषद् में लिखा है:—

रसो वै सः रसं ह्येवायंलब्ध्वानन्दीभवति (तै० २।२८)

वह ब्रह्म रस (आनन्द) रूप है। उसी रस को प्राप्त करके यह जीव आनन्दवान् होता है।

इस से सिद्ध हुआ कि पण्डितों का जीव को सच्चित् लिखना ठीक ही है। क्योंकि जीव आनन्द रूप नहीं, आनन्दवान् है। और पंडित विश्वनाथ जी का जीव को आनन्द गुण वाला होने से आनन्द रूप लिखना ठीक नहीं। अतः पण्डित जी को इस विषय पर पुनः विचार करना चाहिये।

अदीनाः स्याम शरदः शतम्

[श्रीमान् पं० लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति]

यजुर्वेद के ३६वें अध्याय के २४वें मन्त्र का यह प्रतीक है। इस का अभिप्राय यह है कि भक्तजन परमात्मा से कामना करें कि हम दीर्घ जीवी बन कर सर्वदा सर्वथा अदीन होकर जीवें। जैसे गीता का उपदेश करते हुए श्री कृष्ण महाराज को कहना पड़ा कि कर्म और अकर्म का विवेचन करते हुए कवि लोगों को भी मुग्ध होना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार से दीनता और अदीनता का मीमांसन करते हुए बड़े २ विज्ञ पुरुषों को भी मुग्ध होना पड़ता है। जन समुदाय परतन्त्रता को दीनता समझता है परन्तु वस्तुतः परतन्त्रता दीनता नहीं है परतन्त्रता और स्वतन्त्रता को क्रमशः कर्मफल भोग और कर्म कर्त्तव्य के नाम दिये गये हैं। पाणिनि मुनि के मतानुसार "स्वतन्त्रः कर्त्ता" जीवात्मा कर्म कर्त्तव्य में स्वतन्त्र है जब जैसा चाहे करे परन्तु फल भोग में वही जीवात्मा परतन्त्र है किन्तु इसे दीनता नहीं कहा जाता है यदि कर्म कर्तृत्व और फल भोक्तृत्व न हो तो सारे संसार का प्रबन्ध उथल पुथल हो जाय। सांसारिक प्रबन्ध को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिये कर्तृत्व और भोक्तृत्व परमावश्यक हैं। यह विचार सर्वथा असंगत है कि कर्म करने में भी जीवात्मा को प्रेरित किया जाता है। यदि इस धारणा को सिद्धान्त का नाम दिया जाय तो अवश्यमेव प्रेरक प्रेरित से अधिक दोष का भागी बन जायगा अतः कर्तृत्व में कर्त्ता का स्वातन्त्र्य पराक्षेप निवृत्ति का कारण है। अब प्रश्न होगा कि अदीनता किसे कहा जाय। अदीनता का अर्थ है बिना कर्म के फल पाने की कामना की निवृत्ति। जिन लोगों ने बिना कर्म के अनुनय विनय मात्र से मनोरथ सिद्धि का कल्पित मन्तव्य बना रखा है वे ही लोग बिना कर्म फल भोग के क्षमा के मन्तव्य को भी अपनाते हैं। ऐसा मन्तव्य तर्क शून्य है और न्याय का घातक है। अतः हमारी अदीनता यही है कि हम न तो कर्म के बिना फल की कामना करें और न कर्म के पश्चात् फल भोग से बचने की चेष्टा करें। यही अदीनता का वास्तविक अभिप्राय है और कुछ भी नहीं है। प्रायः देखा जाता है कि पंडित पुरुष राजकीय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर्मचारियों को कुवाक्य कहते और स्वतन्त्रता पर लांछन लगाते हैं। रेलों, बसों और ट्रामों पर यात्रा करने वालों के साथ कर्मचारी गण घोर अन्याय करते हैं। ऐसे नीच कर्मचारी अपना झुंड बना कर प्रायः ऊपर से नीचे तक सूत्रित रहते हैं। वे भोली भाली जनता से धन बटोर कर उन्हें उन २ गाड़ियों की टिकटें नहीं देते। बसों और ट्रामों पर ऐसा भी देखा जाता है कि क्योंकि उन के विशेष स्थान से विशेष स्थान तक मार्ग व्यय निश्चित हैं उन के वाहक यदि कोई व्यक्ति मार्ग में उतर जाय तो उससे टिकट ले लेते हैं और दूसरे से पैसे लेकर वही टिकट उस को दे देते हैं और पैसे स्वयं रख लेते हैं। कोई आक्षेप करे तो लाल पीले हो कर उत्तर देते हैं कि हमारा वेतन कम है हम क्या करें इस के साथ ही राज्य कर्मचारियों को भी अपशब्द कहने लगते हैं। पकड़े जाने पर नाना प्रकार से गिड़गिड़ाते हैं और छूट जाने का यत्न करके घूस देने और प्रेरणात्मक भावनाओं से काम निकालते हैं। ऐसे चरित्रहीन व्यक्ति ही वास्तविक रूप से दीन हैं। वेद की आज्ञानुसार इन अनाचारों से बच कर हम अदीन हो जायें ऐसी कामना संध्या के समय प्रभु के आगे व्रत रूप में रख कर तदनुकूल जीवन बनायें और फल पायें। शेष यह रह जाता है कि कौन से वे कर्म हैं जिन का आचरण करते हुए हम अदीन बन सकते हैं और परमात्मा पर पूर्ण विश्वास कर के कृतकर्मानुकूल फल भोगते हुए अपने आप को फल भोग में परतन्त्र समझें परन्तु दीन न समझें। इस के लिये प्रतिक्षण वेद पथ पर चलने का यत्न करें। यह सब तभी हो सकेगा यदि हम वैदिक स्वाध्याय शील बनेंगे और आर्य समाज के सुन्दर तथा सरल तर्क को जानने के लिये आर्यसमाज के सत्संगों में श्रद्धा पूर्वक भाग लेंगे। इस मूर्खता पूर्ण भ्रम से भी हट जाना चाहिये कि हमारे किये कर्म का फल किसी और को मिल सकता है अथवा किसी का किया हुआ कर्म हमें उस का फल पहुँचा सकता है।

आर्यसमाज में भी कुछ ऐसे लोग पनपने लगे हैं जिनका ऐसा विश्वास है कि एक का किया हुआ जपन दूसरे को दोष मुक्त कर सकता है तथा आर्यसमाज के अमुक प्रचारक में ऋषि दयानन्द जी के आत्मा ने अथवा स्वामी शंकराचार्य के आत्मा ने प्रवेश किया है इत्यादि व्यर्थ और असत्य कल्पना उक्त मृतात्माओं के निरादर तथा तिरस्कार का कारण है। जिन के सम्बन्ध में यह धारणा बनाई जाती है वे वस्तुतः उक्त मृतात्माओं के सद्भावों से सहस्रों कोस दूर खड़े हुए उन के मार्ग के अनवलम्बी प्रतीत होते हैं। ऐसी कल्पनायें भी दीनता की सूचक हैं जो कि हमें सत्यार्थ से दूर ले जाती हैं। हमें "अदीना स्याम शरदः शतम्" इसके तथ्यार्थ को जानकर अदीन बनने का यत्न करना चाहिये। स्वतन्त्रता को उच्छृंखलता बना कर मन माने रूप से परिणामभया वह पथ से हट कर वेदपथ के द्वारा आत्मोत्थान करके पूर्णतया अदीनता प्राप्त करनी चाहिये।

—★—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मसाई जाति के प्रदेश में

[लेखिका:—ब्र० कान्ताकुमारी]

हिमाच्छादित गिरि मेरू की तलहटी में अरुशा नामक एक रमणीय तथा मनोहारी ग्राम बसा हुआ है, जहां प्रकृतिनटी नित्य प्रति नवविधरंगों से अठखेलियां करती सुशोभित होती है। रंगबिरंगी व पुष्पों जटित हरित वस्त्रों से सज पूर्णयौवना प्रकृति सबके आकर्षण का स्थान बनी है, जहां ग्रीष्म, शिशिर, वर्षा आतप, घाम के आने पर भी सदा वसंत, सौंदर्य और सुषमा के फुआरे उड़ा करते हैं, जिसे देख इन्द्र को भी ईर्ष्या आ जाती है। वास्तव में अरुशा बड़ा ही रमणीय, स्वास्थ्यकारी एवं दर्शनीय स्थान है। यहां यूरोपियन और एशियन अलग २ रहते हैं, उसमें भी यूरोपियन विभाग सुन्दर और स्वच्छ तथा ऊंचाई पर है!

यहां के हिन्दूमण्डल की ओर से हमें भी आमंत्रण दिया गया था। स्वदेश से आई प्रचारिका बहिनों को अपने घरों में बुला, यहां के हिन्दू भाइयों ने आर्यकालीन मर्यादा का परिचय दिया। हमारी सब व्यवस्था श्री धर्मपाल जी, श्री मणीभाई, श्री रामभाई पटेल ने इण्डियन एसोसियेशन की ओर से की थी। हमारे उद्देश्य के अनुरूप यहां आते हमने प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया और चहुँ ओर अद्भुत वातावरण छा गया। इण्डियन गर्वमैंट के स्कूल के मैदान में और Paradise थियेटर में हमारे शानदार प्रोग्राम हुए। यूरोपियन प्रोग्राम में ग्रीक समाज के प्रमुख ने कन्याओं के भव्य कार्यक्रम को श्रंजलि प्रदान करते हुए कहा था कि तुम्हारा कार्यक्रम देख कर हमें हमारे स्पार्टा के युवक, युवतियों का स्मरण हो आता है। इस प्रकार प्रवासी भारतीयों में ही नहीं, परन्तु युरोपियन, आफ्रिकन, आदि सभी प्रजाओं में स्वतन्त्र भारत की जागृत नारी ने जागृति ला, भारत की कीर्ति में चार चांद लगा दिये। प्रोग्रामों और प्रचार से सारा अरुशा पागल सा हो गया और बच्चों से बूढ़ों तक नवजीवन का संचार हो गया।

यह तो सिद्ध ही है कि अरूशा वसंत का धाम एवं नानाविध वनस्पतियों का स्थान है। यहां हरी शाकभाजी, कांफी, केला, पपीता और आडु उत्पन्न होते हैं। यहां पपीते की खेती विशेष रूप से की जाती है। पपीते के पकते ही वृक्ष पर उनमें स्थान २ पर सुराख कर दिये जाते हैं, जिसमें से बूंद २ रस टपकता रहता है। वृक्षों के नीचे कपड़ा बिछा कर रस एकत्रित किया जाता है और उसका पाउडर बना अमेरिका, युरोपादि सुदूरवर्ती देशों में भेजा जाता है, जिसका प्रयोग अनेक दवाइयों में किया जाता है। यहां ताजे दूध और शुद्ध मक्खन का भी बड़ा सुख है। यहां से तीस मील की दूरी पर श्री ठाकोरभाई ने अपनी दूध की डेरी खोल रखी है जहां ५४० गायें हैं, जो विशेषतया युरोप और आस्ट्रेलिया से लाई गई हैं और दूध भी काफी प्रमाण में देती हैं। इन्हें तरह २ का चारा देकर दूध में वृद्धि की जाती है, इस प्रकार सारे गांव को नित्य प्रति ताजा दूध दिया जाता है।

अरूशा से कुछ मील की दूरी पर ही हरित-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पत्रों के बीच नीलकमलों से युक्त 'डुलुटीलेक' सुशोभित होती है, जिसकी गहराई का पता आज तक कोई लगा ही नहीं सका, जिसमें स्वतंत्र गति से हिपोपोटेमस विहार करते है। इसी सरोवर के पास ही पोलिश कैम्प है, जिसमें पोलेंड से लाये हुए शरणार्थी रहते हैं। १६३६ के विश्वमहायुद्ध में पोलेंड की पराजय होने के पश्चात् वहां से कुछ लोगों को लाकर पूर्व आफ्रिका में बसाया गया है, जिसमें से कुछ अरूशा के पास बसाये गये हैं। अंग्रेज सरकार ने इन्हें बसाया, जमीन दी और आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था की। इस कैम्प का घेरा चार मील है, जिसमें पांच हजार के करीब व्यक्ति रहते हैं। इन पर कड़ी निगरानी रखी जाती है, बिना पूछे कोई भी व्यक्ति बाहर अन्दर नहीं आ जा सकता। इन्हें स्वाश्रयी तथा स्वावलम्बी जीवन बिना सिखाया जाता है। सारे केम्प में एक भी नौकर नहीं है, प्रत्येक काम उन्हें हाथ से ही करना पड़ता है। सब को अलग २ काम बांट दिये गये हैं, जैसे कि कपड़े धोना, रसोई बनाना, बच्चों को पढ़ाना, खेतीबाड़ी करना आदि। विवाहित व्यक्तियों को अलग २ जुम्बे दिये जाते हैं तथा अन्य लड़कों एवं लड़कियों को अलग २ रखा जाता है। इन्हें शिक्षण के साथ २ दस्तकारी, हुनरकला, भी सिखाई जाती है, जिससे वे अपने पांव पर खड़ा रह अपना जीवन निर्वाह कर सकें। इस कैम्प की लड़कियें यदि किसी अन्य जाति के पुरुष से विवाह करना चाहें तो कर सकती हैं, पर कोई भी पुरुष अन्य जाति की लड़की से शादी नहीं कर सकता। इस प्रकार महायुद्ध से पीड़ित, मस्त व्यक्तियों को शरणार्थी के रूप में यहां लाकर बसाया गया है।

अरूशा से १०० मील की दूरी पर गोरोंगोरों Crater है, जिसे देखने के लिए लोग अमेरिका, यूरोपादि सुदूरवर्ती देशों से आते हैं। यह समुद्र सतह से ६००० फीट और अरूशा से ५००० फीट ऊँचा है। बहुत वर्षों पूर्व यह ज्वालामुखी पर्वत था, किन्तु कुछ वर्षों से फट गया है। बीच में मैदान और पानी है तथा आस पास के सब पर्वत खिसक गये हैं सो अब प्राणियों का विश्रान्तिस्थल बना हुआ है। हमने भी इस दर्शनीय स्थल को देखने का प्रोग्राम रखा। श्री रणजीतभाई की नई बस में हमने इस सफरी के लिए प्रयाण कर दिया। हमारा ट्रक सीधे मार्गों पर दौड़ा जा रहा था और रास्ते में कहीं २ जिराफ, जीब्रा, हिरन, जंगली गाय, शुतुर्मुर्ग आदि प्राणी दर्शन दे जाते। यहां के जंगलों में सिंह भी रहते हैं, अतः हम तो स्वातिनक्षत्र के चातक की नाईं चारों ओर टकटकी लगाये देखते रहते। रास्ते में 'न्गारा नारों' 'न्गारा मटोनी' आदि गांवों में से होते हुए आगे बढ़ रहे थे। २० मील की दूरी पर अरडाई पर्वत और ३५ मील की दूरी पर 'ऑरुबेरी' की पर्वत श्रेणियों को पार करते हुए निर्निमेष नेत्रों से वनराज की राह देख रहे थे, पर हिरणों के सिवाय कुछ नजर ही न आता था, जो मोटर की आवाज सुनते ही ऐसे भागते जैसे कि कोई शिकारी उन के पीछे पड़ा हो। हिरण पीछे को देखते हुए अपने पिछले भाग को अगले भाग में समेटते हुए दौड़ते जा रहे थे। उस समय तो कालिदास के शाकुन्तला का 'मृदुग्रीवाभंगाभिराम' यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्लोक स्मृतिपट पर ताज़ा हो जाता। यह प्राणी देखने में जितना सुन्दर, भोला और नाजुक प्रतीत होता है, वास्तव में वह है भी वैसा ही। जिराफों को तो कभी अपनी गर्दन भी ऊंची करने का कष्ट नहीं करना पड़ता, ऊंचे वृक्षों पर इन्हीं का ही राज्य है। बेचारे इन्हीं निरीह प्राणियों को रात्री में वनराज का भोजन बनना पड़ता है, पर जिराफभाई अपना पूरा बचाव कर लेते हैं। यदि सिंह पास आ जावे तो ऐसी लात लगाते हैं कि वह अपनी खोह ही भूल जाये।

अरडाई पर्वत पर कुछ वर्ष पूर्व चार हज़ार भूमि में गेहूँ उगाये जाते थे, किन्तु अब वह शस्य श्यामला भूमि उर्वरा पड़ी है। जब गेहूँ की खेती होती होगी, उस समय एकड़ों ज़मीन हवा के साथ अपने गेहूँ के हरे भरे डंठलों के साथ कितना नृत्य और आनन्द करती होगी। आगे जाकर 'इन्सिडयापांडा' अर्थात् Cross Road आया, यहां चरोम्ला बहुत होते हैं इसे यहां म्बुयुनी कहते हैं, इससे इस गांव का नाम भी 'म्बुयुनी' रखा गया है। सामने क्षितिज के उस पार बादल सूर्य को छिपा अपनी सुनहरी कोर चमका रहे थे यह बताने के लिये कि सूर्य हमारे पीछे छिप रहा है तुम्हें कड़ी धूप से बचाने के लिए मदमस्त हाथियों की नाईं पहाड़ियों पर बादल उमड़ रहे थे। दूर एक पहाड़ी के नीचे दरिया जैसे दिखने लगा पूछने पर पता चला कि यह खारे पानी का सरोवर है और उस के पास ही गरम पानी 'मोटो माली' में से धूँआ निकल रहा था। रास्ते में 'उम्टोवा उम्बू' गाँव आया और फिर संख्याबद्ध कलकल निनाद करते झरनों तथा वृक्षावलियों से युक्त उच्च पर्वत—श्रेणियों पर चढ़ना शुरू कर दिया। सर्व प्रथम 'कीलेमा टेम्बो' आया, कीलेमा अर्थात् पहाड़ और टेम्बो अर्थात् हाथी। ऊपर चढ़ते जाते थे और नीचे सुन्दर दृश्यों को निहार आंख और मन दोनों को ही शांत और तृप्त करते। कई स्थान पर S और U के क्रोस हैं, ऐसा लगता था कि गोरों गोरों अभी आ जावेगा, किन्तु वह तो दूर ही दूर भागता जाता। कुछ दूर पर 'कीलेमा या मलेला' नामक पहाड़ी आई। पहले तो खूब चढ़ाई और फिर ऐसा लगने लगा कि मानो नीचे की ओर जा रहे हों, हम तो ६००० फीट की ऊंचाई पर चढ़ रहे थे। यहां कई गाँव बसे हुए हैं, घर बड़े ही विचित्र ढंग के हैं। जमीन में गड्ढे खोद कर घर बनाये जाते हैं और ज़मीन के ऊपर तो केवल घास की छत ही दिखाई देती है। इधर ठंड भी बहुत बढ़ती जा रही थी पर सूर्यदेव ने बादलों में से झांकते हुए थोड़ी किरणें प्रसारित कर ही दीं, किन्तु बहते वायु में उन का कुछ प्रभाव न रहा। हमारे ऊपर पचने से वर्षा भी हो चुकी थी।

सवेरे के निकले हुए पथिक अभी तक लक्ष्य-स्थल पर नहीं पहुँचे थे। भगवान् सविता-नारायण भी प्रातः से पूर्व से पश्चिम की यात्रा हमारे साथ ही कर रहे थे, वे पश्चिम के क्षितिज पर पहुँचने की तैयारी कर रहे थे और हम भी पहुँचने की तैयारी में थे कि चढ़ाई ऊपर हमारी मोटर अटक गई, वर्षा के कारण सारी मिट्टी चिकनी हो गई थी और पहिया भी अपनी जगह पर ही घूमता था। हमें डर था कि मोटर कहीं पीछे खाई में ही न गिर जाये। तीन चार महा-रथियों ने धक्के देने शुरू किये पर मोटर देवी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इतने से कहां सन्तुष्ट होने वाली थी। उस ने कहा कि १०० मील तक तुम्हें अपने हाथों उठा अब मैं, थक गई हूं, संकट में पड़ी हुई मुझ को चार क़दम तो ऊपर चढ़ाओ। मोटर की सेवा को लक्ष्य में रख कर सब एक साथ नीचे उतर पड़े और काका हाथ रथियामणा के अनुसार हमारे संगठित बल ने मोटर को ऊपर चढ़ा दिया। इतने में सामने से पू० भ्राता जी तथा धर्मपाल जी आये और कहा कि यहां से अब चलते २ ही जाना होगा, क्योंकि एक यूरोपियन की कार तो खाई में गिरते २ बच गई। हमारे बूट भी इतने भारी हो गये थे कि मानों नीचे लोहे की एड़ी लगी हो। कुछ समय में ही हम Crater के पास पहुंच गये। हमें नीचे उतरना था, पर मार्ग बताने वाला ही कोई न था, आखिर एक अंग्रेज साहब ने मार्ग बताया और कहा कि यहां तीन गेंडें घूम रहे हैं, इसलिए सावधानी रखना। ज्यादा नीचे जाना हमने भी भयप्रद समझा और १५०० फीट में से ७०० फीट ही नीचे उतरे। नीचे उतरे तो सही पर एक भी जानवर न देख करके, क्योंकि वर्षा के कारण यहां से सभी जानवर चले गये थे। जंगली जानवरों को न देखने का असंतोष अवश्य रहा, पर Crater को देख ही सन्तोष माना, क्योंकि भूमंडल में यह भी एक दर्शनीय स्थल है। यहां से दस मील की दूरी पर 'सेरंगेटी प्लेस' और 'मोटो माजी' दो स्थान हैं, जहां बहुत जानवर मिलते हे, पर समयाभाव और वर्षा के कारण हम न जा सके। संध्या तो पहाड़ पर बिताई पर निशा अरूशा में बितानी थी और वहां पहुँचते २ कम से कम तीन बजने वाले थे। दर्शनीय स्थल देखकर वापिस तो लौटे, पर चांदनी रात तो थी ही नहीं जो प्रकाश देती, किन्तु अन्धकार में ही हमारी मोटर की दो चमकती आंखें मार्ग ढूँढती जा रही थी। अरूशा में हमारे लिए भोजन तो तैयार था, पर रात्री यहीं हो जाने से धर्मपाल जी की बहिन के यहां 'ओल्डयानी' में ही भोजन किया। पेट पूजा कर आगे बढ़े पर ठंडी कहती थी कि अब तो मेरा काम एक स्वैटर से भला क्या होता और हम भी रात्री में ही अरूशा जाना चाहते थे, क्योंकि वनराज को देखने को अभी भी उत्सुकता थी। ओल्डयानी से थोड़े कम्बल ले सटकर बैठ गये। जब सब खड़े हुए तब तक तो मोटर में स्थान की कमी थी, किन्तु मोटर ने स्वयं ही जगह कर दी। पश्चिम के काले बादलों में चमकती विद्युत हमें कह रही थी, 'सावधान हो जाओ, अभी वर्षा तुम्हें गीला कर देगी, और वास्तव में दो तीन बार उसने अपना रूप प्रकट कर ही दिया, पर अन्त में भगवान् को हमारे नये खुले ट्रक और हम पर दया आई। ठंडी और वर्षा ने यू० पी० प्रयास में बरेली की घटना को पुनः स्मृति पट पर ला दिया। हम सोचते थे कि खड़े होकर जानवर देखें, किन्तु ठंड की चपेटें हमें बरबस बैठाती और कहती कि मुझे सीधा बहने दो, बीच में मत खड़े रहो वरन् तुममें घुस कर हैरान करूँगी, आखिर कुदरत के आगे हार ही खानी पड़ी। एक स्थान पर हमने अपनी कार बहिन को खड़े पाया, पूछने पर पता चला कि पंचर हो गया था, हमारे पहुँचने से पूर्व ही जिसे धर्मपाल जी ने ठीक कर दिया था। उन्होंने दो सिंह भी देखे थे, कार अपनी आवाज़ और लाईट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से जानवरों को दूर भगा देती थीं, जिससे हमारे नसीब में कुछ न हुआ। सोते जागते सवेरे चार बजे अरूशा पहुँचे, बैट्री डाल, ट्रक में से सामान उतारा और फिर रजाइयों में जा गरमी पाई। वास्तव में आज की सफरी आनन्द, ज्ञान और उल्लासमयी थी।

मोशी, अरुशा में मसाई जाति रहती है, जो कि सभी आफ्रिकन जातियों में उच्च एवं श्रेष्ठ मानी जाती है। ये लोग प्रायः दिगम्बरावस्था में ही घूमते थे, पर आजकल सरकार का नियम हो जाने से कोई भी व्यक्ति ऐसी अवस्था में नहीं आ सकता। जिस प्रकार भारत में ब्राह्मण सर्व श्रेष्ठ माने जाते हैं, उसी प्रकार मसाई जाति भी सर्व श्रेष्ठ मानी जाती है। आज लाखों की संख्या में आफ्रिकन प्रजा इस्लाम और ईसाईयत के रंग में रंगी जा चुकी है, पर मसाई जाति अपने धर्म के सिवाय अन्य किसी में विश्वास नहीं रखती और अभी तक इस्लाम और ईसाई-यत के रंग से अछूती है। यदि कोई भी मसाई अन्य धर्म में आस्था रखता है तो ये लोग उसे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यद्यपि आज ये जातियें असभ्य एवं जंगली मानी जाती हैं, पर पूर्व काल में इन की संस्कृति अवश्यमेव उन्नत रही होगी।

ये लोग तीन गज का भगवा वस्त्र धारण करते हैं, कान में कुण्डल और सिर पर लाल मिट्टी का लेप करते हैं। ये जाति बौध श्रमण सन्यासियों से बहुत मिलती है। गाय को अति पवित्र मानते हैं, क्योंकि वह दूध देती है। इन के यम नियम भी बहुत हैं। ये जाति सर्वदा हाथ में दंड धारण किये हुए होती है और शिकार प्रवीण होती है। इनके दंड में इतना जोर होता है कि सिंह जैसे हिंसक प्राणी को भी मारने का काम करता है। इस दंड में इनका अपार विश्वास होता है। ये बड़े ही निशान बाज होते हैं, एक बार निशान के खाली जाने पर दुबारा कभी नहीं लगाते और मानते हैं कि मुंगु (परमात्मा) उन से नाराज हो गया है, अतः निशान नहीं लगा।

इस जाति में कन्या को बहुत ही सम्मानित दृष्टि से देखा जाता है। प्राचीन भारत की मर्यादानुसार कन्या ही स्वयंवर करती है। कोई भी पुरुष किसी लड़की से विवाह का प्रस्ताव नहीं रख सकता। विवाह के लायक भी वही पुरुष होता है, जिस ने समूह में सोते हुए सिंहों को जगा कर एक सिंह खून कर विजय प्राप्त की हो, उसी को कन्या वरमाला पहना, जीवन साथी बनाती है। विवाह के समय कन्या को भेड़, बकरी, गाय आदि पशुधन दिया जाता है, जो कि इन लोगों की सम्पत्ति होती है। एक माता एक पुत्र जब तक तीन वर्ष का न हो जाये तब तक दूसरा बालक उत्पन्न नहीं कर सकती। इस में भी संयम और यम नियम जैसी कोई महान् वस्तु प्रतीत होती है। ये लोग गले में, हाथी और कानों में मोतियों के आभूषण पहनते हैं। कान में तो दर्शनबद्ध चूड़ियें पहनते है। यदि इस जाति के बीच में बहुत समय तक रहा जाये तो इन की संस्कृति और सभ्यता का पता लगाया जा सकता है। (उद्धृत)

—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनोविज्ञान में प्राचीन भारत का उत्कर्ष

[मनोविज्ञान का एक विद्यार्थी]

भारतवर्ष किसी समय सर्वविध उन्नति के शिखरपर आरूढ़ था। केवल आरूढ़ ही नहीं था। सब का गुरू भी था। आलस्य, प्रमाद, पारस्परिक वैमनस्य, तज्जन्य परतन्त्रता के कारण शनैः २ इस के सब गुणों का लोप होता गया। आज ऐसी अवस्था है कि प्रत्येक बात में, प्रत्येक व्यावहारिक विद्या में यह परमुखापेक्षी हो गया है। दुर्भाग्य से जिन लोगों के हाथ में देश की बाग डोर है, वे प्रत्येक बात में पश्चिम का मुख ताका करते हैं। किन्तु पश्चिम वालों की धारणा क्या हो रही है इस के लिये नीचे की पंक्तियों को ध्यान से पढ़िये। मनोविज्ञान Psychology योरुप का एक अभिनव ज्ञान है। योरुप इसमें बहुत उन्नत माना जाता है। किन्तु योरुप के माने हुए मनोवैज्ञानिक इस निकर्ष पर पहुंचे हैं कि विद्या में भी प्राचीन भारत उन से बहुत आगे है लन्दन से Psychology नामक मासिक पत्र निकलता है उस के मई १९५१ के अंक में प्रो० डेस्मण्ड का एक लेख Sane Psychology for Sane People शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। उस में वे लिखते हैं—

Psychology is inevitably bound up with philosophy and religion—we have within us a host of potentialities which we never develop, largely because our studies in mind do not lead to think about them or even suspect to their existence—

What for instance do we of the west still know of the subconcience.

अर्थात् मनोविज्ञान अनिवार्य्य रूप से दर्शन तथा धर्म्म से सम्बद्ध है। हमारे भीतर अनेक ऐसी शक्तियां हैं जिन का विकास हम नहीं कर पाते, क्योंकि मन के सम्बंध में हमारा अध्ययन उनके सम्बंध में विचार ने ही नहीं देता।..........उदाहरणार्थ, हम पश्चिम के लोगों को अवचेतना के विषय में कितना ज्ञान है?

इस के आगे वे लिखते हैं—

East has specialized for centuries in just this line of investigation and has collected a vast store of knowledge.............And indeed, as jung and after psychologists have out spokenly stated—'We are but babies to in the deep things." But is also my first hand experence.

अर्थात् पूर्व (भारत) ने शदियों तक खोज की इस दिशा में विशेष यत्न किया है, और ज्ञान की एक विशाल सामग्री संगृहीत की है—और सचमुच, जैसे युंग (महान् जर्मन मनोवैज्ञानिक) तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने खुल्लमखुला स्वीकार किया है कि—"हम गम्भीरतत्त्वों में उन के (भारतीयों के) सामने बच्चों के समान हैं।' और मेरा अपना साक्षात् अनुभव भी ऐसा ही है।

डेस्मण्ड इङ्गलैंड के प्रख्यात मनोवैज्ञनिक हैं। वे वहां के एक विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अध्यापक रहे हैं। वे अपने साक्षात् firsthand अनुभव के आधार पर कहते हैं कि पाश्चात्य मनोविज्ञानिक इस विषय में भारतीयों के सामने बच्चे हैं।

भारतीयों का कर्त्तव्य है मनोविज्ञान संबधी साहित्य को संसार की विविध भाषाओं में प्रकाशित करें। इस दिशा में कार्य्य का आरम्भ पश्चात्य पण्डितों ने ही किया, यह हमारे लिये लज्जा की बात है।

साहित्य-समीक्षा

आर्य साम्राज्य—लेखक—महात्मा विद्यानन्द विदेह, प्रकाशक—वेद संस्थान, अजमेर।

महात्मा विद्यानन्द विदेह की वेद पर अद्भुत प्रीति है। वे उस का अनवरत स्वाध्याय करते हैं। स्वाध्याय के रस का स्वयं ही उपभोग नहीं करते, वरन् दूसरों को भी कराते हैं। आर्य्य साम्राज्य उनके स्वाध्याय का मधुर फल है। यदि देश में सौ पच्चास वानप्रस्थ महा० विद्यानन्द जी जैसे हो जाएं तो वेद का पुष्कल प्रचार हो जाए। महात्माजी ने दो तीनों वर्षों में कई वेद विषयक पुस्तक लिख डाले हैं। उन की सभी पुस्तकों की छपाई तथा कागज़ उत्तम होते हैं। विदेह जी पूर्वाश्रम में पोलीस विभाग में थे। उस में रहते हुए उन्होंने वेद का स्वाध्याय किया और इतनी योग्यता प्राप्त की कि वे पुस्तकें लिखने में समर्थ हो गए। उन की पुस्तकों में पराई पुस्तकों की चोरी नहीं होती जैसी तथाकथित कई गवेषकों के ग्रन्थों में होती है।

महर्षि महिमा—लेखक श्री पं० लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति।

पं० लोकनाथ जी प्रसिद्ध व्याख्याता एवं शास्त्रार्थी हैं। इधर इन्होंने कई वर्षों से कविता करना आरम्भ किया है। उन की कविताएं कई मासिकों एवं साप्ताहिकों में प्रकाशित होती रहती हैं। उन की कविता में प्रसाद गुण होता है। महर्षि महिमा उन की एक ऐसी कविता है जिस में संस्कृत के साथ हिन्दी भी है। कविता अच्छी बनी है।

पण्डित जी से हमारा अनुरोध है कि वे अपनी प्रतिभा को महर्षि के विस्तृत जीवन को कविता में लिखने का प्रयत्न करें।

सम्पादकीय

द्वितीय वर्ष समाप्त—इस अङ्क के साथ वेदपथ का द्वितीय वर्ष समाप्त होता है। यह वर्ष कई दृष्टियों से हमारे लिए विषम रहा है। कागज़ इतना महंगा हो गया कि सभी पत्रों को अपनी पृष्ठ संख्या घटानी पड़ी और पृष्ठ संख्या घटाकर भी मूल्य बढ़ाना पड़ा। वेदपथ ने पृष्ठ अवश्य घटाए किन्तु मूल्य नहीं बढ़ाया।

अब तक हम वेदपथ में न्यूज़प्रिन्ट अखबारी कागज़ का व्यवहार करते आए हैं। आज नूतन वर्ष से पुस्तकी कागज़ का व्यवहार करना चाहते हैं जो अखबारी कागज़ की अपेक्षा अधिक महंगा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्राहकों का सहयोग के लिए हम धन्यवाद देते हैं। उससे भी अधिक हम अपने मान्य लेखकों का विशेष आभार स्वीकार करते हैं जिनके कृपापूर्ण सहयोग के बिना वेदपथ का संचालन दुस्साध्य हो जाता। कुछ एक लेखकों को हमसे शिकायत भी है कि हमने उनके लेख प्रकाशित नहीं किये। उसका हेतु स्पष्ट है। 'वेदपथ' नाम ही उसके उद्देश्य एवं क्षेत्र को प्रकट कर रहा है। जिनके लेख नहीं छपे, उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि उनके लेख सुलेख होते हुए भी वेदपथ के क्षेत्र से सामञ्जस्य नहीं रखते थे। जिनके लेख प्रकाशित नहीं हो सके, उनके लेख उनको वापस कर दिये गए।

ग्राहक बनाने में मा० गुरुदित्तामल जी (अब आप पूर्व अफ्रीका चले गए हैं), ब्र० भूषण चैतन्य लुधियाना एवं स्वामी अनुभवानन्द जी कैराना का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

डा० लालचन्द्र जी का निधन—सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल ज्वालापुर के अधिकृत वानप्रस्थाश्रम के अन्यतम निवासी श्री डा० लालचन्द जी का गत ३० जून प्रातः को देहान्त हो गया। डाक्टर जी चिरकाल से वानप्रस्थ होकर आश्रम में रह रहे थे। अनेक वर्षों तक आपने आश्रम के चिकित्सालय में बिना कुछ लिये कार्य किया, जब आप के नेत्र जाते रहे तब विवश आपको यह सेवा त्यागनी पड़ी। आपने पिछले दिनों छः सौ रुपये मण्डल को देकर लालचन्द लक्ष्मी देवी वेदप्रचार निधि स्थापित कराई जिसका उद्देश्य वेद सम्बन्धी साहित्य निर्माण एवं प्रकाशन है। नैमित्तिक वैदिक पाठ तथा ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासनामन्त्रः नामक दो लघु पुस्तिकाएं उस निधि से प्रकाशित हुई हैं। इससे बहुत पूर्व डाक्टर जी ने प० सातवलेकर जी को ऋग्वेद संहिता के प्रकाशनार्थ दो सहस्र रुपये दान दिये थे। डाक्टर जी में दान की उत्तम प्रवृत्ति थी। गुरुकुल कांगड़ी तथा महाविद्यालय ज्वालापुर उनके दान के विशेष पात्र रहे। विद्यार्थियों की भी डाक्टर जी बहुत सहायता करते थे। उनके निधन से आश्रम, गुरुकुल एवं महा विद्यालय को बहुत क्षति हुई है। डाक्टर जी का पूर्वाश्रम का विशाल परिवार है। किन्तु वे इस से अलग ही रहते थे।

अन्ध विश्वास से सत्यानाश—खाद्य-मन्त्री श्री मुन्शी ने २ जुलाई को अम्बाला में नगर पालिका की ओर से दिये गए अभिनन्दन के उत्तर में एक रहस्य का उद्घाटन किया। उन्होंने बताया कि देश तो 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन के प्रसंग में टिड्डी दल को दलने में प्रयत्नशील है किन्तु गुजरात में कई ऐसे पुराणपन्थी हैं जिन्होंने टिड्डी दल को खड़ी फसलें चट करने में सहायता दी।

गुजरात मुन्शी जी का अपना प्रान्त है। मुन्शी जी आए दिन भद्दे बेहूदा [लोपामुद्रा जैसे] गन्दे उपन्यास लिखकर वैदिक सभ्यता को कलङ्कित करने के स्थान में यदि अपने प्रान्त के लोगों के विचारों के सुधार करने वाला साहित्य निर्माण करें और कराएं तो बहुत भला हो।

मुन्शी जी का उपर्युक्त भाषण उन सभाओं के लिए एक चुनौती है जो समाज सुधार का विरोध करती रहती हैं। इस घोर खाद्य संकट के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समय इस प्रकार का कुकृत्य दण्डनीय होना चाहिए।

कोरिया काण्ड की समाप्ति—जिस समय यह अङ्क पाठकों के कर कमलों में पहुंचेगा, उस समय, संभावना है कि, कोरिया का विनाशकारी युद्ध समाप्त हो जाए, क्योंकि उभयपक्षों में सन्धिचर्चा होने वाली है। कोरिया के युद्ध में कोरिया का ऐसा नाश हुआ है कि उसके शीघ्र उत्थान की संभावना नहीं है। इसे कहते हैं—'जोगी जोगी लड़े खप्पर की हानि।' झगड़ा रूस अमरीका का, मारा गया कोरिया।

तेल देखो तेल की धार देखो—आज का युग तेलयुग है। कलकारखाने, यातायात के साधनों, युद्ध सब का अवलम्ब प्रधान साधन तेल है। ईरान तेल का बहुत बड़ा क्षेत्र है। वहां के तेल के उत्पादन का एकाधिपत्य ऐंग्लो ईरानियन आयल कम्पनी था। ईरान में क्रमशः जातीय भावना के उग्र होने के साथ यह भावना उत्पन्न हुई है कि ईरान में उत्पन्न होने वाले तेल से लाभ का मुख्य भाग ईरान को मिलना चाहिए और वह तभी संभव हो सकता है कि इस तेल व्यापार का जातीयकरण किया जाए। इस भावना से प्रेरित होकर ईरान की धारासभा ने उक्त आशय का विधान स्वीकार कर दिया। इससे ईरान तथा ब्रिटेन की सरकारों का पारस्परिक तनाव बढ़ा है। ईरान के प्रधान मन्त्री ने यहां तक कह दिया है कि भले ही तेल का निकलना बन्द हो जाए किन्तु ईरान अपने इस विधान में तनिक भी शिथिलता नहीं आने देगा। एक समय ऐसा सन्देह होने लगा था कि तृतीय विश्वयुद्ध छिड़ जाएगा। ईरान ने तो कह भी दिया था, कि भले ही इस कारण विश्वयुद्ध भी छिड़ जाए। मानव के भीतर बैठी दानव प्रवृत्ति कहां तक भयङ्कर एवं उग्र हो सकती है, इसी से अनुमान किया जा सकता है। बात सीधी सी है अब अंग्रेज के दिन लद गए। अब उस की धौंस की कोई परवाह नहीं करता। ईरान को मुस्लिम राष्ट्रों ने परामर्श दिया है कि वह इसराईल से अपना सम्बन्ध विच्छेद करले तो समस्त मुस्लिम राष्ट्र उसका साथ देंगे।

दुर्भाग्य का विषय यह है कि सारे के सारे मुस्लिम राष्ट्र दरिद्र एवं दुर्बल हैं। पिछले दिनों अकेले नवजात इसराईल ने इन सब राष्ट्रों की सम्मिलित सैन्य शक्ति की जो दुर्दशा की थी, वह सब को विदित है। ईरान भी इन सब की शक्ति जानता है।

यदि सब राष्ट्र 'जियो तथा जीने दो' के मानवोचित आदर्श का पालन करें तो इस प्रकार के सब विवाद समाप्त हो जाएं। स्पष्ट ही है कि ईरान में उपजने वाले पदार्थ पर सर्व प्रथम अधिकार ईरान का ही न्यायसंगत जंचता है। अंग्रेजों ने अरबों रुपये वहां अवश्य लगाए, किन्तु उसका लाभ भी उन्होंने अरबों खरबों रुपये उठाया किन्तु ईरान भूखा रहा। कदाचित् यह विवाद इतना उग्र रूप धारण न करता यदि ईरान पारस्परिक समझौते से कार्य्य लेता और anti sabotage बिल प्रस्तुत न करता। भगवान् सब को सुमति दें। राजनैतिक नेता उलझना ही उत्युक्त करते हैं।

आर्य्य समाज तथा राजनीति—ऋषि दयानन्द प्रथम महामनुष्य थे जिन्होंने राजनै-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तिक चेतना को इस देश में उद्बुद्ध किया। कांग्रेस का तब जन्म भी नहीं हुआ जब ऋषि ने स्वराज्य की घोषणा की थी। उन्हों ने सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादि भाष्य भूमि का तथा वेद भाष्यों में स्वराज्य तथा राजनीति की पुष्कल चर्चा की है। किन्तु आर्य्य समाज समूह रूप से राजनीति से अलग रहा है यद्यपि उस की वेदी से राजनैतिक व्याख्यान सदा होते हैं और आर्य्य समाज के प्रमुख कार्य्यकर्त्ता देश की राजनीति एवं राजनैतिक आन्दोलनों में बढ़चढ़ कर भाग लेते रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य्य समाज को राजनीति में भाग लेने के लिये उत्तेजित करने और उसे रोकने वाले दोनों दल अपने अपने कथनों का भाव कदाचित नहीं जानते। हमारे विचार में इन दोनों धारणाओं को विचार विनिमय करके प्रतिदिन के कटु विवाद को समाप्त कर देना चाहिये। और वह तभी सम्भव होगा, जब उभय पक्ष अपने मंतव्यों का स्पष्टीकरण सुबोध रीति से करेंगे।

काश्मीर— देश के टुकड़े करके जब अंग्रेज़ भारत को छोड़ कर चले जाने लगे तो लगभग ६०० रियासतों को भी स्वतन्त्र कर गए और उन्हें अधिकार दे गये कि भारत या पाकिस्तान में से जिस के साथ चाहो सम्बन्ध कर लो। और सम्बन्ध करने का अधिकार रियासतों के राजों नवाबों को दे गए। तदनुसार काश्मीर के महाराज ने भारत से सम्बन्ध स्थापित किया। पाकिस्तान वालों का विचार था काश्मीर का सहचार हमारे साथ होगा। किन्तु उनकी कल्पना के विरुद्ध काश्मीर ने अपना भाग्य भारत के साथ करने में कल्याण माना। पाकिस्तान ने काश्मीर पर आक्रमण किया। हम यू० एन० में फरियाद लेकर गए। तीन वर्ष से अधिक हो गए किन्तु न्याय होने में नहीं आता। उधर कोरिया को लीजिए इधर उत्तरीय कोरिया ने दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण किया और उधर उस का प्रतिरोध करने को यू० एन० की सेनायें पहुँच गई।

बात स्पष्ट है, यू० एन० ओ० के चौधरियों के स्वार्थ की सिद्धि जिस में हो, वही न्याय है। कोरिया के विषय में जो स्थिति उत्तरीय कोरिया की है वही पाकिस्तान की काश्मीर के विषय में है, किन्तु उत्तरीय आक्रान्ता घोषित हुआ और पाकिस्तान—ऐसी संस्था से न्याय की आशा? भारत सरकार ने यू० एन० के प्रतिनिधि ग्राहम के प्रति असहयोग की घोषणा कर के अत्यन्त उचित कार्य्य किया है। ग्राहम के आगे का समाचार पा कर पाकिस्तानियों ने सीमा पर पुनः आक्रमण आरंभ कर दिये थे। इस पर हमारी सरकार ने उचित रोष प्रकट किया है। प्रधान मन्त्री जी तथा गोपालआयंगर ने रोष पूर्ण उद्गारों से फटकार जताई है। और स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि पाकिस्तान को इस उद्धतता के परिणाम भोगने के लिये तय्यार रहना चाहिए। पाकिस्तान के समाचार पत्र अपने पाठकों को काश्मीर के विषय में सदा भड़काते रहते हैं। हमारी सरकार के कर्णधार स्वयं सुजनता की मूर्त्तियां होने के कारण अन्यों को भी वैसा ही समझते हैं किन्तु दूसरे येननापि प्रकारेण कार्य्य सिद्धि पर विश्वास रखते हैं। वचन भंग को वे दोष मानते ही नहीं। उन के वचन भंगों की सूची इतनी दीर्घ है कि यहां उस के लिए स्थान ही नहीं है। जिन देशों के पास विपुल युद्ध सामग्री है वे भी युद्ध की बातें करने से सकुचाते हैं किन्तु पाकिस्तान दिन रात युद्ध की चर्चा करता है। अवस्था उस की यह है कि पखतूनों को वश में नहीं कर सका। भारत को यदि युद्ध से संकोच है तो इसलिये कि वह युद्ध को मानवता के लिये अहितकर मानता है। यदि युद्ध उस के लिये अनिवार्य्य हो गया तो पाकिस्तान को उस का सामर्थ्य ज्ञात हो जाएगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छप गया

प्रकाशित हो गया

सांख्यदर्शन का इतिहास

जिस ग्रन्थरत्न की इतने काल से प्रतीक्षा हो रही थी, अन्तको वह छपकर आगया। इस ग्रन्थरत्न में सांख्यदर्शन की रचना का काल, रचयिता, तथा पुराने सांख्याचार्यों एवं सांख्य के नवीन संप्रदाय के प्रवर्त्तक ईश्वर कृष्ण तथा अन्य सांख्याचार्यों का प्रामाणिक इतिहास है। सप्तसिन्धु कहां हैं ? सरस्वती कहां थी। अब कहां है ? वर्तमानकाल में मिलने वाला सांख्य दर्शन ही सांख्यविषयक सब से पुराना ग्रन्थ है, इस सांख्य दर्शन के उद्धरण किन किन पुराने ग्रन्थों में मिलते हैं इत्यादि सहस्रों विषयों का निरूपण आप को इस ग्रन्थरत्न में मिलेगा। विद्याभास्कर पं० उदयवीर शास्त्री जी के जीवनसार के अध्ययन का यह सार है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए० पी० एच० डी तथा डा० मंगलदेव शास्त्री एम० ए० डी० फिल ऐसे उद्भट विद्वानों ने इस की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि सांख्यदर्शन के संबन्ध में संसार की अन्य किसी भी भाषा में इतना बड़ा तथा प्रामाणिक ग्रन्थ आप को नहीं मिल सकता। ग्रन्थ की प्रति थोड़ी छपाई हैं। अतः मंगाने में शीघ्रता कीजिए। मूल्य ३०) तीस रुपये। डाकव्यय अतिरिक्त।

क्या आप गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं ?

यदि आप का उत्तर हाँ में है, तो क्या आप उसका अर्थ, उसका गौरव, उसके जप की विधि जानते हैं ? इन तथा इन जैसी अन्य आवश्यक बातों को जानने के लिए सावित्रीप्रकाश नामक पुस्तक का स्वाध्याय कीजिए। उसके लेखक अध्यात्मविद्या के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ हैं। गायत्री मन्त्र की इतनी उत्तम व्याख्या आपको और कहीं नहीं मिलेगी। अनेक समाचार पत्रों तथा विद्वानों एवं साधकों ने उसकी प्रशंसा की है। इतनी गुणगणाढ्य पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया है, डाक व्यय इसके अतिरिक्त है।

मिलने का पता—

मन्त्री— विरजानन्द वैदिक संस्थान

ज्वालापुर (जि० सहारनपुर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

["Regd. No. E. P. 425. रजि० सं० इ० पी० ४२५

क्या आप आर्यों के परम धर्म का पालन करते हैं ?

ऋषियों का आदेश है—'वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' वेद संस्कृत भाषा में हैं। लोग चाहते हुए भी इस कठिनता के कारण उस से लाभ न उठा सकते थे। ऋषि दयानन्द ने सब से पहले इस कठिनता को दूर किया। ऋषि से प्रेरणा पाकर उनके चरण चिन्हों पर चलने वाले श्री स्वामी वेदानन्द ने सर्वसाधारण के लिए वेद को सुलभ कर दिया है। एक दिन के लिए एक मन्त्र के विचारण से ३६६ मन्त्रों का संग्रह 'स्वाध्याय सन्दोह' नामक विशाल ग्रन्थ रच कर उन्होंने सर्वसाधारण के लिए वेद का द्वार खोल दिया है। मन्त्रों की व्याख्या वेदमन्त्रों, उपनिषद्वचनों तथा अन्य अनेक ऋषियों के वचनों से पुष्ट की गई है। भाषा सरल, ललित है। साधारण जनता तथा लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने समान रूप से इस की प्रशंसा की है। समाचारपत्रों के सम्पादकों ने इसकी सराहना की है। यह बात सर्वसम्मत है कि संप्रति प्रतिदिन स्वाध्याय करने के लिए इससे उत्कृष्ट ग्रन्थ और कोई नहीं है। इतने विशाल ग्रन्थ का मूल्य केवल छः रुपये ६) है। डाक व्यय इससे पृथक् है। मंगाने की शीघ्रता कीजिए अन्यथा अगले संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह इसका दूसरा संस्करण है।

प्रार्थना करना सीखिए

प्रत्येक आस्तिक को प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए। ऋषि ने साधारण जनों की सुविधा के लिए चारों वेदों से केवल आठ मन्त्र स्तुति प्रार्थना-उपासना के लिए संकलित किए हैं। आराधक प्रकार श्री स्वामी वेदानन्द ने उनकी भावमयी व्याख्या लिखी है, जिसे पढ़ते समय पाठक तन्मय हो जाता है। आप भी उसे पढ़िये और आनन्द विभोर हूजिए, उसका नाम 'ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासनामन्त्राः' है। मूल्य केवल ढ़ाई आने, डाक व्यय पृथक्।

नैमित्तिक वैदिक पाठ

संकलन कर्ता—श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी तथा व्याख्याकर्ता श्री स्वामी वेदानन्द जी

पुराने आर्य्य प्रत्येक कार्य्य करते हुए भगवान् का स्मरण किया करते थे। उनका यह स्मरण वेद मन्त्रों के द्वारा होता था। श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने प्रत्येक अवसर के उपयोगी ऐसे मन्त्रों का संकलन कर दिया है। वेदों के मार्मिक विद्वान् स्वामी वेदानन्द ने उनकी सुललित व्याख्या कर दी है। प्रत्येक आस्तिक वैदिक के पास यह पुस्तिका होनी चाहिए। मूल्य चार आने। डाक व्यय पृथक्।

मिलने का पताः—

मन्त्री, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासि वानप्रस्थ मण्डल,

ज्वा ला पु र

मुद्रकः—श्री ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
सार्वदेशिक प्रेस में छपकर वेदपथ कार्यालय दीवान हाल दिल्ली से प्रकाशित किया गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साहित्य चर्चा

'मस्ताना जोगी' हिन्दी मासिक (नव वर्षाङ्क) सम्पादक तथा प्रकाशक श्री चेतन कुमार भटनागर पृष्ठ संख्या १२०, मू० १)

मस्ताना जोगी का यह नव वर्षाङ्क सुन्दर, सुरुचि-पूर्ण भारत के गौरवमय इतिहास का स्मरण कराने वाली कहानियाँ और एकांकियों से युक्त है। वर्तमान समय में जबकि अधिकांश कहानी पत्रिकाएं केवल वासना युक्त अनैतिक सस्ती कहानियों को ही पाठकों के सम्मुख रख उनका सस्ता मनोरंजन करती हैं ऐसे समय में मस्ताना जोगी का अपना एक आदर्श है। पत्र की अधिकाँश कहानियाँ भारतीय इतिहास के गौरवमय पृष्ठों पर आधारित हैं और इनके द्वारा भारत का इतिहास एक मनोरंजक स्वरूप में जनता के सन्मुख आता है इसमें सन्देह नहीं। कहानियों साथ ही अनेक प्रकार के उद्योग धंधों के सम्बन्ध में विस्तृत और उपयोगी विवरण देना मस्ताना जोगी की अपनी विशेषता है। मस्ताना जोगी का यह नव वर्षाङ्क सर्व प्रकार से पठनीय है।

'लोक साहित्य' (पंजाबी मासिक) नव वर्षाङ्क सम्पादक एवं प्रकाशक स० नानक सिंह पृष्ठ संख्या १६६, मूल्य १)।

लोक साहित्य पंजाबी साहित्य का प्रथम श्रेणी का साहित्यिक मासिक है। पत्र के सम्पादक का पंजाबी उपन्यास क्षेत्र में वही स्थान है जो हिन्दी में मुंशी प्रेमचन्द का, बंगला में बंकिम और शरद का, मराठी में श्री हृदय नारायण आप्टे का और गुजराती में श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का। लोक साहित्य का यह वृहत् नव वर्षाङ्क पंजाबी साहित्य की गम्भीर विचारपूर्ण एवं मननीय सामग्री लेकर उपस्थित हुआ है। पंजाबी साहित्य के सर्व श्रेष्ठ कलाकारों की रचनाओं से अङ्क सुसज्जित है। पत्र में पंजाबी साहित्य के अनेक साहित्कारों के चित्र हैं जिससे अंक की उपादेयता और बढ़ गई है।

पत्र में एक त्रुटि सर्वत्र दृष्टिगत होती है। वह है अनावश्यक रूप से उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग। जैसे 'सम्पादक' के लिए 'एडीटर' 'नाटक-कार' के लिए 'ड्रामा नवीस', उपन्यासकार के लिए 'नावलिस्ट' आदि। हमारा यह मत है कि पंजाबी साहित्य भी अपने देश की अन्य भाषाओं के साहित्य के श्रोत संस्कृति साहित्य से ही सर्वाधिक सम्बन्धित है अतः शब्दों के चुनाव में अरबी, फारसी और अंग्रेजी आदि विदेशी शब्दों का सहारा न लेते हुये संस्कृत अथवा हिंदी के शब्दों का ही उपयोग किया जाय तो अधिक उत्तम रहेगा।

अंत में लोक साहित्य का यह नव वर्षाङ्क बहुत

Dr. Vivek Arya

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुन्दर है और ऐसा अंक प्रस्तुत करने के लिए सम्पादक महोदय बधाई के पात्र हैं।

संत सिपाही (पंजाबी मासिक) कल्गीधर अंक, सम्पादक एवं प्रकाशक मा० तारासिंह, पृष्ठ संख्या ७०, मूल्य ।।।) ।

'संत सिपाही' अकाली दल के सर्वोच्च नेता मा० तारासिंह द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित है।

अकाली दल की विचारधारा का यह मुख्य पत्र है। तथा स्वयं मा० तारासिंह के अनेक विषयों पर लिखे गये लेखों से युक्त रहता है। 'सन्त सिपाही' का यह अंक गुरु गोविंदसिंह जी की जयन्ती अंक होने के कारण कल्गीधर के सम्बन्ध में एक विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करता है। दशमगुरु के सम्बन्ध में प्रगट किए गए विचार एक पक्षीय अधिक दृष्टिगत होते हैं।

धर्म-ज्योति (हिंदी साप्ताहिक) प्रधान सम्पादक श्री रामअवतार पाण्डेय। प्रकाशक श्री सत्यनारायण कस्तूरिया चौखम्बा, सन्मार्ग प्रेस, बनारस।

पत्र के मुख्य पृष्ट पर स्वामी कारपात्री जी तथा श्री गुरुजी के पत्र के लिये दिये गए आशीर्वादों से पत्र की की विचार धारा एवं उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। स्वामी करपात्री के शब्दों में "धार्मिक जनता का यह साप्ताहिक पत्र 'धर्म ज्योति' अपने उद्देश्यों का पूर्णत: पालन करते हुए देश में भारतीय संस्कृति और भारतीय राजनीति का प्रचार करने में अत्याधिक तत्पर हो।" तथा श्री गुरुजी के शब्दों में "आपका यह साप्ताहिक उत्तरोत्तर प्रगति कर जन साधारण को यथार्थ ज्ञान प्राप्त करा दे।"

हम भी उक्त दोनों महानुभावों के स्वर में स्वर मिलाकर पत्र की उत्तरोत्तर उन्नति की शुभ कामना करते हैं।

★

(६४ पृष्ठ से आगे)

जोरावर सिंह—कौन से बचन, तुम्हें याद हो तो अंतिम समय में सुनाओ।

फतेह सिंह—हाँ भइय्या याद है। सुनो।

चित्त चरण कमल का आसरा चित्त चरण कमल संग जोड़िए।
मन लोचे बुरियाइयाँ गुरुशब्दी यह होड़िए॥
बाँह जिनादी पकड़िए शिर दीजे, बाह न छोड़िए।
गुरु तेगबहादुर बोलिया सिर दीजै धर्म न छोड़िए॥

जानी खाँ—देखते क्या हो मिस्त्री रक्खो आखिरी ईंटे भी और किस्सा खत्म करो।

(और मिस्त्री ने सहमते हाथों दो खूनी ईंटे और रख दी और बड़ी बड़ी आँखें निकाल कर जानी खाँ उस दीवाल को देखता रहा।

['प्रगति की लहरें' एकाङ्की संग्रह से]

हर प्रकार के शारीरिक दर्द, जुखाम, बुखार के लिए

आनन्दार्णव

खाइए और वेदना हटाइए

देवेन्द्र फार्मेसी, सब्जी मण्डी, कानपुर।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सामयिक विषय

❀ नैपाल में राजनीतिक सुधार ❀

जबसे म० त्रिभुवन वीर विक्रमशाह नैपालसे आकर दिल्ली में भारत सरकार के अथिति बने सम्पूर्ण संसार का ध्यान नैपाल की ओर आकर्षित हो गया था। भारतवर्ष की जनता तो नैपाल में घटित हो रही घटनाओं को बड़े ध्यान और गम्भीरता पूर्वक देख रही थी। दोनों प्रदेशों की जनता का ऐतिहासिक सांस्कृतिक और राजनीतिक रूपसे कितनासंबंध घनिष्ट है यह कहने की आवश्यकता नहीं। गत ८ जनवरी को नेपाल के प्रधान मंत्री महाराणा मोहन शमशेर जंगबहादुर ने काठमाण्डू में निम्नलिखित आशय की घोषणा की—

'महाराज त्रिभुवन वीर विक्रमशाह देव नैपाल की राजगद्दी पर ज्यों के त्यों बने रहेंगे, १९५२ तक विधान-निर्मात्री समिति संघटित हो जायगी तथा १४ मंत्रियों की अन्तर्कालीन सरकार शीघ्रताशीघ्र बना दी जायगी जिसमें ७ मंत्री जनता के चुने हुये होंगे।

इस घोषणा में दो और भी प्रमुख बातें हैं। पहली तो युद्ध रुक जाने पर समस्त राजनीतिक बंदी रिहा कर दिये जायँगे तथा जनता को स्वेच्छानुसार राजनीतिक दल संगठित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जायगी।

नेपाल सरकार की इस घोषणा का सर्वत्र स्वागत किया गया है यद्यपि यह भी समाचार प्राप्त हुआ है कि नेपाल कांग्रेसने इस योजना का स्वागत न करते हुए युद्ध जारी रखने का निश्चय किया है। इस प्रकार की घोषणा नेपाल के इतिहास में अद्वितीय है तथा यह नैपाल कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं के महान प्रयत्नों की प्रतिक्रिया स्वरूप है, यह निश्चित है। किंतु हमारा मत है कि नैपाल कांग्रेस के नेताओं को इस योजना का विरोध नहीं करना चाहिए। और इसे राजनीतिक सुधार का प्रथम पग समझकर स्वीकार कर लेना चाहिए।

हमारा तो यह मत है कि नैपाल की सरकार तथा जनता दोनोंको ही अपने इतिहास, और विचार धारा तथा आधुनिक परिस्थिती में भी संसार के भावी संकट में भारत की सीमा रक्षा के लिए अपने को भारत में सम्मलित करने का निश्चय करनाचाहिए। इस महत्वपूर्ण निश्चय से स्वयं नैपाल की शक्ति भी अनेक गुनी बढ़ जायगी और पर्याप्त समय की पराधीनता के कारण जो कुछ पृथकत्व की भावना निहित हो गई है, वह भी दूर हो जायगी।

उपर्युक्त सुधारों के पीछे भारत सरकार का कितना बड़ा प्रसास था इसे प्रकट करने की आवश्यकता नहीं। भारत सरकार एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या पर इस प्रकार की सफलता के लिए बधाई की पात्र है।

—

Dr. Vivek Arya Vedic

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

❀ सरदार का विछोह ❀

हमने अपने गतांक में भारत के महान तत्वदर्शी योगिराज अरविंद के महाप्रयाण पर अपने पाठकों सहित श्रद्धांजलि अर्पित की थी और आज हमें अपने उप प्रधान मन्त्री, भारत के ६०० छोटे बड़े राज्यों के संघटन कर्त्ता, स्वतन्त्र समर के महान सेनानी सरदार बल्लभभाई पटेल का विछोह सहना पड़ा है। स्वातन्त्र्य काल के इन साढ़े तीन वर्षों में हमने देश के अनेक महान नेताओं को खो दिया है। महात्मा गांधी, सर तेजबहादुर सप्रू, डा० सच्चिदानंद सिन्हा, श्री शरदचन्द्र बोस, डा० लहनासिंह; श्री गोपीकृष्ण बारदोलाई आदि अनेक गण मान्य नेता हमारे बीच नहीं हैं।

सरदार के निधन से देश की जो क्षति हुई है। उसकी पूर्ति सम्भव नहीं दीखती, किंतु उसके लिए प्रयत्नशील होना हम सबका कर्त्तव्य है। वे कांग्रेस की विचारधारा के अनुगामी होते हुये भी अपने कुछ विशिष्ट सिद्धांत रखते थे। सरदार के विद्रोह से जनता के एकाएक यह विचार आया था कि आज देश को उनकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी, निजाम शाही को ध्वंस कर देने वाली दृढ़ता अब कहाँ

हमेशा अच्छी किस्म का

मक्खन, घी, दूध और क्रीम

प्राप्त करने के लिए स्मरण रखिए।

न व यु ग डे री,

२७।१ बिरहाना रोड, कानपुर।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मिलेगी ? राजाओं के उन्नत मुकुटों को प्रेम और आत्मीयता से अवनत कर देने वाली कुशलता अब कहाँ मिलेगी ?

सरदार पटेल के गृह विभाग को राजाजी ने संभाला है । मद्रास के प्रधान मंत्रित्व काल में उनकी योग्यता से परिचित हो चुके हैं । अतः उनसे इस महत्वपूर्ण पद के पूर्ण योग्यता से संभालने की आशा की जा सकती है। किंतु राज्यों की जुम्मेवारी श्रीगोपाल स्वामी अय्यंगर को दी गई हैं । वे अपने कार्यों में कृत कृत्य हो सकेंगे इसमें सन्देह है क्योंकि वे कभी कांग्रेस के कार्यकर्त्ता नहीं रहे इस नाते प्राँतों की कांग्रेसी सरकारों पर उनका पर्याप्त प्रभाव और दबाव रहेगा, इसमें शंका उत्पन्न होती है ।

किंतु हमारी हार्दिक इच्छा है कि सरदार पटेल के रिक्त स्थान की पूर्ति यह दोनों ही महानुभाव सफलता पूर्वक कर सकें !

गण राज्य दिवस कब मनावें ?

सर्व साधारण रूप से देश की विचारशील जनता के सम्मुख इस बार यह विचार आ रहा है कि आगामी कुछ ही दिनों में आने वाले गणराज्य दिवस को वे २६ जनवरी को मनावें या माघ शुक्ल की ८ को। गत वर्ष माघ शुक्ल ८ सं० २००६ तदनुसार २६ जनवरी को भारत गणराज्य घोषित हुआ था किंतु इस वर्ष यदि यह दिवस भारतीय परम्परा के अनुसार मनाया जाता है तो वह २६ जनवरी को न पड़कर १४ फरवरी को पड़ रहा है।

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक बात निसन्देह विचारणीय है कि देश से अँग्रेजों के चले जाने के पश्चात उस समय की अनेक परम्परायें समाप्त हो रही हैं। अब क्रिसमस की छुट्टियाँ भी कम कर दी गई हैं। और देश के अनेक राज्यों की सरकारों ने १ जनवरी की छुट्टी भी बैंक छुट्टी के नाम से घोषित की है। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने ईस्वी सन के अनुसार महात्मा गांधी का जन्म दिन मानना स्वीकार नहीं किया है। यह सब देखते हुए भारतीय इतिहास की इतनी महत्वपूर्ण घटना को विदेशी परम्परा के अनुसार ही मनाया जाय कुछ उचित नहीं ज्ञात होता। अतः अन्य विचारशील पुरुषों की भाँति हमारा भी मत है कि गणराज्य दिवस को २६ जनवरी की अपेक्षा माघ शुक्ल की अष्टमी को मनाना चाहिए।

—

अपने नगर की शान बढ़ाने के लिये

अपनी समस्त आवश्यक वस्तुएँ अपने नगर की दूकानों से ही खरीदिए
और खरीदते समय यह नाम सदा याद रखिये

के० जी० ठाकुरदास

मालरोड, कानपुर।

—हर प्रकार के—

आभूषणो, घड़ियों, फाउन्टेनपेन, होजरी, बंगलोर और मैसूर की सिल्क जार्जेट व साड़ियों तथा फैन्सी ऊनी, रेशमी व सूती कपड़ों आदि के लिए।

'दशमेश' में प्रकाशित किसी विज्ञापन का माल यदि आप अपनी आवश्यकतानुसार मँगाते हैं तो 'दशमेश' का उल्लेख करना न भूलिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आप अपने नगर में दशमेश कहां से प्राप्त कर सकते हैं ?

कानपुर—यूनिवर्सल बुक स्टाल—दि माल
भारत समाचार पत्रालय-बिरहाना रोड
तथा प्रत्येक स्थानीय हाकर से

लखनऊ-निगम न्यूज एजेंसी अमीनाबाद पार्क
शिवाजी बुक डिपो „ „
कृष्णा बुक स्टाल-सुदर्शन टाकीज

बनारस—भारतीय वस्तु भण्डार-गुदौलिया

अलीगढ़—भारतीय साहित्य निकेतन दुबे का पड़ाव

कलकत्ता—हिन्दुस्तान एजेन्सी-बड़ा बाजार

हरिद्वार—प्रहलादराय न्यूज पेपर एजेन्ट नानकी देवी धर्मशाला

मुजफ्फरनगर—राष्ट्रीय समाचार एवं पुस्तक भण्डार-भगतसिंह रोड

इलाहाबाद—साहू जनरल स्टोर्स-हिवेट रोड

बरेली—हरिहरप्रसाद जैन मु० साहूकारा

एटा—स्वतन्त्र भारत न्यूज एजेन्सी

झाँसी—भारत समाचार केन्द्र-सिपरी बाजार

खुर्जा—के० यल० शर्मा-न्यूज पेपर एजेन्ट

लखीमपुर—सुशील दीक्षित-समाचार पत्र अभिकर्त्ता

जोधपुर—रेवाचन्द्र पहलादराय-गुन्दीकी गली

ग्वालियर-भारत समाचार पत्र समिति लश्कर

सतारा—सतारा एजेन्सी

स्थानाभाव के कारण हम अपने अन्य स्थानों के अभिकर्त्ताओं के पते नहीं दे सके हैं जो आगामी अङ्क में प्रकाशित किये जायेंगे।

सभी प्रकार के सोने चांदी के नवीनतम डिज़ाइन के आभूषणों
— के लिए —

पिण्डी ज़ेवर घर

८० फुट रोड, दर्शनपुरवा कानपुर में
पधारिये।

शुद्ध और खालिस माल की गारंटी

हम अपनी दूकान का बना जेवर वापसी पर बाजार के पूरे भाव पर वापस कर लेते हैं।

एक बार अवश्य परीक्षा कीजिये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सचित्र मासिक 'इतिहास' की अपने पाठकों को

नई अनुपम भेंट

पेशवा विशेषाङ्क

जनवरी सन् १९५१ में सजधज से प्रकाशित हो रहा है। ११२ पृष्ठों से ऊपर सुपाठ्य सामग्री तथा अनेकों रंगीन चित्रों के इस विशेषाङ्क का मूल्य केवल बारह आना रक्खा गया है।

१० ऐतिहासिक लेख, ५ सामयिक लेख, ४ कहानी

एवं

कविता से युक्त

भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट् होने के नाते भारतीय इतिहास में पेशवाओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हीं के हाथों से सत्ता छीनकर अंग्रेजों ने भारत को गुलाम बनाया था। उपरोक्त अङ्क उनके विषय में पर्याप्त जानकारी से पूर्ण होगा। विद्वत समुदाय एवं जनता ने अगस्त में प्रकाशित 'बृहत्तर भारत विशेषांक' का जो स्वागत किया है वह किसी से छिपा नहीं है। इस वर्ष की दूसरी भेंट 'पेशवा विशेषांक' पाठकों को सादर समर्पित है।

विशेषांक के लिए डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, क्यूरेटर एशियाटिक म्यूजियम श्री भास्करनाथ मिश्र, क्यूरेटर, नालन्दा, म्यूजियम, श्री गुरुदत्त वैद्य, प्रो० बलराज मधोक, सम्पादकीय विभाग अर्गनाइजर, प्रो० अम्बाप्रसाद, रामजस कालेज, प्रो० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट आगरा कालेज, श्री तुरीय चैतन्य, श्री रामगोपाल विद्यालंकार, डा० लोकेशचन्द्र एम० ए०, डी० लिट, प्रो० परमात्माशरण, श्री शम्भूनाथ तिवारी प्रभृति विद्वानों की रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं।

इतिहास के स्थायी ग्राहकों को यह अंक निशुल्क भेंट किया जायगा।

अतः शीघ्र ही वार्षिक चन्दा ५) रु० भेजकर ग्राहक बन जाइये।

व्यवस्थापक;—

'इतिहास' कार्यालय,

कटड़ा बड़ियान, दिल्ली।

नोट—पेशवा विशेषांक लगभग १८ जनवरी तक तैयार होकर ३१ जनवरी तक सभी अभिकर्ताओं एवं ग्राहकों के पास भेज दिया जावेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सब प्रकार की

इमारती लकड़ी

— के लिये —

आप केवल हमारे पास आइये।

सारा ही कार्य

आपके लिये अत्यन्त सन्तोषप्रद होगा।

सरदार नन्दसिंह तिनेजा एण्ड सन्स

लाटूश रोड—कानपुर।

—सभी प्रकार की—

रेशमी साड़ियां, कोटिंग, सूटिंग

जनाने और मरदाने सभी के लिए

हमारे यहाँ उचित मूल्य पर मिलते हैं।

नामधारी सिल्क स्टोर

स्वदेशी बाजार, कानपुर।

हमारे यहाँ गोटा, किनारी, सिलमा, सितारा व सिलाई का हर प्रकार का उत्तम काम होता है।

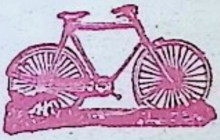

नई साइकिलें बहुत महँगी हो गई हैं।

आप अपनी पुरानी साइकिलों को ही नई करवालें।

कानपुर नगर में २० वर्ष पुरानी दूकान

पंजाब साइकिल वर्क्स

चौराहा फूलबाग़, कापुनर।

साइकिलों की सुन्दर रँगाई, सफाई और मरम्मत के लिये हमारे यहाँ पधारिये।

नेशनल आर्ट स्टूडियो

काहूकोठी, कानपुर।

।।≈) में दो फोटो बनवाइये

और उसी की इन्लार्जमेंट ४।।।×६।। इंच का माउंट सहित ११×६ इंच में २≈) में बनवाइये।

फोटो सम्बन्धी सभी कार्यों के लिए कृपया हमारे यहाँ एक बार अवश्य पधारिए।

ग्रुप फोटोग्राफी के विशेषज्ञ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Regd. No.

हमारे सभी ग्राहकों सहयोगियों एवं शुभ चिन्तकों को नूतन वर्ष मंगलमय हो। विभिन्न रंगों और क्वालिटी का सर्वश्रेष्ठ

ऊन का भण्डार

—इसके अलावा—

हमारे यहां नई-नई डिजाइनों में हर प्रकार का ऊनी, सूती, रेशमी कपड़ा, साड़ियाँ, घड़ियाँ व अन्य बहुत सी भेंट, सामग्रियाँ उचित व बाजार से सस्ते मूल्य पर खरीदिये।

कृपया एक बार—

अपने मन पसन्द चुनाव के लिए हमारे शो रूम में पधारिये

लिबर्टी हाउस, माल रोड, नवरोज बिल्डिंग्स,
कानपुर।

स० रवलसिंह द्वारा केसरी प्रेस, में मुद्रित, श्री रामेश्वरप्रसाद द्वारा धनकुट्टी से प्रकाशित। सम्पादक—महीपसिंह

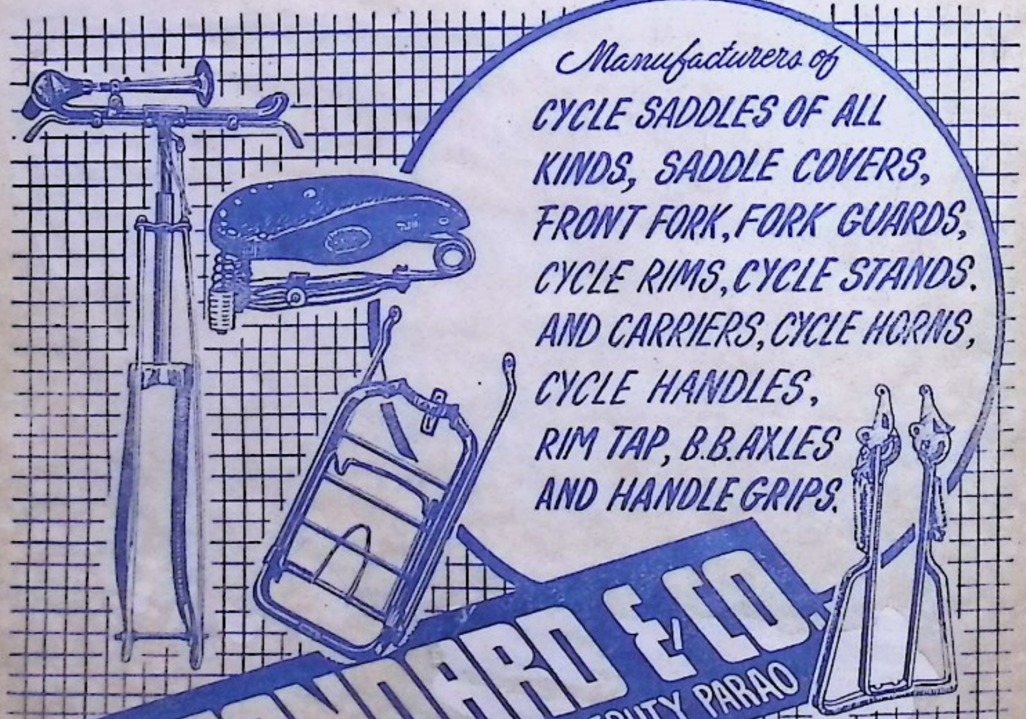

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi